राम चरित मानस का पाठ

(तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, खण्ड २)

प्रथम संस्करण, १९४९ ई०

सम्पादक

माताप्रसाद गुप्त, एम० ए०, डी० लिट्०

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

तुलसी-ग्रन्थावली

भाग १, खण्ड २

सम्पादक

माताप्रसाद गुप्त

एम्० ए०, डी० लिट्०

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

पूज्य गुरु

श्री डा० धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)

की सेवा में

सादर और सस्नेह

अर्पित

प्रस्तावना

पंद्रह वर्ष हुए, अपने तुलसी-विषयक अध्ययन के प्रसंग में मैंने 'रामचरितमानस की सब से प्राचीन प्रति' शीर्षक एक लेख जनवरी, १९३५ की 'हिंदुस्तानी' में प्रकाशित किया था, जिसमें मैंने अयोध्या के श्रावण-कुंज नामक स्थान में सुरक्षित सं० १६६१ की कही जाने वाली—किंतु जैसा आगे दिखाया गया है वास्तव में सं० १६६१ की—बाल-कांड की एक प्रति का आलोचनात्मक परिचय दिया था। तभी से 'रामचरितमानस' की पाठ-समस्या पर मेरा ध्यान रहा है।

इस बीच सं० १९९३ में श्री विजयानंद त्रिपाठी तथा सं० १९९५ में श्री नंददुलारे वाजपेयी द्वारा संपादित 'रामचरितमानस' के संस्करण लीडर प्रेस तथा गीता प्रेस से प्रकाशित हुए, और वैशाख सं० १९९९ में स्वर्गीय श्री शंभुनारायण चौबे का 'मानस-पाठभेद' शीर्षक लेख 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' में निकला, जिसमें उन्होंने श्री भागवतदास छत्री द्वारा संपादित मानस के एक प्राचीन संस्करण से कई प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों और संस्करणों के मुख्य पाठभेद प्रकाशित किए।

मेरा कार्य एक भिन्न प्रकार का है। उसका लक्ष्य यह है कि 'रामचरितमानस' के जितने भी पाठ हमें प्राप्त हैं, उनकी वास्तविक स्थिति का निर्धारण करते हुए ग्रंथ के मूल पाठ तक पहुँचने का प्रयास किया जाए। इसमें कहाँ तक कृतकार्य हुआ हूँ, यह आगे की खोजें बताएँगी। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इस कार्य में मैंने ऐतिहासिक और वैज्ञानिक सिद्धांतों का आश्रय लेकर यथाशक्ति सत्य का अनुसंधान करने का यत्न किया है, और इसके लिए अपनी और दूसरों की पूर्व की मान्यताओं का भी जहाँ आवश्यकता हुई है, निराकरण करने में कोई संकोच नहीं किया है। प्रस्तुत कृति केवल उस पाठान्वेषण को सामने रखती है। इस अन्वेषण द्वारा निर्धारित पाठ को मूल में और पाठांतरों को पाद-टिप्पणी में देते हुए पाठ-शोध संबंधी आवश्यक वक्तव्य के साथ 'रामचरितमानस' का संस्करण स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुका है।

मैं भारत कला भवन काशी, और उसके अध्यक्ष श्री राय कृष्णदास, स्वर्गीय श्री शंभुनाथ चौबे, स्वर्गीय श्री कमलाकर द्विवेदी, काशी-नरेश महाराज श्री विभूतिनारायण सिंह, श्रावण कुंज के महंत स्वर्गीय श्री जनक-किशोरी शरण, राजापुर के स्वर्गीय श्री मुन्नीलाल उपाध्याय, मिर्ज़ापुरके श्री हरिदास दलाल, अहोरिकपुर के स्वर्गीय श्री धनंजय शर्मा, और मुँगरा-बादशाहपुर की हिंदू सभा का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अपनी अमूल्य प्रतियों का उपयोग करने की सुविधाएँ प्रदान की हैं। इन सभी महानुभावों की कृपा के बिना यह कार्य असंभव था। स्वर्गीय श्री शंभुनाथ चौबे का मैं पुनः आभारी हूं जिनके 'मानस-पाठभेद' शीर्षक उल्लिखित लेख से मुझे दो अप्राप्य संस्करणों के पाठ भी प्राप्त हुए हैं। श्री एल० डी० स्वामीकन्नू पिलाई का आभारी हूँ, जिनकी 'इंडयन क्रॉनॉलोजी' की सहायता से मैंने तिथियों की गणना की है, और श्री डा० सूर्यकांत शास्त्री का आभारी हूँ जिनकी 'रामायण शब्द-सूची' का उपयोग इस ग्रंथ के पाठ-विवेचन खंड में मैंने पग-पग पर किया है। युक्त प्रांतीय पेपर कंट्रोल विभाग का भी मैं आभारी हूँ, जिसने इसके प्रकाशन की सुविधाएँ प्रदान की हैं।

अंत में और सबसे अधिक मैं श्रद्धेय डा० धीरेन्द्र वर्मा, श्री डा० बाबूराम सक्सेना, और श्री डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ, जिन्होंने इस ग्रंथ के भूमिका खंड को देखकर यत्र-तत्र कुछ सुझाव देने की कृपा की है।

हिंदी ही नहीं, कदाचित् समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में विस्तृत पाठ-निरूपण का यह पहला प्रयास है, इसलिए इसमें त्रुटियाँ होना अवश्यंभावी है। इधर कुछ अन्य महान् हिंदी कृतियों की पाठ-समस्या सुलझाने में लगा हुआ हूँ, और यथावसर उन्हें भी सामने रक्खूँगा। आशा है कि संग्रहकर्त्ताओं, विद्वानों और समालोचकों का इस कार्य में आवश्यक सहयोग प्राप्त होगा।

प्रयाग,
२४ दिसंबर, १९४९

माताप्रसाद गुप्त

विषय-सूची

१. भूमिका

प्रतियाँ (पृ० १) ; प्रतियों की बहिरंग परीक्षा (पृ० ७) ; प्रतियों का प्रतिलिपि-संबंध (पृ० १७) ; प्रतियों की पाठ-संरक्षा (पृ० २४) ; प्रतियों का पाठ-संबंध (पृ० ५२) ; अंतर और उसका समाधान (पृ० ५४) ; संपादन (पृ० ६०) ; सिद्धांत और अपवाद (पृ० ६२) ।

परिशिष्ट—प्रतिलिपि-तिथियों की गणना (पृ० ६६) ।

२. पाठ-चक्र

आवश्यक सूचनाएँ (पृ० ७७)

बालकांड (पृ० ८०) ; अयोध्या कांड (पृ० १०७) ; अरण्य कांड (पृ० ११८) ; किष्किंधा कांड (पृ० १२५) ; सुंदर कांड (पृ० १२६) ; लंका कांड (पृ० १३५) ; उत्तर कांड (पृ० १६६) ।

परिशिष्ट (क)—अतिरिक्त पाठ-चक्र (पृ० १८८) ।

परिशिष्ट (ख)—सं० १७०४ की प्रति के प्रक्षिप्त अंश (पृ० २०१) ।

१

भूमिका

प्रतियाँ

'रामचरितमानस' की हस्तलिखित प्रतियाँ—और उनके आधार पर संपादित संस्करण—उत्तरी भारत में इतने हैं कि उन सबका उपयोग करना किसी भी एक व्यक्ति के बस की बात नहीं है। अनेकानेक प्रतियाँ मेरी ही निगाह से गुज़र चुकी हैं, किन्तु यहाँ उन्हीं का उल्लेख उपयुक्त होगा जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुई हैं। साथ ही, कुछ अन्य ऐसी प्रतियों का भी उल्लेख किया जा सकता है जो यद्यपि वस्तुतः महत्त्व-पूर्ण नहीं हैं, किन्तु जो 'मानस' के पाठ-शोध के लिए आवश्यक मानी गई हैं। इस प्रसंग में केवल स्वर्गीय पं० शंभुनारायण चौबे का उल्लेख यथेष्ट होगा, जिन्होंने बड़े परिश्रमपूर्वक 'मानस-पाठभेद' शीर्षक एक लेख में इसी विचार से कई प्रतियों के पाठांतर दिये हैं।[१] सुविधा के लिए नीचे बाईं ओर संकेत-संख्याएँ देते हुए उन प्रतियों की संकेत-संख्याएँ अतः प्रायः उन्हीं के अनुसार दी जा रही हैं, जिनका उन्होंने भी उक्त लेख में उपयोग किया है।

(१) सं० १७२१ वि० की प्रति—यह प्रति इस समय नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी के कलाभवन में सुरक्षित है। इस प्रति का अयोध्याकांड मात्र नहीं है। प्रति सुलिखित है। आकार ११" × ४½" है। यह प्रति अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिपिबद्ध है।

(२) सं० १७६२ की प्रति—यह प्रति नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी के भूतपूर्व पुस्तकाध्यक्ष उपर्युक्त स्वर्गीय पं० शंभुनारायण चौबे के पास थी। प्रति पूर्ण है और सुलिखित है। आकार १०" × ६" है। यह अलग-अलग पत्रों पर अपनी चौड़ाई में लिपिबद्ध है।

(३) छक्कनलाल की प्रति—यह प्रति इस समय स्वर्गीय महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी के सुयोग्य पुत्र श्री कमलाकर द्विवेदी के पास मुहल्ला खजुरी, काशी में है। प्रति सुलिखित है। आकार लगभग

१—'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' वर्ष ४७, अङ्क १

१३" × ८" है। यह अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिपिबद्ध है। कहा जाता है कि यह प्रति सं० १७१४ की एक प्राचीन प्रति की प्रतिलिपि-परंपरा में है।

(४) रघुनाथदास की प्रति—विक्रम की पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में काशी में एक बाबा रघुनाथदास थे, जिनके पास 'रामचरितमानस' की एक हस्तलिखित प्रति थी, जो उस समय आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। उसका पाठ लेकर सं० १९२६ तथा उसके लगभग काशी से 'मानस' के कुछ संस्करण प्रकाशित हुए थे। मूल प्रति इस समय अप्राप्य है, उसके आधार पर संपादित इन मुद्रित संस्करणों का ही उपयोग उसके स्थान पर किया जा सकता है।[1]

(५) बंदन पाठक की प्रति—विक्रम की पिछली शताब्दी के पूर्वार्द्ध में एक प्रसिद्ध रामायणी पं० बंदन पाठक थे। सं० १९४९ में सुधानिवास यंत्रालय, काशी से इन्हीं बंदन पाठक जी की एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर 'मानस' का एक संस्करण प्रकाशित हुआ था। मूल प्रति इस समय अप्राप्य है, उसके अभाव में इस संस्करण का ही उपयोग किया जा सकता है।[2]

(६) सं० १७०४ की प्रति—यह प्रति इस समय काशिराज के निजी संग्रहालय में है। इसका आकार लगभग १०" × ४½" है। प्रति सुलिखित है और अलग-अलग पत्रों पर लम्बाई में लिखी हुई है। दुर्भाग्यवश इसमें कई पत्रे खंडित हैं। इन पत्रों के स्थान पर नए पत्रे लिखकर रख दिये गये हैं, जो यह हैं : बाल० पत्रा ३०, ५१—६५, १०८, १४२—१७५, १८०, १८४, १९०, २०४, २१५—२१९ तथा उत्तर० पत्रा ४३—७२

(७) कोदवराम की प्रति—कहा जाता है कि 'रामचरितमानस' का एक पाठ 'बीजक' के नाम से गोस्वामी जी की एक शिष्य-परंपरा में

१—विशेष विवरण 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' वर्ष ४३, अङ्क ३, पृ० २८४-८७, पं० शंभुनारायण चौबे के 'रामचरितमानस' शीर्षक लेख में देखिए।

२—विशेष विवरण : वही, पृ० २९० ।

बहुत दिनों तक सुरक्षित रहा है। इस 'बीजक' की उत्तरोत्तर चौथी प्रति के आधार पर केसरिया (जिला चंपारन) के स्वर्गीय कोदवराम जी ने 'मानस' का एक पाठ तैयार किया था, जो पहले-पहल सं० १९५३ में वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हुआ था। वह संस्करण इस समय अप्राप्य है, किन्तु सं० १९९५ में पुनः उसी संस्करण के अनुसार उक्त प्रेस ने 'मानस' का एक संस्करण प्रकाशित किया है। उक्त चौथी प्रति-लिपि इस समय अप्राप्य है,[१] अभाव में सं० १९५३ या सं० १९९५ के संस्करणों का ही उपयोग किया जा सकता है।

(५अ) मिर्ज़ापुर की कुछ प्रतियाँ—मिर्ज़ापुर की प्रतिलिपि की हुई कुछ प्रतियाँ है, जिनका पाठ प्रायः एक ही है। इनमें से एक वहाँ के कोतवाली रोड के बाबू कैलाशनाथ के सं० १८८१ की है और एक मेरे ही पास सं० १८७८ की है।[२] आकार में बाबू कैलाशनाथ की प्रति लगभग १३½" × ७" और मेरी प्रति लगभग १२" × ६" है। दोनों प्रतियाँ अपनी लम्बाई में लिखी हुई हैं और सुलिखित हैं। बाबू कैलाशनाथ की प्रति का बालकांड नहीं है, मेरी प्रति पूर्ण है।

(६अ) सं० १६६१ की प्रति—यह प्रति श्रावणकुञ्ज, वासुदेवघाट, अयोध्या में है। यद्यपि प्रति पूरी करके रक्खी हुई है, किन्तु प्राचीन अंश बालकांड मात्र है। आकार लगभग ६½" × ३½" है। प्रति सुलिखित है, और अलग-अलग पत्रों पर लम्बाई में लिखी हुई है। केवल पाँच पत्रे बालकांड में नये हैं : बाल-पत्रा १—४ तथा ९६

(८, बा०) सं० १९०५ की प्रति—यह प्रति हिन्दूसभा, मुँगरा बादशाहपुर (ज़िला जौनपुर) के पुस्तकालय में है। इसका आकार

१—कोदवराम जी का स्वर्गवास हो चुका है। सुनने में आया है कि उनके घर पर एक हस्तलिखित प्रति 'मानस' की अवश्य है, किन्तु अरक्षित दशा में और खंडित है; और अधिक इसके विषय में नहीं ज्ञात हो सका है।

२—इसी पाठ की एक अन्य प्रति रायबहादुर पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के पास भी है। यह प्रति संपूर्ण है और अत्यन्त सुन्दरतापूर्वक बड़े आकार के पृष्ठों में अपनी चौड़ाई में लिखी हुई है।

८"×५½" है। प्रति सुलिखित है और अपनी चौड़ाई में लिपिबद्ध है। यह पूर्ण है और केवल बालकांड की है।

(८, अयो०) राजापुर की प्रति—यह प्रति राजापुर (ज़िला बाँदा) के पं० मुन्नीलाल उपाध्याय और उनके कुलवालों के पास है। इसका आकार लगभग १०"×४½" है। प्रति पूर्ण और सुलिखित है। लिखावट अलग-अलग पत्रों पर लम्बाई में हुई है। अंत में कोई तिथि या पुष्पिका नहीं दी हुई है। दुर्भाग्यवश सामान्यतः इसके दर्शन मात्र हो पाते हैं और पूरी प्रति का पारायण या मिलान करने की अनुमति नहीं दी जाती। इसकी एक प्रतिलिपि स्वर्गीय लाला सीताराम को किसी प्रकार प्राप्त हो गई थी। उसी के अनुसार उन्होंने सं० १९६४ में देहरादून से अयोध्याकांड मात्र का एक संस्करण प्रकाशित कराया था। मूल प्रति का उपयोग सम्भव न होने के कारण इस संस्करण का उपयोग किया जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह केवल अयोध्याकांड की प्रति है।

(८, अर०) सं० १६४१ की प्रति—यह प्रति बदली कटरा, मिर्ज़ापुर, के श्री हरीदास दलाल के पास है। इसका आकार लगभग ९½"×४½" है। प्रति पूर्ण तथा सुलिखित है और अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिखी हुई है। यह केवल अरण्यकांड की प्रति है।

(८, सुं०) सं० १६६४ की प्रति—यह प्रति मुँगरा बादशाहपुर (ज़िला जौनपुर) के सन्निकट बहोरकपुर ग्राम के निवासी स्वर्गीय धनञ्जय शर्मा से मुझे प्राप्त हुई थी। इसका आकार ९"×५" है। प्रति पूर्ण तथा सुलिखित है और अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिखी हुई है। यह केवल सुंदरकांड की प्रति है।

(८, लं० १) सं० १६९७ की प्रति—यह प्रति भी मुझे उपर्युक्त धनञ्जय जी से प्राप्त हुई थी। इसका आकार १२½"×६¼" है। प्रति पूर्ण तथा सुलिखित है और अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिखी हुई है। यह केवल लंकाकांड की प्रति है।

(८, लं० २) सं० १७०२ की प्रति—यह प्रति भी मुझे उपर्युक्त धनञ्जय जी से प्राप्त हुई थी। इसका आकार ९½"×४" है। यह प्रति भी सुलिखित है और अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिखी हुई है।

इसमें अंत के यह पत्रे नहीं हैं : पत्रा १०७-१०९। यह भी लंकाकांड मात्र की प्रति है।

(८, उ०) सं० १६९३ की प्रति—यह प्रति भी मुझे उपर्युक्त धनञ्जय जी से प्राप्त हुई थी। इसका आकार ९"×६३/४" है। प्रति पूर्ण तथा सुलिखित है और पुस्तक के रूप में अपनी चौड़ाई में लिखी हुई है। यह केवल उत्तरकांड की प्रति है।

(९, बा०) सं० १६४३ की प्रति—यह प्रति कासगंज (ज़िला एटा) के पं० भद्रदत्त शर्मा वैद्य के पास है। इसका आकार १११/४"×६" है। पहला पत्रा तथा बीच के कुछ पत्रे खंडित हैं, किन्तु अंतिम सुरक्षित है। लिखावट अच्छी नहीं है और प्रति की लम्बाई में हुई है। यह केवल बालकांड की प्रति है।

(९, अर०) सं० १६४३ की प्रति—यह प्रति भी उपर्युक्त भद्रदत्त जी के पास है। आकार लगभग १२"×६१/२" है। इस प्रति के भी कई पत्रे खंडित हैं, जिनमें पहला भी है। अंतिम पत्रा अवश्य सुरक्षित है। लिखावट साधारण है और प्रति की लम्बाई में हुई है। यह केवल अरण्यकांड की प्रति है।

(९, सुं०) सं० १६७२ की प्रति—यह दुलही (ज़िला लखीमपुर) के एक पंडित जी के पास है। आकार अनुमानत: ९"×४१/२" है। प्रति पूर्ण है। लिखावट अच्छी है और प्रति की लम्बाई में हुई है। यह केवल सुंदर-कांड की प्रति है।

प्रतियों की बहिरङ्ग परीक्षा

(१) सं० १७२१ की प्रति—इस प्रति में पुष्पिका केवल उत्तरकांड की समाप्ति पर दी हुई है और वह इस प्रकार है :—

संवत् १७२१ वर्षे जेठ बदी दशमी।

तिथि के साथ वार या अन्य कोई ऐसा विवरण नहीं है जिससे गणना द्वारा तिथि की शुद्धता जानी जा सके। अन्यथा प्रति प्राचीन ज्ञात होती है और इतनी पुरानी हो सकती है।

(२) सं० १७६२ की प्रति—इसकी समाप्ति की पुष्पिका इस प्रकार है :

सं० १७६२ समये अषाढ़ मासे सुकुल पक्षे पंचम्यां। लिखिते फेरू राजपूत। जो देखा सो लिखा मम दोषो न दीयते। सुभमस्तु।

प्रति के कुछ अन्य कांडों के अंत में भी प्राय: इसी प्रकार की पुष्पिका दी हुई है। केवल तिथियों में अन्तर है। तिथि के साथ वार या अन्य कोई ऐसा विस्तार कहीं नहीं दिया हुआ है जिससे गणना द्वारा तिथियों की शुद्धता देखी जा सके। प्रति प्राचीन अवश्य है और इतनी पुरानी हो सकती है।

(३) छक्कनलाल की प्रति—इस प्रति के विभिन्न कांड सं० १९१६ से १९२१ तक के लिखे हुए हैं। कुछ पृष्ठों को छोड़कर समस्त प्रति महा-महोपाध्याय स्वर्गीय सुधाकर द्विवेदी के पिता श्री कृपाल द्विवेदी की लिखी हुई है। पुष्पिकाओं में आनेवाली तिथियाँ अपने समस्त विस्तार के साथ दी हुई हैं, किन्तु वे इतनी आधुनिक हैं कि गणना प्राय: अनावश्यक है।

(४) रघुनाथदास की प्रति—यह प्रति मुद्रित है और इसके सम्बन्ध में ऊपर के ढंग की समस्याएँ नहीं उठतीं।

(५) बंदन पाठक की प्रति—इस प्रति की समस्या भी रघुनाथदास की प्रति जैसी है।

(७) कोदवराम की प्रति—यह भी मुद्रित है, इसलिए ऊपरवाली समस्याएँ इसके सम्बन्ध में भी नहीं उठतीं; किन्तु, इसकी भूमिका में 'बीजक' पाठ की जिस परम्परा का उल्लेख किया गया है, वह अवश्य विश्वसनीय नहीं ज्ञात होती। इसमें निम्नलिखित दोहे आते हैं, जो पं० शिवलाल पाठक रचित 'मानस-मयंक' में भी मिलते हैं।[1]

ब्रह्म किशोरीदत्त को ग्रंथकार ही दीन्ह।
अल्पदत्त पढ़ि ताहि सों चित्रकूट मों लीन्ह।
रामप्रसादहिं सो दई लहि तातें शिवलाल।
दत्त फणीशहिं जानि निज सो दीन्ही सुख माल।

अत: परम्परा इस प्रकार है :—१. ग्रंथकार—२. किशोरीदत्त—३. अल्पदत्त—४. रामप्रसाद—५. शिवलाल—६. फणीशदत्त। उसमें यह

१—'मानस-मयंक', पृ० २६

भी कहा गया है कि फणीशदत्त (शेषदत्त) ने सं० १९०१ में जीवलाल से यह चौथी प्रतिलिपि कराई थी और उसी से कोदवराम का यह पाठ ग्रहण किया गया है। यदि यह माना जावे कि ६०-६२ वर्ष की अवस्था में—अथवा सं० १६५० के लगभग भी—किशोरीदत्त को कवि ने 'मानस' की प्रति दी तो सं० १९०१ तक २५१ वर्ष होते हैं—और इस लम्बे समय के बीच ग्रंथकार के अतिरिक्त केवल पाँच पीढ़ियाँ बताई गई हैं, इसलिए 'मानस-मयंक' के अनुसार प्रत्येक पीढ़ी प्रायः पचास वर्ष की होती है। यह असंभव ही है। गुरु-शिष्य परम्परा की पीढ़ियाँ औसतन् बीस वर्ष की पाई जाती हैं; और अधिक से अधिक यह औसत पचीस वर्ष की हो सकती है। पचास वर्ष की औसत तो किसी दशा में नहीं हो सकती। इसलिए यह कथन अप्रामाणिक ज्ञात होता है।

एक बात और भी इस प्रसंग में विचारणीय है। शिवलाल जी ने 'मानस-मयंक' में 'मानस' से जो उद्धरण दिये हैं, उनका पाठ कोदवराम के पाठ से कुछ स्थलों पर भिन्न और 'बीजक'-परंपरा की कुछ अन्य प्रतियों के पाठ से मिलता है।[1] उदाहरण के लिए लंकाकांड के निम्नलिखित स्थल लिये जा सकते हैं :—

कोदवराम में	'मयंक' तथा एक अन्य प्रति[1] में
६-२-४ करिहौं इहाँ शंभु स्थापना।	थापना
६-३-४ मम कृत सेतु जो दरसन करिहहिं।	करिहीं
६-३-४ सो विनु स्रम भवसागर तरिहहिं।	तरिहीं
६-५-८ जा कहुँ फिरत निशाचर पावहिं।	जहं
६-७ मम अहिबात न जात।	अचल होइ अहिबात

१—पता लगाने पर केसरिया (ज़िला चंपारन) से यह ज्ञात हुआ है कि 'बीजक' पाठ की एक प्रति वहाँ के कर्मवीर गांधी पुस्तकालय में है। उक्त प्रति के लंकाकांड मात्र का पाठ—और पाठ-भेद लंकाकांड में सबसे अधिक हैं—वहाँ से मैंने मँगवा लिया है। यहाँ पर आशय उसी प्रति से है।

६-१०-२ तोहिं कवन सिखाई।	केहिं तोहिं सिखाई
६-१० तदपि न तेहि कछु त्रास।	मन
६-११ एहि बिधि कृपारूप गुन,	करुनासील
६-१२ तव मूरति बिधुउर बसी, सोइ स्यामता भास।	बसति, अभास
६-१२ दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु,	दिसा बिलोकि
६-१६-६ एहि बिधि कहेउ मोरि प्रभुताई।	मिस कहहु
६-१८-३ खेलत रहा सो होइ गइ भेंटा।	होइ
६-३२-६ कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे।	बहु कर
६-३५ मंदोदरि तब रावनहिं,	मंदोदरी निसाचरहिं
६-३७ दुइ सुत मारेउ दहेउ पुर, अजहूँ परतिय देहु।	मारे अजहुँ पूर पिय
६-३७ कृपासिंधु रघुनाथ भजि	रघुपतिहि
६-५८ बिनु फर सायक मारेउ	सर कपि
६-९७ तेइ जिमि तीरथ कर पाप।	जिमि कर्म मूढ़ के पाप
६-११०-९ यह खल मलिन सदा,	रावन पाप मूल

अतः निर्विवाद रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि कोदवराम का पाठ ही अपनी परंपरा का प्रामाणिक पाठ है। बल्कि ऐसा ज्ञात होता है कि कोदवराम के पाठ में पंडितों ने अपनी ओर से भी पाठ-सुधार कर यत्न किया है, क्योंकि साधारणतः 'मानस-मयंक' तथा उक्त अन्य प्रति के पाठ ही कुछ अन्य शाखाओं की प्रतियों और कुछ अन्य संस्करणों में भी मिलते हैं।

(६) सं० १७०४ की प्रति—इस प्रति के उत्तरकांड का अंतिम अंश नया लिखा हुआ है और उसमें कोई पुष्पिका नहीं है। बालकांड का भी अन्तिम अंश बाद का है, किन्तु उसमें पुष्पिका इस प्रकार दी हुई है :—

॥ संवत् १७०४ ॥ समए पौष सुदि दुइजि ॥२॥ लिखितं रघू तिवारी कास्यां मध्ये लोलार्क समीपे ॥

यह शब्दावली रघू तिवारी की हस्तलिखित तो नहीं है, क्योंकि इसकी लिखावट शेष प्रति के प्राचीन अंश की लिखावट से भिन्न है; किन्तु यह संभव है कि शब्दावली रघू तिवारी की ही हो और उनकी लिखी हुई प्राचीन प्रति से ज्यों की त्यों उतार ली गई हो। किन्तु इस विषय में निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

अयोध्याकांड की पुष्पिका में एक विशेषता है, जिसकी ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक होगा। पहले की पुष्पिका थी :—

॥ संवत् १६६५ समए अग्रहन सूदि प्रतिपदा लिखितं तुलसीदाशेन ॥ किन्तु बाद को "१६६५" के ऊपर कुछ हल्की ही स्याही से "१७०४" तथा "तुलसीदाशेन" के ऊपर उसी प्रकार "रघु तीवारी" बनाया गया है। यह क्रिया इतने भद्दे ढङ्ग पर हुई है कि पहले की लिखावट अब भी प्रायः पढ़ी जा सकती है।

अरण्य, किष्किंधा, सुंदर तथा लंकाकांडों की पुष्पिकाएँ क्रमशः इस प्रकार हैं :—

॥ संवत् १७०४ सए पउष शूदी अष्टमी लिखितं रघु तीवारी कास्यां ॥
॥ संवत् १७०४ समए पउष शूदी द्वादसी लिखितं रघु तीवारी कास्यां ॥
॥ संवत् १७०४ समए माघ बदि पंचमी लिखितं रघु तीवारी कास्यां ॥
॥ संवत् १७०४ समए माघ शूदी प्रतिपदा लिखितं रघु तीवारी कास्यां ॥

इन पुष्पिकाओं से अयोध्याकांड की पुष्पिका में कोई विशेष अंतर लिखने के ढङ्ग में नहीं है, केवल अयोध्याकांड की पुष्पिका में "कास्यां" नहीं है। तिथियों के साथ दिन या अन्य कोई ऐसा विवरण किसी भी पुष्पिका में नहीं है जिससे गणना द्वारा तिथियों की शुद्धता देखी जा सके—और अयोध्याकांड की पुष्पिका के सम्बन्ध में भी यही बात दिखाई पड़ती है। अयोध्याकांड का मूल-पाठ और पुष्पिका उसी व्यक्ति की लिखावटें हैं जिस व्यक्ति की लिखावट शेष कांडों के प्राचीन अंश और पुष्पिकाएँ हैं, साथ ही अयोध्याकांड की पुष्पिका भी उतनी ही अशुद्ध

लिखी हुई है जितनी अन्य कांडों की हैं। इसलिए यह प्रकट है कि अयोध्याकांड भी तुलसीदास की लिखावट नहीं है। अन्यथा प्रति के प्राचीन अंश—और अयोध्याकांड भी—पर्याप्त रूप से प्राचीन ज्ञात होते हैं। अयोध्याकांड के सम्बन्ध में या तो यह हो सकता है कि वास्तव में कोई प्रति तुलसीदास की लिखी सं० १६६५ की रही हो जिससे प्रतिलिपि करते समय उसकी पुष्पिका भी उतर आई हो, अथवा यह हो सकता है प्रतिलिपिकार केवल धोखा देना चाहता रहा हो—यह चाहता रहा हो कि उसकी प्रति तुलसीदास का हस्तलेख समझ ली जावे और इसलिए उसने यह जाल किया हो। दोनों अनुमानों में से कौन-सा ठीक है, यह कहना कठिन है।

(५ अ) मिर्जापुर की प्रतियाँ—बाबू कैलाशनाथ की प्रति के उत्तरकांड की पुष्पिका यह है :

॥ श्री संवत् १८८१ मिति भाद्र शुक्ल २ बार गुरु दसखत बेनीराम कायस्थ कै मुकाम मिर्ज्जापुर मध्य सहर महादेव के इमली तर ॥

मेरी प्रति के उत्तरकांड की पुष्पिका इस प्रकार है :

॥ पौष मासे कृष्ण पक्षे तिथौ चतुर्थ्यां भृगुवासरे संवत् १८७८ शाके १७४३ लिपि छकाराम तेवारी विष्णुदासस्यदासः ॥

अन्य कांडों के अंत में भी इसी प्रकार पुष्पिकाएँ दी हुई हैं। तिथियों की गणना करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि वे आधुनिक हैं। प्रतियाँ अपनी तिथियों के समान ही प्राचीन लगती हैं।

(६ अ) १६६१ की प्रति—इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :

॥ संवत् १६६१ वैशाख शुदि ६ बुधे ॥

तिथि की गणना करने पर परिणाम यह आता है :[१]

विगत सं० १६६१—मंगलवार
वर्त्तमान सं० १६६१—बुधवार

१—देखिए इसी खंड का परिशिष्ट।

इस परिणाम में यह ध्यान देने योग्य है कि तिथि वर्त्तमान संवत् में ठीक आती है, विगत संवत् में नहीं, जब कि उस समय मध्यदेश भर में विगत संवत् का ही प्रचलन था। इस कारण तिथि की शुद्धता पर सन्देह किया जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार का सन्देह मुझे पहले हुआ करता था, इसलिए इधर जब पुनः तिथि की लिखावट और ध्यानपूर्वक देखी, तो ज्ञात हुआ कि पहले संवत् १६९१ लिखा हुआ था, बाद में ९ का ६ बनाकर प्रति को कवि के जीवनकाल की बनाया गया है। १६६१ के दोनों ६ के ऊपर रेफ़ का चिह्न (र्‍) है, जो ग्रंथ भर में कहीं भी ६ के ऊपर नहीं लगा है। रेफ़ का यह चिन्ह ग्रंथ भर में ९ में ही मिलता है, जो सर्वत्र रेफ़ लगाकर ही बनाया गया है। यद्यपि जाल बड़ी सफ़ाई से किया गया है, किन्तु भली भाँति देखने पर संवत् १६६१ के पहले ६ के ऊपर के रेफ़ और दूसरे ६ के ऊपर के रेफ़ में क़लमें और स्याहियाँ दोनों भिन्न हो जाती हैं और इसके अतिरिक्त दूसरे ६ के नीचे के भाग की क़लम और स्याही पहले ६ के नीचे के भाग की क़लम और स्याही से भिन्न हो जाती हैं। पहले ६ और दूसरे ६ के ऊपर के पेट में भी अंतर है। पहले ६ का ऊपर का पेट दूसरे ६ के ऊपर के पेट के पेट की अपेक्षा छोटा है। गणना करने पर भी १६९१ की तिथि विगत संवत् में ठीक आती है,[१] इस कारण यह मानना पड़ेगा कि वास्तविक तिथि १६९१ ही है, १६६१ नहीं।

पुष्पिका में लिपिकार का नाम नहीं आया है। वह पत्रे के एक ओर पृष्ठ के अंत तक पहुँचकर समाप्त हो गई है और दूसरी ओर एक मोटा काग़ज़ चिपकाकर लिखा हुआ है कि इसके लिपिकार भगवानदास थे, जिनकी लिखी हुई 'विनयपत्रिका' की सं० १६६६ की एक प्रति रामनगर में चौधरी छुन्नीसिंह के यहाँ है, और यह कि लिपिकार का नाम पत्रे के इस ओर लिखा हुआ था, किन्तु पत्रा अनवरत उपयोग के कारण फटा जा रहा था, इस कारण उस पर यह मोटा कागज़ चिपका दिया गया। मैंने इस पत्रे को सूर्य की ओर उठाकर देखा, तो इसमें कहीं भी लिपिकार का नाम या पुष्पिका विषयक कोई अन्य उल्लेख

१—देखिए इसी खंड का परिशिष्ट।

नहीं दिखाई पड़ा। केवल नीचे के भाग में चिपके हुए काग़ज़ की ओर पत्रे पर "सुनाय के लोभाय बस में किया" दिखाई पड़ा, जिसकी ठीक-ठीक संगति नहीं ज्ञात होती।

ऊपर के ही लेखक ने यह भी लिखा है कि प्रति स्वतः कवि द्वारा संशोधित है, क्योंकि संशोधनों की लिखावट राजापुर की लिखावट से मिलती है—और कुछ स्थलों पर जहाँ पूरी पंक्तियों के संशोधन आये हैं, उसने इस प्रकार का स्पष्ट संकेत भी किया है। इन स्थलों पर संशोधनों की लिखावट राजापुर की प्रति की लिखावट से—और गोस्वामी जी का हस्तलेख कही जानेवाली दूसरी लिखावटों से भी—कहाँ तक मिलती है, इसकी जाँच विधिपूर्वक की जा चुकी है,[१] और वहाँ हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि लेखक का यह दावा निराधार है। अब तो यह और भी सिद्ध हो जाता है कि संशोधन कवि कृत नहीं था, क्योंकि उसका देहावसान सं० १६८० में ही हो चुका था, जब कि इस प्रति का लिपिकाल सं० १६९१ है।

(८, बा०) सं० १९०५ की प्रति—प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है :—

।। मिती फागुन बदी ८ बार बिहफै सन् १२५६ संवत १९०५ ।।

तिथि आधुनिक है, गणना इसलिए अनावश्यक प्रतीत होती है। प्रति इतनी प्राचीन अवश्य ज्ञात होती है।

(८, अयो०) राजापुर की प्रति—इस प्रति में कोई पुष्पिका नहीं दी हुई है। सामान्यतः यह गोसाईं जी के हाथ की लिखी मानी जाती रही है, किन्तु ऐसा मानने के लिए कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। लिखावट के आधार पर तो यह कहा ही नहीं जा सकता,[२] प्रति में अशुद्धियाँ इतनी हैं कि इस कथन पर और भी विश्वास नहीं होता।

(८, अर०) सं० १६४१ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :

१—देखिए 'इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़' १९३७, पृ० २३३-४०; 'हिन्दुस्तानी' १९३७, पृ० ३६७-३७४; तथा लेखक का 'तुलसीदास', पृ० १६३-७०।

२—वही।

।। सं० १६४१ लिखा रामदास किंकर तुलसीदासजी कौ भदैनी में आसन गंगा तटे ।।

पुष्पिका की लिखावट लेखन-शैली के ध्यान से शेप प्रति के लेखक की नहीं लगती है : तिथि के अंकों में से केवल ६ मूल पाठ और पुष्पिका में एक-सा लिखा है, अन्यथा १ और उससे भी अधिक ४ दोनों में अलग-अलग ढंग से लिखे हुए हैं, "तुलसीदास" नाम में आनेवाले चारों अक्षरों की लिखावटों में भी दोनों में यथेष्ट अंतर है, "अ" मूल में जिस प्रकार बना है, पुष्पिका में उससे नितांत भिन्न ढंग पर बना है। साथ ही तिथि में केवल संवत् का आना और अन्य किसी विस्तार का न आना भी संदेह की पुष्टि करता है।

(८, सुं०) सं० १६६४ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

।। संवत् १६६४ मीति कार्तिक शुक्ल १४ ।। शनिवारे दसखत लाल जगू-लाल का दंडवत ।।

गणना करने पर तिथि विगत संवत् में ठीक आती है, किन्तु ध्यान-पूर्वक देखने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि १६६४ का पहले ६ का अंक ८ से बनाया हुआ है, ८ के बड़े पेट में नीचे—उसे ६ बनाने के लिए—एक और पेट बढ़ाने के कारण पहले ६ का आकार अन्यत्र आए हुए ६ से बड़ा हो गया है, और यह अंतर १६६४ में आए हुए दोनों ६ की तुलना करने से ही प्रकट हो जाता है। १८६४ की तिथि भी गणना करने पर विगत संवत् में ठीक उतरती है। इसलिए वास्तविक प्रतिलिपि-तिथि १८६४ ही है, १६६४ नहीं, प्रति भी इतनी ही पुरानी ज्ञात होती है।

(८, लं० १) सं० १६९७ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

।। संवतु १६९७ ।। मास माघ बदि ८ रवउ ।।

इस तिथि में भी कदाचित् उसी प्रकार ८ का ६ बनाया गया है जिस प्रकार ऊपर की तिथि में और इसी कारण इस तिथि का ६ भी ग्रंथ में अन्यत्र आये हुए ६ की तुलना में बड़ा हो गया है; किन्तु यह ध्यान योग्य है कि १६९७ तथा १८९७ में से कोई भी तिथि गणना से विगत संवत् में ठीक नहीं आती।

(८, लं० २) सं० १७०२ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

।। संबत १७०२ मीती जेस्ठ सुदी ५ बार सुक्रवार के पोथी लंकाकांड समाप्त।।

तिथि गणना से विगत और वर्त्तमान किसी संवत् में ठीक नहीं उतरती। ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ८ के अंक के स्थान पर उसका मुँह बंद करके ७ बनाया गया है—वास्तविक तिथि १८०२ थी, क्योंकि १७०२ में आये हुए ७ की शैली ग्रंथ भर में आये हुए ७ की शैली से भिन्न है : ग्रंथ भर में जितनी बार भी ७ आया है, उसकी नोक ऊपर की ओर मुड़ी हुई है और पुष्पिका में वह नीचे की ओर है। १८०२ की तिथि गणना करने से भी विगत संवत् में ठीक आती है।

(८, उ०) सं० १६९३ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

।। लिखा मिती सावन बदी ७ सन १०४२ सं० १६९३ साल के।।

इस पुष्पिका में सन् के ० के स्थान पर २ था और संवत् के ६ के स्थान पर ८ था, किंतु २ की दुम मिटाकर उसका मुँह बन्द कर दिया गया है, और ८ में, जैसा ऊपर की कुछ जाली तिथियों में हमने देखा है, नीचे एक और पेट बढ़ा दिया गया है। ध्यान से देखने पर यह बनावटें स्पष्ट ज्ञात होती हैं। तिथि में दिन अथवा अन्य कोई आवश्यक विस्तार न होने के कारण उसकी गणना नहीं की जा सकती। प्रति अपनी वास्तविक तिथि के अनुसार ही पुरानी भी ज्ञात होती है।

(९, बा०) सं० १६४३ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

।। संवत् १६६४ शाके १५०८...वासी नन्ददास पुत्र कृष्णदास हेत लिखी रघुनाथदास ने कासीपुरी में।।

यह ध्यान देने योग्य है कि पुष्पिका की इस शब्दावली पर स्याही और क़लम फेरी हुई है, इसकी लिखावट शेष प्रति की लिखावट से मेल नहीं खाती है, १६४३ के ६ तथा ४ और इसी प्रकार "शाके" और १५०८ के बीच इतनी जगहें छूटी हुई हैं कि दूसरे अंक तथा अक्षर भी लिखे जा सकते थे और तिथि का मास दिवसादि कोई विस्तार भी नहीं है। अतः तिथि और यह पुष्पिका प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। प्रति का पाठ भी बहुत अशुद्ध है।[१]

१—विशेष विवरण के लिए देखिए लेखक का 'तुलसीदास' पृ० ८१, ८६ तथा १८५।

(९, अर०) सं० १६४३ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

॥ श्री तुलसीदास गुरु की आज्ञा सों उनके भ्रातासुत कृष्णदास सोरो क्षेत्र निवासी हेत लिषितं लछिमनदास कासी जी मध्ये सं० १६४३ आषाढ़ शुद्ध ४ शुक्रे इति ॥

यह कुल पुष्पिका पहले लाल स्याही से लिखी गई थी और बाद में इसी पर काली स्याही फेरी गई है, जिससे लिखावट की जाँच शेष प्रति की लिखावट की तुलना में ठीक-ठीक नहीं हो सकती। इसमें १६४३ के ६ को देखने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह ८ में नीचे एक पेट बढ़ाकर बनाया हुआ है, क्योंकि वह इसीलिए अन्यत्र आये हुए ६ की अपेक्षा लंबा हो गया है; उस पर क़लम फेरकर उसको और अंकों की अपेक्षा कुछ मोटा भी कर दिया गया है। १६४३ तथा १८४३ दोनों की तिथियाँ विगत संवत् में गणना से ठीक उतरती हैं। पाठ की दृष्टि से प्रति बहुत अशुद्ध है।[१]

(९, सुं०) सं० १६७२ की प्रति—पुष्पिका में "सं० १६७२" मात्र ग्रंथ की समाप्ति पर आता है। यह अपर्याप्त उल्लेख प्रति की प्राचीनता के विषय में गहरा संदेह उत्पन्न करता है।

प्रतियों का प्रतिलिपि-संबंध

ऊपर की बहिरंग परीक्षा से ज्ञात हुआ होगा कि केवल चार प्रतियाँ—१७२१, १७६२, १६९१ तथा १७०४—वास्तव में प्राचीन कही जा सकती हैं, शेष प्रकट या अप्रकट रूप से प्रायः आधुनिक हैं। विचित्रता की बात यह है कि यह चारों प्रतियाँ परस्पर प्रतिलिपि-सम्बन्ध से संबद्ध हैं।

१७२१ तथा १७६२—यद्यपि दोनों प्रतियों में हरताल लगाकर पाठ-संशोधन किया गया है, किन्तु फिर भी पूर्व का पाठ संशोधन के इन स्थलों पर प्रायः मिल जाता है और देखा यह जाता है कि १७२१ में यह पूर्व का पाठ जहाँ पर अशुद्ध है, वहाँ पर १७६२ में भी अशुद्धि है। इस प्रकार के अशुद्धि-साम्य के स्थल अनेक हैं, यहाँ केवल वही स्थल दिये

१—विशेष विवरण के लिए देखिए 'तुलसीदास' पृ० ८१, ८६ तथा १८८

जा रहे हैं जहाँ पर या तो भूल से कोई अक्षर, शब्द, शब्द-समूह या पंक्ति छूटी हुई अथवा बढ़ी हुई है :—

(१) १७२१ में बालकांड में दोहा-संख्या २२६ के स्थान पर भूल से २२९ लिख उठी है और इसी कारण कांड के अंत तक वास्तविक दोहा-संख्या में ३ की वृद्धि हो गई है। १७६२ में भी यह बात हुई है।

(२) १७२१ में बालकांड का दोहा ९९ भूल से दोहा ९८ के साथ ही एक बार और लिख उठा है, १७६२ में भी इसी प्रकार हुआ है। प्रसंग से यह प्रकट है कि उसका वास्तविक स्थान दोहा-संख्या ९९ है।

(३) १-११२ सामान्य पाठ है : रामकृपातें पारबति सपनेहु तव मन माहिं। 'कृपातें पारबति' के स्थान पर १७२१ में 'कृपारबति' लिख गया है, १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है।

(४) १-१२१-६ सामान्य पाठ है : बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी। १७२१ में 'अधम' के स्थान पर 'अधरम' लिख उठा है, १७६२ में भी यह भूल मिलती है।

(५) १-१६७-८ सामान्य पाठ है : जलधि अगाध मौलि बह फेनू। १७२१ में 'जलधि' के स्थान पर 'जल' मात्र लिखा है, १७६२ में भी ऐसा ही है।

(६) १-२१०-छं० सामान्य पाठ है : अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुग नैनन्हि जलधार बही। १७२१ में 'नैनन्हि' के स्थान पर 'नैन्हि' लिख गया है, १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है।

(७) १-२२८-५—६ सामान्य पाठ है : मज्जन करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता। पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बर मांगा। १७२१ में ऊपर के अंतिम तीन चरण दोबारा उसी स्थान पर लिख उठे हैं और अंतिम चरण प्रथम चरण की शब्दावली के भ्रम से 'निज अनुरूपिह्न समेता' लिख उठा है, १७६२ में भी ठीक इसी प्रकार हुआ है।

(८) १-२७५-६ सामान्य पाठ है : खर कुठार मैं अकरुन कोही। १७२१ में 'अकरुन' के स्थान पर 'अकारुन' लिख गया है, १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है।

(९) १-३५६-३ सामान्य पाठ है : उपबरहन वर बरनि न जाहीं। १७२१ में 'बर' लिखने से रह गया है, १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है।

(१०) ६-११-४ सामान्य पाठ है : तापर रुचिर मृदुल मृगछाला। १७२१ में 'रुचिर मृदुल' के स्थान पर 'रुचि मृदुरल' लिख गया है, १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है।

(११) ७-२७-छं० सामान्य पाठ है : प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे। १७२१ में 'पुरट' शब्द लिखने से रह गया है, १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है।

(१२) १-३१५-७ सामान्य पाठ है : मरकत कनक बरन बरजोरी। १७२१ में लिख गया है : 'मरकत कनक बरजोरी', बीच के तीन अक्षर 'न बर' छूट गए हैं, १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है।

इन अशुद्धि-साम्यों के आधार पर १७२१ तथा १७६२ का प्रतिलिपि-सम्बन्ध प्रकट है। प्रश्न अब यह है कि—

(अ) दोनों किसी सामान्य आदर्श की प्रतिलिपियाँ हैं ?

(आ) १७२१ की प्रति १७६२ की प्रतिलिपि है ? अथवा,

(इ) १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि है ?

यदि १७२१ तथा १७६२ में प्रायः ऐसी ही अशुद्धियाँ होतीं जो दोनों में उपर्युक्त ढङ्ग पर समान रूप से पाई जातीं, तो यह मानना पड़ता कि दोनों एक ही सामान्य आदर्श की प्रतिलिपियाँ है, किन्तु बात यह नहीं है। १७२१ में उपर्युक्त ढङ्ग की कोई ऐसी अशुद्धि नहीं है जो १७६२ में न हो, किन्तु १७६२ में उपर्युक्त ढङ्ग की ऐसी अशुद्धियाँ अवश्य हैं जो १७२१ में नहीं हैं जिससे दोनों प्रतियों की तिथियों के अनुरूप ही यह सिद्ध होता है कि १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि है। १७६२ की इस प्रकार की कुछ अशुद्धियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) १-१५७-४ सामान्य पाठ है : रिस बस भूप चलेउ संग लागा। १७६२ में 'बस' शब्द लिखने से रह गया है।

(२) १-१७८ सामान्य पाठ है : सूर प्रतापी अतुल बल दल समेत बस सोइ। १७६२ में 'दल' शब्द आने से रह गया है।

(३) १-२४१-२ सामान्य पाठ है : गुनसागर नागर बर बीरा। १७६२ में 'नागर' शब्द आने से रह गया है।

१६९१ तथा १७०४—१६९१ तथा १७०४ में भी उपर्युक्त ढङ्ग का अशुद्धि-साम्य देखा जा सकता है :—

(१) १-१२-७ सामान्य पाठ है : समुझि बिबिध बिनती अब मोरी। 'अब' दोनों प्रतियों में लिखने से रह गया है।

(२) १-७८-४ निम्नलिखित शब्दावली—जो एक पंक्ति के बराबर होती है—दोनों में नहीं आ पाती है : 'किन कहहू। सुनत रिषिन्ह के बचन भवानी। बोली गूढ़ मनोहर बानी। कहत मरमु'

(३) १-१७९-८ सामान्य पाठ है : एक बार कुबेर पर धावा। 'पर' शब्द दोनों प्रतियों में आने से रह गया है।

(४) १-१९४ सामान्य पाठ है : गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटेउ प्रभु सुखकंद। 'प्रभु' शब्द दोनों प्रतियों में आने से रह गया है।

(५) १-२२३ सामान्य पाठ है : जाहिं जहां जहं बंधु दोउ तहं तहं परमानन्द। 'जहां जहं' के स्थान पर दोनों प्रतियों में पाठ है 'जहं जहं'।

(६) १-२८१ सामान्य पाठ है : बेषु बिलोके कहेसि कछु बालक हूं नहिं दोषु। 'बालक हूं' के स्थान पर दोनों प्रतियों में 'बालक' मात्र है।

(७) १-२९२-३ सामान्य पाठ है : तिन्ह कहं कहिय नाथ किमि चीन्हे। 'कहं' शब्द दोनों प्रतियों में आने से रह गया है।

(८) १-३२५-२—३ निम्नलिखित अर्द्धालियाँ दोनों प्रतियों में आने से रह गई हैं :—

जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी।
राम सीय सुंदर प्रतिछांहीं। जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं।

फलत: यह प्रकट है कि १६९१ तथा १७०४ परस्पर प्रतिलिपि-संबंध से संबद्ध हैं। प्रश्न अब यह है कि :—

(अ) दोनों एक ही सामान्य आदर्श की प्रतिलिपियाँ हैं ?

(आ) १६९१ की प्रति १७०४ की प्रतिलिपि है ? अथवा,

(इ) १७०४ की प्रति १६९१ की प्रतिलिपि है ?

दोनों प्रतियों का मिलान करने पर यह ज्ञात होता है कि किसी एक

की समस्त अशुद्धियाँ दूसरी में नहीं पाई जातीं, इसलिए यह कहना ठीक न होगा कि कोई भी दूसरे की प्रतिलिपि है। वस्तु स्थिति यह है कि ऊपर की सामान्य अशुद्धियों के अतिरिक्त भी दोनों में अलग-अलग ऊपर के ही ढंग की ऐसी अशुद्धियाँ पाई जाती हैं, जो एक-दूसरे में परस्पर नहीं मिलतीं।

१६९१ की ऐसी निजी अशुद्धियों में से कुछ यह हैं :—

(१) १-१२६ सामान्य पाठ है : गहेसि जाइ मुनि चरन कहि सुठि आरत मृदु बैन। १६९१ में 'मृदु' शब्द आने से रह गया है।

(२) १-१४९-६ सामान्य पाठ है : तासु प्रभाउ जान हिअ सोई। १६९१ में 'हिअ' का 'अ' लिखने से रह गया है।

(३) १-१८५-छं० सामान्य पाठ है : जो भवभय भंजन मुनिमन रंजन गंजन बिपति बरूथा। १६९१ में 'गंजन' शब्द आने से रह गया है।

(४) १-३०२-१ निम्नलिखित अर्द्धाली १६९१ में आने से रह गई है :—

सहित बसिष्ठ सोइ नृप कैसें। सुरपुर संग पुरंदर जैसें।

(५) १-३१६-२ सामान्य पाठ है :—

बेद बिदित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब व्यवहारू। १६९१ में 'आचारू' के स्थान पर भी 'व्यवहारू' लिखा है।

१७०४ की निजी अशुद्धियों में से कुछ निम्नलिखित हैं :—

(१) १-६३-६ सामान्य पाठ है : पाछिल दुख न हृदय अस व्यापा। १७०४ में पाठ है : पाछिल दुख हृदय न अस व्यापा।

(२) १-२१०-१० सामान्य पाठ है : धनुषजज्ञ सुनि रघुकुलनाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा। १७०४ में 'सुनि' के स्थान पर 'करि' लिख गया है।

(३) १-२४०-६ निम्नलिखित अर्द्धाली १७०४ में लिखने से रह गई है :

चले सकल गृहकाज बिसारी। बाल जुवान जरठ नर नारी।

(४) १-२६२-७ निम्नलिखित अर्द्धाली भी १७०४ में लिखने से रह गई है :—

रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष भंग धुनि जात न जानी।

फलत: यह प्रकट है कि १६९१ तथा १७०४ स्वतन्त्र रूप से किसी सामान्य आदर्श की प्रतिलिपियाँ हैं।

१७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४—ऊपर जिस प्रकार का सम्बन्ध हमने १६९१ तथा १७०४ में देखा है, उसी प्रकार का सम्बन्ध १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ में भी दिखाई पड़ता है। दोनों ही शाखाओं में उपर्युक्त ढंग की अशुद्धियाँ मिलती हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :—

(१) १-१२१-६ सामान्य पाठ है : बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी। 'अधम' के स्थान पर दोनों शाखाओं में 'अधरम' लिख गया है।

(२) २-२२५-२ निम्नलिखित अर्द्धाली दोनों शाखाओं में आने से रह गई है :—

भरतहिं सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू।

(३) २-२२६-छं० सामान्य पाठ है : तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे। 'चित' दोनों शाखाओं में आने से रह गया है।

(४) २-२९६-२ निम्नलिखित अर्द्धाली दोनों शाखाओं में आने से रह गई है :—

गए जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा।

(५) २-३२५-७ निम्नलिखित अर्द्धाली भी दोनों शाखाओं में आने से रह गई है :—

भरत रहनि समुझति करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥

प्रश्न अब यह हो सकता है कि—

(अ) १६९१/१७०४ तथा १७२१/१७६२ किसी सामान्य आदर्श की प्रतिलिपि-परंपरा में है?

(आ) १७२१/१७६२ १६९१/१७०४ की प्रतिलिपि-परंपरा में है? अथवा,

(इ) १६९१/१७०४ १७२१/१७६२ की प्रतिलिपि-परंपरा में है?

१७२१/१७६२ यदि १६९१/१७०४ की प्रतिलिपि-परंपरा में होती, तो उसमें दोनों शाखाओं की उपर्युक्त सामान्य अशुद्धियाँ तथा १६९१ और १७०४ की सामान्य अशुद्धियाँ भी प्रायः समस्त मिलनी चाहिए थीं। किंतु, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार यदि १६९१/१७०४ की प्रति १७२१/१७६२ की प्रतिलिपि-परंपरा में होती, जो तिथियाँ यदि ठीक हों तो असंभव ही

है, तो उसमें दोनों शाखाओं की उपर्युक्त सामान्य अशुद्धियों के अतिरिक्त १७२१ तथा १७६२ की सामान्य अशुद्धियाँ भी प्राय: समस्त मिलनी चाहिए थीं। किंतु ऐसा भी नहीं है। वस्तुत:, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, है यह कि दोनों शाखाओं में कुछ सामान्य अशुद्धियाँ हैं और कुछ दोनों शाखाओं की अपनी-अपनी अशुद्धियाँ हैं। फलत: यह प्रकट है कि १६९१/१७०४ तथा १७२१/१७६२ किसी सामान्य आदर्श की प्रतिलिपि-परंपरा में हैं। किंतु दोनों शाखाओं का यह सामान्य आदर्श भी कवि हस्त-लिखित नहीं है, यह ध्यान देने योग्य है, क्योंकि दोनों शाखाओं की उपर्युक्त सामान्य अशुद्धियाँ केवल किसी अक्षर या शब्द को ग़लत पढ़ या लिख जाने से उत्पन्न नहीं हैं, वरन् उनमें पूरी-पूरी अर्द्धालियाँ या शब्द छूटे हुए हैं।

ऊपर लिखे परिणामों को हम चित्र के रूप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं :—

```
                 |
                 ×
                 |
   ----------------------------
   :                          |
 १७२१                         ×
   |                          |
 १७६२              ----------------------
                   |                    |
                 १६९१                 १७०४
```
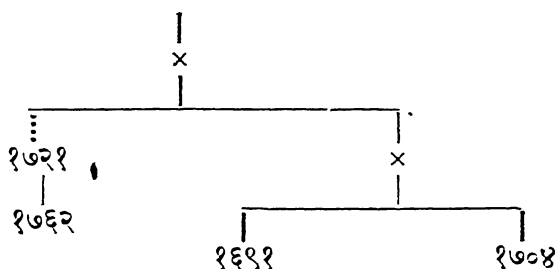
किंतु यदि हम १६९१/१७०४ तथा १७२१/१७६२ के इस सम्बन्ध को थोड़ी देर के लिए अलग रख दें और दोनों के शुद्ध पाठ मात्र की तुलना करें, तो दोनों शाखाओं में इतना अंतर ज्ञात होगा कि ऊपर की किसी अन्य शाखा की प्रति तथा १६९१/१७०४ में न मिलेगा। दोनों शाखाओं में पाठ-विषयक यह अंतर क्यों है? इसका एक ही समाधान संभव है : दोनों में से किसी एक शाखा का पाठ बीच में किसी स्थिति पर किसी तीसरी शाखा के पाठ के अनुसार बनाया गया है। किंतु कौन-सी शाखा किस अन्य शाखा से इस प्रकार प्रभावित हुई है, इस प्रश्न पर हम आगे लौटेंगे।

ऊपर की अन्य प्रतियों में इस प्रकार का प्रतिलिपि-संबंध प्रमाणित नहीं होता, यद्यपि वह असम्भव नहीं कहा जा सकता।

प्रतियों की पाठ-संरक्षा

ऊपर आई हुई प्रतियों का पाठ किस हद तक सुरक्षित है, इस दृष्टि से इन्हें और भी निकट से देखने की आवश्यकता है।

१७२१ की प्रति—इसमें पूर्व के पाठ में हस्तक्षेप बहुत किया गया है। इस समस्त पाठ-विकृति को हम दो मुख्य वर्गों में रख सकते हैं :—

१. वह जो १७६२ के पूर्व हो चुकी थी, जैसा १७६२ की प्रति में प्राथमिक पाठ के रूप में उसके मिलने से प्रमाणित है। और,

२. वह जो १७६२ के अनन्तर हुई, जैसा १७६२ की प्रति में प्राथमिक पाठ के रूप में उसके न मिलने से प्रमाणित है।

पहले प्रकार के संशोधन भी तीन मुख्य उपवर्गों में रक्खे जा सकते हैं।

(अ) वह जो ऊपर गिनाई हुई प्राय: किसी प्रति में नहीं मिलते और सामान्यत: अशुद्ध हैं।

(आ) वह जो यद्यपि १६९१/१७०४ शाखा में नहीं मिलते, किन्तु किसी अन्य शाखा में मिलते हैं और सामान्यत: अशुद्ध हैं। और,

(इ) वह जो १६९१/१७०४ में प्राथमिक पाठ के रूप में मिलते हैं, और सामान्यत: शुद्ध हैं।

१ (अ) वर्ग के संशोधनों में से कुछ निम्नलिखित हैं :—

(१) १-१५-७ पूर्व का पाठ था : सोउ महेस मोहिं पर अनुकूला। करहिं कथा मुदमंगल मूला। 'सोउ' के स्थान १७२१ में पाठ 'होउ' कर दिया गया है। अगले ही चरण में कहा गया है—

सुमिरि सिवासिव पाइ पसाऊ। बरनउं रामचरित चितचाऊ।

'प्रसाद' की प्राप्ति इतने शीघ्र हो जाती है, इसलिए प्रार्थनावाची 'होउ, की अपेक्षा पूर्ण निर्भरता तथा समर्थ दानी की पूर्ण अनुकूलतावाची 'सोउ' अधिक समीचीन लगता है।

(२) १-१९४ पूर्व का पाठ था : गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रभु प्रगटेउ सुखकन्द। १७२१ में 'प्रभु प्रगटेउ' के स्थान पर 'प्रगटेउ प्रभु' कर दिया गया

है। अर्थ में इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है और न कोई अन्य विशेषता आती है।

(३) ३-१७-६ पूर्व का पाठ था : होइ बिकल सक मनहिं न रोकी। 'मनहिं न' के स्थान पर १७२१ में 'मन नहिं' कर दिया गया है। दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं यथा :—

मम पद मनहिं बांध बरि डोरी। ५-४८५
जितहु मनहिं अस सुनिय जग रामचन्द्र के राज। ७-२२
नाना भांति मनहिं समुझावा। ७-५९-१
भये मगन मन सके न रोकी। ७-३३-२

(४) ६-१२० पूर्व का पाठ था : सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम। 'तन पुलकित' के स्थान पर १७२१ में 'पुलकित तन' कर दिया गया है। इस परिवर्तन से भी अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता और न अन्य कोई विशेषता आती है।

(५) ७-४-१ पूर्व का पाठ था : इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर। 'मनोहर' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'सुधाकर' कर दिया गया है। 'नगर' के साथ 'सुधाकर' की असंगति प्रकट है। 'दिवाकर' तथा 'मनोहर' का तुक अवश्य अच्छा नहीं है, किन्तु इस प्रकार के हीन तुक अन्यत्र भी मिलते हैं, यथा :—

रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत अग जग नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सद्गुन सिंधु सो। ७-२ छं०

(६) ७-७०-८ पूर्व का पाठ था : तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा। 'बौराहा' तथा 'दाहा' के स्थान पर १७२१ में क्रमशः 'बौरहा' तथा 'दहा' कर दिया गया है। 'बौरहा' अथवा उसका कोई रूप ग्रंथ में अन्यत्र नहीं मिलता, 'बौराह' तथा उसी के रूप मिलते हैं, यथा :—

बर बौराह बरद असवारा। १-९५-८
कस कीन्ह बर बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई। १-९६ छं०

'दाहना' और 'दहना' दोनों के रूप अवश्य ग्रंथ में मिलते हैं, यथा :—

बहइ न हाथ दहइ रिस छाती। १-२८०-१
दहइ. कोटि कुल भूसुर रोषू। २-१२६-४
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहे। २-२०५-५
अनल दाहि पीटत घनन्हि परसु बदन यह दंड। ७-३७

(७) ७-७८ पूर्व का पाठ था: मृगलोचनि लोचनसर को अस लाग न जाहि। 'मृगलोचनि लोचनसर' के स्थान पर १७२१ में 'मृगलोचनि के नैनसर' कर दिया गया है। 'लाग' के एकवचन रूप से उसके कर्त्ता का एकवचन रूप 'मृगलोचनि लोचनसर' ही समीचीनि ज्ञात होता है, बहुवचन रूप 'मृगलोचनि के नैनसर' नहीं।

(८) ७-९२-८ पूर्व का पाठ था: भारधरन सतकोटि अहीसा। 'भारधरन' के स्थान पर १७२१ में 'धराधरन' कर दिया गया है। प्रसंग भर में कर्मों का उल्लेख नहीं, गुणों का ही उल्लेख हुआ है और वे गुण-यह हैं: सुभगतनुता, अरिमर्द्दनत्व, विलास, अवकाश, बल, प्रकाश, शीतलता, त्रास-शमनशीलता, दुस्तरता, दुरंतता, दुराधर्षिता, अगाधता, करालता, पावनता, अघनाशकता, अचलता, गंभीरता, कामदायकता, चतुरता, निपुणता, पालकता, संहारकता, धनवानत्व, प्रपंचपटुता। इन गुणों के साथ 'भारधारकता' ही ठीक लगता है, 'धरा धारकता' नहीं। फिर 'धरा धारण' के लिए तो एक ही शेष यथेष्ट हैं, शतकोटि शेषों की उसके लिए कौन सी संगति हो सकती है ?

(९) ६-८१-७ पूर्व का पाठ था: निसिचर भट बहु गाड़हिं भालू। ऊपर डारि देहिं बहु बालू। 'डारि' के स्थान पर १७२१ में 'ढारि' बना दिया गया है। 'ढारना'='ढालना' या उड़ेलना की असंगति प्रकट है, 'डारना'='डालना' ही संगत लगता है।

(१०) ७-२३-५ पूर्व का पाठ था: लता बिटप मांगे मधु चवहीं। 'चवहीं' के स्थान पर 'बहहीं' कर दिया गया है। 'लता-बिटप' से 'मधु' का 'चूना' ही बुद्धिसम्मत है, 'बहना' नहीं।

(११) ७-१२७-७ पूर्व का पाठ था: सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्यरत मति सोइ पाकी। १७२१ में 'पाकी' को भी 'जाकी' बना दिया गया है। 'जाकी' पहले चरण में आ चुका है, इसलिए परिवर्तित

पाठ में पुनरुक्ति दोष प्रकट है। इसके अतिरिक्त दूसरे चरण में भी 'जाकी' पाठ मानने पर 'सोइ' की संगति नहीं रहती। 'पाकी' पाठ की समीचीनता प्रकट है, अर्थ है 'पुण्यरत मति ही धन्य है, और वही पक्की मति है।'

(१२) ३-४२-१ पूर्व का पाठ था : सुनहु उदार परम रघुनायक। 'परम' के स्थान पर १७२१ में 'सहज' बना दिया गया है। 'उदार' के विशेषण के रूप में 'परम' तथा 'सहज' दोनों संगत लगते हैं। तुलनीय प्रयोग का अभाव है।

(१३) १-८६ पूर्व का पाठ था : सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही। 'अनल' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'अनिल' कर दिया गया है। सखात्व 'मारुत' और 'अनल' का प्रसिद्ध ही है, इसलिए "कामाग्नि (मदन अनल) का सच्चा सखा त्रिविध समीर चलने लगा" को संगति प्रकट है। 'मदन' और समस्त 'अनिल' का सखात्व इस प्रकार का नहीं है, त्रिविध समीर ही मदन का सखा हो सकता है।

(१४) ३-२७ पूर्व का पाठ था : बिपुल सुमन सुर बरसहिं गावहिं प्रभुगुन गाथ। 'प्रभु' के स्थान पर १७२१ में 'सुर' कर दिया गया है। 'सुर' तो दोहे के प्रथम चरण में ही आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति-दोष प्रकट है और सार्थकता भी 'प्रभुगुन' में ही है, केवल 'गुन' में नहीं।

(१५) ३-३४-२ के अनंतर तीन अर्द्धालियाँ बढ़ाई गई हैं। यह स्पष्ट रूप से प्रक्षिप्त लगती हैं।

(१६) ४-८-६ पूर्व का पाठ था : तनु भा कुलिस गई सब पीरा। 'गई सब' के स्थान पर १७२१ में 'सबै गै' कर दिया गया है। 'सब' 'पीरा' का विशेषण है, अतः उसका 'पीरा' के सन्निकट होना दूर होने की अपेक्षा अधिक समीचीन है।

(१७) ५-१४-१ पूर्व का पाठ था : हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी। 'बाढ़ी' 'ठाढ़ी' के स्थान पर क्रमशः 'गाढ़ी' 'बाढ़ी' कर दिया गया है। दूसरे पाठ की असंगति तथा पहले की समीचीनता प्रकट है।

(१८) ६-४-५ पूर्व का पाठ था : मकर नक्र नाना झख ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला। १७२१ में 'तन' के स्थान पर पाठ 'अति' कर दिया गया है। 'परम' के होते हुए 'अति' तो बेकार है ही, सार्थकता के लिए 'तन' कर्त्ता का होना भी आवश्यक है।

(१९) ६-४१-८ पूर्व का पाठ था : निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं। 'ढहावहिं' के स्थान पर भी १७२१ में पाठ 'चलावहिं' कर दिया गया है। दूसरे पाठ में 'चलावहिं' की पुनरुक्ति प्रकट है। इसके अतिरिक्त निशिचर गढ़ के ऊपर थे, बन्दर नीचे। निशिचरों का 'ढहाना' 'नीचे ढकेलना' और बन्दरों का उन्हें 'चलाना' 'ऊपर फेंकना' ही बुद्धि-सम्मत है।

(२०) ५-१६ पूर्व का पाठ था :—

सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हिं खाइ परम लघु ब्याल॥

'साखामृग' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'साखामृगन' कर दिया गया है। पहले पाठ की संगति प्रकट है—हनुमान् विनम्रतावश कह रहे हैं : "हे माता ! मैं साखामृग हूँ, मुझे कोई विशाल बल या बुद्धि नहीं प्राप्त है—इत्यादि।" कोई सामान्य कथन करने का प्रसंग नहीं है और न वैसे कथन के लिए 'साखामृगन' शुद्ध है, 'साखामृगन्हि' 'साखामृगों को' ही उस दशा में शुद्ध होगा।

१ (आ) वर्ग के संशोधनों में से कुछ निम्नलिखित हैं :—

(१) १-२-५ पूर्व का पाठ था : साधु चरित सुभ सरिस कपासू। १७२१ में 'सरिस कपासू' के स्थान पर 'चरित कपासू' कर दिया गया है। 'चरित' चरण में ही पहले आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है। पहला पाठ इससे मुक्त है, और उसकी संगति प्रकट है।

(२) १-१२-८ पूर्व का पाठ था : एतेहु पर करिहहिं ते असंका। मोहिं अधिक जे जड़ मतिरंका। १७२१ में दूसरे चरण के 'जे' के स्थान पर 'ते' कर दिया गया है। 'जे'-'ते' पाठ की समीचीनता प्रकट है, 'ते'-'ते' पाठ अर्थहीन लगता है।

(३) ३-२९-१ पूर्व का पाठ था : हा जगदेक बीर रघुराया। १७२१ में 'जगदेक' को 'जग एक' बनाया गया है। प्रसंग से यह प्रकट है कि अर्थ होना चाहिए 'जगत् के एक ही—निराले—बीर'। यह अर्थ समास-युक्त पाठ 'जगदेक' से तो निकलता ही है, यथा :—

मायातीतं सुरेशं खलबध निरतं ब्रह्म बृंदैक देवं। ६-०-श्लो० १ दूसरे पाठ से 'एक' शब्द पर बल देने से भी निकल सकता है।

(४) ६-१४-८ पूर्व का पाठ था : जानि मनुज जनि हठ मन धरहू। १७२१ में 'मन' के स्थान पर पाठ 'उर' कर दिया गया है। दूसरे पाठ से अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता और न कोई अन्य विशेषता आती है।

(५) ६-२१-४ पूर्व का पाठ था : अंगद बचन सुनत सकुचाना। हां बाली बानर मैं जाना। 'हां बाली' के स्थान पर १७२१ में पाठ बनाया गया है 'रहा बालि'। 'जाना'='जानता था' क्रिया के साथ 'रहा' अशुद्ध है। पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(६) ६-१६ पूर्व का पाठ था :—

फूलै फरै न बेंत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदय न चेत जौ गुरु मिलहिं बिरंचि सत॥

'सत' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'सम' कर दिया गया है। 'सत' में असंभावना की जो व्यंजना है वह 'सम' में नहीं, और प्रसंग से असंभावना ही की व्यंजना वांछनीय है, यह प्रकट है।

(७) ६-३५-१ पूर्व का पाठ था : कपि बल देखि सकल हिय हारे। उठा आपु जुवराज प्रचारे। 'जुवराज' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'कपि के' कर दिया गया है। 'कपि' पहले चरण में आ ही चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

(८) ६-४३-३ पूर्व का पाठ था : निज दल बिचल सुना हनुमाना। 'बिचल' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'बिकल' कर दिया गया है, किन्तु प्रसंग विचलित होने का है, केवल विकल होने का नहीं :—

भय आतुर कपि भागन लागे। यद्यपि उमा जीतिहहिं आगे। ६-४३-१

(९) ६-४५ पूर्व का पाठ था :—

भुजबल रिपुदल दलमले देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल प्रयास बिनु आए जहँ भगवंत॥

१७२१ में 'दलमले' के स्थान पर पाठ 'दलमलि' बना दिया गया है। 'कूदे' के समान ही 'दलमले' बहुवचन रूप की समीचीनता 'जुगल' कर्त्ता के साथ प्रकट है। 'दलमलि' भी प्रसंग में खप सकता है, किंतु उससे अर्थ की या किसी अन्य प्रकार की कोई विशेषता पाठ में नहीं आती।

(१०) १-१२६ पूर्व का पाठ 'मयन' और 'बयन' था, उसको १७२१ में 'मैन' तथा 'बैन' बनाया गया है। इस परिवर्तन से भी पाठ में कोई विशेषता नहीं आती।

(११) १-१०३-८ पूर्व का पाठ 'षन्मुख' था, उसको १७२१ में 'षटमुख' बनाया गया है। इस परिवर्तन से भी पाठ में कोई विशेषता नहीं आती।

(१२) ६-१०८-१० पूर्व का पाठ था : देखन भालु कीस सब आए। 'भालुकीस' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'कीस भालु' कर दिया गया है। इस परिवर्तन से भी पाठ में कोई विशेषता नहीं आती।

(१३) ५-२७-६ पूर्व का पाठ था। मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहिं जिअत नहिं पावा। १७२१ में 'आवा' तथा 'पावा' के स्थान पर क्रमशः 'आवैं' और 'पावैं' कर दिया गया है। दोनों पाठ व्याकरण-सम्मत हैं, यथा :—

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। २-८२-१
जौं हरि हर कोपहिं मनमाहीं। १-१६६-४

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा। १-१७१-३
बड़भागी बन अवध अभागी। जौं रघुबंस तिलक तुम्ह त्यागी। २-५६-५

किंतु 'आवैं' 'पावैं' रूप प्रयोग-सम्मत नहीं है—सर्वत्र 'आवहिं' 'पावहिं' है।

१(इ) वर्ग के परिवर्तनों में से कुछ इस प्रकार हैं :—

(१) १-९-२ पूर्व का पाठ था : हंसहिं बक दादुर चातक ही। हंसहि

मलिन खल बिमल बतकही। 'दादुर' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'गादुर' कर दिया गया है। 'हंस' से तुलना के लिए जिस प्रकार पक्षिवर्ग से 'बक' लिया गया है, उसी प्रकार 'चातक' से तुलना के लिए पक्षिवर्ग के 'गादुर'= 'चमगादुर' का लिया जाना समीचीन लगता है। 'चातक' और 'गादुर' की परस्पर विपरीत रहन-सहन और आचरण भी प्रसिद्ध हैं : चातक मरते समय तक अपनी चोंच ऊपर आकाश की ओर उठाये रहता है—उसकी वृत्ति ऊर्ध्वमुखी रहती है; और 'गादुर' सदैव अपना मुँह नीचे की ओर लटकाये रहता है—उसकी वृत्ति इसीलिए अधोमुखी मानी जाती है। 'चातक' और 'दादुर' में इस प्रकार की समानता और विपरीतता नहीं है। समानता इन दोनों में यही है कि दोनों वर्षा के जल से सुखी और अन्यथा उसके लिए पिपासार्त रहते हैं और विषमता यह है कि चातक की बोली मधुर होती है और दादुर की कर्कश।

(२) १-१४२-८ पूर्व का पाठ था : तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु बहु बिधि प्रतिपाला। दूसरे चरण के 'बहु' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'सब' बनाया गया है। पहले चरण में 'बहु' आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है, दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है। इसके अतिरिक्त 'सब बिधि प्रतिपाला' में जो बल है, वह 'बहु बिधि प्रतिपाला' में नहीं है और प्रसंग से 'अधिकतम' की व्यंजना ही अभीष्ट लगती है, क्योंकि आगे के शब्द हैं : होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथ पनु। १-१४२.

(३) १-३४६-५ पूर्व का पाठ था : अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंगल तुलसि बिराजा। 'मंगल' शब्द के स्थान पर १७२१ में पाठ 'मंजरि' बना दिया गया है। यहाँ पर वर्णन उन मंगल-द्रव्यों का किया जा रहा है जो रानियाँ परिछन के लिए सज रही थीं। दोनों पाठों से अर्थ लगता है। आगे कुछ और मंगल-द्रव्यों का उल्लेख कर देने के अनंतर कहा गया है : मंगल सकल सजहिं सब रानी। १-३४६-७

इसलिए विवेचनीय स्थल पर 'मंगल' शब्द आवश्यक नहीं है, किंतु उसके होने से भी कोई बाधा नहीं पहुँचती, क्योंकि 'तुलसी' और 'तुलसी-मंजरी' में वास्तविक भेद नहीं है।

(४) १-१९६-५ पूर्व का पाठ था : परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं सकल रस भूले। 'सकल रस' के स्थान पर १७२१ में पाठ बनाया गया है 'मगन मन'। पहला पाठ संगत नहीं लगता, क्योंकि 'रस' शब्द का प्रयोग कवि ने केवल श्रृङ्गारादि पार्थिव रसों के लिए ही नहीं, वरन् 'राम भक्ति रस', 'राम ध्यान रस', 'बाल केलि रस', 'ज्ञान बिराग भगति रस' आदि अनेक समासों में अपार्थिव रसों के लिए भी किया है। दूसरे पाठ की संगति प्रकट है; अर्थ होगा : "परमानंद (राम) के अनुराग-सुख में फूले हुए, मन में मगन (प्रसन्न) और इसीलिए भूले हुए अयोध्या की गलियों में हम दोनों (शिव तथा भुशुंडि) चक्कर लगाते रहते थे।"

(५) १-३५३-४ पूर्व का पाठ था : बिप्रबधू सब भूप बोलाईं। चीर चारु भूषन पहिराईं। १७२१ में 'चीर' के स्थान पर पाठ 'चैल' कर दिया गया है। यद्यपि 'मानस' में तुलनीय प्रयोग नहीं मिलते,[१] दोनों समानार्थी प्रतीत होते हैं।

(६) ६-४२-७ पूर्व का पाठ था : जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना। 'सुना मैं काना' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'फिरा मैं जाना' बनाया गया है। ऊपर की ही अर्द्धाली में 'सुनी तेहिं काना' आ चुका है :—

निज दल बिचल सुनी तेहिं काना।

इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है, जो असंभव नहीं जान-बूझकर कवि ने की हो और दूसरा उससे मुक्त है।

(७) ७-२१-७ पूर्व का पाठ था : सब निरदंभ धरमरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी। 'पुनी' के स्थान पर १७२१ में पाठ बनाया गया है 'घृनी'। 'पुनी' = 'तदनंतर' की प्रसंग में कोई आवश्यकता नहीं है, 'घृनी' = 'दयालु' ही ठीक लगता है। 'पुनी' से 'पुण्यात्मा' का आशय लेने पर वह पाठ अवश्य संगत हो सकता है।

१—'गीतावली' में 'चैल' का प्रयोग पीताम्बर के लिए हुआ है :
पीत निर्मल चैल मनहु मरकत सैल पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहज ही।
गीता० उत्तर० ६

(८) १-१२-४ पूर्व का पाठ था : तिन्हमहं प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज़ धंध्वक धोरी। 'धंध्वक' को १७२१ में 'धंधक' बनाया गया है। पहला अर्थहीन है, दूसरा ही सार्थक है, अर्थ होगा 'धंधा करनेवाला'।

(९) १-२३-३ पूर्व का पाठ था : प्रौढ़ि सुजन जनि जानहु जन की। कहेउं प्रतीति प्रीति रुचि मन की। 'कहेउं' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'कहउं' बनाया गया है। ऊपरवाली अर्द्धाली से ही यह वक्तव्य प्रारंभ किया गया है, और आगे की पंक्तियों में भी इसी का प्रतिपादन विभिन्न तर्कों का आश्रय लेते हुए किया गया है, इसलिये भूतकाल के रूप 'कहेउं' के स्थान पर वर्त्तमानकाल का रूप 'कहउं' अधिक समीचीन लगता है।

(१०) १-३५ पूर्व का पाठ था : जस मानस जेहि बिधि भएउ जग प्रचार जिहि हेतु। 'जिहि' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'जेहि' बनाया गया है। 'जिहि' ग्रन्थ में अन्यत्र कहीं नहीं आया है, 'जेहि' ही प्रयोग-सम्मत है।

(११) १-३८-१ पूर्व का पाठ था : जो गावहिं यह चरित संभारे। तेइ येहि ताल चतुर रखवारे। 'जो' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'जे' बनाया गया है। 'गावहिं' तथा 'तेइ' के वहुवचन से 'जे' बहुवचन पाठ ही सिद्ध है, 'जो' एकवचन पाठ नहीं।

(१२) १-५८-७ पूर्व के पाठ में नीचे लिखी अर्द्धालियों में से बीच की नहीं थी, वह बाद में बढ़ाई गई है :

बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुंचे कैलासा ।।
तहं पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन ।।
संकर सहज सरूप संभारा। लागि समाधि अखंड अपारा ।।

ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि वीच की अर्द्धाली का पहला चरण पूर्व के कथन तथा दूसरा चरण बाद के कथन के अनिवार्य अंग हैं।

(१३) १-८५ पूर्व का पाठ था : जो राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुं। 'जो' के स्थान पर १७२१ में 'जे' कर दिया गया है। 'राखे' तथा 'ते' के बहुवचन से 'जे' बहुबचन पाठ सिद्ध है, 'जो' एकवचन पाठ अशुद्ध है।

(१४) १-८८ पूर्व का पाठ था :

सकल सुरन्ह के हृदयं अस संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चही नाथ तुम्हार बिवाहु॥

'चही' का १७२१ में 'चहैं' बनाया गया है। दोनों में अंतर प्रथम पुरुष और अन्य पुरुष में कथन का प्रतीत होता है : 'सुरन्ह' बहुवचन कर्त्ता के साथ बहुवचन क्रिया 'चहैं'='चहहिं' समीचीन है, और 'बिवाहु' कर्त्ता के साथ 'चही'='चहिअ' एकवचन।

(१५) १-९६ पूर्व का पाठ था :

भई बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि।
करि प्रलाप रोदति बदति सुता सनेहु संभारि॥

'प्रलाप' के स्थान पर १७२१ में 'बिलाप' बना दिया गया है। 'प्रलाप' ग्रन्थ में 'बकवास' या 'बकझक' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है, यथा :

बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहिं प्रलापु। १-२७४
एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा। २-८६-७

रोने के प्रसंग में 'बिलापु' का ही प्रयोग ग्रन्थ भर में मिलता है, इसलिए वही प्रयोग-सम्मत है।

(१६) १-११०-६—७ पूर्व के पाठ में १७२१ में नीचे लिखी बीच की दो अर्द्धालियाँ नहीं थीं, वे बाद में बढ़ाई गई हैं :

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा।
कहहु जथा जानकी बिबाही। राज तजा सो दूषन काही।
बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा।
राज बैठि कीन्ही बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला।

प्रकट है कि बीच की अर्द्धालियाँ प्रसंग में अनिवार्य हैं।

(१७) १-११२-५ पूर्व का पाठ 'तिपुरारी' था, १७२१ में वही बाद में 'त्रिपुरारी' बनाया गया है। ग्रन्थ भर में सर्वत्र 'त्रिपुरारी' ही आया है, इसलिये वही प्रयोग-सम्मत है।

(१८) १-१५९ दोहे का निम्नलिखित अंश पूर्व के पाठ में छूटा हुआ था, १७२१ में वह बाद में बढ़ाया गया है :

आपुनु आवै ताहि पहिं ताहि तहां लै जांइ।

प्रकट है कि पहले पाठ में लेखन-प्रमाद से ही यह भूल रह गई थी।

(१९) १-१८६ छं० पूर्व का पाठ था : सादर स्रुति सेषा रिपय असेषा जाकहुं कोउ नहिं जाना। १७२१ में 'सादर' का 'सारद' बनाया गया है। 'जाना' क्रिया के विशेषण के रूप में 'सादर' की असंगति प्रकट है; ज्ञान के प्रसंग में 'स्रुति सेषा' के साथ 'सारद' की संगति भी इसी प्रकार स्पष्ट है।

(२०) ५-५६-५ पूर्व का पाठ 'दिढ़ाई' था, १७२१ में उसको 'दृढ़ाई' बनाया गया है। ग्रन्थ में 'दृढ़' तथा उसी के रूप मिलते हैं, इसलिए दूसरा पाठ ही प्रयोग-सम्मत है।

(२१) ६-८३-२ पूर्व का पाठ था : खोजत रहेउं तोहिं सुरघाती। 'सुरघाती' के स्थान पर १७२१ में 'सुतघाती' बनाया गया है। यह शब्दावली रावण की लक्ष्मण के प्रति है। लक्ष्मण 'सुतघाती'='मेघनाद का वध करनेवाले' ही थे, 'सुरघाती'='देवताओं का वध करनेवाले' नहीं। इसलिए 'सुरघाती' पाठ की समीचीनता सिद्ध है।

(२२) ६-९६-१ पूर्व का पाठ था : अंतर्ध्यान भएउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका। 'अंतर्ध्यान' का १७२१ में 'अंतर्धान' बनाया गया है। प्रकट है कि प्रसंग यहाँ 'तिरोधान'='आँख से ओझल' होने का है; उसके अर्थ में 'अंतर्धान' ही समीचीन है : 'अंतर्ध्यान' नहीं।

(२३) ७-४-३ 'बढ़्यो' के स्थान पर १७२१ में 'बढ़ेउ' कर दिया गया है। वस्तुतः दोनों में अंतर भाषा का ही है : पहला व्रज का रूप है, दूसरा अवधी का। ग्रन्थ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण दूसरा पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(२४) ७-६-५ पूर्व का पाठ था : अमित रूप प्रगटे तिहि काला। 'तिहि' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'तेहि' बना दिया गया है। 'तिहि' ग्रन्थ भर में अन्यत्र प्रयुक्त नहीं हुआ है, 'तेहि' ही सर्वत्र प्रयोग में आया है, इसलिए 'तेहि' ही प्रयोग-सम्मत है।

दूसरे प्रकार के संशोधनों को भी—अर्थात् उनको जो १७६२ के बाद हुए—पहले प्रकार के संशोधनों की भाँति तीन ढग से देखा जा सकता है :—

(अ) वे जो ऊपर गिनाई हुई प्राय: किसी प्रति में नहीं मिलते, और सामान्यत: अशुद्ध हैं,

(आ) वे जो यद्यपि १६९१/१७०४ शाखा में नहीं मिलते, किन्तु किसी अन्य शाखा में मिलते हैं, और सामान्यत: अशुद्ध हैं, और

(इ) वे जो १६९१/१७०४ शाखा में प्राथमिक पाठ के रूप में मिलते हैं, और सामान्यत: शुद्ध हैं।

यह ध्यान देने योग्य है कि २(अ) वर्ग के संशोधन बिलकुल नहीं मिलते।

२(आ) वर्ग के संशोधनों में से मुख्य निम्नलिखित हैं। यह संशोधन निश्चित रूप से १७६२ के बाद के हैं, इसलिए नीचे इनका निर्देश-मात्र किया गया है, इनके विवेचन की आवश्यकता नहीं समझी गई है। फिर भी पाठ-विवेचनवाले अध्याय में इनमें से कुछ क सम्बन्ध में—उनके अन्य प्रतियों में भी आने के कारण—विवेचन मिल जाएगा :—

(१) १-९-११ 'कागर' का 'कागद' बनाया गया है
(२) १-२९-८ 'रामसभा' का 'राजसभा' ”
(३) १-६४-४ 'काटिअ' का 'काढ़िअ' ”
(४) १-७४-६ 'बेलत्राति' का 'बेलपाति' ”
(५) १-७५ 'मान' का 'काम' ”
(६) १-८६-६ 'जाति' का 'सखा' ”
(७) १-९१-७ 'अज' का 'बिधि' ”
(८) १-११९-२ 'बस उर' का 'सब उर' ”
(९) १-१२४-१ 'दीन्ह' का 'कीन्ह' ”
(१०) १-१२७-८ 'सुनावहु' का 'सुनाएहु' ”
(११) १-१३१ ८ 'हैं बिधि' का 'हे बिधि' ”
(१२) १-१४३-१ 'तब' का 'नृप' ”
(१३) १-१५०-५ 'भगति हित' का 'भगत हित' ”
(१४) १-१७६-८ 'जाइ' का 'जाहिं' ”
(१५) १-१८६-छं० ह्रस्व तुकांत का दीर्घ तुकांत ”
(१६) १-२०८-५ 'प्रिय' का 'प्रिय मोहिं' ”

(१७) १-२२६-५ 'कमल' का 'पदुम' बनाया गया है।
(१८) १-२३४-५ 'भए गहरु' का 'भएउ गहरु' "
(१९) १-२६५-५ 'नाक' का 'व्योम' "
(२०) १-२६६-४ 'परां गति, का 'सुगति जिमि' "
(२१) १-२७७ 'चरहिं' का 'होहिं' "
(२२) १-२९१-७ 'सुरासुर' का 'सरासुर' "
(२३) १-२९७-२ 'बालक' का 'सावक' "
(२४) १-३१५-७ 'कनक बरन बर जोरी' का 'न बर' रह गया था, उसके स्थान पर 'न तन' बनाया गया है।
(२५) १-३२२ 'सत्त' का 'सप्त' "
(२६) १-३३३-५ 'सुसारा' का 'सुआरा' "
(२७) १-३४६-६ 'सकुच' का 'सकुन' "
(२८) ३-१०-४ 'हैं बिधि' का 'हे बिधि' "
(२९) ३-१०-१७ 'जान न' का 'जाग न' "
(३०) ३-१६ 'निष्काम' का 'निःकाम' "
(३१) ४-७ 'कहे बाली' का 'कह बाली' "
(३२) ४-१५ 'चल' का 'बह' "
(३३) ५-५६-८ 'दूतहि' का 'दूत' "
(३४) ७-२९-४ 'तिन्हकी' का 'तिन्हके' "
(३५) ७-६४-३ 'पूग' का 'पुंज' "
(३६) १-३८-८ 'कुतर्क' का 'कुतरक' "
(३७) १-४०-२ 'सुहावन' का 'सोहावन' "
(३८) १-१२३ से १-१२५-४ तक 'आप' का 'साप' "(कई बार यह हुआ है)
(३९) १-१६२-२ 'लोक' का 'लोग' "
(४०) १-१८९-२ 'बार' का 'समै' "
(४१) १-२००-४ 'सबकै राखै' का 'बसकै राखै' "
(४२) १-२०६-३ 'जग्य जोग' का 'जोग जग्य' "
(४३) १-२१०-३ 'क्रोही' का 'कोही' "
(४४) १-२१८-५ 'उर' का 'डर' "

(४५) १-३२४-छं० 'सुकृत' का 'सकृत' बनाया गया है।
(४६) १-३२७ 'आनि' का 'आने' ,,
(४७) ३-१३-१६ 'कै' का 'कर' ,,
(४८) ७-८-५ 'बोलाए' का 'बुलाए' ,,
(४९) ७-१२३-४ 'कीन्हि' का 'कीन्ह' ,,
(५०) ७-१२३/१ 'दीन्ह' का 'दीन' ,,

२(इ) वर्ग के संशोधनों में से प्रमुख निम्नलिखित हैं। इनका समावेश भी १७६२ के अनंतर हुआ है, इसलिए इनका भी निर्देश-मात्र किया गया है। फिर भी पाठ-विवेचनवाले अध्याय में इनमें से कुछ पर विचार किया गया है, क्योंकि वे अन्य प्रतियों में भी मिलते हैं :—

(१) १-६-८ 'कर्मनासा' का 'कबिनासा' बनाया गया है।
(२) १-८-१४ 'सकृति' का 'सकृत' ,,
(३) १-१००-८ } 'कोटिबहु' का 'कोटिहु' ,,
(४) १-१०० } ,,
(५) १-१४३-८ 'संत' का 'सत' ,,
(६) १-१४९-१ 'बोलीं' का 'बोले' ,,
(७) १-३४४-२ 'भेरि' का 'बीरि' ,,
(८) ३-१०-१ 'अगस्त्य' का 'अगस्ति' ,,
(९) ३-१८-२ 'बिलषाता' का 'बिलपाता' ,,
(१०) ५-५४ 'बिकटासि' का 'बिकटास्य' ,,
(११) ६-२२-८ 'महूं' का 'हमहुं' ,,
*(१२) ६-६०/१ दोहे के स्थान पर दो अर्द्धालियाँ बनाई गई हैं।
*(१३) ६-७२ 'मायामय' का 'मायारचित' बनाया गया है।
*(१४) ६-७२ 'अट्टहासकरि' का 'प्रलय पयोद जिमि' ,,
*(१५) ६-७३-१३ 'बंधायो, भय पायो' का 'बंधावा, भय पावा' ,,
*(१६) ६-७३-१३ 'नागपास' का 'देखि दसा' ,,
*(१७) ६-७४/१ दोहा के स्थान पर दूसरा दोहा ,,
(१८) ७-२२-५ 'बरदसुसीला' का 'बरदमुसीला' ,,
(१९) ७-२४-९ 'ब्रह्माणि' का 'ब्रह्मादि' ,,

(२०) ७-७९-२ 'लगि' का 'लगे' बनाया गया है।
(२१) १-३७-३ 'गलहीं' का 'गरहीं' ,,
(२२) १-१०-७ 'रघुबीर' का 'रघुनाथ' ,,
(२३) १-२३-२८ 'निहवृते' का 'निजवृते' ,,
(२४) १-२६-३ 'श्रुति' का 'सुनि' ,,
(२५) १-३६-८ 'सकल' का 'सकिलि' ,,
(२६) १-३६ 'रुचि' का 'बर' ,,
(२७) १-६९-६ 'समान' का 'समकह' ,,
(२८) १-९२ छं० 'असुर' का 'सुअर' ,,
(२९) १-९४ छं० 'सुर' का 'पुर' ,,
(३०) १-९७ ८ 'जिनि' का 'जनि' ,,
(३१) १-९८-३ 'संग' का 'संभु' ,,
(३२) १ ११६-८ 'पुरुष' का 'परेस' ,,
(३३) १-१२३-३ 'मह्यं' का 'तहां' ,,
(३४) १-१३८ 'अंतध्यान' का 'अंतर्धान' ,,
(३५) १-१४३-१ 'तव' का 'वन' ,,
(३६) १-१४६ 'नीरनिधि' का 'नीरधर' ,,
(३७) १-१४९-६ 'जान हिय' का 'जानहि' ,,
(३८) १-१५१ 'बिज्ञास' का 'बिसाल' ,,
(३९) १-१६२-१ 'बन' का 'जग' ,,
(४०) १-१७५-२ 'तेहीं' का जेहीं' ,,
(४१) १-२१७-१ 'सुनि तत्र चरित' का 'मुनि तव चरन' ,,
(४२) १-२४०-६ 'जठर' का 'जरठ' बनाया गया है।
(४३) १-२४५ 'के' का 'को' ,,
(४४) १-२८४ ३ 'डेराना' का 'सकाना' ,,
(४५) १-२९८-८ 'बहु' का 'सब' ,,
(४६) ३-५-१ तथा २ के बीच दो नई अर्द्धालियाँ बनाई गई हैं।
(४७) ५-३८ 'भज भजहीं जेति संत' का 'भजहु भजहिं जेहि संत' ,,
(४८) ५-५६ 'सरासन' का 'सरानल' बनाया गया है।

(४९) ६-१५-४ 'बिलास' का 'बिसाल' बनाया गया है।
(५०) ६-३०-१ 'न कछु' का 'नहिं कछु' ,,
(५१) ६-३३/२ 'तिष्ठति' का 'तृषित' ,,
(५२) ६-९८-६ 'ठएऊ' का 'गएऊ' ,,
(५३) ६-९८-१५ 'भालुकपि' का 'भालुपति' ,,
(५४) ७-३२-८ 'ग्यान जोति' का 'ग्यान जोनि',,
(५५) ७-३५-१ 'की' का 'अति' ,,
(५६) १-४७-२ 'मुसकाई' का 'मुसुकाई' ,,
(५७) १-२७०-४ 'लहि' का 'लगि' ,,
(५८) ६-१०२-२ 'भएउ श्रम' का 'श्रम भएउ' ,,
(५९) ६-११५-६ 'मंथन पर मंदर' का 'मंदर पर मंदर' ,,

इस वर्ग के संशोधनों के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देन योग्य है : यद्यपि अधिकतर स्थलों पर पाठांतर पाठ-प्रमाद या लिपि-प्रमाद के कारण संभव हो सकता है, कुछ स्थल निश्चित रूप से ऐसे हैं जहाँ पर दोनों पाठ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं—कम से कम ऊपर जिन स्थलों पर तारक चिह्न लगाए गए हैं वे ऐसे ही हैं।

ऊपर के विवेचन से यह प्रकट हो गया होगा कि १७२१ में संशोधन बड़ी स्वच्छंदतापूर्वक किए गए हैं, और यह बात दोनों प्रकार के संशोधनों में दिखाई पड़ती है : उनमें भी जो १७६२ के पूर्व उक्त प्रति में हुए थे, और इसलिये जो १७६२ की प्रति में प्राथमिक पाठ के रूप में उतर आए हैं, और उनमें भी जो १७६२ के बाद हुए, और इसीलिये १७६२ में जिनके स्थान पर पूर्ववर्त्ती पाठ ही प्राथमिक पाठ के रूप में पाया जाता है।

१७६२ की प्रति—हर्ष की बात है कि १७६२ में इस प्रकार की मन-मानी बहुत कम हुई है। संशोधन प्राय: ऐसे ही स्थलों पर हुए हैं जहाँ १७२१ में भी हुए हैं, इसलिये हम उन्हें दो वर्गों में रख सकते हैं :—

१—वे संशोधन जो १७२१ में भी मिलते हैं, और

२—वे जो केवल १७६२ में मिलते हैं।

पहले वर्ग के प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं :—

(१) १-७४-४ सामान्य पाठ है : बेलपाति महि परै सुखाई।

१७२१ तथा १७६२ में पहले 'वेलगाति' लिखा हुआ था, उसको 'बेलपाति' बनाया गया है। 'बेलवाति' की अर्थहीनता प्रकट है।

(२) १-९८/२ वह दोहा जो सामान्यत: १-९९ है, १७२१ तथा १७६२ में एक बार और १-९८/२ के रूप में लिखा हुआ था। बाद में इन दोनों प्रतियों में भी वह केवल १-९९ रह गया। प्रसंग से यह प्रकट है कि वह वास्तव में १-९९ ही है, १-९८/२ नहीं।

(३) १-२२८-५ के प्रथम चरण के बाद के तीन चरण १७२१ तथा १७६२ में एक बार और कुछ अशुद्ध रूप में लिख उठे थे। बाद में दोनों प्रतियों में यह पुनरावृत्ति दूर कर दी गई है।

(४) ६-२२-८ पूर्व का पाठ था : पावा दरस महूँ बड़भागी। 'महूं' के स्थान पर १७२१ तथा १७६२ में 'हमहुं' बनाया गया है। 'पावा' एकवचन के साथ 'महूं' एकवचन ही समीचीन लगता है, 'हमहुं' बहुवचन नहीं।

(५) ७-२७ छं० सामान्य पाठ है : प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे। १७२१ तथा १७६२ में 'पुरट' लिखने से रह गया था, बाद में वह बढ़ाया गया है।

(६) ७-८६-७ सामान्य पाठ है : जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। १७२१ तथा १७६२ में 'गति' के स्थान पर पाठ 'भगति' हो गया था। 'भगति' की अशुद्धि प्रकट है। बाद में दोनों में 'गति' पाठ कर दिया गया।

दूसरे वर्ग के संशोधन एकाध ही हैं, यथा :—

(१) १-८८ पूर्व का पाठ था :

सकल सुरन्ह के हृदय अस संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहैं नाथ तुम्हार बिवाहु॥

१७२१ तथा १७६२ दोनों में 'चहैं' के स्थान पर पाठ 'चहौं' कर दिया गया। 'सुरन्ह' कर्त्ता के साथ 'चहै' क्रिया की समीचीनता प्रकट है, 'चहौं' स्पष्ट ही अशुद्ध है।

फलत: यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि होते हुए भी पाठ-संरक्षा की दृष्टि से १७२१ की अपेक्षा अधिक महत्त्व की है।

१६६१ की प्रति—१६९१ की प्रति के संशोधनों के। हम दो वर्गों में रख सकते हैं :—

१—वे जो १७०४ में प्राथमिक पाठ के रूप में पाए जाते हैं, और

२—वे जो १७०४ में प्राथमिक पाठ के रूप में नहीं पाए जाते हैं।

पहले वर्ग के संशोधन थोड़े ही हैं। इनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

(१) १-२६७-३ पूर्व का पाठ था : लोभ लोलुप कल कीरति चहई। १६९१ में 'लोभ' का 'लोभी' बनाया गया है। यद्यपि 'लोलुप' का स्वतंत्र प्रयोग भी ग्रन्थ में मिलता है, यथा :

जे कामी लोलुप जगमाहीं । १-१२५-८
लोभी लंपट लोलुप चारा । २-१६८-३
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी । ७-१००८

किन्तु वहाँ 'चहई' क्रिया के एकवचन होने से कर्त्ता का एकवचन होना सिद्ध है, और 'लोभ लोलुप' ही एकवचन पाठ है, 'लोभी लोलुप' बहुवचन है।

(२) १-२७६-२ पूर्व का पाठ था : माता पितहि उरिन भये नीके। १६९१ में 'माता' के स्थान पर 'मातहि' कर दिया गया है। दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(३) १-३०२-१ सामान्यतः निम्नलिखित अर्द्धाली पाई जाती है :—

सहित बसिष्ट सोह नृप कैसे। सुर गुर संग पुरंदर जैसे।

१६९१ में यह अर्द्धाली लिखने से रह गई थी, और बाद में बढ़ाई गई है। यद्यपि इस अर्द्धाली के बिना भी संगति लग सकती है, किंतु कवि ने इसके ऊपर की पंक्तियों में दोनों संभ्रांत सवारों के लिए ऐसे रथों का उल्लेख किया है जो 'नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने।' इसलिए वे सवार स्वतः सवारी करने पर कैसे लगते हैं, इसका उल्लेख प्रसंगोचित है।

यह ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त तीन में से प्रथम दो १७२१/१७६२ में भी प्राथमिक पाठ के रूप में नहीं पाए जाते हैं, केवल तीसरा १७२१/१७६२ में प्राथमिक पाठ के रूप में पाया जाता है।

१६९१ में भरमार दूसरे प्रकार के संशोधनों की है, जिन्हें सुविधा के निम्नलिखित दो वर्गों में रक्खा जा सकता है :—

(अ) १६९१ के ऐसे संशोधन जो १७०४ तथा १७२१/१७६२ में से किसी में प्राथमिक पाठ के रूप में नहीं मिलते, और

(आ) १६९१ के ऐसे संशोधन जो यद्यपि १७०४ में नहीं, किन्तु १७२१/१७६२ में प्राथमिक पाठ के रूप में पाए जाते हैं।

२(अ) वर्ग के संशोधनों में से प्रमुख निम्नलिखित हैं। यह संशोधन संभवतः १७०४ के बाद के हैं, इसलिए यहाँ इनका विवेचन नहीं किया है, यद्यपि इनमें से कुछ पर विचार पाठ-विवेचनवाले अध्याय में अन्य प्रतियों के प्रसंग में मिल जावेगा :

(१) १-८-१२ 'भनिति' का 'भनित' बनाया गया है।
(२) १-९-११ 'कागर' का 'कागद' ”
(३) १-१४-३ 'पूरहुं' का 'पूरवहु' ”
(४) १-१९-६ 'जपि जेंई' का 'जपति सदाइ' ”
(५) १-२२-३ 'जानी' का 'जाना' ”
(६) १-२२ 'प्रेम' का 'सुप्रेम' ”
(७) १-२३-३ 'प्रौढ़ि' का 'प्रौढ़' ”
(८) १-२४-१ 'किये' का 'किय' ”
(९) १-२६-१ 'हरिहर' का 'हरहर' ”
(१०) १-२९-८ 'रामसभा' का 'राजसभा' ”
(११) १-४७-३ 'क्रम मन' का 'मन क्रम' ”

(१२) १-७७- तथा १-७८-१ के बीच निम्नलिखित अर्द्धाली बढ़ाई गई है : तब ऋषि तुरत गौरि पहं गयऊ। देखि दसा मुनि बिसमै भयऊ।

(१३) १-१११-२ पूर्व का पाठ था : 'भगति ज्ञान बिरागा।' 'ज्ञान और बिरागा' के बीच 'बिज्ञान' बढ़ाया गया है।

(१४) १-११९-२ 'बस' का 'सब' बनाया गया है।

(१५) १-१२४ १ 'दीन्ह' का कीन्ह ”

(१६) १-१२६ पूर्व का पाठ था : गहेसि जाइ मुनिचरन कहि सुठि आरत बैन। 'चरन' तथा 'कहि' के बीच में 'तब' बढ़ाया गया है।

(१७) १-१४९-६ पूर्व का पाठ था : तासु प्रभाउ जानहि सोई। 'प्रभाउ' तथा 'जानहि' के बीच 'न' बढ़ाया गया है।

(१८) १-१५१-१ 'बच' का 'बर' बनाया गया है।

(१९) १-१५२-५ 'पूरब' का 'पूरुब' ”

(२०) १-१८३ छं०, १८४ छं०, १८६ छं० (पद्य ३ के चरण १, तथा २ के अतिरिक्त), तथा १९२ छं० (पद्य २, तथा ४ मात्र) ह्रस्वांत थे। बाद को इन्हें दीर्घांत किया गया है।

(२१) १-१९४ पूर्व का पाठ था : गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटेउ सुखकंद। 'सुख' का 'सुषमा' कर दिया गया है।

(२२) १-२००-४ 'सब' का 'बस' बनाया गया है।

(२३) १-२०० 'माता' का 'मात तब' ”

(२४) १-२६७-४ पूर्व का पाठ था : हरिपद बिमुख पर गति चाहा। 'पर' को 'परम' कर दिया गया है।

(२५) १-२९७-२ 'बालक' का 'सावक' बनाया गया है।

(२६) १-३१६ 'चालि' का 'बाजि' ”

(२७) १-३४५-३ पूर्व का पाठ था : 'तनु धरि धरि दसरथ गृह वाए।' 'वाए' के स्थान पर 'छाए' बनाया गया है।

२(आ) वर्ग के प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं। ये संशोधन भी १७०४ के बाद के ही प्रतीत होते हैं, क्योंकि १७०४ की प्रति में इनका समावेश नहीं हुआ है, इसलिये यहाँ पर इनका विवेचन नहीं किया गया है, यद्यपि इनमें से कुछ के सम्बन्ध में विचार अन्य प्रतियों के प्रसंग में पाठ-विवेचन के अध्याय में किया गया है :—

(१) १-६-८ 'कबिनासा' का 'क्रमनासा' बनाया गया है।

(२) १-७-३ 'हरिनत' का 'हरिजन' ”

(३) १-९-२ 'गादुर' का 'दादुर' ”

(४) १-१४-४ 'जेन्ह' का 'जिन्ह' ”

(५) १-३७-१३ 'दम' का 'द्रुम' ”

(६) १-४७-७ 'जोहि' का 'जेहि' ”

(७) १-७७-३—४ सामान्य पाठ है :

केहि अवराधहु का तुम चहहू। हम सन सत्य मरम किन कहहू॥
सुनत रिषिन्ह के बचन भवानी। बोली गूढ़ मनोहर बानी॥

कहत बचन मनु अति सकुचाई। हंसिहहु सुनि हमार जड़ताई ॥

ऊपर की प्रथम अर्द्धाली के 'किन कहहू' से लेकर तृतीय अर्द्धाली के 'कहत बचन' तक का अंश १६९१ में लिखने से रह गया था, वह बाद में बढ़ाया गया है।

(८) १-१७९-८ सामान्य पाठ है : एक बार कुबेर पर धावा। १६९१ में 'पर' लिखने से रह गया था, वह बाद में बढ़ाया गया है।

(९) १-१८६ सामान्य पाठ है :

जो भवभय भंजन जन मन रंजन गंजन बिपति बरूथा।

१६९१ में 'गंजन' लिखने से रह गया था, बाद में वह बढ़ाया गया है।

(१०) १-१९५-२ 'सारद' का 'सादर' बनाया गया है।

(११) १-२३० सामान्य पाठ है :

सिय सोभा हिय बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।

'हिय बरनि' के स्थान पर १६४१ में 'सिय बरनि' लिख गया था। उसे 'हिय बरनि' बना दिया गया है।

(१२) १-३२५- २—३ सामान्य पाठ है :

कुंअरु कुंअरि कल भांवरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं ॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहों सो थोरी ॥
राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं ॥
मनहु मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिबाहु अनूपा ॥

उपर्युक्त में से बीच की दो अर्द्धालियाँ १६९१ में लिखने से रह गई थीं, वह बाद से बढ़ा दी गई हैं।

ऊपर के विवेचन में यह प्रकट हो गया होगा कि १६९१ में भी १७२१ की भाँति—यद्यपि उतना नहीं—संशोधन प्रायः स्वच्छंदतापूर्वक किए गए हैं।

१७०४ की प्रति—हर्ष की बात है कि १७०४ में—१७६२ की भाँति ही—संशोधनों की ऐसी भरमार नहीं है। उसमें संशोधन प्रायः ऐसे ही स्थलों पर हुए हैं जहाँ १६९१ में भी हुए हैं। इसलिए हम इन्हें निम्नलिखित दो वर्गों में रख सकते हैं :—

१—वे संशोधन जो १६९१ में भी मिलते हैं, और

२—वे संशोधन जो १६९१ में नहीं मिलते हैं।

पहले प्रकार के प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं। यह संशोधन १७०४ के बाद के हैं, इसलिए इन पर यहाँ विचार नहीं किया गया है, यद्यपि अन्यत्र पाठ-विवेचन के अध्याय में इनमें से कुछ पर विवेचन मिल जावेगा।

(१) १-११७ सामान्य पाठ है : समुझि बिबिध बिनती अब मोरी। १७०४ में केवल 'बिनती मोरी' था, बाद में 'बिबिध' और 'बिनती' के बीच में 'बिधि' बढ़ा दिया गया है। ऐसा ही १६९१ में भी हुआ है।

(२) १-७८-३-४ सामान्य पाठ है :

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू॥
सुनत रिषिन्ह के बचन भवानी। बोली गूढ़ मनोहर बानी॥
कहत बचन मनु अति सकुचाई। हंसिहहु सुनि हमारि जड़ताई॥

१७०४ में ऊपर की प्रथम अर्द्धाली के 'मरमु' के बाद से लेकर तृतीय अर्द्धाली के 'मनु' के पूर्व तक का अंश लिखने से रह गया था। १६९१ तथा १७०४ दोनों में पीछे से यह अंश बढ़ाया गया है।

(३) १-१९४ पूर्व का पाठ था : गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटेउ सुख कंद। १७९४ में 'सुख' और 'कंद' के बीच 'मा' बढ़ा दिया गया है। १६९१ में भी ऐसा ही हुआ है।

(४) १-२४० सामान्य पाठ है : कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि। १७०४ में 'नर नारि' के स्थान पर 'महिपाल' था, जो बाद को 'नर नारि' बनाया गया है।

दूसरे प्रकार के प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं। इन पर भी उपर्युक्त की भाँति यहाँ विचार नहीं किया गया है :

(१) १-१२-४ सामान्य पाठ है :

तिन्ह महं प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज धंधक धोरी॥

'धंधक' के स्थान पर १७०४ में 'धंध्रक' लिख गया था, संशोधन 'धंधरच' लिखकर किया गया है।

(२) १-१४९-१ सामान्य पाठ है :

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोले मृदु बानी॥

१७०४ में पूर्व का पाठ 'बोले' था, उसको 'बोली' बनाया गया है।

(३) १-१७९-८ सामान्य पाठ है : एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा। १७०४ में 'पर' लिखने से रह गया था, उसके स्थान पर बाद में 'कहुँ' बढ़ाया गया है।

(४) ७-२ छं० -सामान्य पाठ है :

रघुबीर निजमुख जासु गुन गन कहत अगजग नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सद्गुन सिंधु सो॥

१७०४ में पाठ 'सद्गुन सिंधु' ही था, उसके स्थान पर 'सद्गुन पाथ' कर दिया गया है।

फलतः यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यद्यपि समय की दृष्टि से १७०४ की प्रति १६९१ के पीछे की है, पाठ-संरक्षा की दृष्टि से कदाचित् उससे अधिक महत्त्व की है।

छक्कनलाल की प्रति—पाठ-परिवर्तन छक्कनलाल की प्रति में इतना हुआ है जितना ऊपर आई हुई कदाचित् किसी प्रति में नहीं हुआ है। नीचे उनमें से केवल प्रमुख का उल्लेख किया जा रहा है; पूर्ववर्ती तथा परवर्ती पाठों की संगति आदि के संबंध में यहाँ विचार करने की आवश्यकता इसलिये नहीं समझी गई है कि प्रति विक्रमीय बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ की है, और अन्यत्र पाठ-विवेचनवाले अध्याय में पाठ-विचार प्रायः समस्त के संबंध में किया भी गया है :—

(१) १-२-११ 'राज' का 'साज' बनाया गया है।
(२) १-५-२ 'कबहुँ' का 'कबहिं' ,,
(३) १-७ 'सोषक पोषक' का 'पोपक सोषक' ,,
(४) १-९ ११ 'कागर' का 'कागद' ,,
(५) १-१०/२ 'ग्राम' का 'ग्राम्य' ,,
(६) १-१२-६ 'थोरे' का 'थोरेहि' ,,
(७) १-१२-७ 'बिधि बिनती' का 'बिनती अब' ,,
(८) १-१७ 'ग्यान धन' का 'ग्यान घर' ,,
(९) १-२०-८ 'मंजु कंज' का 'कंज मंजु' ,,

(१०) १-२० 'बिराजत' का 'बिराजित' बनाया गया है।
(११) १-२२-४ 'लय' का 'लौ' ,,
(१२) १-२२ 'प्रेम' का 'पेम' ,,
(१३) १-२३-२ 'मोरें' का 'हमरें' ,,
(१४) १-२३-३ 'प्रौढ़ि' का 'प्रौढ़' ,,
(१५) १-२५-५ 'सकुल रन' का 'सकल कुल' ,,
(१६) १-२७-५ 'समन सकल जगजाला' का 'सकल समन जंजाला' ,,
(१७) १-२९-३ 'मोरि' का भोरि' ,,
(१८) १-३७-१४ 'नेम' का 'नियम' ,,
(१९) १-३९-७ 'भाऊ' का 'चाऊ' ,,
(२०) १-४१-४ 'सुबंधु' का 'सुबंध' ,,
(२१) १-४८ 'गुप्त' का 'गुपुत' ,,
(२२) १-४९-७ 'इव नर' का 'नर इव' ,,
(२३) १-५७ 'होइं' का 'होत' ,,
(२४) १-६१ 'कृपायतन' का 'कृपाश्रयन' ,,
(२५) १ ६६-६ 'बर' का 'तब' ,,
(२६) १-६७-६ 'तिय' का 'त्रिय' ,,
(२७) १-७१-२ 'संमुझे' का 'बूझे' ,,
(२८) १-७१ 'सब' का 'अब' ,,
(२९) १-७१ 'पारबतिहि' का 'पारबती' ,,
(३०) १-७२-४ 'तुम्ह' का 'सब' ,,
(३१) १-७७-३ 'गुर प्रभु' का 'प्रभु गुर' ,,
(३२) १-७७ 'प्रेरि' का 'जाइ' ,,
(३३) १-७७ 'पठवहु' का 'पठएहु' ,,
(३४) १-७८-३ 'किन' का 'सब' ,,
(३५) १-७८-८ 'सदा सिवहि' का 'सिवहि सदा' ,,
(३६) १-९७-१ 'काह' का 'कहा' ,,
(३७) १-१०४-२ 'नयन' का 'नयनन्हि' ,,
(३८) १-१११-६ 'कह' का 'कर' ,,

(३९) १-१३०-४ 'जेहि' का 'जिसु' बनाया गया है।
(४०) १-१३१-८ 'तेहि' का 'येहि' ,,
(४१) १-१३१-८ 'हैं' का 'हे' ,,
(४२) १-१८३-१ 'पहिलेहि' का 'पहिले' ,,
(४३) १-१८३-४ 'हानी' का 'ग्लानी' ,,
(४४) १-२०५ 'एहि मिस मैं' का 'ऐहू मिस' ,,
(४५) १-२३४-६ 'बरिश्रा' का 'बेरिश्रा' ,,
(४६) १-२३५-७ 'मध्य' का 'अंत' ,,
(४७) १-२४४-३ 'टारे' का 'तारे' ,,
(४८) १-२५२-२ 'सके' का 'सकेउ' ,,
(४९) १-२६६ 'मोह' का 'कोह' ,,
(५०) १-२६७-३ 'लोभी' का 'लोभ' ,,
(५१) १-२८५-५ 'कहा' का 'काह' ,,
(५२) १-२८८-१ 'सपरन' का 'सपरब' ,,
(५३) १-३४३-५ 'बिधि' का 'सिधि' ,,
(५४) २-१७-७ 'जल' का 'जर' ,,
(५५) २-२२-८ 'प्रिय' का 'फुर' ,,
(५६) २-२७-५ 'तेइ' का 'तेहिं' ,,
(५७) २-२८-६ 'मुनि' का 'मनु' ,,
(५८) २-३६-१ 'भूपपद' का 'भूपतहिं' ,,
(५९) २-३६-८ 'नहारुहिं' का 'नहारू' ,,
(६०) २-४२-४ 'तेउ न पाइ अस' का 'तेऊ पाय न' ,,
(६१) २-५०-१ 'कोपि' का 'कोटि' ,,
(६२) २-५१-८ 'इहै' का 'मिटा' ,,
(६३) २-७५-२ 'हानी' का 'जानी' ,,
(६४) २-७५-४ 'फल सुत' का 'बड़ फल' ,,
(६५) २-८९-८ 'आनी' का 'पानी' ,,
(६६) २-९८ 'मोर' का 'मोरि' ,,
(६७) २-१३६-५ 'करब' का 'करबि' ,,

(६८) २-१७८-२ 'देख' का 'दीखि' बनाया गया है।
(६९) २-२५३-६ 'हइ' का 'हर' „
(७०) २-२५७-४ 'सरसी सीपि कि' का 'सरसीपी किमि' „
(७१) ३-६-९ 'बन' का 'अब' „
(७२) ३-१०-१२ 'चलि' का 'पुनि' „
(७३) ३-१४ 'जीवहि' का 'जीव' „
(७४) ३-२९/१ 'राखेसि' का 'राखिसि' „
(७५) ३-३५-३ 'मतिमंद' का 'अति मंद' „
(७६) ३-३९-५ 'सत' का 'सत्य' „
(७७) ३-४०-६ 'पलास' का 'पनास' „
(७८) ४-१३-६ 'कै' का 'की' „
(७९) ४-२७-२ 'बाहर' का 'बाहिर' „
(८०) ४-३० 'त्रिपुरारि' का 'त्रिसिरारि' „
(८१) ५-०-३ 'होइ' का 'होइहि' „
(८२) ५-० ८ 'तेही' का 'ऐही' „
(८३) ५-२०-२ 'सुने' का 'सुनेहि' „
(८४) ५-२७-४ 'बिरद' का 'बिरिद' „
(८५) ५-३३ 'प्रताप' का 'प्रभाव' „
(८६) ५-५९-४ 'जस' का 'जसि' „
(८७) ६-९-१ 'सब' का 'सठ' „
(८८) ६-१० 'नहिं' का 'न' „
(८९) ६-१६-२ 'कबि' का 'सब' „
(९०) ६-१९-४ 'वैसा, जैसा' का 'वैसे, जैसे' „
(९१) ६-२१-१ 'न बोलु' का 'बोलु' „
(९२) ६-२८-२ 'सठ का 'सब' „
(९३) ६-४२-७ 'फिरा मैं जाना' का 'सुना मैं काना' „
(९४) ६-४२ 'कीन्हे' का 'किए' „
(९५) ६-९९-११ 'करत' का 'कर' „
(९६) ७-१०-४ 'सुभदाई' 'समुदाई' „

(९७) ७-११-८ 'कोटि छबि' का 'देखि सत' बनाया गया है।
(९८) ७-१४-७ 'मनुजात' का 'मनजात' ,,
(९९) ७-१८-६ 'जानि' का 'नाथ' ,,
(१००) ७-२८ 'चारु' का 'रुचिर' ,,
(१०१) ७-३१-२ 'बहुतेहु, बहुतन्ह' का 'बहुतेन्ह, बहुतन्ह' ,,
(१०२) ७-३४-४ 'अनुपम अज' का 'अति अनुपम' ,,
(१०३) ७-४४-३ 'गहै' का 'ग्रहै' ,,
(१०४) ७-४४ 'आत्महन' का 'आत्माहन' ,,
(१०५) ७-४८-६ 'उपरोहिती' का 'उपरोहित्य' ,,
(१०६) ७-५३-६ 'निजातम' का 'निजात्मक' ,,
(१०७) ७-५६-६ 'बिरागा' का 'बेरागा' ,,
(१०८) ७-६३-१ 'जप' का 'तप' ,,
(१०९) ७-६३-१ 'भुसुंडी, अखंडी' का 'भुसुंडा, अखंडा' ,,
(११०) ७-६३/२ 'जिन्हकै' का 'जेहिकै' ,,
(१११) ७-७१-६ 'नारि' का 'लोक' ,,
(११२) ७-८१-६ 'सरजू' का 'सरऊ' ,,
(११३) ७-८६-९ 'जीवन' का 'जीवहु' ,,
(११४) ७-९२-८ 'धरा' का 'भार' ,,
(११५) ७-९३-२ 'प्रभाउ' का 'प्रताप' ,,
(११६) ७-९४ 'आएउं' का 'आए' ,,
(११७) ७-९८-२ 'बंचक' का 'बेचक' ,,
(११८) ७-१००-९ 'दाना' का 'नाना' ,,
(११९) ७-११२-२ 'कि होइ' का 'की होहिं' ,,
(१२०) ७-१२२-८ 'भलेही रोग' का 'भलेहि सो रोग' ,,
(१२१) ७-१२५-७ 'पै' का 'परि' ,,
(१२२) ७-१३०-८ 'भजिअ' का 'भजहि' ,,
(१२३) १-२९-६ 'समदरसी' का 'सबदरसी' ,,
(१२४) १-१४२-२ 'ध्रुव हरिभक्त' का 'द्रुव हरिभगत' ,,
(१२५) ३-६-७ 'भजिअ' का 'भजी' ,,

(१२६) ७-० श्लो०/२ 'कोमलांबुज' का 'कोमलावज' बनाया गया है।

(१२७) ७-१०९-८ 'प्रमाना' का 'प्रवाना' ,,

फलतः यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पाठ-संरक्षा की दृष्टि से छक्कनलाल की प्रति सबसे गई-बीती है।

शेष-प्रतियाँ—ऊपर उल्लिखित शेष प्रतियों में से रघुनाथदास, बंदन पाठक, तथा कोदवराम की प्रतियाँ मुद्रित हैं, इसलिए उनके संबंध में पाठ-संरक्षा की समस्या नहीं उठती; और जो हस्तलिखित हैं, उनमें पाठ सुरक्षित हैं, कहीं पर भी कोई उल्लेखनीय पाठ-परिवर्तन नहीं हुआ है।

प्रतियों का पाठ-संबंध

ऊपर हम देख चुके हैं कि १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि है। परिवर्तित पाठों को अलग रखकर प्राथमिक पाठों को देखने पर अंतर केवल १७६२ की निजी अशुद्धियों का ज्ञात होगा, अन्यथा दोनों एक ही पाठ प्रस्तुत करती हैं।

१६९१ तथा १७०४ के विषय में ऊपर हम देख चुके हैं कि वे एक ही आदर्श की प्रतिलिपियाँ हैं। अंतर दोनों में केवल उनकी निजी अशुद्धियों का है, अन्यथा दोनों एक ही पाठ प्रस्तुत करती हैं।

किन्तु, इतना घनिष्ठ संबंध ऊपर की किन्हीं भी अन्य दो प्रतियों में प्रमाणित नहीं हो सका है। उनके विषय में केवल पाठ-साम्य के आधार पर ही विचार किया जा सकता है।

छक्कनलाल के परिवर्तित पाठों को अलग रखकर यदि देखा जावे, तो ज्ञात होगा कि कुल प्रायः आधे दर्जन स्थलों को छोड़कर समस्त प्रति का पाठ रघुनाथदास का ही है। यह बात आगे के तुलनात्मक पाठ-चक्र से स्पष्ट हो जावेगी। यह दोनों में प्रतिलिपि-संबंध होने के कारण ही साधारणतः संभव होना चाहिए, अन्यथा यह तो मानना ही होगा कि दोनों एक ही आदर्श से संबंधित हैं।

छक्कनलाल तथा बंदन पाठक में भी अंतर अधिक नहीं है, यद्यपि रघुनाथदास की अपेक्षा अवश्य कुछ अधिक है, और यह भी तुलनात्मक पाठ-चक्र से स्पष्ट देखा जा सकता है। इसलिये रघुनाथदास की भाँति छक्कन-

लाल के साथ इसके भी प्रतिलिपि-संबंध की संभावना है। अन्यथा इतना तो इसके संबंध में भी मानना होगा कि यह उसी आदर्श से संबंधित है जिससे छक्कनलाल और रघुनाथदास हैं। प्रतिलिपि-समय की दृष्टि से उपर्युक्त तीनों का क्रम इस प्रकार है: छक्कनलाल—रघुनाथदास—बंदन पाठक। रघुनाथदास और बंदन पाठक संपादित तथा मुद्रित प्रतियाँ हैं, और उसी स्थान से (काशी से) प्रकाशित हैं जहाँ उपर्युक्त छक्कनलाल की प्रति थी। इसलिये प्रतिलिपि-संबंध के अभाव में छक्कनलाल से इनके अन्यथा प्रभावित होने की संभावना भी यथेष्ट मानी जा सकती है।

मिर्ज़ापुर समूह की प्रतियाँ इस समूह से यद्यपि कुछ अलग पड़ती हैं, किंतु जैसा तुलनात्मक पाठ-चक्र से देखा जा सकता है, दोनों समूहों में इतना पाठ-साम्य अवश्य है कि वे एक ही कुल के कहे जा सकें। किंतु इस के साथ ही जहाँ पर दोनों समूहों में अंतर है, वहाँ पर प्रायः मिर्ज़ापुर समूह का पाठ शेष शाखाओं के अपेक्षाकृत निकटतर है, इसलिये इस बात की संभावना यथेष्ट है कि मिर्ज़ापुर समूह अपने कुल के उपयुक्त दूसरे समूह की अपेक्षा मूल आदर्श के अधिक निकट है।

कोदवराम एक भिन्न शाखा की प्रति है, यद्यपि जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, यह कहना कठिन है कि वह अपनी शाखा की शुद्ध प्रतिनिधि है।

१६९१/१७०४, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, मूलतः १७२१/१७६२ के साथ प्रतिलिपि संबंध से संबंधित हैं, किंतु पाठ की दृष्टि से यदि देखा जावे, जैसा तुलनात्मक पाठ-चक्र से ज्ञात होगा, दोनों शाखाओं में बड़ी विभिन्नता है। प्रतिलिपि-संबंध होते हुए भी इतनी विभिन्नता एक ही कारण से संभव हो सकती है: वह यह कि दो में से एक पर किसी तीसरी शाखा का ऋण है।

ऊपर की शेष प्रतियाँ एक स्वतंत्र कुल की ज्ञात होती हैं, जिसका पाठ, जैसा तुलनात्मक पाठ-चक्र से ज्ञात होगा, १६९१/१७०४ के निकटतम है। यदि १६९१/१७०४ शाखा किसी अन्य शाखा से प्रभावित हुई हो, तो असंभव नहीं कि वह अन्य शाखा यही हो, और १६९१/१७०४ इसी के किसी प्राचीन पूर्वज से प्रभावित हो।

फलतः पाठ-संबंध के आधार पर हम ऊपर के परिणामों को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं:

×

१७२१(१) | १६९१(६अ) १७०४(६) | छक्कनलाल समूह (३)(४)(५) | मिर्ज़ापुर (५अ) | कोदवराम(७) | स्फुट प्रतियाँ (८)

१७६२ (२)
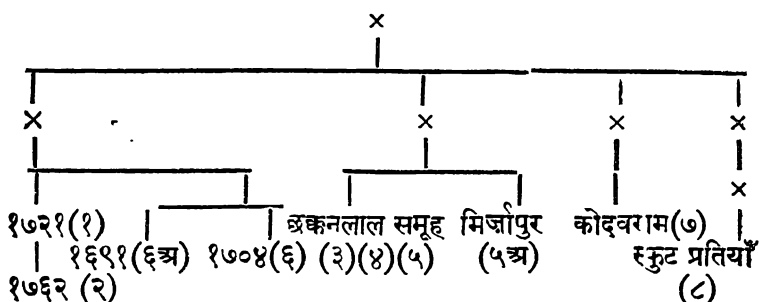
अंतर और उसका समाधान

ऊपर की विभिन्न शाखाओं में परस्पर पाठ-विषयक अंतर कितना है, इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ में प्रायः १००० स्थलों पर पाठ-भेद है, १७२१/१७६२ तथा कोदवराम में भी पाठ-भेद इससे कम न होगा, १७२१/१७६२ तथा छक्कन-लाल समूह में भी पाठ-भेद प्रायः इसके आधे स्थलों पर होगा। इस अंतर का समाधान किस प्रकार किया जा सकता है, हमारे पाठ-विवेचन की सबसे टेढ़ी समस्या यही है।

पाठों में अंतर दो प्रकार से संभव होता है—अज्ञात भाव से अर्थात् पढ़ने या लिखने में भूल के कारण, अथवा ज्ञात भाव से अर्थात् जान-बूझकर। इसमें संदेह नहीं कि बहुत से पाठ-भेद ऊपर की शाखाओं में अज्ञात भाव से संभव है, किन्तु ऐसे पाठ-भेद भी कम नहीं हैं जो निश्चित रूप से ज्ञात भाव से संभव हैं। इस प्रकार के पाठ-भेद भी ग्रंथ में मिलते हैं जहाँ पर एक या दो अक्षर या शब्द ही नहीं, चौपाई या दोहे के चरण के चरण बदले हुए हैं, अथवा चौपाई के स्थान पर दोहा और दोहा के स्थान पर चौपाई है—लंकाकांड के ही पाठ-भेदों पर दृष्टि डालने से इस कथन की यथार्थता प्रमाणित हो जावेगी। ज्ञात भाव से संभव पाठांतर पुनः दो प्रकार के हो सकते हैं: स्वतः कविकृत, तथा अन्यकृत। 'मानस' की रचना के बाद भी कवि प्रायः ५० वर्ष तक जीवित था, और प्रायः ४० वर्ष तक

तो काव्य-रचना भी करता रहता था यह निर्विवाद रूप से ज्ञात है। अतः यह आशा की जा सकती है कि अपनी इस सब से महत्त्वपूर्ण कृति का वह पारायण करते हुए बीच-बीच में पाठ-सुधार भी करता रहा होगा। ज्ञात मात्र से संभव इतर पाठांतर अन्य व्यक्तियों के होंगे। प्रश्न यह है कि कौन से पाठांतर कविकृत हो सकते हैं, और कौन से अन्यकृत।

किन्तु इस प्रश्न पर विचार करने के पूर्व एक और समस्या सुलझाने की आवश्यकता है : विभिन्न शाखाओं में पाठ-विषयक अंतर सामान्यतः किसी विकास-क्रम में हुआ है, या अन्यथा ? और, यदि कोई विकास-क्रम है, तो वह क्रम कौन सा है ?

इस प्रसंग में यह बताना उचित होगा कि 'मानस-पाठभेद' शीर्षक ऊपर उल्लिखित अपने लेख में पं० शंभुनारायण चौबे ने पाठ-भेद यद्यपि प्रतियों की क्रम-संख्या देते हुए दिए हैं, उन्होंने प्रतियों का यह क्रम किस प्रकार बाँधा है यह नहीं लिखा है। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि सामान्यतः भागवतदास खत्री के संस्करण से पाठांतर के आधार पर ही यह क्रम उन्होंने निर्धारित किया है : जिस प्रति का पाठ उसके जितना निकट या दूर उन्होंने देखा है, उसकी क्रम-संख्या भी उन्होंने १ से प्रारम्भ करके उतनी ही निकट या दूर की रक्खी है। किन्तु इससे हमारी समस्या पर कोई निश्चयात्मक प्रकाश नहीं पड़ता। इसलिये हमें स्वतन्त्र रूप से अपनी समस्या के ध्यान से इस पाठांतर पर विचार करना है। यह अवश्य है कि पं० शंभुनारायण चौबे ने अपने उक्त लेख में उक्त प्रतियों के प्रायः ८०% पाठ-भेद दिए हैं, और यह ८०% उन्होंने चयन की दृष्टि से संभवतः बिना किसी पूर्वस्थापित धारणा या भावना के दिए हैं, इसलिये सामान्यतः इन्हीं का सम्यक् अध्ययन उपर्युक्त समस्याओं के सम्बन्ध में यथेष्ट होना चाहिए। सिद्धान्तों की रूपरेखा स्पष्ट हो जाने पर शेष पाठ-भेदों का भी उपयोग किया जा सकता है।

प्रस्तुत समस्या की दृष्टि से यदि पाठ-भेदों को लिया जावे, तो ज्ञात होगा कि यद्यपि उनमें से सब के सब किसी विकास-क्रम में नहीं रक्खे जा सकते, फिर भी एक महत्त्वपूर्ण प्रतिशत उनमें ऐसे पाठ-भेदों की है जो विकास-क्रम की श्रृंखला में रक्खे जा सकते हैं, और इन पाठ-भेदों के

आधार पर क्रम इस प्रकार होगा : १७२१/१७६२—छक्कनलाल समूह/मिर्ज़ापुर समूह—कोदवराम—१६९१/१७०४ ।

इस निष्कर्ष का कारण यह है कि १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ पाठ-भेद की दृष्टि से दो छोरों पर स्थित हैं, और १७२१/१७६२ की ओर से चलने पर उसकी तुलना में कुछ पाठ-भेद ऐसे हैं जो छक्कनलाल समूह/मिर्ज़ापुर समूह, कोदवराम तथा १६९१/१७०४ में मिलते हैं, कुछ ऐसे हैं जो कोदवराम तथा १६९१/१७०४ में ही मिलते हैं, और कुछ केवल १६९१/१७०४ में मिलते हैं; और इसी प्रकार १६९१/१७०४ की ओर से चलने पर उसकी तुलना में कुछ पाठ-भेद ऐसे हैं जो केवल १७२१/१७६२ में मिलते हैं, कुछ ऐसे हैं १७२१/१७६२ तथा छक्कनलाल समूह/मिर्ज़ापुर समूह में मिलते हैं, और कुछ १७२१/१७६२, छक्कनलाल समूह/मिर्ज़ापुर समूह, तथा कोदवराम में भी मिलते हैं। चौबे जी के द्वारा दिए हुए उपर्युक्त ८०% पाठ-भेदों में से उन पाठ-भेदों को लेने पर जो विकास-शृंखला में आते हैं, स्थिति कुछ इस प्रकार होगी :—

१७२१/१६६२	छक्कनलाल समूह मिर्ज़ापुर समूह	कोदवराम	१६९१/१७०४
	बाल कांड		
—	३८	३६	३८
		२३	२३
			१८
	३८	५९	७९
	अयोध्या कांड		
—	—	—	—
	—	—	—
			४
	०	०	४

१७२१/१७६२	छक्कनलाल समूह मिर्ज़ापुर समूह	कोदवराम	१६९१/१७०४
	अरण्य कांड		
—	६	६	६
		१	१
			१
	६	७	८
	किष्किंधा कांड		
—	१	१	१
		२	२
			४
	१	३	७
	सुंदर कांड		
—	४	४	४
		४	४
			२
	४	८	१०
	लंका कांड		
—	१२	१२	१२
		१६०	१६०
			६९
	१२	१७२	२४१
	उत्तर कांड		
—	१९	१९	१८*
		२४	१८*
			१०*
	१९	४३	४६

* प्रति के केवल प्राचीन अंश में

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह स्थिति १७२१/१७६२ की ओर से चलने पर होती है। १६९१/१७०४ की ओर से चलने पर इन्हीं पाठ-भेदों को उपर्युक्त दूसरे ढंग से देखा जा सकता है। किन्तु सबसे बड़ी बात यह है कि इस क्रम में आनेवाले पाठ-भेदों को किसी अन्य क्रम में नहीं रक्खा जा सकता, और न कोई दूसरे ही ऐसे पाठ-भेद हैं जिन्हें इस प्रकार के किसी क्रम में रक्खा जा सकता हो। फलत: यह मानना पड़ेगा कि पाठ-भेदों में एक महत्त्वपूर्ण संख्या ऐसों की है जो विकास-क्रम में रक्खे जा सकते हैं, और वह विकास क्रम उपर्युक्त है।

शृंखला निर्धारित हो जाने के अनंतर ही देखना यह है कि इसमें आए हुए पाठ-भेदों में कोई ऐसी विशेषता भी है, या नहीं, जिसके आधार पर उसका ठीक-ठीक स्वरूप समझा जा सके। इस दृष्टि से देखने पर—जैसा हम पाठ-विवेचन के अध्याय में देखेंगे—ज्ञात होगा कि पहले अर्थात् १७२१/१७६२→ १६९१/१७०४ क्रम से उपर्युक्त शृंखला में आनेवाले विभिन्न शाखाओं के पाठ-भेदों में से ८०% से ९०% तक अपने पूर्ववर्ती पाठ की तुलना में निश्चित रूप से उत्कृष्टतर हैं, और शेष १०% से २०% भी अपने पूर्ववर्ती पाठ की तुलना में किसी प्रकार हीन नहीं हैं; और इसी प्रकार दूसरे अर्थात् १६९१/१७०४→ १७२१/१७६२ क्रम से उपर्युक्त शृंखला में आनेवाले विभिन्न शाखाओं के पाठ-भेदों में से ८०% से ९०% तक अपने परवर्ती पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर हैं, और शेष १०% से २०% भी अपने परवर्ती पाठ की तुलना में किसी प्रकार हीन नहीं हैं। फलत: पहले को हम पाठ-संस्कार-क्रम और दूसरे को हम पाठ-विकृति-क्रम कह सकते हैं।

इस शृंखला के बाहर पड़नेवाले पाठ-भेदों के सम्बन्ध में विचार करना शेष है। इनको देखने पर—जैसा हम पाठ-विवेचन के अध्याय में देखेंगे—ज्ञात होगा कि विभिन्न शाखाओं में ७०% से ८८% तक पाठ-भेद निश्चित रूप से त्रुटिपूर्ण हैं, ७% से १०% तक ऐसे हैं जो शृंखला में आनेवाले पाठ के समान हैं और केवल ५% से २०% तक ऐसे हैं जो शृंखला में आनेवाले पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर कहे जा सकते हैं। शृंखला में आनेवाले पाठों की प्राय: शत-प्रतिशत शुद्धता और विभिन्न

शाखाओं में ८०% से ९०% का पूर्ववर्ती (या दूसरी दृष्टि से परवर्ती) पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर (या दूसरी दृष्टि से निकृष्टतर) होना, और श्रृंखला के बाहर पड़नेवाले विभिन्न शाखाओं के पाठ-भेदों में से ७०% से ८८% का निश्चित रूप से त्रुटिपूर्ण होना और केवल ५% से २०% तक का उत्कृष्टतर होना पाठ-विकास-क्रम के सम्बन्ध में पहुँचे हुए हमारे उपर्युक्त परिणामों की शुद्धता का एक अन्य प्रबल प्रमाण है।

इतना कम अंतर सैद्धांतिक और वास्तविक परिणामों में अस्पष्ट रूप से इसी बात की ओर संकेत करता है कि ऊपर पाठ-संस्कार के जिस क्रम पर पहुँचे हैं वह संभवतः कविकृत है। किन्तु, साथ ही, इस सम्बन्ध में सब से उत्तम साधन कवि के प्रयोगों का अध्ययन है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जो पाठ-भेद ऊपर के परिणामों के अनुसार श्रृंखलाओं के बाहर पड़ने के कारण असिद्ध हैं, उन्हें सामान्यतः कवि के प्रयोगों की दृष्टि से अशुद्ध होना चाहिए, और इसी प्रकार उक्त परिणामों के अनुसार जो पाठ-भेद संस्कार-क्रम म आते हैं, उन्हें सामान्यतः कवि-प्रयोग-सम्मत होना चाहिए। पहले के विषय में कदाचित् अपवाद भी हो जावें—और तब उन्हें सामान्यतः प्रसंग या अन्य किसी दृष्टि स त्रुटिपूर्ण उतरना चाहिए—दूसरे के विषय में अपवाद न होना चाहिए—अर्थात् ऐसे एक भी पाठ-भेद को शुद्ध मानने में कठिनाई होगी जो कवि-प्रयोगसिद्ध नहीं हैं। अधिक से अधिक यह हो सकता है कि उक्त संस्कार-क्रम में आनेवाले पूर्ववर्ती पाठों में यदा-कदा इस नियम के अपवाद मिल जावें, परवर्ती पाठों में इस नियम के अपवाद न होने चाहिएँ। और, आगे आनेवाले पाठ-विवेचन से यह प्रकट हो जावेगा कि वास्तविकता भी यही है।

इन्हीं दृष्टियों से आगे के पृष्ठों में क्रमशः पहले पं० शंभुनारायण चौबे के दिए हुए पाठ-भेदों के तथा तदनंतर शेष पाठ-भेदों के संस्कार-क्रम से निर्मित तुलनात्मक पाठ-चक्र, और तदनंतर उक्त चक्रों के अनुसार उपयुक्त सिद्धान्तों के आधार पर स्वीकृत तथा अस्वीकृत पाठ-भेदों के विस्तृत विवेचन कांड-क्रम से प्रस्तुत किए गए हैं। पाठांतर के विषय में ऊपर जो विचार-सरिणी प्रस्तुत की गई है, वह इन्हीं के आधार पर निर्मित है, और एक प्रारंभिक गवेषणा मात्र है। विश्वास है कि उक्त

पाठ-चक्र तथा पाठ-विवेचन के पृष्ठ ऊपर उठाई हुई समस्याओं के संतोष-जनक समाधान प्रस्तुत करेंगे।

संपादन

उपर्युक्त समस्याओं के समाधान के अनंतर 'मानस' के संपादन की समस्या एक सरल समस्या रह जाती है। ऊपर हम देख चुके हैं कि पाठ-संस्कार-क्रम इस भाँति है: १७२१/१७६२→छक्कनलाल समूह/मिर्ज़ापुर समूह→कोदवराम→१६९१/१७०४।

क्रमशः हम इस बात पर विचार करेंगे कि ऊपर के क्रम में आनेवाली विभिन्न स्थितियों के पाठ किस प्रकार पुनर्निर्मित किए जा सकते हैं।

१७२१/१७६२ की स्थिति का पाठ-निर्माण—ऊपर हम यह देख चुके हैं कि १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि मात्र है, इसलिये दोनों के पाठांतर के प्रसंग में १७२१ को ही सामान्यतः प्रमाण मानना चाहिए। किन्तु, ऊपर हम यह भी देख चुके हैं कि १७२१ में पाठ-परिवर्तन बहुत हुआ है, और वह अधिकतर ऐसा है जो १७६२ के भी बाद का है, इसलिये हमें १७२१ के प्राथमिक पाठ को ही प्रमाण-कोटि में लेना होगा। यह अवश्य है कि १७२१ में हरताल लगाकर पाठ-परिवर्तन किए जाने के कारण अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ पर प्राथमिक पाठ पढ़ा भी नहीं जाता, और १७६२ की प्रति में इस प्रकार के पाठ-परिवर्तन इने-गिने हैं। इसलिये उन स्थलों के सम्बन्ध में जिनका पाठ-परिवर्तन १७६२ के बाद हुआ १७६२ की सहायता ली जा सकती है। किन्तु, जैसा ऊपर बताया जा चुका है, कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ पर दोनों में पाठ-परिवर्तन हुआ है; ऐसे स्थलों पर दोनों के प्राथमिक पाठों को जिस प्रकार सम्भव हो पढ़ने की चेष्टा करनी पड़ेगी, और तदनंतर पाठ-निर्धारित करना पड़ेगा। किन्तु, यह केवल १७२१ की प्रति के पाठ का पुनर्निर्माण हुआ। १७२१ की स्थिति की किसी अन्य प्रति के अभाव में और अधिक निश्चयपूर्वक उसकी स्थिति का पाठ-निर्माण असंभव है।

छक्कनलाल समूह/मिर्ज़ापुर समूह की स्थिति का पाठ-निर्माण—ऊपर हम देख चुके हैं कि छक्कनलाल की प्रति में पाठ-परिवर्तन बहुत हुआ है, इसलिए उसके प्राथमिक पाठ पर ही निर्भर रहा जा सकता है। यह भी हम देख चुके हैं कि रघुनाथदास की मुद्रित प्रति का पाठ इने-गिने स्थलों को छोड़कर वही है जो छक्कनलाल का प्राथमिक है। बंदन पाठक छक्कनलाल से अपेक्षाकृत दूर अवश्य है, फिर भी विशेष नहीं। किन्तु रघुनाथदास तथा बंदन पाठक के संपादित और मुद्रित होने के कारण वैसी भूलें उनमें नहीं रह गई हैं जिनके आधार पर छक्कनलाल के साथ उनके प्रतिलिपि-संबंध का निश्चय किया जा सके। इसलिए इस बात की संभावना यथेष्ट है कि रघुनाथदास तथा बंदन पाठक की सहायता लेने पर भी छक्कनलाल समूह का पाठ एक प्रति का ही पाठ हो। किन्तु इस संबंध में इतना अच्छा है कि मिर्ज़ापुर समूह की प्रतियाँ भी इसी स्थिति की हैं, यद्यपि वे इसकी तुलना में कदाचित् एक अविकृत कुल की हैं—जैसा तुलनात्मक पाठ-चक्र से ज्ञात होगा। दोनों समूहों के पाठ लेकर इस स्थिति का पाठ तैयार किया जा सकता है।

कोदवराम की स्थिति का पाठ-निर्माण—कोदवराम की मुद्रित प्रति का पाठ उस कुल की एक हस्तलिखित प्रति की तुलना में कितना भिन्न है यह ऊपर दिखाया जा चुका है। इसलिए आवश्यकता यह है कि उस कुल की समस्त प्राप्य हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन किया जावे, और उनके प्रतिलिपि-संबंध के आधार पर उनका पाठ-संबंध निर्धारित किया जावे। किन्तु इस सब प्रयास के अनंतर भी सम्भावन यही है कि कोदवराम कुल का पाठ एक प्रति का पाठ ठहरे।

१६९१/१७०४ की स्थिति का पाठ-निर्माण—ऊपर हम देख चुके हैं कि १६९१ तथा १७०४ में से कोई परस्पर किसी की प्रतिलिपि नहीं है, बल्कि दोनों किसी अन्य प्रति की प्रतिलिपियाँ हैं। ऐसी दशा में दोनों के पाठ लेकर उक्त आदर्श का पाठ निर्धारित किया जा सकता है। किन्तु इस संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि १६९१ में पाठ-परिवर्तन बहुत हुआ है, और केवल उसके प्राथमिक पाठ पर ही निर्भर रहा जा सकता है। यह अवश्य है कि १६९१ का बालकांड मात्र है, शेष कांड नहीं

हैं। किन्तु इस स्थिति के पाठ की ऐसी अन्य प्रतियाँ भी प्राप्त हैं, जिनका १६९१/१७०४ से कोई प्रतिलिपि-संबंध नहीं है। उनकी सहायता से इस स्थिति का पाठ सरलता से पुनर्निर्मित हो सकता है। १७०४ तथा इसकी स्थिति की अन्य प्रतियों में एक दोष भी है, जिसकी ओर संकेत करना आवश्यक होगा—वह यह है कि इनमें कई स्थलों पर ऐसी पंक्तियाँ मिलती हैं जो निर्विवाद रूप से प्रक्षिप्त ज्ञात होती हैं।[1] कुशल इतनी ही है कि इस प्रकार की जो पंक्तियाँ १७०४ में मिलती हैं वे इन अन्यों में नहीं मिलतीं, और जो इन अन्यों में मिलती हैं वे १७०४ में नहीं मिलतीं, और प्रकार सरलता से इन पंक्तियों से बचा जा सकता है।

सिद्धांत और अपवाद

यह संपादन-कार्य तुलनात्मक पाठ-चक्र की सहायर्ता से और सुगम तथा निरपवाद हो सकता है, यदि वह चक्र पाठ-संस्कार-क्रम के अनुसार निर्मित किया जावे। इस चक्र में सबसे अधिक आवश्यक दोनों छोरों का पाठ-निर्धारण है। एक बार यदि दोनों छोरों का पाठ निश्चित हो जाता है, तो बीच की स्थितियों के पाठ के लिए यही देखना रह जाता है कि वह किसी छोर के पाठ से मिलता है या नहीं। यदि मिलता है, तो इतना ही निश्चय करना रह जाता है कि उक्त पाठ अपनी वास्तविक स्थिति का है, या बीच की किसी अन्य स्थिति की प्रति के प्रभाव से आया हुआ है; और यदि नहीं मिलता, तो सामान्यतः उसे अस्वीकार करना पड़ेगा।

दोनों छोरों—अर्थात् १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४—का पाठ-निर्धारण करते हुए ही इसीलिये आगे संस्कार-क्रम से तुलनात्मक पाठ-चक्र तैयार किया गया है। १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ की स्थितियों का पाठ-निर्धारण जिन सिद्धांतों के आधार पर किया गया है, वे नीचे दिए जा रहे हैं। इस संबंध में कदाचित् यह स्मरण कराने की आवश्यकता न होगी कि यद्यपि पाठ की दृष्टि से १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ एक दूसरे से बहुत दूर पड़ते हैं, दोनों में प्रतिलिपि-संबंध भी है, जिसके कारण वे एक दूसरे के एक प्रकार से सन्निकट भी हैं।

---

[1] देखिए 'तुलसीदास', पृ० १४

(१) १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ (और उक्त स्थिति की अन्य प्रतियाँ) जहाँ एक ही पाठ देती हैं वहाँ पर वह पाठ प्रामाणिक मान लिया गया है।

(२) १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ (और उक्त स्थिति की अन्य प्रतियाँ) जहाँ पर एक दूसरे से भिन्न पाठ देती हैं, वहाँ पर १७२१/१७६२ का पाठ एक छोर का और १६९१/१७०४ (और उक्त स्थिति की अन्य प्रतियों) का पाठ दूसरी छोर का मान लिया गया है।

(३) १७२१ तथा १७६२ जहाँ पर एक दूसरे से भिन्न पाठ देती हैं, वहाँ पर १७२१ का पाठ प्रामाणिक और १७६२ का अप्रामाणिक माना गया है।

(४) १६९१/१७०४ तथा उक्त स्थिति की अन्य प्रतियाँ जहाँ एक दूसरे से भिन्न पाठ देती हैं, और उनमें से एक १७२१/१७६२ का पाठ देती है, वहाँ पर १७२१/१७६२ वाला पाठ प्रामाणिक तथा दूसरा अप्रामाणिक माना गया है।

(५) १६९१ तथा १७०४ जहाँ एक दूसरे से भिन्न पाठ देती हैं, और उनमें से एक १७२१/१७६२ का पाठ देती है, वहाँ पर १७२१/१७६२ वाला पाठ प्रामाणिक और दूसरा अप्रामाणिक माना गया है।

(६) जहाँ पर १६९१ तथा १७०४ एक दूसरे से भिन्न पाठ देती हैं, और उनमें से कोई भी १७२१/१७६२ का पाठ नहीं देती, किन्तु साथ ही उनमें से एक उक्त स्थिति की अन्य प्रतियों का पाठ देती है, वहाँ पर यही पाठ प्रामाणिक और दूसरा अप्रामाणिक माना गया है।

(७) किष्किंधा कांड में १६९१/१७०४ स्थिति की कोई अन्य प्रति न होने के कारण किया यह गया है जहाँ पर १७०४ का पाठ १७२१/१७६२ से भिन्न है, और यह भिन्नता केवल पढ़ने या लिखने की किसी भूल के कारण संभव है, वहाँ पर संगत और शुद्ध पाठ ही प्रामाणिक माना गया है।

(८) किष्किंधा कांड में १७०४ में कुछ स्थलों पर ऐसी पंक्तियाँ भी आती हैं जो १७२१/१७६२ में नहीं मिलतीं। १७०४ के आरण्य कांड में भी इस प्रकार की पंक्तियाँ आई हैं, किंतु वे १७०४ की स्थिति की अन्य

प्रतियों तथा १७२१/१७६२ में न मिलने के कारण अप्रामाणिक ठहरतीं हैं। इसीलिये १७०४ के किष्किंधा कांड की भी यह अतिरिक्त पंक्तियाँ अप्रामाणिक मानी गई हैं।

(९) उत्तर कांड में १७०४ का उत्तरार्द्ध पूर्णरूप से बदला हुआ होने के कारण किया यह गया है कि जहाँ पर उसकी स्थिति की अन्य प्रति का पाठ १७२१/१७६२ से भिन्न है, और यह भिन्नता केवल पढ़ने या लिखने की किसी भूल के कारण संभव है, वहाँ पर संगत और शुद्ध पाठ ही प्रामाणिक माना गया है।

कहना न होगा कि ऊपर १७२१,१७६२,१६९१ तथा १७०४ के पाठों का जहाँ जहाँ उल्लेख हुआ है, वहाँ-वहाँ आशय उनके असंशोधित—अर्थात् प्राथमिक पाठ से है, संशोधित—अर्थात् परिवर्तित पाठ से नहीं।

इन सिद्धांतों में से अपवाद केवल सिद्धांत (१), (२) तथा (४) के सम्बन्ध में हैं, और (१) के सम्बन्ध में भी कुल दो ही हैं। स्थल-संकेत के साथ अपवाद वाले पाठ-भेद निम्नलिखित हैं।[१] इनके संबंध में विवेचन पाठ-विवेचन के अध्याय में मिलेगा।

उपर्युक्त सिद्धांत (१) के अपवाद :

(१) २-१२-५ बिबिध (२) २-१८०-१ पावन

उपर्युक्त सिद्धांत (२) के अन्तर्गत १६९१/१७०४ (तथा उसकी स्थिति की अन्य प्रतियों) के अस्वीकृत पाठ :

(१) १-४८ गुप्त (२) १-५१-६ मन
(३) १-८२-६ तेइ (४) १-२१३-२ बिधि जनु
(५) १-३१९-२ व्यवहारू, व्यवहारू (६) २-२८-३ मकु
(७) २-८९-८ पानी (८) २-९१-७ सोवत
*(९) २-९४-२ सुखदारा (१०) २ १००-१ जिइहहिं
(११) २-१०४-८ तब (१२) २-१३७-७ बिबिध
(१३) २-१८५ सहस *(१४) २-१८६-७ तोहि
(१५) २-१९१-४ धनही (१६) २-१९९-५ बिलीना

[१] इनके स्थान पर स्वीकृत पाठ पाठ-चक्रखंड में देखे जा सकते हैं।

(१७) २-२०६-४ मूरतिमंत (१८) २-२१०-६ जसु जगु
(१९) २-२११-५ मोहिं न (२०) २-२२९ अनुग
(२१) २-२३४-२ रामहि (२२) २-२३७-४ अबिचल
(२३) २-२५१ लौका (२४) २-२५२ सुचि
(२५) २-२७६ सोच (२६) २-२८९-६ सीय
(२७) ५-३-४ सो *(२८) ५-१२-११ जनि
(२९) ५-२७ ४ बिरुद *(३०) ५-३० दिवस निसि
(३१) ५-५४ बिकटास्य (३२) ६-९१ सव
(३३) ६-९-१० सीतहि *(३४) ६-३१ बिचारि
*(३५) ६-४७-५ कोपि (३६) ६-४९-२ मुख
(३७) ६-६१-११ मुख *(३८) ६-६२-८ सुनु
*(३९) ६-७०/२ करि चिकार अति घोरतर *(४०) ६-८५-८ मारेउ
*(४१) ६-८८ छं० सुरपुर पावहीं (४२) ६-९७-६ पथ
(४३) ६-९९ रावन कहुं *(४४) ६-१०७-४ तिन्ह
*(४५) ६-११७-३ जौ जैहौं बीते अवधि (४६) ६-१२१-७ जब
(४७) ७-२-६ पाव *(४८) ७-५ छं०/१ परमा
(४९) ७-१४-१८ मइ (५०) ७-१६-१ मन माहीं
(५१) ७-२० सुख (५२) ७-२४-९ ब्रह्मादि
*(५३) ७-२८ चारु (५४) ७-३१-२ बहुतेन्ह
(५५) ७-४३-२ भय (५६) ७-५०-४ जेइ
(५७) ७-५१-८ बालिक (५८) ७-५९-८ जो देहिं
*(५९) ७-७० के नैन *(६०) ७-७१-४ काहि न
(६१) ७-७४/२ भजसि (६२) १-३६ बिचारि, चारि
(६३) १-७८-१ मूरतिमंत (६४) १-२५६-२ अस
(६५) १-१९५-२ सादर (६६) १-२६८-५-६ रिसि
(६७) १-२८४-३ जाना (६८) २-१४२ भए
(६९) २-२०३-८ गरहिं (७०) २-२४३-६ लुठत
(७१) २-२४३-७ बरिसहिं (७२) ५-५-७ दीख
(७३) ५-१३-८ फिर *(७४) ६-३-९ कपि

(७५) ६-६ सौंपहु
*(७६) ६-३२-६ बहु कर
(७७) ६-४५ दलमलेउ
(७८) ६-६९-२ करि
*(७९) ६-९३ सनमुख चली बिभीषनहि
(८०) ६-९७-६ नखन्ह
*(८१) ६-१२० बहुरि त्रिबेनी आइ प्रभु
(८२) ७-६० मोहिं

[उपर्युक्त में किष्किंधा कांड के १७०४ के अस्वीकृत पाठ तथा उक्त पाठ की अन्य प्रति के उत्तर कांड उत्तरार्द्ध के अस्वीकृत पाठ इसलिये नहीं रक्खे गए हैं क्योंकि दोनों में उक्त स्थिति के पाठ की ये अकेली ही प्रतियाँ प्राप्त हैं। नीचे उनमें से केवल ऐसे अस्वीकृत पाठ दिए जा रहे हैं जो सामान्यत: पढ़ने या लिखने की भूल से संभव नहीं प्रतीत होते हैं।

*(८३) ४-१६-१० जसि
*(८४) ४.२४ सर बिगसित तहं बहु
*(८५) ७-९५-१ सहित
*(८६) ७-१००-३ निजकृत दोष
*(८७) ७-१०४-७ प्रभुप्रभाव
*(८८) ७-११५/१ जो बिषय बस
*(८९) ७-१२१-१२ गहि सो नर
*(९०) ७-१२१-१३ कछु
*(९१) ७-१२३/२ रघुनाथ कर
*(९२) ७-१२४-१ कर
*(९३) ७-१२४/१ मम तुम पर सदा रहहु
*(९४) ७-१२५-३ भएऊ, इएऊ
*(९५) ७-१२९-५ पावै, गावै

उपर्युक्त सिद्धांत (२) के अन्तर्गत १७२१/१७६२ के अस्वीकृत पाठ :

(१) १-१३-१० सुलभ
(२) १-१५-७ करहिं
(३) १-१२४-१ दीन्ह
(४) १-१४३.८ संत
(५) १-१८८-५ रुचि
*(६) १-१९६-५ सकल रस
(७) १-३१५-७ वर जोरी
(८) १-३४२-८ बहु
(९) २-२७-६ मति
*(१०) २-५०-१ कोपि
(११) २-१३९-६ सुखमा
(१२) २-२५३-६ हइ
(१३) ३-५-१९ जन्मि
(१४) ३-१०-१ अगस्त्य
(१५) ३-१८-२ बिलषाता
(१६) ४-७-१२ दृढ़ाए
(१७) ४-२३-७ गुनग्यान
*(१८) ५-२७-६ आवैं, पावैं,
(१९) ५-५८-४ बोए
(२०) ६-२२-८ हमहुं

(२१) ३-२८-२ सब (२२) ६-४२-७ सुना मैं काना
(२३) ७-२२-५ बरद सुसीला (२४) ७-४८-६ उपरोहित
(२५) ७-७९/२ लागि (२६) ७-८६-७ भगति
(२७) ७-९८-७ ज्ञान बैरागी (२८) ७-९९-६ क
(२९) ७-१०१.१ न रही (३०) ७-१११-१५ कीए, हीए
(३१) ७-१२१-१२ बदले जे (३२) १-४-७ गलहीं
*(३३) १-१०-छं० रघुबीर *(३४) १-२९-३ श्रुति
(३५) १-३६-८ सकल *(३६) १-३६ र्हाच
(३७) १-४३-६ मिटिंहि *(३८) १-४८ अब
(३९) १-५२-७ कै (४०) १-६५-२ सुरन्हि
*(४१) १-६९-४ समान (४२) १-७५-४ जानिहु
(४३) १-७९-१ दच्छसुतन्हि (४४) १-९४ सुर
(४५) १-९५ छं० लरिकन्हि (४६) १-९७-८ जिनि
(४७) १-९८-३ संग (४८) १-१००-८ कोटिबहु
(४९) १-१०० कोटिबहु (५०) १-१०८ भ्रमत
(५१) १-१२३-३ महा (५२) १-१३८ अंतर्ध्यान
*(५३) १४३-१ तब *(५४) १-१४६ नीरनिधि
(५५) १-१५१ बिलास *(५६) १-१६२-१ बन
(५७) १-१६७-८ जल (५८) १-२४५ के
*(५९) १-२९८-८ बहु (६०) ३-३१ करहु
(६१) ५-३८ भज भजहीं जेहि संत (६२) ५-५६ सरासन
(६३) ६-१६-४ बिलास (६४) ६-३४-२ तिष्ठति
(६५) ६-४१ छं० मंदिरन्ह (६६) ६-७३-१२ एक
(६७) ६-९७-१५ कबि (६८) ७-५/२ आरति
(६९) ७-३२-८ जोति *(७०) ७-३५-१ की

उपर्युक्त सिद्धांत (४) के अपवाद :

(१) १-२९-८ रामसभा (२) १-७४-६ बेलवाति
*(३) १-७५ मान (४) १-१२१-६ अधरम
(५) १-१२७-८ सुनावहु (६) १-१३१-८ है

(७) १-१५०-५ भगति	(८) १-१८४-३ सब
(९) १-१८४ ह्रस्वतुकांत	(१०) १-१९६ ह्रस्वतुकांत
(११) १-२३४-५ भए	(१२) १-२९२-७ सुरासुर
(१३) १-३४६-६ सकुच	*(१४) १-३५३-४ चीर
(१५) २-२२५-२ अर्द्धाली नहीं है	(१६) २-२२६ छं० काह सचकित
(१७) २-२६२-८ तापस	*(१८) २-२८४ भूप
(१९) २-२९६-२ अर्द्धाली नहीं है	(२०) २-३२५-७ अर्द्धाली नहीं है
(२१) ३-१०-१७ जान न	(२२) ३-१६ निष्काम
*(२३) ३-२०-६ अपार	(२४) ६-२५ जान
(२५) १-२४०-६ जठर	(२६) २-१८०-२ बिसाद
(२७) २-२३५- भारी	(२८) ३-३४-२ के बाद एक अर्द्धाली अधिक है
(२९) ५-२४-१ गाढ़ी, बाढ़ी	(३०) ६-३२-१ कीन्ह

यह ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त कुल अपवाद ग्रंथ के समस्त पाठ-भेदों के, जो १७२१/१७६२ से लेकर १६९२/१७०४ (और उस स्थिति की अन्य प्रतियों) तक में पाए जाते हैं, केवल १०% के लगभग हैं, और इनमें से भी जिनके सामने तारक-चिन्ह बना हुआ है उनको छोड़कर प्राय: सभी ऐसे हैं जो प्रतिलिपि की भूलों के कारण संभव हैं। तारक-चिन्हवाले पाठ-भेद ही ऐसे हैं जो निरी प्रतिलिपि की भूल से संभव नहीं हैं, किन्तु इनकी संख्या कुल पाठ-भेदों का केवल २½% है। अपवादों की इतनी कम संख्या, और उनमें भी महत्त्वपूर्ण अपवादों के ऐसे नगण्य प्रतिशत से इस बात का भली भाँति अनुमान किया जा सकता है कि दोनों छोरों के पाठ-निर्धारण के उपर्युक्त सिद्धांतों का पालन किस हद तक किया गया है। छोरों के पाठ-निर्धारण के अनंतर बीच की स्थितियों का पाठ-निर्धारण कितना सुगम हो जाता है, यह तुलनात्मक पाठ-चक्र पर दृष्टि डालने पर स्वत: प्रकट होगा।

——

परिशिष्ट

प्रतिलिपि-तिथियों की गणना

संवत् १६६१, वैशाख शु० ६, बुधवार :

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस अंश
विगत सं० १६६१ = १६०४ ई०	वैशाख अमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(४)	अप्रैल	१८ ·८५
	६ तिथियों का व्याप्तिकाल	५ + १		५· ६१
		१०		२४ ·७६

= मङ्गलवार, अप्रैल २५, १६०४ ई०

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस अंश
वर्त्तमान सं० १६६१ = १६०३ ई०	वैशाख अमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(५)	मार्च	३१ ·६५
	६ तिथियों का व्याप्तिकाल	५ + १		५ ·६१
		११		३७ ·८६

= बुधवार, अप्रैल ७, १६०३ ई०

सं० १६९१, वैशाख शु० ६, बुधवार :

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस अंश
विगत सं० १६६१ = १६३४ ई०	वैशाख अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(५)	अप्रैल	१७ ·६६
	६ तिथियों का व्याप्तिकाल	५ + १		५ ·६१
		११		२३ ·६०

= बुधवार, ३ अप्रैल २३

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस	अंश
वर्त्तमान सं० १६६१ = १६३३ ई०	वैशाख अमाचन्द्र का मध्यन्य समातिकाल	(६)	मार्च	२६	·८०
	६ तिथियों का व्यातिकाल	५ + १		५	·६१
		१२		३५	·७१
	= बृहस्पतिवार, अप्रैल ४				
	अधिक वैशाख अमाचन्द्र का मध्यन्य समातिकाल	(१)	अप्रैल	२८	·३३
	६ तिथियों का व्यातिकाल	५ + १		५	६१
		७		३४	·२४
	= शनिवार, मई ४				

सं० १६४३, आषाढ़ शुद्ध ४, शुक्रवार :

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस	अंश
विगत सं० १६४३ = १५८६ ई०	आशाढ़ अमाचन्द्र का मध्यन्य समातिकाल	(२)	जून	६	·५६
	४ तिथियो का व्यातिकाल	३ + १		३	·६४
		६		१०	·५३
	= शुक्रवार, जून १०				
वर्त्तमान सं० १६४३ = १५८५ ई०	आषाढ अमाचन्द्र का मध्यन्य समातिकाल	(५)	जून	१७	·२२
	४ तिथियो का व्यातिकाल	३ + १		३	·६४
		६		२१	·१६
	= सोमवार, जून २१				

सं० १८४३, आषाढ़ शुद्ध ४, शुक्रवार :

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस	अंश
विगत सं० १८४३ = १७८६ ई०	आषाढ़ अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(२)	जून	२६	·२६
	४ तिथियो का व्याप्तिकाल	३ + १		३	·६४
		६		३०	·२०

= शुक्रवार, जून ३०

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस	अंश
वर्त्तमान स० १८४३ = १७८५ ई०	आषाढ़ अमाचन्द्र का मध्यन्य समानिकाल	(४)	जुलाई	६	·८६
	४ तिथियो का व्यप्तिकाल	३ + १		३	·६४
		८		१०	·८३

= रविवार, जुलाई १०

सं० १६६४, कार्तिक शु० १४, शनिवार :

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस	अंश
विगत स० १६६४ = १६०७ ई०	कार्त्तिक अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(७)	अक्तूबर	१०	·६६
	१४ तिथियो का व्याप्तिकाल	१३ + १		१३	·७८
		२१		२४	·४४

= शनिवार, अक्तूबर २४

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस	अंश
वर्त्तमान स० १६६४ = १६०६ ई०	कार्त्तिक अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्ति काल	(३)	अक्तूबर	२१	६२.
	१४ तिथियो का व्याप्तिकाल	१३ + १		१३	·७८
		१७		३५	·०७

= मङ्गलवार, नवंबर ४

सं० १८६४, कात्तिक शु० १४, शनिवार :

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस	अंश
विगत सं० १८६४ = १८०७ ई०	कात्तिक अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(७)	अक्तूबर	३१	·३४
	१४ तिथियों का व्याप्तिकाल	१३ + १		१३	·७८
		२१		४५	·१२
	= शनिवार, नवंबर १४				
वर्त्तमान सं० १८६४ = १८०६ ई०	कत्तिक अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(२)	नवंबर	१०	·९७
	१४ तिथियों का व्यातिकाल	१३ + १		१३	·७८
		१६		२४	·७५
	= सोमवार नवंबर २४				

सं० १६७९, माघ कृ० ८, रविवार :

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस	अंश
विगत सं० १६९७ = १६४० ई०	माघ अमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(५)	दिसंबर	३	·२०
	२३ तिथियों का व्यातिकाल	२२		२२	·६४
		२७		२५	·८४
	= शुक्रवार, दिसंबर २५				
वर्त्तमान सं० १६९७ = १६३९ ई०	माघ अमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(७)	दिसंबर	१४	·८३
	२३ तिथियों का व्यातिकाल	२२ + १		२२	·६४
		३०		३७	·४७
	= सोमवार, जनवरी ६				

सं० १८९७, माघ कृ० ८, रविवार :

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस	अंश
विगत सं० १८९७ = १८४०ई०	माघ अमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(४)	दिसंबर	२३	·८८
	२३ तिथियों का व्याप्तिकाल	२२+१		२२	·६४
		२७		४६	·५२
	= शुक्रवार, जनवरी,१५				
वर्त्तमान सं० १८९७ = १८४०ई०	माघ अमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(७)	जनवरी	४	·५१
	२३ तिथियों का व्याप्तिकाल	२२+१		२२	·६४
		३०		२७	·१५
	= सोमवार, जनवरी २७				

सं० १७०२, ज्येष्ठ शु० ५, शुक्रवार :

		सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिवस	अंश
विगत सं० १७०२ = १६४५ ई०	ज्येष्ठ अमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(५)	मई	१५	·३८
	५ तिथियों का व्याप्तिकाल	४+१		४	·९२
		१०		२०	·३०
	= मंगलवार, मई २०				
वर्त्तमान सं० १७०२ = १६४४ई०	ज्येष्ठ अमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(१)	मई	१६	·०२
	५ तिथियों का व्याप्तिकाल	४		४	·९२
		५		२०	·९४
	= गुरुवार, मई ३०				

सं० १८०२, ज्येष्ठ शु० ५, शुक्रवार :

विगत सं० १८०२ = १७४५ ई०	ज्येष्ठ अमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल	(१)	मई	१६ ·७२
	५ तिथियों का व्याप्तिकाल	४ + १		४ ·९२
		(६)		२४ ·६४

= शुक्रवार, मई २४

२

पाठ-चक्र

आवश्यक सूचनाएँ

१—प्रस्तुत पाठ-चक्र उन समस्त स्थलों के पाठ-भेद लेकर निर्मित किए गए हैं जिनका समावेश पं० शंभुनारायण चौबे के 'मानस पाठ-भेद' शीर्षक उक्त लेख में हुआ है। केवल उन स्थलों को छोड़ दिया गया है जो लिपि या अक्षर-विन्यास के भेद से भिन्न और अन्यथा अभिन्न हैं; अथवा, जहाँ पर मूल प्रति में पाठ-भेद नहीं है, और चौबे जी ने भूल से, कदाचित् उक्त प्रति की किसी प्रतिलिपि के आधार पर, पाठ-भेद दे दिया है।

२—१६९१/१७०४ की स्थिति की अन्य प्रतियों से भी उन्हीं स्थलों के पाठ-भेद दिए गए हैं जिनका समावेश उपर्युक्त प्रकार से हो सका है। राजापुर की अयोध्या कांड की प्रति १६९१/१७०४ की स्थिति की है—जैसा इन चक्रों को देखने पर ज्ञात होगा—इसलिए अतिरिक्त स्थलों पर के उसके भी पाठ-भेदों का समावेश नहीं किया गया है।[1]

३—कुछ प्रतियों में, जैसा ऊपर हम देख चुके हैं, पाठ-परिवर्तन हुआ है। इन चक्रों में उनके परिवर्तित पाठ मूल में देते हुए पूर्ववर्ती पाठ—जहाँ पर वे किसी भी प्रकार से पढ़े जा सके हैं—पादटिप्पणी में दिए गए हैं। परिवर्तित पाठों में से कुछ तो आदर्श के अनुसार हो सकते हैं, और कुछ अन्यथा। आदर्श के अनुसार होने की आंशिक संभावना के कारण उनको मूल में रक्खा गया है। चौबे जी ने अपने उपर्युक्त लेख में प्रायः परिवर्तित पाठ ही दिए हैं, किन्तु कहीं-कहीं पर पूर्ववर्ती पाठ दे दिये हैं, और फिर भी यह नहीं संकेत किया है कि कौन से पाठ पूर्ववर्ती और कौन से परवर्ती हैं। यही कारण है कि चौबे जी के उक्त लेख के आधार पर प्रतियों का प्रतिलिपि-संबंध नहीं स्थापित किया जा सकता है। इन पाठ-चक्रों में प्रतियों के पाठ-परिवर्तन को पूर्ण रूप से ध्यान में रक्खा गया

---

[1] कहने की आवश्यकता नहीं कि इन अतिरिक्त पाठ-भेदों की अप्रामाणिकता स्वतः प्रमाणित है।

है, और जहाँ तक हो सका है पूर्ववर्ती और परवर्ती पाठों का स्पष्टीकरण कर दिया गया है।

४—यह पाठ-चक्र पाठ-संस्कार-क्रम के अनुसार निर्मित किए गए हैं। क्रम—जैसा हम ऊपर भी देख चुके हैं—इस प्रकार है : १७२१/१७६२→ छक्कनलाल समूह/मिर्ज़ापुर समूह→कोदवराम→१६९१/१७०४ (तथा उक्त स्थिति की अन्य प्रतियाँ)। प्रत्येक समूह में प्रतियाँ अपने लिपि-काल या प्रकाशन-काल के अनुसार क्रम से रक्खी गई हैं; केवल १७६२ की प्रति के विषय में अपवाद किया गया है। १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि है, इसलिए उसे १७२१ के बाद आना चाहिए था। किन्तु १७२१ का पाठ, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, अब १७६२ की अपेक्षा बहुत परिवर्तित है, और यह परिवर्तन संभवत: छक्कनलाल समूह के प्रभाव में किया गया है, जैसा इन चक्रों से विदित होगा, और मूल में परिवर्तित पाठ ही दिया गया है, इस कारण १७२१ को १७६२ तथा छक्कनलाल समूह के बीच में रख दिया गया है।

५—प्रत्येक समूह में आनेवाली प्रत्येक प्रति के लिए एक स्वतंत्र स्तंभ रक्खा गया है, किन्तु मिर्ज़ापुर समूह के लिए, या उसकी प्रतियों के लिए, कोई स्वतन्त्र स्तंभ नहीं रक्खा गया है; उसके पाठ का निर्देश, जहाँ पर वह छक्कनलाल समूह की अंतिम प्रति (५) के पाठ से भिन्न है, तिरछी रेखा देकर (५) के स्तंभ में कर दिया गया है। यह इसलिए किया गया है कि मूलत: छक्कनलाल समूह भी उसी स्थिति का पाठ देता है जिस स्थिति का पाठ मिर्ज़ापुर समूह देता है। दोनों समूहों के पाठों का सविस्तर समावेश इस स्थिति के पाठ को देखने में अनावश्यक प्रमुखता प्रदान कर देता।

६—इन चक्रों में विभिन्न प्रतियों के निर्देश के लिए उन्हीं संकेत-संख्याओं का उपयोग किया गया है जो भूमिका भाग में प्रतियों का परिचय देते हुए दी गई हैं।

कहीं-कहीं पर कुछ संक्षेपों का भी उपयोग किया गया है, किन्तु वे सामान्यत: स्वत: स्पष्ट हैं।

७—इन चक्रों में अस्वीकृत पाठ-भेद पतले टाइप द्वारा अलग किए गए हैं—स्वीकृत प्राथमिक तथा संशोधित पाठ-भेद दोनों सामान्य टाइप में ही दिए गए हैं।

८—जहाँ पर पाठ-भेद शब्दशः नहीं दिए गए हैं, और कुछ अन्य शब्दों द्वारा उनका निर्देश किया गया है, वहाँ इन शब्दों को इटालिक टाइप में दिया गया है।

९—इन चक्रों के साथ आगे आए हुए पाठ-विवेचन वाले अध्ययन का भी पूर्ण रूप से उपयोग किया जा सके, इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है। फलतः यदि किसी स्थल के स्वीकृत पाठ और अस्वीकृत पाठ के विषय में प्रसंग और प्रयोग की दृष्टि से जानना हो, तो उनका पाठ-विवेचन उस कांड के अस्वीकृत पाठ-विवेचन के अंशों में उस प्रति के अन्तर्गत यथास्थान देखना होगा जो पाठ-संस्कार-क्रम में उस अस्वीकृत पाठ वाली अन्य प्रतियों के पहले आती है। और यदि किसी स्वीकृत पाठ और उसके पाठ-सुधार वाले पाठ-भेद के विषय में इसी प्रकार जानना हो तो पाठ-विवेचन उस कांड के पाठ-सुधार वाले अंश में यथास्थल उस प्रति के अन्तर्गत देखना होगा जो पाठ-संस्कार-क्रम में उस पाठ-सुधार वाली अन्य प्रतियों के पहले आती है। इसी प्रकार, पाठ-विवेचन वाले खंड का अध्ययन करते हुए, वाह्य संभावनाओं (Extrinsic probabilities) के ध्यान से यदि कहीं विचार करना हो, तो इन चक्रों का उपयोग किया जा सकता है। उस दशा में स्थल-संकेतों की सहायता मात्र यथेष्ट होगी।

१०—स्वतंत्र पाठ-विवेचन उन्हीं पाठ-भेदों का नहीं किया गया है जिनके आगे कोष्ठकों में किसी प्रति की संकेत-संख्याएं दी हैं। यह इसलिए किया गया है कि वे कोई स्वतंत्र पाठ नहीं प्रस्तुत करते, बल्कि केवल लिपिभ्रम या इसी प्रकार के किसी अन्य कारण से उनका पाठ कुछ भिन्न लगता है।

बाल कांड

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-२-१	मृदुमंजुलरज	२	रज मृदु मंजुल	३	३	३	×	३	३
१-२-५	साधु चरित सुभ चरित[१]	२	२	२	२	साधु चरित सुभ सरिस	×	साधु सरिस सुभ चरित (७)	६
१-२-११	साज	२	२[२]	राज	४/२	४	×	२	४
१-३-९	परस	२	परसि	२	२	३	×	२	३
१-४-१	दाहिनेहु	२	२	२	२	२	×	दाहिनहु	दाहिने(२)
१-५-२	कबहिं	२	२[३]	कबहुं	४	४	४	४	४
१-५-३	असज्जन	२	२	२	सं	तन	२	२	७
१-६-८	कर्मनासा	कविनासा[४]	१	१	१/२	क्रमनास'(२)	७[५]	१	७
१-६-८	मालव	२	२	२	२	२	मारव	६अ	२
१-६	ग्रहहिं	२	२	गहहिं	४	४	४	४	४
१-७	पोषक सोषक	२	२[६]	सोषक पोषक	२	२	४	४	२

१—(१) में पूर्व का पाठ दूसरे 'चरित' के स्थान पर 'सरिस' था, उस पर हरताल लगाकर 'चरित' बनाया गया है, और (२) में संशोधित पाठ प्रतिलिपि हुआ है।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'राज' था।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'कबहुं' था।

४—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

५—(६अ) में पूर्व पाठ 'कविनासा' था।

६—(३) पूर्व का पाठ में 'सोषक पोषक' था।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-८-१४ सकृति	सकृत^{1}	१	१	१	सुकृत	१	१	७
१-८ जन	२	२	२	२	सब	७	७	२
१-९-२ गादुर^{2}	२	२	२	दादुर/२	५	५^{3}	२	५
१-९-८ चतुर	२	२	२	२	२	बचन	६अ	६अ
१-९-११ कागर	कागद^{4}	१^{5}	१	१	१	१^{6}	२	१
१-१०/२ ग्राम्य	२	२^{7}	ग्राम	४	२	२	२	ज्ञान
१-११-७ लगति	२	२	२	२	२	लगत	६अ	लागि
१-१२-४ धंधक	२	२	२	२	२	२	प्रधंक	२
१-१२-६ थोरेहि	२	२^{8}	थोरे	४	४	४	४	२
१-१२-७ बिनती अब	२	२^{9}	२	२	२/बिधि बिनती	बिधि बिनती	७	७

१—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था, उसको हरताल लगाकर 'सकृत' बनाया गया। (२) में पूर्व का पाठ अब भी है।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'दादुर' था, उसको हरताल लगाकर 'गादुर' बनाया गया है, और (२) में यही संशोधित पाठ उतरा।

३—(६अ) में पूर्व का पाठ 'गादुर' था।

४—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था, उसको हरताल लगाकर 'कागद' बनाया गया है, (२) में पूर्व का पाठ अब भी है।

५—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का ही था।

६—(६अ) में भी पूर्व का पाठ 'कागर' ही था।

७—(३) में पूर्व पाठ 'ग्राम' था।

८—(३) में पूर्व का पाठ 'थोरे' मात्र था।

९—(२) में पूर्व का पाठ 'बिधि बिनती' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-१२-८	जे असंका	२	२	जे संका	४/२	४	ते असंका	६अ	६अ
१-१२-८	ते[1]	२	२	२	२	२	जे	६अ	२
१-१३-६	जेहिं करुना	२	२	२	२	तेहि करुना	२	२	२
१-१३-१०	सुलभ	२	सुगम	३	३	३	३	३	३
१-१४-६	छल	२	२	२	२	सब	७	७	२
१-१४	कहौं निहोरि	२	२	कहहुं निहोर	४/२	करउं निहोर	७	७	७
१-१५-७	होउ[2]	२	सो	सोउ (३)	४	३	३	३	३
१-१५-७	महेस	२	२	२	२	उमेस	७	७	२
१-१५-७	करहु[3]	२	करउ (२)	३	३	३	करिहिं	६अ	करहि (६अ)
१-१७	ज्ञानघर	२	२[4]	ज्ञानघन	४	४	४	४	४
१-१८	देखिअत	२	२	२	२	२	कहिअत	६अ	६अ
१-१९-५	प्रभाऊ	२	प्रतापू	२	३	३	३	३	३
१-१९-५	कहि उलटा नाऊ	२	करि उलटा जापू	३	३	३	३	३	३

१—(१) में पूर्व का पाठ 'जे' था, उस को हरताल लगाकर 'ते' बनाया गया, और (२) में वही संशोधित पाठ उतरा।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'सोउ' था, उसको हरताल लगाकर 'होउ' बना दिया गया और (२) में संशोधित पाठ उतरा।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'करहिं' था, उसको हरताल लगाकर 'करहु' बनाया गया, और (२) में वही संशोधित पाठ उतरा।

४—(३) में पूर्व का पाठ 'ज्ञान घन' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२०-३	समुम्नत	२	२	२	२	२	सुमिरत	६अ	६अ
१-२०-४	इव	२	२	२	२	सम	७	७	७
१-२०-८	कंज मंजु	२	२[1]	मंजु कंज	२/४	४	४	४	४
१-२०	बिराजित	२	२[2]	बिराजत	४	४	४	४	४
१-२१	बाहरौ	२	२	२	बाहेरौ/२	आहिरउ	बाहेरहुं (२)	बाहरहुं (२)	२
१-२२-३	जानी	२	२	२	जाना/२	५	५[3]	२	२
१-२२-३	जानहिं	२	२	२	२	२	जानहु	६अ	जानत
१-२२-४	लौ	२	२[4]	लय	४	४	४	४	४
१-२२	पेम	२	२[5]	प्रेम	४	४	सुप्रेम	२	प्रभाव
१-२३-२	हमरें	२	२[6]	मोरें	४/२	४	४	४	४
१-२३-३	प्रौढ़ि	२	प्रौढ़[7]	३	३	२	३[8]	२	३
१-२५-५	सकल कुल	२	२[9]	सकुल रन	४	४	४	४	२
१-२६-२	साधु	२	२	२	२	२	सिद्ध	६अ	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'मंजु कंज' था।
२—(३) में पूर्व का पाठ 'बिराजत' था।
३—(६अ) में पूर्व का पाठ 'ज.नी' था।
४—(३) में पूर्व का पाठ 'ल4' था।
५—(३) में पूर्व का पाठ 'प्रेम' था।
६—(३) में पूर्व का पाठ 'मोरें' था।
७—(३) में पूर्व का पाठ 'प्रौढ़ि' था।
८—(६अ) में भी पूर्व का पाठ 'प्रौढ़ि' था।
९—(३) में पूर्व का पाठ 'सकुल रन' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२६-५	थापेउ	२	पाएउ	३	३	३	३	३	३
१-२६-७	अपतु	२	२	२	२	२	२	अपरु	६
१-२६	भयो	२	२	२	२	भय	२	२	७
१-२७-३	परितोषन	२	२	२	२	परितोषत	७	७	परितोषक
१-२७-५	सकल समन जंजाला	२	२[१]	समन सकल जगजाला	४	सुखद सुलभ सब काला	४	४	४
१-२८-११	मन	२	२	२	२	२	मति	६अ	६अ
१-२९-३	भोरि	२	२[२]	मोरि	२	४	४	२	४
१-२९-८	रामसभां	राजसभां[३]	१	१	१	१	१	२[४]	१
१-२९/१	कहीं न	२	२	२	२/कहूं न (२)	कहूं न (२)	७	७	कहां
१-३०-६	सबदरसी	२	२[५]	समदरसी	२	४	२	२	२
१-३२-१२	धन	२	२	२	२	२	२	धर	२
१-३४-२	प्रनवों	२	२	२	२	बिनवौं	७	७	७
१-३७-३	बिमल	२	बीचि	३	३	३	३	बीच	३
१-३७-१३	दम	२	२	२	२	द्रुम	७[६]	२	७

१—(२) में पूर्व का पाठ 'जगजाला' था।

२—(३) पूव का पाठ 'मोरि' था।

३—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

४—(६अ) में पूर्व का पाठ 'रामसभां' था।

५—(३) में पूर्व का पाठ 'समदरसी' था।

६—(६अ) में पूर्व का पाठ 'दम' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-३७-१४	समजम	२	२	२	२	संजम	२	२	समदम(२)
१-३७-१४	नियम	२	२[1]	मने	४	२	२	२	४
१-३७-१४	रतिरस	२	२	२	२	२	रसबर	६अ	२
१-३९-६	मज्जन सर	२	२	२	२	•सर मज्जनु	७	७	सरि मज्जन (७)
१-३९-७	चाऊ	२	२[2]	२	भाऊ/२	५	५	५	५
१-३९-११	सो, सो	२	२	२	२	सी, सी	२	२	७
१-४१-४	सुबंध (सुबद्ध)	२	२[3]	सुबंध	४/२	२	सुबद्ध(२)	६अ	२
१-४१-७	जुरेउ	२	२	२	२	२	जुरे	६अ	६अ
१-४१	खल अघ	२	२	२	२/अघ खल	२	अघ खल	६अ	६अ
१-४३-१	न खोरी	२	२	२	२	न थोरी	२	×	बहोरी
१-४६-८	भएं	२	भएउ	३	३	३	३	३	३
१-४७-१	मोह	२	२	२	२	२	मोर	६अ	६अ
१-४८/१	गुपुत	२	२[4]	गुप्त	४	२	४	४	४
१-४९-६	प्रभु	२	२	२	२	२	हरि	६अ	२
१-४९-७	इव नर	२	नर इव[5]	३	३	३	३	३	३
१-४९-८	दुसह	२	२	२	२	२	बिरह	६अ	६अ

१—(३) में पूर्व का पाठ 'नेम' था।
२—(३) में पूर्व का पाठ 'भाऊ' था।
३—(३) में पूर्व का पाठ 'सुबंधु' था।
४—(३) में पूर्व का पाठ 'गुप्त' था।
५—(३) में पूर्व का पाठ 'इव नर' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-५०-१	तेहि हरषु	२	अति हरषु	३	३	३	३	३	३
१-५०-६	नावहिं	२	२	२	२	२	नावत	६अ	२
१-५१-६	तन	२	२	उर	२	मन	४	४	४
१-५२-४	करइ	२	२	२	२	२	करहि	६अ	२
१-५२-५	इहां	२	२	२	२	उहां	२	२	२
१-५२-८	जपन लगे	२	२	२	२	२	लगे जंपन	६अ	६अ
१-५३-७	हरि	२	२	निज	२/४	४	४	४	४
१-५६-१	प्रभु	२	२	२	२	सिव	७	७	७
१-५६	प्रेम तजि जाइ नहिं	२	२	२	२ प्रेम नहिं जाइ तजि(२)		पुनीतन जाइ तजि	६अ	७
१-५७	होत...ही	२	२[1]	होइ...ही (२)	४/२	४	होइ....पुनि	६अ	४
१-६१	कृपा अयन	२	२[2]	कृपायतन	४	४	४	४	४
१-६२-८	हमारेंह	२	२	२	२/हमारें	२	हमारें	६अ	६अ
१-६३-६	अस हृदय न	२	२	२	२	२	न हृदय अस	हृदय न अस	६अ
१-६४-४	काटिअ	काढ़िअ[3]	१	१	१	२	२	२	२
१-६६-२	जीवन्ह	२	जीवन (२)	३	३	२	२	जीवइ	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'होत ही' था।
२—(३) में पूर्व का पाठ 'कृपायतन' था।
३—(१) में पूर्व का पाठ 'काटिअ' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-६६-६	तब	२	२[१]	बर	४/२	४	४	४	४
१-६६-७	सबु	तब[२]	२	२	२	२	२	२	२
१-६६-८	विधि	२	२	२	२	२	गिरि	६अ	२
१-६७-६	त्रिय	२	२[३]	तिय	४/२	४	२	२	४
१-६८-५	भा मन	२	२	२	२/मन भा	मन भा	७	७	२
१-६९-५	कर	२	कहुं	३	३/२	३	२	२	२
१-६९-८	को	२	२	२	२/कहं	कहं	कहुं (७)	६अ	६अ
१-६९	ऐसहिं इसिखा करहिं नर	२	अस हिसिखा करहिं नर जड़	३	३	३	३	३	३
१-७०	अब कल्यान सब	२	२	२	२	एहि कल्यान अब	७	७	७
१-७१-२	बूझे	२	२[४]	समुझे	४	समुझउं	४	४	४
१-७१	अब	२	२[५]	सब	४/२	४	४	४	४
१-७१	पारबती	२	२[६]	पारबतिहि	४/२	२	४	४	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'बर' था।

२—(१) में शब्द छूटा हुआ था, बाद में हाशिए में कुछ बनाया गया, किंतु इस समय उस पर हरताल लगा है।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'तिय' था।

४—(२) में पूर्व का पाठ 'समुझे' था।

५—(३) में पूर्व का पाठ 'सब' था।

६—(३) में पूर्व का पाठ 'पारबतिहि' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-७२-४	सब	२	२[1]	तुम्ह	४/२	४	४	४	४
१-७३-८	भए ३	२	भए	३	३/२	३	३	३	३
१-७४-६	बेलपाति[2]	२	२	२	२/बेलपात	बेलपात (२)	बेलवाती	६अ	२
१-७५-४	मिलहिं जबहिं अब	२	२	मिलहिं तुम्हहिं जब	४/२	४	४	४	४
१-७५	मान	काम[3]	१	१	१	१	२	२	१
१-७७-३	प्रभु गुर	२	२[4]	गुर प्रभु	४/२	४	४	४	२
१-७७	जाइ	२	२[5]	प्रेरि	४/२	४	४	४	४
१-७७	पठएहु	२	२[6]	पठवहु	४/२	४	४	४	२
१-७८-३	सब	२	२[7]	किन	४/२	२	×	×	तुम्ह
१-७८-४	[अर्द्धाली है]	२	२	२	२	२	२[8]	२[8]	२
१-७८-७	सत्य हम	२	२	२	२	सत्त सोइ	सत्य सोइ (७)	६अ	७
१-७८-८	सिवहि सदा	२	२[9]	सदासिवहि	४/२	२	४	४	४
१-८०-४	बचन कह बिहसि	२	२	२	२	बिहसि कह बचन	७	७	७

१—(३) में पूर्व का पाठ 'तुम्ह' था।
२—(१) तथा (२) दोनों में पूर्व का पाठ 'बेलवाति' था।
३—(१) में पूर्व का पाठ 'मान' था।
४—(३) में पूर्व का पाठ 'गुर प्रभु' था।
५—(३) में पूर्व का पाठ 'प्रेरि' था।
६—(३) में पूर्व का पाठ 'पठवहु' था।
७—(३) में पूर्व का पाठ 'किन' था।
८—पूर्व के पाठ में पूरी अर्द्धाली तथा आगे-पीछे के दो-दो शब्द दोनों में छूटे हुए थे; बाद में वे बनाये गये था।
९—(३) में पूर्व का पाठ 'सदासिवहिं' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-८१-२	सैं	२	२	२	२	हित	७	७	७
१-८१-५	रगरि	२	२	२	२	२	२	रगर	६
१-८२-६	तेहिं	२	२	२	२	ते	तेइ	×	६अ
१-८२-८	पहिं	२	२	२	२	सन	७	×	७
१-८३-८	अस	२	२	२	२	२	अति	×	२
१-८४-२	जे	२	२	२	२	जो	७	×	७
१-८४-३	लेत	२	२	२	२	सहित	७	×	७
१-८६-६	जाति	सखा[1]	१	१	१	२	राजि	×	राज (६अ)
१-९१-६	तिन्ह दीन्ही	२	२	२	२/तिन्ह दीन्हि सो	तिन्ह दीन्हि सो	७	×	दीन्हे सो
१-९१-७	अस	बिधि[2]	१	१	१	अज	७	×	२
१-९१-७	मुनि सब	२	२	२	२	मुनिबर	२	×	२
१-९१	सुभद	२	सुभग	३	३	सुखद	२	×	३
१-९४-५	सहित समाज	२	२	२	२	सकल समाज	२	×	२
१-९४-६	गए सकल तुहिनाचल	२	२	२	गए सकल तु हिमाचल	२	२	×	गवने सकल हिमाचल

१—(१) में भी पूर्व का पाठ 'जाति' था।

२—(१) में पूर्व में कोई अन्य शब्द था, उसके स्थान पर 'बिधि' बनाया गया है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-९५-२	सजि	२	२	२	२	२	सब	×	२
१-९५-८	बरद	२	२	२	२	२	बसह	×	६अ
१-९६-४	अबलन्ह	२	अबलन (२)	३	३/अबलन्हि	अबलन्हि	२	×	अबल
१-९७-१	काह	२	कहा[1]	२	२	२	२	×	२
१-१००-८	कोटिबहु	कोटिहु[2]	१	१	१	१	१	×	१
१-१०१	प्रिय	२	२	२	२/सम	२	सम	×	२
१-१०२-४	भरे	२	२	भर	भरि	५	२	×	५
१-१०२-छं०	भवनहिं	२	भवन	२	३	२	३	३	३
१-१०२-छं०	जब	२	२	२	२/तब	२	तब	×	६अ
१-१०३-७	जब जनमेउ	२	तब जनमेउ	तब जनमे	४/२	४	३	३	३
१-१०३-छं०	कइहिं	२	२	२	सुनहिं/२	५	२	२	२
१-१०४-२	नयनन्हि	२	२[3]	नयन	४	४	२	४	४
१-१०७-५	मन मानी	मन माहीं[4]	१	अनुमानी	१	४	४	४	४
१-१०८-५	मृदु बानी	हर पाहीं[4]	१	प्रियबानी	१	२	४	४	२
१-११०-१	अनअधिकारी	२	२	२	२	२	नहिं अधिकारी	६अ	६अ

१—(३) में पूर्व का पाठ 'काह' ही था।
२—(१) में भी पूर्व का पाठ 'कोटिबहु' था।
३—(३) में पूर्व का पाठ 'नयन' था।
४—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-१११-६	कै	२	कर[१]	३	३/२	३	२	२	२
१-११२-६	उपकारी	२	अधिकारी	३	३	२	२	२	२
१-११२	पारबति	हिमसुता[२]	१	१	१	२	२	२	२
१-११५-३	जिन्हहिं न	२	२	२	२	२	जिन्ह कें	६अ	६अ
१-११९-२	बस	सब[३]	१	१	१	१	१[४]	२	२
१-१२०-३	भइउं प्रभु	२	भइउं अब	२	२	२	भएउं प्रभु	६अ	२
१-१२१-१	सुहाए, गाये	२	सुहावा, गावा	३	३	३	२	२	२
१-१२४-१	दीन्ह	कीन्ह[५]	१	१	१	१	१[६]	२	१
१-१२६-३	जगावनि	२	बढ़ावनि	३	३	३	३	३	३
१-१२६	कहि सुठि आरत मृदु	२	२	२	२	२	तब कहि सुठि आरत (२)	२	तब कहि सुभ आरत
१-१२७-८	सुनावहु	सुनायहु[८]	१	१	१	१	२	२	१

१—(३) में पूर्व का पाठ 'कइ' था।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'पारबति' था।

३—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

४—(६अ) में भी पूर्व का पाठ 'बस' था।

५—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

६—(६अ) में भी पूर्व का पाठ 'दीन्ह' था।

७—(६अ) में 'आरत' और 'बैन' के बीच शब्द छूटा हुआ था, उसको न बनाकर 'कहि' के पूर्व 'तब' बनाया गया है।

८—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, बा०)
१-१२८-५	मिले उठि	२	उठे प्रभु	३	३	२	२	२	उठे हरि (३)
१-१३०-४	जिसु	२	२[1]	जेहि	४/तेहि	२	२	२	२
१ १३०-७	सब	२	२	२	२	सन	२	२	२
१-१३१-८	तेहि	२	येहि[2]	२	२	३	२	२	३
१-१३१-८	हैं	हे[3]	१[4]	१	१	१	२	२	१
१-१३४-३	कूटि	२	२	२	कूट	५	२	२	२
१-१४०-३	तब तब कथा मुनीसन्ह गाई	२	२	२	२	तब तब कथा बिचित्र सुहाई	२	२	२
१-१४०-३	परम पुनीत प्रबंध बनाई	२	परमबिचित्र प्रबंध बनाई	३	३	परमपुनीत मुनी सन्ह गाई	२	२	२
१-१४२-८	सब	बहु[5]	१	१	१	२	२	२	२
१-१४३-१	तब	नृप[6]	पुनि	३	३/१	१	२	२	१
१-१४३-८	संत	सत[7]	१	२	१	१	१	१	१
१-१४४-५	निजानंद	२	२	चिदानंद	२	२	२	२	२
१-१४५-६	धुनि	२	२	२	२	बर	७	७	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'जेहि' था।
२—(३) में पूर्व का पाठ 'तेहि' था।
३—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।
४—(३) में भी पूर्व का पाठ 'हैं' था।
५—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।
६—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।
७—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-१४९-१	बोलीं	बोले[1]	१	१	१	१	१	१	१
१-१५०-५	भगति	भगत[2]	१	१	१	१	२	२	×
१-१५१-१	बच	२	बर	३	३	३	३[3]	२	३
१-१५१-६	मिति	२	२	तिमि	४/२	४	२	२	४
१-१६२-६	बग	२	२	बक	४	४	२	२	४
१-१६३	बिचारि	२	२	२	२	देखि	२	२	जानि
१-१६५-५	चलै	२	चल	३	३	३	३	३	३
१-१६८-३	क्रम	२	२	२	२	२	तन	६अ	२
१-१६८-४	जप	२	२	२	२	तप	७	७	जो (२)
१-१७६-८	जाइ	जाहि[4]	१	१	१	२	२	×	१
१-१७९-८	बार	२	२	२	बेर/२	२	२	२	२
१ १७९-८	पर	२	२	कहुं	२	२	२/[5]	२/[5]	२
१-१८२-५	स्रवत	२	२	२	२	स्रवहिं	७	७	७
१-१८२-८	पचारी	२	प्रचारी	३	३	३	२	३	३

१—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

२—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

३—(६अ) में पूर्व का पाठ 'बच' था।

४—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

५—(६) तथा (६अ) में शब्द छूटा हुआ था, बाद में ठीक किया गया है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा)
१-१८३-१	पहिलेहिं	२	पहिले[१]	२	२	२	२	२	२
१-१८४-३	सब	२	सम	३	३	३	२	२	३
१-१८४-४	हानी	२	ग्लानी[२]	२	२	२	३	३	२
१-१८४	लोक, सोक	लोका, सोका[३]	१	१	१	१	१[४]	२	१
१-१८६-छं०	[प्रायःह्रस्वतुक]	[दीर्घतुक][५]	१	१	१	१	१[६]	२	१
१-१८६	गंजन	२	२	२	२	२	२[७]	खंडन	२
१-१८७	धरि धरि महि	२	२	धरि धरनि महुं	धरि धरि धरनि/२	५	४	४	२
१-१८८-५	भरि	महि[८]	१	१	१	२	२	२	२
१-१८८-५	रुचि	२	रचि	३	२/३	३	३	३	२
१-१९४-२	सब लोई	२	नर लोई	सब कोई	४/३	४	२	२	४

१—(३) में पूर्व का पाठ 'पहिलेहिं' था।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'हानी' था।

३—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

४—(६अ) में पूर्व का पाठ ह्रस्वांत था, पीछे उसे विराम की पाई मिलाकर दीर्घांत बनाया गया।

५—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

६—(६अ) में पूर्व का पाठ ह्रस्वांत था, पीछे उसे विराम की पाई मिलाकर दीर्घांत बनाथा गया।

७— शब्द छूट गया था, पीछे वह बनाया गया है।

८—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-१९४	प्रगटेउ प्रभु सुखकंद	२	प्रभु प्रगटे सुखकंद	३	३	२	प्रगटेउ सुषमाकंद[1]	प्रगटेउ सुखकंद	प्रगट भए सुखकंद
१-१९६-५	मगन मन[2]	२	सकल रस	३	२/३	३	२	२	२
१-२०३	भाजि	२	भागि	३	३	२	२	२	२
१-२०३	किलकत	२	२	२	किलकात	५	२	२	२
१-२०६-७	एहूं मिस दखौं पद	२	२[3]	एहि मिस मैं देखौं पद	४	यहि मिसु देखौं प्रभु पद	२	२	४
१-२०७	तुम्ह कौं	२	२[4]	तुम्ह कहुं	४	४	२	२	४
१-२०८-५	प्रिय	प्रिय मोहिं[5]	१	१	१/प्रिय मम मोहिं	प्रिय(१)	२	२	प्रिया (२)
१-२०९-४	निति	२	२	हित	२	४	२	२	२
१-२१०-५	जारा	२	२	२	२/मारा	२	मारा	६अ	२

१—(६अ) में 'प्रगटेउ' और 'सुख' के बीच का शब्द छूटा हुआ था, उसको न बनाकर 'सुष' के बाद 'मा' बढ़ाया गया है।

२—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था। उस पर हरताल लगाकर 'मगन मन' बनाया गया और (२) में यह संशोधित पाठ ही उतरा।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'एहि मिस मैं देखौं पद' था।

४—(३) में पूर्व का पाठ 'तुम्ह कहि' था।

५—(१) में पूर्व का पाठ 'प्रिय' मात्र था, 'मोहिं' बाद को हाशिए में बढ़ाया गया है, और आगे का 'कौं' अब भी दीर्घ है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२१०-१०	कहं	सुनि[1]	१	१	१/करि	१	१	करि	६
१-२११	तेहि	२	२	ताहि	४	४	२	२	४
१-२१३-२	जनुबिधि स्वकर	२	बिधि जनु स्वकर	३	३	२	३	३	बिधि निज हाथ
१-२१६	जिते	२	२	२	२	जीति	२	२	७
१-२२६-५	कमल	पदुम[2]	१	१	१	१	२	२	१
१-२२९-१	दुइ	२	दोउ	३	३	३	२	२	२
१-२२९-४	तेइ	२	२	२	२	सोइ	२	२	ते (२)
१-२३१-४	सुभद	२	सुभग	३	३	३	२	२	२
१-२३१-५	मन कुपंथपग धरै न काऊ	२	भूलि न देहिं कुमारग पाऊ	३	३	२	२	२	२
१-२३१-७	पावहि	२	२	लावहि	२	४	२	२	४
१-२३२-१	चिंता	२	२	२	२	चीता	२	२	७
१-२३३-१	जलजात	२	२	२	२	२	जलजाभ	६अ	२
१-२३३-२	मोरपंख	२	२	काकपच्छ	२	४	२	२	४
१-२३३-२	गुच्छबीचबिच	२	गुच्छे बिचबिच	३	३	३	२	२	३

१—(१) में पूर्व का पाठ 'कहं' ही था।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'कमल' ही था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२३४-५	भए	भएउ[1]	१	१	१	१	२	×	१
१-२३४-६	बेरिआं	२	२[2]	विरिआं	४/२	४	२	×	२
१-२३५-२	गुन	२	कै	३	३	२	२	×	३
१-२३५-३	चित्त भीती	२	चित्र भीतर	३	३/चित्त भीतर(३)	२	२	×	चित्त भीतर (३)
१-२३५-७	अंत	२	२[3]	मध्य	४	४	२	×	२
१-२३६-१	बरदायनी पुरारि	२	२	२	२	बरदायिनि त्रिपुरारि	२	×	७
१-२३६-४	गहे	२	२	२	२	गही	२	×	७
१-२३६-६	भरेऊ	२	२	२	२	२	भयऊ	×	२
१-२३६-छं०	सांवरो, रावरो	२	२	२	२	२	सांवरे, रावरे	×	२
१-२४२-३	जाति	२	जाइ	३	३/जात	३	३	×	३
१-२४२-६	भायं	२	२	भाव	२	४	२	×	४
१-२४४-३	चलत न तारे	२	२[4]	चलत न टारे	टरैं न टारे	टरत न टारे (५)	२	×	५
१-२४५-८	अवर महिप	२	२	२	२	अपर भूप	२	×	२

१—(१) में पूर्व का पाठ 'भए' ही था।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'बरिआ' था।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'मध्य' था।

४—(३) में पूर्व का पाठ 'चलत न टारे' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२४६-१	बताईं	२	२	बुताईं	२	४	२	×	न जाईं
१-२४७-३	सिय बरनिअ तेइ	२	२	२	२	सीय बरनि तेइ	२	×	सियहि बानि जेहिं
१-२४८	लागि	२	२	२	२	लगी	२	×	७
१-२४९-१	देखें, निमेखें	२	२	२	२	देखी, निमेखी	२	×	७
१-२५०-७	ताकि	२	२	२	२	तमकि	२	×	७
१-२५०	उठै	२	२	२	२	२	उठे	×	२
१-२५२-२	सके छड़ाईं	२	सकेउ छंड़ाईं[1]	३	३	२	२	×	काहुं छड़ाईं
१-२५३-५	जिमि	२	इव	३	३	२	२	×	३
१-२५३-६	को	२	२	का	४	४	२	×	४
१-२५४-१	जब	२	२	२	२	२	जे	×	२
१-२५४-८	सुभाएं	२	२	२	२	सुहाए	२	×	२
१-२५५-७	सुर	२	२	२	२	२	सब	×	२
१-२५६-५	कछुजाति न	२	कछु जाइ न	३	३	२	कहि जाति न	×	२
१-२५७-३	बढ़ी अति	२	भईमन	३	३/भई अति	२	२	×	२
१-२५७-७	कीन्हेउं	२	कीन्हिउं	३	३/२	३	३	×	कीन्ह

१—(३) में पूर्व का पाठ 'सके छंड़ाईं' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२५७-७	तुअ	२	२	तव	२	२	२	×	४
१-२५८-८	सय	२	सत	३	३	३	२	×	सम
१-२५८	चितइ पुनि	२	चितव पुनि	३	३	२	२	×	चितइ पुनि
१-२५९-४	चितु	२	२	मन	४	४	२	×	४
१-२५९-७	पन	२	२	२	२	२	तन	×	प्रन (२)
१-२५९-८	गरुरु	२	२	गरुड़	४	४	२	×	४
१-२६१-१	बिपुल बिकल	२	बिकल अतिहि	३	३	२	२	×	२
१-२६१-३	सब	२	२	२	जब/२	५	२	×	जौ (५)
१-२६१-६	नभ धनु	२	२	धनु नभ	४/२	४	२	×	२
१-२६१	बूड़ सो	२	बूड़ा	३	बूड़े/बूड़ेउ	५	२	×	५
१-२६१	चढ़ा	२	२	२	चढ़े/चढ़ेउ	५	२	×	५
१-२६३-१	दुंदुभी सुहाई	२	२	२	२	दुंदुभी बजाई	२	×	२
१-२६३-३	अति	२	२	२	२	२	सब	×	६अ
१-२६३-८	दीन्ही,कीन्ही	२	२	दीन्हा, कीन्हा	४	२	४	×	४
१-२६५-३	कुसुमांजलि	१	कुसुमाविल	३	३	२	२	×	३
१-२६५-५	नाक	ब्योम[१]	१	१	१	२	२	×	नभमहं

१—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२६५-७	सोहति	२	२	२	२	सोहत	२	×	२
१-२६६	कोहु	२	२[1]	मोहु	४	४	२	×	४
१-२६७-३	लोभ लोलुप कल	२	२[2]	लोभी लोलुप	४	४	४[3]	×	४
१-२६७-४	परां गति सुगति जिमि[4]		१	१	१/परम गति	परम गति (२)	७[5]	×	परम पद
१-२६७	किसोरहि	२	२	२	२	२	किसोरहु	×	२
१-२६८-१	पुरनारीं	२	नरनारी	३	३	३	२	×	३
१-२६८-७	जनेउ माल	२	जनेऊ कटि	३	३/२	२	२	×	२
१-२६९-३	आइ	२	२	आयु	२	४	२	×	२
१-२७०-२	फिरि	२	२	२	२	तब	२	×	२
१-२७०-३	कैं	२	२	२	२/केहि	को	२	×	केइ
१-२७०-७	अब संवरी	२	संवारि सब	३	३	२	अब सबरी(२)	×	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'मोह' था।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'लोभी लोलुप' था।

३—(६अ) में पूर्व का पाठ 'लोभ लोलुप कल' था।

४—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

५—(६अ) में पूर्व का पाठ 'पर गति' था, 'र' के आगे 'म' पीछे से बढ़ाया गया है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२७२-२	नए	२	२	२	२/नयन	२	नयन	×	२
१-२७२-५	जानहि	२	२	२	जानेहि/२	२	२	×	जानेसि
१-२७२	करसि	२	करहि	३	३	२	२	×	२
१-२७२	महीस	२	महीप	३	३	३	३	×	न भूप
१-२७४	करहिं प्रलापु	२	२	२	२	२	कथहिं प्रतापु	×	२
१-२७५-६	कर	२	२	२	२	२	खर	×	२
१-२७५-६	अकारुन	अकरन[1]	१	१	१	अकरुन	७	×	१
१-२७५	गाधिसूनु	२	२	२	२	गाधिसुवन	२	×	७
१-२७५	हरिअरेइ	२	हरियरइ	२	३	३	३	×	३
१-२७५	खांड	२	२	खंड	२	२	२	×	४
१-२७७	चरहिं	होहिं[2]	१	१	१	परहिं	२	×	जेन्है
१-२७८	सकुचि	२	बहुरि	३	३	२	२	×	२
१-२७९-६	करौं	२	२	२	२	करिय	२	×	करहु
१-२८१-६	संका सबकाहू	२	२	२	२	२	सब बंदै काहू	×	२
१-२८१	बालकहूं	२	२	२	२	२	बालक	×	२
१-२८३-४	जग	२	२	२	२	२	जप	×	२

१—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

२—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२८४	अमात	२	समात	३	३	२	२	×	३
१-२८५-५	काह	२	२[1]	कहा	४	२	२	×	२
१-२८५-६	बहुत	२	२	२	२	२	बचन	×	२
१-२८५	मिटी	२	२	२	२	मिटा	२	×	७
१-२८८-१	सपरव	२	२[2]	सपरन	२	४	२	×	सपत्र
१-२८९-७	लाग	२	२	२	२	२	लगत	×	२
१-२९०-७	दोउ[3]	हित	१	२	२	लघु	१	×	२
१-२९१	जाके	२	२	२	२	जिन्हके	७	×	२
१-२९२-७	सुरासुर	सरासुर[4]	१	२	१	२	२	×	सरासर(१)
१-२९४-१	गुर	२	२	२	२	२	२	मुनि	२
१-२९६-३	भरा	२	भएउ	३	३/भरेउ	भरेउ	२	२	७
१-२९७-२	बालक	सावक[5]	१	१	१	१	१[6]	२	२
१-२९८-४	रचि रुचि	२	२	रचिरचि	२	४	२	२	४

१—(३) में पूर्व का पाठ 'कहा' था।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'सपरन' था।

३—(२) में शब्द छूटा हुआ था, बाद में तथा अन्य व्यक्ति द्वारा बढ़ाया गया है।

४—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।

५—(१) में पूर्व का पाठ (२) का था।

६—(६अ) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२९८-७	सरिस बय	२	२	सरिस सब	२	४	२	२	४
१-२९९-५	सांवकरन	२	२	२	स्यामकरन/२	५	२	२	५
१-३०१-१	हिंसहिं	२	हिंस	३	३	३	३	×	३
१-३०२-७	जाहीं, फहराहीं	२	२	२	२	जाई, फहराई	२	×	७
१-३०२-७	पाइक	२	२	पायक	४	४	२	×	४
१-३०५-१	कल	२	२	२	२	२	भरि	६अ	२
१-३०५-८	बराती	२	२	२	२/बरातिन्ह	बरातिन्ह	७	७	७
१-३०७	उठे	२	२	२	२	उठेउ	७	७	२
१-३१२-३	गेह	२	२	२	२	भवन	७	७	२
१-३१२-८	अपर	२	२	२	२/भए	विप्र	आहि	६अ	२
१-३१५-५	सुर	२	२	२	२	सुख	७	७	२
१-३१५-७	कनक बर जोरी	कनकबरन तन जोरी[1]	१	१	१	कनक बरन बरजोरी	७	७	७
१-३१६-२	मंगलमय सब	२	२	२	२	२	मंगल सब सब	२	२
१-३१६	जराव	२	२	२	२	जड़ाव	२	२	२

१—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था, उसको पीछे 'कनक बरन तन जोरी' बनाया गया।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बाँ०)
१-३१६	चालि	२	२	२	बाजि	५	५[1]	२	५
१-३१९-२	आचारू, ब्यवहारू	२	२	२	२	ब्यवहारू, आचारू	ब्यवहारू, ब्यवहारू	×	ब्योहारू, बिस्तारू
१-३१९-३	धुनि	२	२	२	सुनि/२	२	२	२	२
१-३२२-६	पहिचानि	२	पहिचान	३	२	३	२	२	३
१-३२२-६	प्रान	२	२	२	२	२	प्रानहु	६अ	२
१-३२२	सत्त	सत[2]	१	१	१	१	२	२	१
१-३२३	लिए	२	२	२	२	२	लिएहि	६अ	२
१-३२५-२,३	[चौपाई]	२	२	२	२	२	[नहीं है[3]]	६अ	२
१-३२५-छं०	जनक	२	२	२	२	२	तनय	६अ	२
१-३२६-छं०	करुनामई	२	२	२	२	२	करुनानई	६अ	२
१-३२६-छं०	दइ	२	२	२	२	कई	७	७	२
१-३२७-छं०	देखिप्रतिमूरति	२	२	२	२	२	देखियति मूरति	२	२
१-३२८-७	सूपकारी	२	सूपकारक	३	२	२	२	२	२

१—(६अ) में पूर्व का पाठ 'चाल' था।
२—(१) में पूर्व का पाठ 'सत्त' ही था।
३—(६अ) के पूर्ववर्ती पाठ में यह चौपाई नहीं है, बाद में बनाई गई है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-३२९-५	जाती, भांती	२	२	२	२	भाँती, जाती	२	२	७
१-३३२-१	रातिसराह बिभूती	२	राति सराहत बीती	३	३	२	भांति सराह बिभूती	६अ	३
१-३३३-५	पठई... सुसारा	पठई... सुआरा[1]	पठए.. सुआरा	३	३	३	२	२	३
१-३३५	उठेउ	२	२	२	२	उठी	७	७	७
१-३३६-५	हम इहां	२	हित हमहिं	३	३/२	२	२	२	२
१-३३७-३	मांगा	२	२	३	२	३	मांगत	२	मांगे (२)
१-३४१	सबुइ सुलभ	२	२	२	२	२	सबइ लाभ	६अ	२
१-३४२-२	करहिं	२	२	२	२	२	करिहिं	२	२
१-३४२-८	बहु	बहुत[2]	१	१	१	१	बहुरि	६अ	१
१-३४२-८	कीन्ही,दीन्ही	२	२	२	२	२	कीन्हा, दीन्हा	६अ	कीन्हे, दीन्हे
१-३४३-५	सिधि	२	२[3]	बिधि	२	४	२	२	४
१-३४४-२	भेरि	बीरि[4]	बीन	३	३/१	२	१	बीर(१)	२
१-३४५-३	छाए	२	आए	३	३	३	२[5]	३	३

१—(१) में पूर्व का पाठ (२) का था।

२—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'बिधि' है।

४—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।

५—(६अ) में पूर्व का पाठ 'वाए' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-३४६-१	मोद	२	२	प्रेम	४/२	४	२	२	२
१-३४६-५	मंजरि[५]	२	मंगल	३	३	२	२	२	२
१-३४६-६	सकुच	सकुन[१]	१	१	१/२	१	२	२	१
१-३५०-८	जनु	२	२	जिमि	४	जस	२	२	२
१-३५२-४	सकल	२	२	२	२	चले	७	७	२
१-३५२-४	मन तोषे	२	२	परितोषे	२	२	२	२	२
१-३५३-४	चैल[३]	२	चीर	३	३	३	२	२	३
१-३५६-१	जटित	२	२	जड़ित	४	४	जरित	६अ	४
१-३५८-४	बधूं	२	२	२	२	बधुन्ह	२	×	२
१-३५८-६	बंदि मागधन्हि	२	बंदी मागध	३	३	३	२	×	३
१-३५९ ८	अतिहि	२	२	२	२	अधिक	२	×	२
१-३६०-१	साधि	२	२	२	२	सोधि	७	×	७

१—(१) में पूर्व का पाठ 'मंगल' था, उसको हरताल लगाकर 'मंजरि' बनाया गया, (२) में वही संशोधित पाठ उतरा।

२—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'चीर' था, उसको हरताल लगाकर 'चैल' बनाया गया, (२) में वही संशोधित पाठ उतरा।

अयोध्याकाण्ड

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,अयो०)
२-१-७	फलित	×	२	२	२	फुलित	२	२
२-८-७	[नहीं है]	×	२	२	२	[है]	२	२
२-११-२	आवहुं	×	२	२	आवहिं	२	२	२
२-११-६	बनावहिं	×	मनावहिं	३	३	३	२	३
२-१२-५	बिबिध	×	बिबुध	३	३	३	२	२
२-१७-७	जल	×	जर[1]	२	२	३	३	२
२-२२-८	प्रिय	×	फुर[2]	२	२	२	२	२
२-२७-५	तेहिं	×	२[3]	तेइ	४/२	तम	२	२
२-२७-६	मति	×	मनि	३	३/२	२	३	३
२-२८-३	बरु	×	मकु	किन	४	३[3]	३	३
२-२८-६	मुनि	×	मनु[4]	२	२	३	२	३
२-२९-५	[है]	×	२	२	२	२	[नहीं है]	२
२-३१-५	भीर	×	भीरु	३	३/२	३	२	२

१—(३) में पूर्व का पाठ (२) का था।

२—(३) में पूर्व का पाठ (२) का था।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'तेइ' था।

४—(३) में पूर्व का पाठ 'मुनि' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-३६-१	भूपतहि	×	२[1]	भूपपद	४	४	२	२
२-३६-८	नहारू	×	२[2]	नहारुहि	४	नाहरुह(४)	२	२
२-३७	जागेउ	×	२	जागे	४/२	४	२	२
२-४२-४	तैउ न पाइअ	×	तेऊ पाय न[3]	तेउ न पाइ अस	४	४	२	२
२-४२-८	जातें	×	२	ताते	४	४	२	२
२-४२	जल	×	२	२	जिमि/२	२	२	२
२-४८-८	परम	×	प्रान	३	३	३	२	३
२-४८	चवइ	×	२	चुवइ	२/४	४	२	२
२-५०-१	कोपि	×	कोटि[4]	३	३	३	३	कोठि (३)
२-५१-८	मिटा	×	२[5]	इहै	४	४	२	२
२-५१	रघुबीर मनु	×	२	२	रघुबंसमनि/२	५	२	२
२-५३-८	भोरें	×	मोरें	२	३	२	२	२
२-५७-६	जानी	×	२	२	२	मानी	[अर्द्धाली नहीं है]	२
२-६४-८	[नहीं है]	×	२	२	२	[है]	२	२
२-६५-३	तिअहि	×	२	२	२	तिय	२	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'भूप पद' था।
२—(३) में पूर्व का पाठ 'नहारुहि' था।
३—(३) में पूर्व का पाठ 'तेउ न पाइ अस' था।
४—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।
५—(३) में भी पूर्व का पाठ 'इहै' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-६९-४	सफल	×	सुफल	३	३	३	२	२
२-७३-५	पूंछे	×	२	२	पूंछेउ/२	पूंछा	२	२
२-७५-२	हानी	×	जानी[१]	×	३	२	[२]नी (२)	३
२-७५-४	फल सुत	×	बड़ फल[३]	२	२	बर फल (३)	२	३
२-७५-छं०	तात	×	२	जात	२	४	२	२
२-७५-छं०	प्रभुहिं	×	२	२	सुतहि	२	२	२
२-७८-२	लखी	×	२	२	लखा/२	२	२	२
२-७९-८	जननी	×	२	जननिहि	४/२	२	२	२
२-८०-४	परितोषे	×	२	परिपोषे	४/२	४	२	२
२-८४-२	सफल	×	सकल	३	२/३	२	२	२
२-८९-८	आनी	×	पानी[४]	२	२	२	३	प्रानी
२-९०-४	भाथी	×	भाथा	३	३	३	२	२
२-९०-७	पावा	×	२	२	२	२	आवा	६
२-९१-७	सोवति	×	२	२	२	२	सोवत	६

१—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।
२—पूर्व का अक्षर छूटा हुआ है।
३—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।
४—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अ्री०)
२-९४-२	दातारा	×	२	२	२	सुखदारा	७	७
२-९८-१	मिलत	×	मिलित	२	२	२	२	३
२-९८-२	माइक	×	पितुग्रह	३	३/२	२	२	३
२-९८-६	कोउ	×	सब	३	३	२	२	२
२-९८	मोर	×	२	मोरि	४/२	२	२	४
२-१००-१	जीवहिं	×	जिइहहिं	३	३	२	जीहहिं (३)	३
२-१०४-८	सब	×	२	२	२	तब	७	७
२-११२-५	हमारें	×	२	२	२	हमारेहिं	२	७
२-११८-७	दीन्हि	×	२	दीन्ह	४/२	४	२	४
२-१२१-२	कहइ	×	कहहिं	३	३	३	२	२
२-१२१-२	मृदु	×	बर	२	२	३	२	३
२-१२७-५	चिदानंद	×	चितानंद	२	२	२	२	२
२-१२८	मन	×	२	२	२	हिय	२	७
२-१३०-१	कोह	×	२	क्रोध	४/२	४	२	२
२-१३१-६	लउ	×	२	२	लै/लव (२)	लय (५)	२	उर
२-१३३-६	सुर थपति प्रधाना	×	सुरपति परधाना	३	३	२	२	२

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-१३६-५	करब	×	करबि[1]	२	२	२	२	२
२-१३६-७	जहं तहं	×	२	२	तहं तहं/२	५	२	५
२-१३७-७	बिबुध	×	२	२	२	२	बिबिध	६
२-१३९-६	सुख भा	×	सुषमा	२	३	२	३	३
२-१४०-६	फर	×	२	२	फल/२	२	२	२
२-१४३-६	अढुकि	×	२	अटकि	४	उठुकि (२)	२	२
२-१४४-४	रहिहि	×	रही	२	२	२	२	२
२-१४८-२	तेहि तेहि	×	जेहि तेहि	३	३	३	२	२
२-१५२-१	सुनाएहु	×	सुनाएउ	२	२	२	२	२
२-१५२-५	ओर	×	२	२	२	और	२	२
२-१५६-२	करि	×	भरि	३	३	२	२	२
२-१६१-२	सोचइ	×	२	सोचन	४	४	२	२
२-१६२-७	तेउ	×	२	प्रिय	२	ते (२)	२	२
२-१६६-१	रंग	×	राग	हरप	४/३	३	२	२
२-१६७	गन	×	घन	२	२	२	२	२

१—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-१६९-१	प्रानहु	×	२	प्रान	४/२	४	२	२
२-१६५-२	बमइ	×	चवइ	३	३/चुवइ	चुवइ	२	३
२-१६९	साजु	×	२	काजु	४	४	२	२
२-१७२-६	अवमानी	×	२	अपमानी	४	४	२	२
२-१७३-८	[नहीं है]	×	२	२	२	[है]	२	२
२-१७४-५	प्रवाना	×	२	प्रमाना	४	४	२	२
२-१७५-३	बिहित	×	बिदित	२	२	२	२	३
२-१७५-७	मरम	×	प्रेम	३	२	२	परम	२
२-१७६-३	सुरपति	×	सुरपुर	३	३	३	२	२
२-१७७-२	धरि	×	२	२	२	पुनि	२	२
२-१७८-२	दीखि	×	२[1]	दीख	४	४	४	२
२-१८०-१	पावन	×	पांवर	३	३	३	२	२
२-१८०	तेहि	×	२	ताहि	४	४	२	तोहि
२-१८२-५	कहहि	×	२	२	२	कहिहि	२	७
२-१८५	[नहीं है]	×	२	२	२	[है]	२	२

१—(३) में भी पूर्व का पाठ 'दीख' था ।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-१८५	सहज	×	सहस	२	२	२	३	३
२-१८६-७	तहं	×	तेहि	२	२	२	३	३
२-१८७-५	समाऊ, राऊ	×	२	समाजू, राजू	४/२	४	२	२
२-१९०-५	करिहउं, धवलिहउं	×	करिहहुं, धवलिहहुं	२	२	२	२	२
२-१९१-४	माथी	×	२	माथा	२/४	४	२	२
२-१९१-४	धनुही	×	२	२	२	२	धनही	६
२-१९४-५	जंबुहाहीं	×	२	जमुहाहीं	४	४	२	४
२-१९६-७	रामभद्र	×	२	२	२	रामचंद्र	२	२
२-१९७-१	सब	×	२	बस	४/२	४	४	२
२-१९७-२	तनु	×	२	२	२	२	धनु	६
२-१९७-२	बिषय	×	बिनय	३	३	३	२	३
२-१९९-५	मलीना	×	२	२	२	२	बिलीना	६
२-२००-१	अैसे	×	अस	३	३	३	२	२
२-२००-८	सारद	×	सादर	२	२	२	२	३
२-२०१-६	साइं दोह	×	२	साइंद्रोहि	४	४	२	२
२-२०१-८	निरजोसु	×	२	२	२	निरदोस	२	२
२-२०२-६	[है]	×	२	२	२	[नहीं है]	२	२

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-२०५-१	जानहुं	×	२	२	जानहिं/२	५	२	२
२-२०६-४	मूरतिवंत	×	मूरतिमंत	२	२	२	३	३
२-२०७-४	बोलाई	×	बलाई	२	२	२	२	२
२-२०९-५	अवमान	×	२	अपमान	४	४	२	४
२-२०९-६	कीन्हिहु	×	२	कीन्हेहु	४	४	२	४
२-२१०-१	कीन्हि	×	२	कीन्ह	४	४	२	४
२-२१०-६	जग जस	×	जस जग	२	२	२	३	३
२-२११-५	नाहिंन	×	मोहि न	३	३/२	२	३	३
२-२१२-६	कुजोगु	×	कुरोगु	३	२	३	२	२
२-११४-४	रचेउ	×	२	२	२	रचे	२	२
२-२१७	सुप्रेम	×	सुपेम	२	२/सप्रेम	२	३	सप्रेम
२-२१७	बेगरन	×	२	बिगरन	४	४	२	४
२-२१९-३	पुन्नु	×	२	पुन्य	४	४	२	२
२-२२५-२	[नहीं है]	×	[है]	३	३	३	२	३
२-२२६-छं०	सचकित	×	२	चकित	४	चकित (४)	२	२
२-२२७-८	कहइ	×	२	२	२	कहौं	२	७
२-२२९-७	उपचरा	×	उपचार	३	३	३	२	३
२-२२९	छत्र	×	२	२	छत्रि/२	५	२	५

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-२२९	अनुज	×	२	२	२	२	अनुग	६
२-२३१-७	नृप मातहिं	×	२	मातहिं नृप	४/२	२	२	४
२-२३१-७	जेहि	×	२	जेइ	४/२	२	२	२
२-२३२-३	मकु	×	२	२	२	बरु	२	२
२-२३४-२	राम	×	रामहिं	२	२	२	३	३
२-२३७-४	अबिचल	×	अबिरल	२	२	२	३	३
२-२३९-८	जिय	×	२	हिय	२/४	२	२	२
२-२३९-८	मनहुं	×	हरत	३	३	३	२	३
२-२४०-४	बस	×	बर	३	३	३	२	२
२-२४०	बिसरे	×	बिसरा	२	२	३	२	२
२-२४१	भायं	×	२	२	२	भाग	२	२
२-२४८-४	मातु	×	राम	३	३/प्रेम	३	२	३
२-२५१-छं०	नौका	×	लौका	२	२	२	३	३
२-२५२	सुठि	×	२	२	२	२	सुचि	६
२-२५३-६	हइ	×	हर[1]	३	३	३	३	३
२-२५७-४	सरसी सीपि कि	×	सर सीपी किमि[2]	३	३	३	२	२

१—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।

२—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-२६१-४	काली	×	२	ताली	४	४	२	२,
२-२६२-८	तापस	×	तामस	३	३/२	३	२	३
२-२६९-३	अभारू	×	२	सिरभारू	४	४	२	२
२-२७३-४	गनप गौरि तिपुरारि	×	२	गनपति गौरि पुरारि	४	४	२	२
२-२७६-छं०	सोक	×	२	२	२/सोच	२	सोच	६
२-२८१-५	सकल	×	२	२	सरस/२	५	२	२
२-२८२-४	जो	×	२	२	२	सो	२	२
२-२८३-१	बिबुध	×	२	देव	४	४	२	४
२-२८४	भूप	×	ईस	३	३	३	२	३
२-२८७-५	महुँ	×	महि	३	३	२	२	२
२-२८९-६	सींव	×	सीम (२)	२	२	२	सीय	६
२-२९२-४	बड़ाई	×	२	बदाई	४	४	२	२
२-२९५-६	चंडकर	×	चदुकर	३	३	३	२	२
२-२९६-२	[नहीं है]	×	[है]	३	३	३	२	३
२-२९९-५	समाज	×	२	समान	४/२	४	२	२
२-३०२	मुनिगन	×	२	२	२	२	मुनिजन	६
२-३०५-३	करमू	×	मरमू	२	२	२	२	२

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-३०५-६	पुरजन	×	२	२	२	परिजन	२	७
२-३०६-४	साधक	×	साधन	३	३/२	३	२	२
२-३०७-८	देउ	×	२	देव	४	४	४	२
२-३११-५	कटु	×	कटुक	३	३	३	२	२
२-३१३-७	सबहिं सहेउ	×	२	२	३	सहेउ सकल	२	सहेउ सबहिं (२)
२-३१४-१	सुचि	×	रुचि	३	३/२	३	२	२
२-३१६-५	जामिक	×	२	२	२	२	जामनि	२
२-३२५-१	घट तन	×	घटत	घटन	४	४	घटइ	६
२-३२५-७	[नहीं है]	×	[है]	३	३	३	२	३
२-३२५	चहुं	×	बहु	३	२/३	३	२	२

अरण्यकाण्ड

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)[1]	(८, अर०)
३-१-१	पुरनर	२	२	२	२	पुरजन	२	पूरन
३-२-१	भाजि	२	२	२	२	भागि	२	२
३-२-८	ताहि	२	२	२	तेहि/२	२	२	२
३-२-८	अनलहु	२	२	२	२	अनल	२	२
३-३-१	श्रुति	२	२	२	२	२	अति	सब
३-५-२	देइ	२	२	२	२	दीन्हि	२	२
३-५-४	सरस	२	सरल	२	२/३	३	२	३
३-५-५	मित प्रद सब	२	२	२	२/मित सुखप्रद	मित सुखप्रद	२	२
३-५-१४	सो	२	२	२	२	ते	२	२
३-५-१९	जन्मि	२	जन्म	३	३/जनम(३)	जनम(३)	३	३
३-६-२	होइ	२	२	२	२	होउ	२	२
३-६-९	अब	२	२[2]	बन	४	४	२	२

१—इस कांड में प्रति (६) में स्थान-स्थान पर कुछ पंक्तियाँ हैं जो (८, अर०) में नहीं मिलतीं। इस पाठचक्र में उनका समावेश नहीं किया गया है; अन्यत्र इस खंड के परिशिष्ट में उनको दिया गया है।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'बन' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अ२०)
३-७-२	अनुज	२	२	२	२	लषन	२	२
३-७-२	काछे	२	२	२	आछे/२	५	२	२
३-७-३	सोहइ	२	२	२	२/सोहति	सोहति	२	२
३-७-४	बर	२	२	२	२	सब	२	२
३-९-७	सबदरसी	२	२	२	समदरसी	२	२	२
३-९-७	तुम्ह	२	२	२	२/सब	उर	२	२
३-९,	आस्रमहि	२	आश्रमन्हि	३	३	आश्रम	७	२
३-१०-१	अगस्त्य	अगस्ति[1]	१	१	१	१	१	२
३-१०-४	हैं	हे[2]	१	१	२	१	२	१
३-१०-१२	पुनि	२	२[3]	चलि	४	४	२	२
३-१०-१७	जान न	जाग न[4]	१	१	१	१	२	१
३-११-८	बाल	२	२	२	२	२	राज	२
३-११-१८	बसतु	२	२	बसहु	४/२	४	२	२

१—(१) में पूर्व का पाठ 'अगस्त्य' ही था।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'हैं' ही था।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'चलि' था।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'जान न' था, किंतु बीच के 'न' पर हरताल लगाकर उसे 'ग' बनाया गया।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८)
३-११-२४	झूठ	२	२	२	२	२	रूढ़	२
३-१२-१	करि	२	कहि	३	३	३	३	२
३-१२	महं	२	२	२	२	२	मों	२
३-१३-३	मुनि	२	२	२	२/सुर	सुर	२	२
३-१३-६	ऊमरि	२	२	२	२	डूमरु	२	२
३-१३-८	[है]	२	२	२	२	[नहीं है]	२	२
३-१३-१०	श्री	२	२	२	२/सिय	सिय	२	२
३-१३	बढ़ाइ	२	२	२	२	२	दृढ़ाइ	६
३-१४	जीव	२	२[1]	जीवहि	४	४	४	२
३-१५-४	अपर	२	२	२	२	२	अपार	२
३-१६-६	कर्म	२	२	२	२	धरम	धर्म(७)	२
३-१६-७	मन	२	पुनि	३	३	३	३	३
३-१६-७	धर्म	२	२	२	२/चरन	चरन	२	७
३-१६	निष्काम	निःकाम[2]	१	१	१	१	२	१
३-१७-६	सक	२	२	सकि	४/२	२	२	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'जीवहि' था।

२—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अर०)
३-१७-६	मन नहिं[1]	२	मनहिं न	३	३	३	३	३
३-१७-८	येह	२	२	२	२	अस	२	२
३-१७-१०	कुमारी	२	२	२	२	कुंआरी	२	२
३-१७-११	कुंआर	२	२	२	कुमार	५	५	५
३-१७-१४	समथ	२	समर्थ	३	३/समरथ(२)	समरथ(२)	संमथ(२)	३
३-१७-१६	गुमानी	२	२	२	२	२	गुनानी	२
३-१८-२	विलषाता	विलपाता[2]	१	२	१	२	१	१
३-१८-४	निकर	२	२	२	२	२	बरन	२
३-१८-छं०	लरत	२	२	लसत	२/४	४	२	२
३-१८	धावत	२	२	२	२	धावहु	२	२
३-१९-३	हते	२	२	२	२	२	हने	२
३-१९-१२	खर	घर	१	१	१	१	गृह	१
३-१९-छं०	धाए	२	२	२	२	धावहु	२	२

१—(१) में पूर्व का पाठ था 'मनहिं न' उस पर हरताल लगाकर पाठ 'मन नहिं' बनाया गया, और (२) में वही संशोधित पाठ उतरा।

२—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अ१०)
३-१९-छं०	भयाव्हा	२	२	२	२	भयामहा	२	२
३-२०-१	बहु	२	२	२	२	२	निज	२
३-२०-६	अपार	२	प्रकार	३	३	३	२	३
३-२०-१३	सृगाल	२	सृकाल	३	३	२	३	२
३-२०-छं०	खर्प्पर	२	खप्पर	३	३	३	२	२
३-२२-९	नारि	२	२	२	२	रची	२	२
३-२२-१०	भगिनि करहिं	२	२	२	२	भगिनि करी	२	भगिनी करि(७)
३-२३मूल	मूल	२	२	२	२	फूल	२	२
३-२४-५	रचा	२	२	२	२	२	रचेउ	२
३-२५-७	मम	२	२	२	मति/२	२	२	२
३-२६-४	मानस गुनी	२	२	२	२	२	मानस गुनी	२
३-२७-११	सोइ	२	सो	३	३	३	३	३
३-२७-१४	परेउ	२	२	२	२	परा	२	२
३-२८-३	संकट	२	२	२	२	२	कष्ट	२
३-२८-५	बोला, मन डोला	२	२	बोली, मन डोली	४/२	२	२	बोली, मति डोली(४)
३-२८-१०	बल	२	२	२	२	लव	२	२
३-२८-११	सुहाई	२	२	२	२	सुनाई	२	२
३-२८-१२	बोलेहु	२	२	२	२	बोलहु	बोले	२

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अर०)
३-२८-१६	रिसाना	२	लजाना	३	३/२	२	२	२
३-२९-१	जग एक[1]	२	जगदेक	जगदीस	४/३	जगदेव	३	२
३-२९-११	जानेहि	२	२	जानेसि	४/जानसि(४)	२	२	जाने
३-२९/१	राखिसि	२	२[2]	राखेसि	४	राखे	२	४
३-३०-३	मम सीता आश्रम महुं नाहीं	२	मम मन सीता आश्रम नाहीं	३	३	मम मन आश्रम सीता नाहीं (३)	३	३
३-३०-५	तहवां जहवां	२	२	२	२	२	तहां, जहां	२
३-३२	जे	२	२	२	२	जो	७	२
३-३२	निरंजन	२	२	२	२	निरंतर	२	२
३-३२	गो बस सदा	२	२	२	२	गो बस जदा	७	२
३-३५-३	अति मंद	२	२[3]	मतिमंद	४/२	४	२	२
३-३५-६	कैसा, जैसा	२	२	२	२	कैसे, जैसे	२	२
३-३७	खग	२	२	२	२	खगन	२	२

१—(१) में पूर्व का पाठ 'जगदेक' था, किंतु 'दे' का हरताल लगाकर 'ए' बनाया गया, और उसी से (२) में भी 'जग एक' पाठ उतर आया।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'राखेसि' था।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'मतिमंद' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अ१०)
३-३७/२	कीन्हेउ	२	२	२	२	दीन्हेउ	७	२
३-३८-१०	सेन	२	२	२	२	२	सेना	२
३-३९-२	कै	२	२	२	२	कहं	२	२
३-३९-५	सत्य	२	२[1]	सत्त	सत(४)/२	५	२	२
३-३९	देखिअै	२	२	२	२/देखिए(२)	देखिए(२)	देखिअ	२
३-४०-६	पनास	२	२[2]	परास	४/२	४	४	४
३-४०	भारन नमि	२	भरनम्र	३	३/२	३	३	२
३-४२-१	उदार सहज[3]	२	उदार परम	३	३/२	परम उदार(३)	७	२
३-४४-५	देति सुख	२	दहै सुख	३	३/देदुष(७)	देति दुख	७	७
३-४५-६	जिन्ह	२	२	२	२	जेहि	जावैं	२
३-४५-९	धर्मगति	२	२	२	२	२	भगति पथ	२
३-४५	दुख	२	२	२	२	सख	२	२
३-४६/२	जुवति तनु	२	जुवती	३	५/जुवति रस(२)	[दोहा नहीं है]	३	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'सत' था।

२—(३) में भी पूर्व का पाठ (२)का था।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'उदार परम' था; 'परम' का हरताल लगाकर 'सहज' बनाया गया है, (२) में भी 'सहज' ही उतर आया है।

किष्किंधाकाण्ड

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)[१]
४-१-५	पठए	२	२	२	२	पठवा	२
४-२	कुटिल	२	२	२	२	कीस	२
४-४	की	२	२	कहि	२/४	२	कह(४)
४-५-४	बिलपाता	२	२	२	२	२	बिलषाता
४-६-१४	उठीं	२	२	२	२	उठे	२
४-६-१४	द्वै	२	दोउ	३	३/द्वौ(३)	३	दौ(३)
४-६	मारिहौं	२	२	२	२	मैं मारिहौं	२
४-६	सरनागत	२	२	२	२	सरनागतहु	२
४-७-१२	ढ्ढाए	२	ढहाए	३	३	३	३
४-७-१३	बालि बधब इन्ह	२	२	२	२	२	बाली बध की
४-७-२१	येहि	२	२	२	२	२	वेहि

१—इस कांड में भी प्रति (६) में कई स्थानों पर कुछ पंक्तियां हैं जो अन्य किसी प्रति में नहीं मिलती हैं, और प्रक्षिप्त ज्ञात होती हैं। उनका उल्लेख अलग इस खंड के परिशिष्ट में किया गया है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)
४-७	कहै बालि	कह बाली[1]	१	१	१	कहा बालि	कह बालि
४-७	मारिहहि	मारहिं	१	मारिहिं	१/२	मारिहैं (२)	१
४-१२-२	करहिं	२	२	२	२	२	करति
४-१२-४	सोइ	२	२	२	२	सो	२
४-१३-४	कै	२	की[2]	२	२	२	२
४-१४-५	तोराई	२	तुराई	२	२	२	२
४-१४	पाखंडबाद	२	२	पाखंडीबाद	२	४	२
४-१५-४	मिलइ नहिं	२	२	२	२	२	मिलइहि
४-१५-१०	हिय	२	२	२	२	२	धिय
४-१५	चल	बह[3]	१	१	१/बहै(१)	१	२
४-१६-२	कृत	२	२	२	२	२	ऋत
४-१६-१०	जिमि	२	२	२	२	२	जसि
४-१७-२	कैसा, जैसा	२	२	२	कैसे, जैसे/२	५	२
४-२०-७	मोह	२	२	२	२	छोभ	२

१—(१) में पूर्व का पाठ 'कहै बाली' था।
२—(३) में भी पूर्व का पाठ 'कै' ही था।
३—(१) में पूर्ववर्ती पाठ 'चल' ही है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)
४-२२-१	करन चह	२	२	किय चह	२	करि चहै	२
४-२३-३	सो जतंनु	२	२	२	२	सुजतन	२
४-२३-७	गुन ग्यान	२	गुनज्ञ	३	३/२	३	३
४-२४-३	धन	२	२	२	२/बन	बन	२
४-२४	बर सर बिगसित	२	२	२	२	सुभग सर बिगसित सर बिकसित तहं	
४-२६-२	[है]	२	२	२	२	[नहीं है]	२
४-२६-६—९	[हैं]	२	२	२	२	[नहीं हैं]	२
४-२६	प्रभु अवतरइ	२	२	२	प्रभु अवतरहिं/२	२	अवतरइ प्रभु(२)
४-२६	सब	२	२	२	२	२	सुख
४-२५-१	सुनी	२	२	२	२	सुना	७
४-२७-२	बाहेर	२	बाहिर[१]	२	२	३	बाहेरि (२)
४-२७-२	देखि	२	२	२	२	देखे	७
४-२७-३—४	[हैं]	२	२	२	२	[नहीं हैं]	२
४-२७-६	[है]	२	२	२	२	[नहीं है]	२
४-२८-५	करि	२	२	२	२	अति	२
४-२८-९	चिंता	२	२	२	२	चीता	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'बाहर' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)
४-२८	नाहीं	२	२	नाहिं	२	नाहिंन	२
४-२९-५	गरुड़	२	२	२	२	२	छमा
४-२९-६	कै	२	२	२	२	कर	७
४-२९	दीन्ही	२	२	२	२/दीन्हि मैं	दीन्हि मैं	२
४-३०-३	रीछपति सुनु	२	२	२	२	२	रिछेस सुनहु
४-३०	त्रिसिरारि	२	२[1]	त्रिपुरारि	२	४	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'त्रिपुरारि' था ।

सुन्दरकाण्ड

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, सुं०)
५-०-श्लोक	गीर्वाण	२	२	२	२	२	निर्वाण	६
५-१-३	होइहि	२	२[1]	होइ	४/२	४	२	४
५-१-७	जेहिं, देइ	२	२	२	२	जे, दीन्ह	२	२
५-१-८	एहीं	२	२[2]	२	तेही	५	योही	ताही(५)
५-२-९	दून	२	२	२	दुगुन/२	२	२	५
५-३-४	सोइ	२	२	२	२	२	सो	६
५-३-४	कहं	२	२	२	२	ते	२	७
५-३-छं०	सुंदरायतना	२	२	२	२	सुंदरायत अति	२	२
५-३-छं०	माल	२	२	२	२	मल्ल	२	७
५-४-४	बमत	२	२	२	२	२	बमन	२
५-४-७	तैं	२	२	२	२	जब	२	७
५-५-३	गरुड़	२	२	२	२/गरुअ	गरुअ	२	७
५-५-३	चितवा	२	२	२	२	चितवहिं	२	७
५-५	तुलसिका	२	२	२	२	तुलसी के	२	७

१—(३) में पूर्व का पाठ 'होइ' था।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'तेही' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, सुं०)
५-८-३	सुनि	२	पुनि	३	३	३	३	३
५-८-४	देखी	२	२	देखा	४	४	२	४
५-८	चरन महुँ	२	२	२	२	२	कमल पद	चरन लव(२)
५-९-३	दान	२	२	२	२/दाम	दाम	२	७
५-९-८	समुझु	२	२	२	समुझि	समुझी(५)	२	५
५-१०-४	मन	२	पन	३	३	३	३	३
५-१०-६	निसि तव असि	२	२	२	२	निसित बहसि	७	२
५-११-६	सीता	२	२	२	२	सीतहि	२	७
५-१२-११	तन	२	जनि	३	२	२	३	३
५-१३-७	कही	२	कहि	३	२/३	३	२	२
५-१४-७	भरे	२	भरि	३	३	३	२	बह
५-१५-४	जे हित	२	जेहि तरु	३	३	जेहि तर(३)	२	३
५-१६	साखामृगन[1]	साखामृग	१	१	१	साखामृगहि	१	७
५-१७-४	मगन	२	२	२	२	हरष	२	२
५-१७-८	भारी	२	२	२	२	२	धारी	६

१—(१) पूर्व का पाठ 'साखामृग' था, उसमें 'न' बढ़ाया गया, और उसी से (२) में भी 'साखामृगन' पाठ उतर आया, किन्तु अब (१) के 'न' पर हरताल लगा है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, सुं०)
५-२१-२	सुनें	२	सुनेहि[1]	२	२	२	२	२
५-२१-३	मारें	२	२	२	२	मारेहि	७	२
५-२२	राखिहैं	२	२	२	२	२	राखिहि	राखिहहिं (२)
५-२३-६	सरित	२	२	२	सजल	५	५	५
५-२४-४	ताहि	२	२	तोर	२	तोर	२	२
५-२४	कह्यो	२	२	२	२	कहा	कहाँ	७
५-२५-१	तहं	२	२	२	२	जब	२	७
५-२६-२	झपट	२	२	२	२	दपट	२	२
५-२७-४	बिरिदु	२	२[2]	बिरद	४	४	बिरद	४
५-२७-६	आवैं, पावैं[3]	२	आवा, पावा	३	३	२	३	३
५-२८-१	सुनि निसिचर	२	२	२	२	रजनीचर	२	२
५-२८-५	जिमि	२	२	२	२	जनु	७	७
५-२९-३	प्रीति	२	२	२	२	प्रेम	७	७

१—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'बिरद' था।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'आवा, पावा' था, उस पर हरताल लगाकर 'आवैं, पावैं' बनाया गया और (२) में यही संशोधित पाठ उतरा।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८;सुं०)
५-३०	राति दिनु	२	२	२	दिवस निसि/२	२	५	५
५-३१	करुनानिधि	२	२	२	२	करुनायतन	२	७
५-३३-९	कछू	२	२	२	२	कछुक	२	२
५-३३	प्रभाव	२	२[1]	प्रताप	४/२	४	२	४
५-३४-५	प्रभु	२	२	२	२	कपि	२	२
५-३५-५	कीती	२	२	२	२	रीती	२	७
५-३५-छं०	उदार	२	२	२	२	अपार	२	२
५-३५-छं०	बारहिं मोहई	२	२	२	बार बिमोहई/२	२	२	५
५-३७-६	चिंता	२	२	२	२	चींता	२	२
५-४०	देहु	२	२	२	२	देव	२	२
५-४१-३	सठ	२	२	२	२	२	सब	२
५-४४-२	नासहिं	२	२	२	२	नासौं	२	नासैंहीं
५-४४-७	हनइं	२	२	२	२	हतहिं	२	२
५-४५-५	मनु	२	२	२	२	२	छबि	२
५-४७-१	मच्छर	२	मत्सर	३	३	३	२	३

१—(३) में पूर्व का पाठ 'प्रताप' था ।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,सु०)
५-४८	पर	२	२	२	२	परम	२	७
५-४९/१	राखेउ	२	राखा	३	३/२	राखे	३	राखेऊ(२)
५-५०-६	सब	२	२	२	२	बहु	२	२
५-५२-२	सकल बाँधि कपीस	२	२	२	२	ताहि बांधि कपिपति	२	सपदि बांधि कपिपति
५-५२-३	बानर	२	२	२	२	बनचर	२	२
५-५२-७	सब	२	२	२	२	तब	२	२
५-५३-३	कस	२	सुक	३	३	३	३	३
५-५३-४	खबरि	२	२	२	२	कुसल	२	२
५-३५-४	जाहि	२	२	२	२	जासु	२	२
५-३५-५	त्यागी, अभागी	२	२	२	२	त्यागा, अभागा	२	२
५-५४-३	दीन्हे	२	२	२	२	२	दीन्हेउ	२
५-५४-८	कठिन	२	कठिन्ह (२)	२	२	बिकट	२	२
५-५४	अंगद गद	२	२	अंगदादि	२	४	२	२
५-५४	बिकटासि	बिकटास्य[1]	२	१	१	२	१	१
५-५४	निसठ सठ	२	२	२	२	कुमुद गव	७	७

१—(१) में पूर्व का पाठ 'बिकटासि' ही था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, सुं०)
५-५५	काल	२	२	२	२	कालौ	२	२
५-५६-७	जग	२	२	२	२	लगि	७	७
५-५६-८	दूतहि	दूत[1]	१	१	१	१	२	१
५-५६-/२	होहि कि राम सरानल खल[2]	२	२	२	२	होहि राम सर अनल खल जनि	२	२
५-५७-६	करिहीं, धरिहीं	२	२	२	२	करिहहिं, धरिहहिं	२	७
५-५८-४	बोए	२	बएं	३	३	२	३	३
५-५८-८	आए	२	आएउ	२	३/२	३	२	२
५-५८	डाटेहिं पै नव	२	डाटेहिं पै नवै	२	२	२	२	भय बिनु नवै
५-५९-४	जस	२	जसि[3]	३	२	२	२	२
५-५९	सुनत बिनीत बचन	२	२	२	२	सुनतहिं बचन बिनीत	२	सुनि बिनती के बचन
५-६०-छं०	सठ	२	२	२	२	सुचि	२	२

१—में पूर्व का पाठ (२) का था।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'सरासन' था, उसको 'सरानल' बनाया गया है। ऐसा ही (२) में भी हुआ है।

३—(३) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।

लंकाकाण्ड

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं० १)[1]	(८,लं० २)[1]
६-०-श्लोक	श्री शंकरं मन्मथारिं	२	२	२	कंदर्पहं शंकरं/२	५	५	[नहीं है]	शंकरं मन्मथारिं (२)
६-१-७	कछु	२	२	२	२/एक	एक	७	७	७
६-१	गिरि पादप	२	२	२	२	तरु सैलगन	७	७	७
६-१	नीलहिं	२	२	२	२	नील कहं	२	७	२
६-२-४	थापना	२	२	२	२	अस्थपना	२	७	२
६-२-७	भगत	२	२	२	२	दास	२	७	२
६-३-१	मम	२	२	२	२	२	हरि	२	सुर
६-३-५	जिय	२	२	२	२	मन	२	७	७
६-३-७	बांधा	२	२	२	२	बांधेउ	७	७	७
६-४-९	प्रभु आयसु पाई	२	२	२	२	२	कछु बरनि न जाइ	६	६
६-५-५	रितु अरु कुरितु	२	२	२	२	ऋतु अन-ऋतुहिं	ऋतु अरु-अऋतु	२	७

१—(८, लं० १) तथा (८, लं० २) में कुछ प्रसंग ऐसे हैं जो प्रति (६) ही नहीं, ऊपर की अन्य किसी प्रति में भी नहीं मिलते। उनका समावेश इस चक्र में नहीं किया गया है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लें० १)	(८, लें० २)
६-५	बांध्यो	२	२	२	२	बांधे	२	७	२
६-६-१	निज बिक- लता बिचारि	२	२	२	२	व्याकुलता निज समुझि	७	७	७
६-६-६	दिनकरहि	२	२	२	२	दिवाकर	२	७	२
६-७	नयन नीर भरि	२	२	२	२	लोचन बारि भरि	७	७	७
६-७	रघुनाथहि	२	२	२	२	रघुनाथ पद	रघुबीर पद(७)	७	६
६-७	अचल होइ अहिबात	२	२	२	२	मम अहिबात न जात	७	७	२
६-८-६	बस्य	२	२	२	२	बिबस	७	७	७
६-८-७	तेहि	२	२	२	२	सन	२	७	७
६-८-८	पूछहु	२	२	२	२	बूझहु	२	७	२
६-८	सब के बचन	२	२	२	२	२	बचन सबहि के	२	६
६-९-१	सठ	२	२[1]	सब	४/२	२	४	४	४
६-९-१०	सीता	२	२	२	२	२	सीतहि	६	६
६-१०-८	गुनगन	२	२	२	२	गंध्रब	गंधर्ब(७)	२	७

१—(३) में पूर्व का पाठ 'सब' था ।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१)	(८,लं०२)
६-१०	तद्यपि सोच न त्रास	२	२[1]	तदपि सोच नहिं त्रास	(२) ४	तदपि न तेहि कछु त्रास	तदपि न कछु मन त्रास	तदपि हृदय नहिं त्रास	६ ७
६-११-२	सिखर एक उतंग अति	२	२	२	२	सैल सृङ्ग एक सुंदर	७	७	७
६-११-२	परम रम्य	२	२	२	२	अति उतंग	७	२	७
६-११-४	ता	२	२	२	२	तेहि	७	७	
६-११/१	कृपा रूप	२	२	२	२	२	करुनासील	करुनासिंधु(६)	करु० (६)
६-११/१	धन्य ते नर एहि ध्यान जे	२	२	२	२	२	ते नर धन्य जे ध्यान एहि	६	६
६-१२/१	हनुमंत	२	२	२	२	मारुतसुत	७	७	७
६-१२/१	प्रिय	२	२	२	२	२	निज	२	२
६-१२/२	दिसि अवलोकि प्रभु	२	२	२	२	२	दिसा बिलोकि पुनि	दिसा बिलोकि प्रभु (६)	दिसा बिलोकि प्रभु (६)
६-१३-४	उपर	२	२	२	२	२	रुचिर	२	६
६-१३-७	मधुर	२	२	२	२	सरिस	सरस (७)	२	६
६-१४-४	परे	२	२	२	२	खसे	७	७	गिरे

[1]—(३) में पूर्व का पाठ 'तदपि सोच नहिं त्रास' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१)	(८,लं०२)
६-१४-८	हठ उर[1]	२	हठ मन	३	३/२	२	मन हठ	(३) ६	मन महं
६-१५	सचराचर	२	२	२	२	२	चर अचर मय	२	२
६-१६-२	सब	२	२[2]	कबि	४	४	४	४	४
६-१६-६	बिधि	२	२	२	२	२	मिसि	मिसु(६)	मिसु (६)
६-१६-६	कहहु	२	२	२	२	कहेउ	कहिहि	२	२
६-१६-७	सोचनि	मोचनि	१	१	१	१	२	१	१
६-१६	एहिं बिधि करत बिनोद बहुप्रातप्रगट	२	२	२	२ बहु बिधि जल्पेसि सकल निसि प्रात भए		७	७	७
६-१६/१	लंकपति	२	२	२	२	२	सुलंकपति	२	२
६-१६/२	सम[3]	सिव	१	१	१	सत	७	२	१
६-१७-३	उरबासी	२	२	२	२	गुनरासी	७	७	७

१—(१) में पूर्व का पाठ था 'हठ मन', 'मन' पर हरताल लगाकर पाठ 'हठ उर' कर दिया गया और (२) में संशोधित पाठ ही उतर आया।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'कबि' था।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'सत' था, उसको हरताल लगा-कर 'सम' बनाया गया, और उसी से 'सम' (२) पर भी उतर आया; किंतु (१) में इस समय 'सम' का भी 'सिव' बनाया हुआ है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-१७-३	बुधिबल तेज धर्म गुनरासी	२	२	२	२	सत्यसंध प्रभु सब उरबासी	७	७	७
६-१७-८	सन	२	२	२	२	२	सैं	२	२
६-१८-३	होइगै	२	२	सो होइ गइ	२	४	४	४	४
६-१९-४	बैसे, जैसे	२	२[1]	२	बैसा, जैसा/२	५	५	५	५
६-२०-४	सब	२	२	२	२	सुर	७	७	७
६-२०	आरत गिरा सुनत प्रभु	२	२	२	२	सुनतहि आरत गिरा प्रभु	सुनतहि आरत वचन प्रभु	२	६
६-२०	करैगो	२	२	करहिंगे	४	४	२	४	४
६-२१-१	बोलु	२	२[2]	न बोलु	२	२	२	२	२
६-२१-३	ही	२	२	२	रही/२	हौ	२	५	हुय
६-२१-४	रहा बालि[3]	२	२	२	२	हा बाली	७	२	२
६-२१-६	गएउ	२	गएहु	३	३	३	२	३	३
६-२१-७	ब्यथै	२	२	२	२	बृथा	२	७	७

१—(३) में पूर्व का पाठ 'बैसा', 'जैसा' था।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'न बोलु' था।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'हां बाली' था, 'हा' के पूर्व 'र' बढ़ाकर 'रहा' और 'बाली' को हरताल लगाकर 'बालि' बनाया गया, और (२) में संशोधित पाठ ही उतरा।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१)	(८,लं०२)
६-२१	बधिर	२	२	२	२	२	बहिर	२	बहिरौ(७)
६-२१	कहहिं	२	२	२	२	२	कहइ	२	६
६-२२-६	देखी	२	२	२	२	देखे	देखिउं(२)	देखेउं(७)	७
६-२२-८	हमहुं[1]	२[1]	२	२	२	२	महूं	२	६
६-२३-४	बूढ़ा	२	२	२	२	२	मूढ़ा	२	२
६-२३-६	सुनत बचन कह	२	२	२	२	सुनि हंसि बोलेउ	७	७	७
६-२३-८	सुनि अस बचन सत्य	२	२	२	२	२	को अस झूठ सुनै	६	६
६-२३/१	सत्य नगर कपि जारेउ	२	२	२	२	अब जानेउं पुर दहेउ कपि	७	७	७
६-२३/१	सुग्रीव	२	२	२	२	निज नाथ	७	७	रघुनाथ(७)
६-२३/४	छत्र	२	२	२	छत्रि	५	२	५	५
६-२४-२	करै	२	२	२	२	धरै	२	करहि(२)	७
६-२४-१२	कहु	२	२	२	२	२	सुनु	२	६
६-२४-१२	जेते	२	२	२	२/तेते	तेते	२	७	७
६-२४	इन्ह	२	२	२	२	२	तिन्ह	६	२

१—(२) तथा (१) में भी पूर्व का पाठ 'महूं' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१)	(८,लं०२)
६-२५-६	जिन्ह	२	२	२	२	तिन्ह	२	२	२
६-२५	अब जाना तब जान	अब जाना तव ज्ञान[1]	१	१	१/२	तब न जान अब जान	२	७	२
६-२६-४	दससीस	२	२	२	२	दसकंठ	२	२	२
६-२७-३	बृथा	२	२	२	२	२	मुघा	मृषा	मृषा
६-२७-५	सम	२	२	२	२	इव	७	७	७
६-२७	अस	२	२	२	२	सम	२	२	२
६-२८-२	सब[2]	२	२[3]	सठ	४	४	जड़	६	६
६-२८-८	निरखु	२	२	२	२/निरखि	निरखि	२	७	७
६-२८	अति हरष बहु, बार साखि गौरीस	२	२	२	२	महुँ बार बहु, हरषित साखि गिरीस	७	७	७
६-२९-१०	इन्द्रजालि	२	२	२	२	बाजीगर	७	७	७
६-२९	मोह	२	२	२	२	बिमोह	७	७	७

१—(१) में भी पूर्व का पाठ 'जान' था। २—(१) में पूर्व का पाठ 'सठ' था 'ठ' का 'ब' बनाया गया, और (२) में वही संशोधित पाठ उतर आया। ३—(३) में भी पूर्व का पाठ 'सठ' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-२९	कहावहिं	२	२	२	२	सराहिअहिं	७	७	७
६-३०-३	अस	२	२	२	२	इमि	७	७	७
६-३०-६	आनिहि	२	आनेहि	३	३	३	२	आनेहु	आनेहु
६-३०	तव जुवतिन्ह	२	२	२	तव जुवतीन्ह(२)	मंदोदरी	७	७	७
६-३१-७	अधम	२	२	२	२	२	पोत	६	६
६-३१	जानि	२	२	२	२	२	बिचारि	६	६
६-३१/१	निसि दिन	२	२	२	२	२	अनुदिन	२	६
६-३२-५	गिरत संभारि उठा दसकंधर	२	२	२	२	गिरतदसानन उठा संभारी	७	७	७
६-३२-५	भूतल परे मुकुट अतिसुंदर	२	२	२	२	भूतल परे मुकुट षट चारी	७	७	७
६-३२	तरकि	२	२	२	२	कूदि	७	७	७
६-३२/२	[दोहा है]	२	२	२	२	[चौपाई है]	७	७	७
६-३३-२	बधि	२	२	२	बिधि	५	२	५	५
६-३३-५	बिहरति	२	२	२	२	२	बिहरी	६	६
६-३३-७	खल	२	२	२	२	सठ	निसि	२	७
६-३४-३	तव	२	२	२	२	२	यह	२	२
६-३४-८	समुझि रामप्रताप	२	२	२	२	रामप्रताप सुमिरि	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-३४/१	[दोहा है]	२	२	२	२	२	[नहीं है]	६	६
६-३५-१	कपि के परचारे[1]	२	२	२	२	जुवराज प्रचारे	७	७	७
६-३५	धरषि	२	२	२	२	२	धरपित	२	दरपित
६-३५	पुलक सरीर नयन जल	२	२	२	२	सजल सुलोचन पुलक तनु	७	७	७
६-३५	दसकंधर,	२	२	२	२	दसकंधर	दसमौलि तब	६	६
६-३५/२	रावनहि	२	२	२	२	तब रावनहि	निसाचरहि	७	६
६-३६-३	येह	२	२	२	२	२	अस	६	६
६-३६-६	सकल पुर	२	२	२	२	२	नगरु सब	६	६
६-३६-८	जनि	२	२	२	२	२	मति	६	२
६-३६-१०	भूपाला	२	भुअपाला(२)	२	२/महिपाला	२	महिपाला	६	६
६-३६-१०	अतुल	२	२	२	२	बिपुल	७	गर्व	७
६-३७	मरे	२	मारेउ	३	३	३	मारे	३	३
६-३७	रघुनाथ	२	२	२	२	२	रघुपतिहि	२	६

१—(१) में पूर्व का पाठ था 'जुवराज प्रचारे' हरताल लगाकर उसे 'कपि के परचारे' बनाया गया, और (२) में वही संशोधित पाठ उतर आया।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-३८-९	दान	२	२	२	दाम	२	२	५	५
६-३८	तेहि परिहरि गुन आए	२	२	२	२	आए गुन तजि रावनहि	७	७	७
६-३९-७	[अर्द्धाली है]	२	२	२	२	[नहीं है]	७	२	७
६-३९	जय लछिमन	२	२	२	२	भ्राता सहित	७	७	७
६-३९	सिंघनाद	२	२	२	२	केहरि नाद	७	७	७
६-४०-३	सब निसिचर	२	२	२	२	रजनीचर	७	७	७
६-४१	निसिचर गहि	२	गहि निसिचर(२)	३	३	गहि रजनिचर	७	७	७
६-४२-१	सुभट	२	२	२	२	२	निकर	६	६
६-४२-३	निसाचर	२	२	२	२	२	तमीचर	६	२
६-४२-४	बालक आतुर	२	२	२	२	आरत बालक	७	७	७
६-४२-६	सुनी	२	२	२	२	सुना	२	७	२
६-४२-६	तेहिं	२	२	२	२	जब	७	७	जौ (७)
६-४२-७	फिर मैं जाना[1]	२	सुना मैं काना[2]	३	३	२	२	२	२
६-४२-७	सो मैं हतब	२	२	२	२	२	तेहि मारिहौं	६	६

१—(१) में पूर्व का पाठ था 'सुना मैं काना' हरताल लगाकर उसे 'फिरा मैं जाना' बनाया गया, और वही संशोधित पाठ (२) में उतर आया।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'फिरा मैं जाना' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	५/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-४२-८	बल्लभ	२	२	२	२	दुर्लभ	दुल्लभ (७)	७	२
६-४२-९	चले, सुभट	२	२	२	२	२	फिरे, बीर	६	६
६-४२	ब्याकुल किए	२	२[1]	ब्याकुल कीन्हे	४	४	कीन्हे ब्याकुल(४)	६	६
६-४२	त्रिसूलन्हि	२	२	२	२	२	प्रचंडन्हि	६	६
६-४३-३	बिकल	२	२	बिचल	४	४	४	४	४
६-४३-३	सुना	२	२	२	२	२	सुनी	२	६
६-४३-८	दुसरे	२	२	२	२	दुसर	२	२	२
६-४४-२	द्वौ	२	२	२	२	तव	७	७	७
६-४४-७	गर्जि	२	२	२	२	कूदि	७	७	७
६-४४-७	परे	२	२	२	२	परेउ	२	२	२
६-४४	सों मर्दहिं	२	२	२	२	सन मर्दहिं (२)	सन मर्दि करि	६	गहि रजनिचर
६-४५	बिगत स्रम	२	२	२	२	प्रयास बिनु	७	७	७
६-४६-७	महाबीर निसिचर	२	२	२	२	बीर तमीचर सब	७	×	बीर निसाचर
६-४६	देखइ	२	२	२	२	देखत तब	७	७	देखहिं (२)

१—(३) में पूर्व का पाठ 'ब्याकुल कीन्हे' था।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'बिचल' था, 'च' को हरताल लगाकर 'क' बनाया गया, और वही संशोधित पाठ (२) में उतर आया।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-४६-१	सकल मरम रघुनायक	२	२	२	२	यह सब मरम राम बिभु	७	७	७
६-४७-४	संसय	२	२	२	२	२	दुख सब	६	२
६-४७-५	हरषि	२	२	२	२	२	कोपि	६	६
६-४७	मारे कछु घायल	२	२	२	२	घायल कछु रन परे	७	७	७
६-४७	भालु बलीमुख	२	२	२	२	मर्कट भालु भट	७	७	७
६-४८-३	सचिव	२	२	२	२	२	सुभट	२	६
६-४८-८	गायो, पायो	२	२	२	२	गावा, पावा	७	७	७
६-४८	सिव बिरंचि जेहि सेवहिं	२	२	२	२	जेहि सेवहिं सिव कमलभव	७	७	७
६-४९-२	मुँह	२	मुख	३	३/२	२	३	३	३
६-४९-४	कृपानिधाना	२	२	२	२	२	श्री भगवाना	२	६
६-४९	उतर्‌यो बीर दुर्ग ते	२	२	२	२/उतरि बीर-बर दुर्ग ते	उतरि बीर-बर दुर्ग ते	उतरि दुर्ग ते बीर बर(७)	६	उतरि बीर तब दुर्ग ते (७)
६-५०-३	सबहि	२	२	२	२/सबहि	सठहि	७	७	७
६-५०-४	क्रोध	२	२	२	२	२	कोप	६	६
६-५०-७	जहँ तहँ भागि चले	२	२	२	२	भागे भय व्याकुल	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८,लं०२)
६-५०	दस दस सर सब मारेसि	२	२	२	२	मारेसि दस दस बिसिख सब	७	७	७
६-५०	करि गर्जा मेघनाद बलबीर	२	२	२	२	गर्जत भएउ मेघनादू रनधीर	७	७	७
६-५१-२	महा सैल एक तुरत	२	२	२	२	महा महीधर तमकि	७	७	७
६-५१-५	रघुपति निकट	२	२	२	२	राम समीप	७	७	७
६-५१-७	प्रताप	२	२	२	२	२	प्रभाउ	२	६
६-५२	माँगि	२	२	२	२	माँगी	माँगेउ	६	६
६-५२	क्रुद्ध होइ	२	२	क्रुद्ध ह्वै(२)	४/२	सकोप अति	७	७	सरोप तब
६-५४	सेष	२	२	२	२	अनंत	७	७	७
६-५५	राम पदार-बिंद	२	२	२	२	रघुपति चरन सरोज	७	७	७
६-५६-४	रोकनपारा	२	२	रोकनिहारा	४	४	४	४	४
६-५६-५	मृषा	२	२	२	२/वृथा	वृथा	७	७	२
६-५६-७	मैं तैं मोर मूढ़ता	२	२	२	२	अहङ्कार ममता मद	७	७	७
६-५६-७	सूतत	२	२	२	२	सोवत	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१)	(८, लं०२)
६-५८-२	कपि	२	२	२	२	२	प्रभु	२	६
६-५८-३	कपि	२	२	२	२	सो	७	७	७
६-५८	सायक	२	२	२	२	२	सर तकि	६	६
६-५९-२	तब	२	२	२	२	२	उठि	६	६
६-६०-२	समास	२	२	२	२	२	संक्षेप	समस्त (२)	६
६-६०/१	[दोहा है]	२	२	२	२	[चौपाई है]	७	७	७
६-६०	मन महँ जात सराहत	२	२	२	२	२	जात सराहत मनहि मन	६	६
६-६१-११	मुँह	२	२	२	२	२	मुख	६	६
६-६१	प्रलाप	२	२	२	२	बिलाप	७	७	७
६-६२-६	आवा	२	२	२	२	गयऊ	७	७	७
६-६२-६	बिबिध जतन करि ताहि जगावा	२	२	२	२	करि बहु जतन जगावत भयऊ	७	७	७
६-६२-८	कहु	२	२	२	२	२	सुनु	६	६
६-६३-६	कहा, निबंहा	२	२	२	२	कहेऊ, निबंहेऊ	७	७	७
६-६३-७	मैं	२	२	२	२	२	निज	६	२
६-६३	सुमिरत	२	२	२	२	सुमिरि मन	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१)	(८,लं०२)
६-६४-३	श्राएउ	२	२	२	२	२	गएऊ	६	६
६-६४-३	परेउ चरन निज नाम सुनाएउ	२	२	२	२	२	पद गहि नाम कहत निज भएऊ	६	६
६-६५-१	चला	२	२	२	२	२	फिरा	६	२
६-६५-४	उठाइ	२	२	२	२	उपारि	७	७	७
६-६५-५	एक एक	२	२	एकहि	४/२	४	२	४	४
६-६५-६	मुर्‌यौ, टर्‌यौ	२	२	२	२	मुरै, टरै	७	७	७
६-६५-६	टार्‌यौ, मार्‌यौ	२	२	२	२	टारे, मारे	टारा, मारा	६	६
६-६५	मुरछित	२	मुर्छित (२)	२	२	घाय बस	७	७	७
६-६६-५	सुग्रीवहु	२	२	२	२	कपिराजहु	७	७	७
६-६६-७	गहेउ चरन गहि भूमि पछारा	२	२	२	२	गहेसि चरन गहि धरनि पछारा	७	७	७
६-६६-८	जयति जयति जय कृपा-निधाना	२	२	२	२	जय जय कारुनीक भगवाना	७	२	७
६-६६-९	जिश्र	२	२	२	२	२	सोइ	सो (६)	सो (६)
६-६६	तासु	२	२	२	२	जो तासु	७	जो ताहि(७)	ते तासु(७)

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-६६	छांड़ेन्हि	२	डारेन्हि	३	३/२	३	२	डारहिं(३)	छांड़ेसि (२)
६-६७-६	सब	२	२	२	२	२	रन	६	२
६-६७-७	बिडारी	२	२	२	२	२	बितारी	२	बिदारी(२)
६-६७	सुनु सुग्रीव बिभीषन	२	२	२	२	सुनु सौमित्र कपीस तुम्ह	७	७	७
६-६७	अनुज	२	२	२	२	सकल	७	७	७
६-६८-१	साजि	२	२	२	२	बिसिख	७	७	कठिन
६-६८-१	अरि दल दलन	२	२	२	२	मृगपति ठवनि	७	७	७
६-६८-४	जहं तहं चले बिपुल	२	२	२	२	अति जब चले निसित	७	७	७
६-६८-७	जलद	२	२	२	२	२	बनद	२	मेघ
६-६८	रघुबीर निषंग	२	२	२	२	रघुपति के त्रोन	७	७	७
६-६९-१	हतिछन मांझ निसाचर	२	२	२	२	हनी निमिष महं निसिचर	७	७	७
६-६९-२	भा अति क्रुद्ध महा	२	२	२	२	२	भएउ क्रुद्ध दारुन	६	६
६-६९-८	कपि	२	२	२	२	चलि	भट	६	६

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-६९	महानाद करि गर्जा	२	२	२	२	गर्जत धाएउ बेग अति	७	७	७
६-७०	करि चिक्का घोर अति	२	२	२	२	करि चिकार अति घोरतर	७	करि चिकार अति घोर रव	करि चिकार अति घोर रव
६-७१-३	मुख सन्मुख	२	२	२	२	२	सनमुख सो	२	२
६-७१-७	[अर्द्धाली है]	२	२	२	२	[नहीं है]	७	२	७
६-७१-९	सुर	२	२	२	२	२	नभ	६	६
६-७१-९	अस्तुति करहिं सुमन बहु	२	२	२	२	जय जय करहि सुमन सुर	जय जय करि प्रसून सुर	७	६
६-७१ छं०	अरुन	२	२	२	२	रुचिर	७	७	७
६-७१	मलाकर	२	२	२	२	मलायतन	७	७	७
६-७२-३	सुकृत	२	२	२	२	धर्म	७	७	७
६-७२	मायामय	२	२	२	२	२	माया रचित	माया रच्यो(७)	मुनि स्रवन श्रम
६-७२	अट्टहास करि	२	२	२	२	प्रलय पयोद जिमि	७	७	७
६-७३-३	दस दिसि रहे बान नभ	२	२	२	२	रहे दसहु दिसि सायक	७	७	७
६-७३-४	सुनिअ धुनि	२	२	२	२	सुनहिं कपि	७	[illegible] सुनि	[illegible] सुनि
६-७३-१३	प्रभुहि	२	२	२	२	आपु	२	७	२

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८,लं०२)
६-७३-१३	बंधायो	२	२	२	२	बंधावा	७	७	७
६-७३-१३	नागपास देवन्ह भय पायो	२	नागपास देवन्ह दुख पायो	३	३/२	देखि दसा देवन्हि भय पावा	७	७	देखि दसा देवन्हि दुख पावा (७)
६-७३	गिरिजा	२	२	२	२	२	खगपति	६	६
६-७३	सो कि बंध तर आवै	२	२	२	२	सो प्रभु आव कि बंध तर	७	७	७
६-७४-५	अधम	२	२	२	२	पतित	७	२	७
६-७४-६	तरल	२	२	२	२	२	तीव्र	६	६
६-७४-७	भूमि	२	२	२	२	२	धरनि	६	६
६-७४	खगपति सब धरि खाए	२	२	२	२	पन्नगारि खाए सकल	७	७	७
६-७४/१	माया नाग बरूथ	२	२	२		छन महं ब्याल बरूथ	७	७	७
६-७४	माया बिगत भए सब	२	२	२	२	भए बिगत माया तुरत	७	७	७
६-७५-३	इहां बिभीषन मंत्र बिचारा	२	२	२	२	सो सुधि पाइ बिभीषन कहइ	७	७	७
६-७५-३	सुनहु नाथ बल अतुल उदारा	२	२	२	२	सुनु प्रभु समाचार अस अहइ	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-७५-५	पुनि	२	२	२	२	रिपु	७	७	सो
६-७५-८अ	[अर्द्धाली है]	२	२	२	२	[नहीं है]	७	७	७
६-७५-९	सुग्रीव	२	२	२	२	२	कपिराज	६	६
६-७५	रघुपति चरन नाइ सिर	२	२	२	२	रघुपति चरनहि नाइ सिर	बंदि राम पद कमल जुग	६	६
६-७५	सुभट	२	२	२	२	२	रिषभ	२	२
६-६६-१	[अर्द्धाली है]	२	२	२	२	२	[नहीं है]	२	२
६-७६-२	कीन्ह कपिन्ह सब	२	२	२	२	२	तब कीन्हे कृत	६	६
६-७६-१४	लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा	२	२	२	२	अब बध उचित कपिन्ह भय पावा	७	२	७
६-७६	धन्य धन्य तव जननी	२	२	२	२	धन्य सक्रजित मातु तव	७	७	२
६-७७-३	रघुनाथ	२	२	२	२	रघुबीर	७	×	२
६-७७	दसकंठ बिबिध बिधि	२	२	२	२	लंकेस अनेक बिधि	७	७	७
६-७७	जगत	२	२	२	२	प्रपंच	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-७८-१	अति पावन	२	२	२	२/सुभ पावन	२	सुभ भावन	२	२
६-७८ छं०	बोलहिं	२	२	२	रोवहिं/२	५	५	५	५
६-७९-८	प्रलय समय	२	२	२	२	महाप्रलय	७	प्रलय काल	७
६-७९	राम हित	२	२	२	राम कहि/२	रघुपतिहि	७	५	७
६-८०	सुनि प्रभु बचन बिभीषन	२	२	२	२	सुनत बिभीषन प्रभु बचन	७	७	७
६-८०	एहि मिस. मोहि उपदेसे	२	२	२	२	एहि बिधि मोहि उपदेसे	एहि मिस मोहि उपदेस दिअ	६	६
६-८०	दसकंधर	२	२	२	२	२	दसकंठ भट	६	६
६-८१-६	उपारहिं, डारहिं	२	२	२	२	२	उपाटहिं, डाटहिं	२	२
६-८१-७	ढारि[1]	२	डारि	३	३	३	टारि	३	६
६-८१	बिचलत देखिसि	२	२	२	२	बिकल बिलोकि तेहिं	बिचल बिलोकि तेहिं	६	६
६-८१	रथ चढ़ि चलेउ दसानन	२	२	२	२	चलेउ दसानन कोपि तब	७	७	७

१—(१) में पूर्व का पाठ 'डारि' था, उसको हरताल लगाकर 'ढारि' बनाया गया, उसी से 'ढारि' (२) में भी उतर आया।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/ ५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-८२-४	रहा	२	२	२	२	२	महा	२	६
६-८२	निज दल बिकल देखि कटि, कसि	२	२	२	२	निज दल बि-कल बिलोकि तेहिं, कटि	बिचलत देखि अनीक निज, कटि	६	६
६-८२	क्रुद्ध होइ	२	२	२	२	सरोष तब	७	७	७
६-८३-४	डारे	२	२	२	२	मारे	२	२	२
६-८३-७	धरनि	२	२	२	२	अवनि	७	७	७
६-८३	भवन	२	भुवन	३	२	३	२	३	२
६-८३	देखि पवन सुत धाएउ	२	२	२	२	देखत धाएउ पवनसुत	७	७	७
६-८३	आवत कपिहि हन्यो तेहिं	२	२	२	२	आवत तेहिं उर महं हतेउ	७	७	७
६-८४-८	पुनि कोदंड बान गहि धाए	२	२	२	२	२	धरि सर चाप चलत पुनि भए	६	६
६-८५-८	रिपु सनमुख अति आतुर आए	२	२	२	२	२	रिपु समीप अति आतुर गए	६	६
६-८४	राम बिरोध बिजय चह	२	२	२	२/राम बिरोधी बिजय चह(२)	बिजय चहत रघुपति बिमुख	जय चाहत रघु-पति बिमुख	६	६
६-८५-३	नाथ	२	२	२	२	देव	७	७	दूत,

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ल०१)	(८, लं०२)
६-८५-८	मारा	२	२	२	२/मारेउ	मारेउ	७	७	७
६-८५ छं०	करि कोप कपि	२	२	२	२	कपि कोपि तब	७	७	७
६-८५	जज्ञ बिधंसि कुसल कपि	२	२	२	२	जगि बिधंसि करि-कुसलसब	मख बिधंसि कपिकुसलसब	६	६
६-८५	निसाचर	२	२	२	२	लंकपति	७	७	७
६-८६-५	अस्तुति	२	२	२	२	२	बिनती	६	६
६-८६	सोभा देखि हरषि सुर	२	२	२	२	हरषे देव बिलोकि छबि	७	७	७
६-८६	जय जय जय करुनानिधि	२	२	२	२	जय जय प्रभु गुन ज्ञान बल	७	७	७
६-८६	छबि बल गुन आगार	२	२	२	२	धाम हरन महिभार	७	७	७
६-८७-३	जनु दह दिसि	२	२	२	२	जनु दस दिसि	२	जनु चहुंदिसि(२)	मानहुं घन
६-८७-४	गर्जहिं	२	२	२	२	गर्जत	७	७	७
६-८७-१०	भारी	२	२	बारी	२	४	२	४	४
६-८७ छं०	चली	२	२	२	२	बढ़ी	७	चलेहु	७
६-८७	देखि डरहिं तहं	२	२	२	२	देखत डरहिं तेहि	७	देखत अपडरहिं	७
६-८८-१०	चल्लहिं	२	डोल्लहिं	डोलहिं(३)	३	३	२	३	३
६-८८ छं०	भटन्ह ढहावहीं	२	२	२	२/सुरपुर पावहीं	सुरपुर पावहीं	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१)	(८,लं०२)
६-८८ छं०	बानर निसाचर निकर मर्दहिं	२	२	२	२	निसिचर बरूथ बिमर्दि गर्जहिं	७	७	७
६-८८ छं०	रामबल दर्पित भए	२	२	२	२	भालु कपि दर्पित भए	७	७	७
६-८८	रावन हृदय बिचारा	२	२	२	२	हृदय बिचारेउ दसबदन	७	७	७
६-८९-३	हरषि	२	२	२	२	बिहँसि	७	७	७
६-८९-३अ	[अर्द्धाली है]	२	२	२	२	[नहीं है]	७	२	७
६-८९-६	लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची	२	२	२	२	सब काहू मानी करि साँची	७	७	७
६-८९ छं०	बहु राम लछिमन देखि मर्कट	२	२	२	२	बहु बालिसुत लछिमन कपीस	७	७	७
६-८९ छं०	भालु मन अति अपडरे	२	२	२	२	बिलोकि मर्कट अपडरे	७	७	७
६-८९ छं०	मर्कट	२	२	२	२	बानर	७	७	७
६-९०-२	धावा	२	२	२	आवा	५	५	५	५

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-९०-५	बिराध	२	२	२	२	२	कबंध	६	६
६-९०-९	बिहंसि बचन कह	२	२	२	२	बिहंसि कहेउ तब	७	७	×
६-९०	बिहंसा	२	२	२	२	बिहंसेउ	बिहंसि कह	६	६
६-९०	डरे	२	२	२	२	२	डरेहु	६	२
६-९१-३	पावक सर	२	२	२	२	अनल बान	७	७	७
६-९१-४	चलाई	२	२	२	२	पठाई	७	७	२
६-९१	तानेउ चाप	२	२	२	२	तानि सरासन	७	७	७
६-९२-१३	बीसा	२	सीसा	३	३	३	३	३	३
६-९३-४	परेऊ, दिनकर दुरेऊ	२	२	२	२	२	परा, दिनमनि दुरा	२	६
६-९३-८	सुग्रीव	२	२	२	२	हनुमान	७	७	७
६-९३ छं०	कर कालिका गहि	२	२	२	२	२	गहि कालिका कर (२)	६	६
६-९३	पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ	२	२	२	२	पुनि रावन अति कोप करि	७	७	७
६-९३	छांड़ी	२	२	२	२	छांड़िसि	७	७	७
६-९४-१	अति घोरा	२	२	२	२	खर धारा	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-९४-१	प्रनतारति-भंजन पन मोरा	२	२	२	२	प्रनतारतिहर बिरिदु संभारा	७	७	७
६-९४ छं०	दर्पित	२	२	२	२	गर्बित	७	७	७
६-९४	सो अब भिरत काल ज्यों	२	२	२	२	२	भिरत सो काल समान अब	लरत—(६)	६
६-९५-४	कपि	२	२	२	२	तेहि	७	७	७
६-९५	तब रघुबीर प्रचारे	२	२	२	२	राम प्रचारे बीर तब	७	७	७
६-९५	देखि	२	२	२	२	बिलोकि	७	७	७
६-९६-३	जहँ तहँ भगे भालु अरु कीसा	२	२	२	२	भागे भालु बिकल भट कीसा	७	७	७
६-९६-४	भागे बानर	२	२	२	२	चले बलीमुख	७	७	७
६-९६	सजि सारंग एक सर	२	२	२	२	सजि बिसिखासन एक सर	७	खैंचि सरासन स्रवन लगि	७
६-९७-५	अस्तुति करत देवतन्ह	२	अस्तुति करत देव तेहिं	३	३/२	करत प्रसंसा सुर तेहिं	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-९७-६	पर	२	पथ	३	३/२	२	३	३	३
६-९७	रावन	२	२	२	२	लंकेस	७	७	७
६-९७.	काटे बहुत बढ़े पुनि	२	२	२	२	काटे भए बहोरि तेइ	काटे भए बहोरि जिमि	६	६
६-९७	जिमि तीरथ कर	२	२	२	२	२	कर्म मूढ़ कर	६	६
६-९८-३	बानरराज दुबिद	२	२	२	२	२	दुबिद कपीस पनस	६	६
६-९८-७	रुधिर देखि विषाद उर भारी	२	२	२	२	रुधिर बिलोकि सकोप सुरारी	७	७	७
६-९८ छं०	गहे	२	गहि	३	३/२	३	२	३	३
६-९८	मुरुछा बिगत	२	२	२	२	गै मुरुछा तब	७	७	७
६-९९-११	कर	२	२[1]	करत	करति/४	४	४	४	२
६-९९	रावनहि	२	२	२	२	२	रावन कहुं	६	रावन कें
६-१००-३	सिराति न राती	२	न राति सिराती	३	३/२	२	बिहाति न राती	२	६

१—(३) में पूर्व का पाठ 'करत' है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१)	(८, लं०२)
६-१०१	ताके गुन-गन कछु कहे	२	२	२	२	कहं तासु गुनगन कछुक	७	७	७
६-१०१	जिमि निज बल अनुरूप ते	२	२	२	२	निज पौरुष अनुसार जिमि	७	७	७
६-१०१	माछी उड़ै अकास	२	२	२	२	मसक उड़ाहिं अकास	७	७	७
६-१०२-५	नाभिकुंड पियूष	२	२	२	२	नाभीकुंड सुधा	७	७	७
६-१०२-७	असुभ होन लागे	२	२	२	२	२	असगुन होन लगे	६	६
६-१०२ छं०	रुदहिं	२	२	२	२	स्रवहिं	७	७	७
६-१०२ छं०	नभ सुर	२	२	२	२	मुनि सुर	सुर मुनि (७)	६	६
६-१०२	खैंचि सरासन स्रवन लगि	२	२	२	२	आकरषेउ धनु कान लगि	७	२	७
६-१०३-३	दुइ	२	२	जुग	४/२	४	४	४	४
६-१०३-६	धरनि परेउ	२	२	२	२	परेउ बीर	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं०२)
६-१०३-८	जाई	२	२	२	आई/२	५	५	५	५
६-१०३ छं०	सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल	२	२	२	२	सुर सिद्ध मुनि गंधब हरषे	७	७	७
६-१०३	भालु कीस सब हरषे	२	२	२	२	हरषे बानर भालु सब	७	७	७
६-१०४-३	छूटे कच नहिं बपुष संभारा	२	२	२	२	छूटे चिकुरन चीर संभारा	छुटे चिकुरन सरीर संभारा	६	७
६-१०४	नहिं	२	२	२	२	को	७	७	७
६-१०४	जोगिबृंद दुर्लभ गति	२	२	२	२	२	मुनि दुर्लभ जो परम गति	६	६
६-१०५-४	देखी	२	२	२	२	बिलोकि	७	७	७
६-१०५-५	तब प्रभु अनुजहिं	२	२	२	२	२	राम अनुज कहुं	६	६
६-१०५-६	तेहि बहु बिधि	२	२	२	२	जाइ ताहि	७	७	७
६-१०५-६	समुझायो, आयो	२	२	२	२	समुझायउ, आयउ	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं० १)	(८,लं० २)
६-१०५	मंदोदरी आदि सब	२	२	२	२	मयतन-यादिक नारि सब	७	७	७
६-१०५	रघुपति	२	२	२	२	रघुबीर	७	७	७
६-१०६-६	सारि	२	२	२	२	२	कीन्ह	६	६
६-१०६	प्रभु के बचन स्रवन सुनि	२	२	२	२	सुनत राम के बचन मृदु	७	७	५
६-१०६	बार बार सिर नावहिं	२	२	२	२	बारहिं बार बिलोकि मुख	७	७	७
६-१०७-४	पुनि	२	२	२	२	२	तिन्ह	६	६
६-१०७	कोसलपति	२	२	२	२	रघुबंसमनि	७	७	७
६-१०८-३	सुनि संदेस भानुकुल भूषन	२	२	२	२	सुनि बानी पतंग कुलभूषन	७	७	७
६-१०८-६	सिखायो	२	२	२	२	सिखाए	सिखावा	६	६
६-१०८-६	तिन्ह बहु बिधि	२	२	२	२	सादर तिन्ह	७	७	७
६-१०८-६	मज्जन करवायो	२	२	२	२	सीतहि अन्हवाए	सीतहि अन्हवावा	६	६

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-१०८-७	बहु प्रकार	२	२	२	२	२	दिव्य बसन	६	६
६-१०८-१२	देखहुँ	२	२	२	२	देखहिं	७	७	७
६-१०८	करुनानिधि	२	२	२	२	करुनायतन	७	७	७
६-१०८	सब	२	२	२	२/सकल	सकल	७	७	७
६-१०९-३	नीति	२	नुति	जुति	३/जुत	नय	३	३	३
६-१०९-५	पावक प्रगटि	२	२	२	२	२	प्रगटि कृसानु	६	६
६-१०९-६	पावक प्रबल देखि	२	२	२	२	प्रबल अनल बिलोकि	७	७	७
६-१०९ छं०	धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग	२	२	२	२	तब अनल भूसुर रूप कर गहि सत्य श्री श्रुति	७	७	७
६-१०९	बरषहिं सुमन हरषि सुर	२	२	२	२	हरषि सुमन बरषहिं बिबुध	७	७	७
६-१०९	सुरबधू	२	२	२	२	अपछरा	७	७	७
६-१०९	जनकसुता	२	२	२	२	श्री जानकी	७	७	७
६-१०९	देखि भालु कपि हरषे	२	२	२	२	देखत हरषे भालु कपि	७	७	७
६-११०-९	यह खल मलिन सदा	२	२	२	२	२	रावन पाप मूल	६	६

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-११०-१०	अधम सिरो-मनि तव पद पावा	२	२	२	२	२	सोउ कृपाल तव धाम सिधावा	६	६
६-११०-११	प्रभु	२	२	२	२	२	तव	६	६
६-११०	अति सप्रेम तनु पुलक बिधि	२	२	२	२	अतिसय प्रेम सरोजभव	७	७	७
६-१११-१४	मुधा	२	२	२	२	महा	७	७	७
६-१११-१५	न गो	२	२	न सो	४	४	४	४	४
६-१११	चतुरानन	२	२	२	२	बिधि भाँति बहु	७	७	७
६-१११	सोभा सिंधु बिलोकत	२	२	२	२	बदन बिलोकत राम कर	७	७	७
६-११२-२	अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा	२	२	२	२	सहित अनुज प्रनाम प्रभु कीन्हा	७	७	७
६-११२	सोभा देखि हरषि मन	२	२	२	२	छबि बिलोकि मन हरष अति	७	७	७
६-११४-३	खगेस	२	२	२	२	खगपति	७	७	७
६-११४-७	मुक्त भए छूटे भव बंधन	२	२	२	२	गए परम पद तजि सरीर रन	गए ब्रह्म पद तजि सरीर रन	६	६

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-११४	प्रभु	२	२	२	२	२	राम	६	६
६-११५	कृपासिन्धु मैं आउब	२	२	२	२	२	तब मैं आउब सुनहु प्रभु	६	×
६-११६-७	पुर	२	२	२	२	२	प्रभु	२	×
६-११६	भरत दसा सुमिरत मोहिं	२	२	२	२	दसा भरत कै सुमिरि मोहिं	७	७	×
६-११६	गात	२	२	२	२	सरीर	७	७	×
६-११६	बीते अवधि जाहुँ जौ	२	२	२	२	२	जौ जैहें बीते अवधि	६	×
६-११६	सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु	२	२	२	२	प्रीति भरत कै समुझि प्रभु	७	७	×
६-११६	पाइहहु	२	२	२	२	सिधाइहहु	७	७	×
६-११७	मुनि जेहि ध्यान न पावहिं	२	२	२	२	ध्यान न पावहिं जाहि मुनि	७	७	×
६-११८-२	देखि सब	२	२	२	२	देखि प्रभु	७	भालु कपि	×
६-११८-५	डरपहु	२	२	डरेहु	डरपेहु/२	४	डरहु	६	×
६-११८-९	कहूँ	२	२	२	२	२	कबहुँ	६	×

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-११८	सहित चले, बिनय बिबिध बिधि भाखि	२	२	२	२	समेत तब चले बिनय बहु-भाखि	७	७	×
६-११८/२	कपिपति नील रीछपति	२	२	२	२	जामवंत कपि-राज नल	७	७	×
६-११८	अंगद नल हनुमान	२	२	२	२	अंगदादि हनुमान	७	७	×
६-११९-७	चलि	२	२	२	२	बह	२	२	×
६-११९	इहां सेतु बाँध्यों अरु	२	२	२	२	२	यह देखु सुंदर सेतु जहं	देखहु सुंदरि सेतु एह (६)	×
६-११९/१	कृपानिधि	२	२	२	२	कृपायतन	७	७	×
६-११९/२	कृपासिन्धु	२	२	२	२	[दोहा नहीं है]	करुनासिंधु	७	×
६-१२०-१	तुरत	२	२	२	२	सपदि	७	७	×
६-१२०-७	निरखत	२	२	२	२	देखत	७	७	×
६-१२०-९	पुनि देखु	२	२	२	२	देखेउ	२	देखा (७)	×
६-१२०	सीता सहित अवध कहँ	२	२	२	२	तब रघुनायक श्री सहित	७	७	×
६-१२०	कीन्ह कृपालु प्रनाम	२	२	२	२	अवधहि कीन्ह प्रनाम	७	७	×

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-१२०	सजल नयन पुलकित तन	२	२	२	२	सजल बिलोचन पुलकि तन	७	७	×
६-१२१-६	सुना प्रभु	२	२	सुन्यौ प्रभु	४/२	२	सुना हरि	२	×
६-१२१-७	तब	२	जब	२	२	३	३	३	३
६-१२१	रघुबीर के चरित जे सुनहिं	२	२	२	२	रघुपति चरित सुनहिं जे, सदा	७	७	७
६-१२१/२	श्री रघुनाथ	२	२	२	२	श्री रघुनायक	७	७	७
६-१२१/२	नाहिं न	२	२	२	२	नहिं कछु	७	७	७

उत्तर कांड

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, उ०)
७-०/४	करन	२	२	२	२	२	करैं	२
७-१-१	रहा	रहेउ	१	१	१	२	१	रहे(१)
७-२-४	सुजन	२	२	२	२	२	सो जन	६
७-२-५	सहित अनुज	२	२	२	अनुज सहित	५	५	५
७-२-५	प्रभु	२	२	२	२	२	पुर	६
७-२-६	पाइ	२	२	२	२	पाव	७	७
७-२-१३	एह	२	२	२	२/एहि	यहि	एहि(७)	२
७-२ छं०	सिंधु	२	२	२	२	२	२[1]	पाथ
७-२	चलेउ	२	चले	३	३/२	३	२	३
७-३-६	चलिं	२	चलीं(२)	२	२/३	चलि सब	२	३
७-३-१०	सरऊ	२	सरजू	३	३	३	२	३
७-४-१	सुधाकर[2]	१	मनोहर	३	३/२	३	३	३

१—यह पाठ-संशोधन (६) में मिलता है, जो स्वतः प्रतिलिपिकार की लिखावट में है। पूर्व का पाठ स्पष्ट नहीं है।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'मनोहर' था, उसको हरताल लगाकर 'सुधाकर' बनाया गया, और यही संशोधित पाठ (२) में उतर आया।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,उं०)
७-४-४	अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ	२	२	२	२	अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ	७	७
७-५-३	धरे	२	२	२	२	गरे	७	२
७-५ छं०	सुषमा	२	परमा	२	२	३	३	३
७-५	लछिमन भरत मिले तब	२	२	२	२	लछिमन भेंटे भरत पुनि	२	२
७-६-७	महिं	२.	२	महं	४	२	४	४
७-६	कैकइ कहं पुनि पुनि	२	कैकेई कहुं पुनि	३	२	२	३	२
७-७-२	होइ	२	होहु	होउ	४/२	४	४	४
७-८-५	लागहु सकल	२	२	२	२	२	लागन कुसल	२
७-८	बर	२	२	नर	४	४	२	४
७-९	गगन	२	२	२	२	नाक	७	२
७-१०-३	तब	२	जब	२	२	३	३	२
७-१०-३	गए, भए	२	गयऊ, भयऊ	२	२	३	२	२
७-१०-४	समुदाई	२	२[१]	सुभदाई	४	४	४	सुखदाई

१—(३) में पूर्व का पाठ 'सुभदाई' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, च०)
७-१०	हरषाइ	२	२	२	२	सिरनाइ	७	७
७-११-१	झर	२	झरि	३	३	३	३	३
७-११-८	देखि सत लाजे	२	२[1]	२	२.	कोटि छबि छाजे	७	कोटि छबि राजे (७)
७-१२ छं०	सुर	२	२	२	२	मुनि	७	७
७-१२	गए	२	२	२	२	गे	२	२
७-१३ छं०	भ्रमत भ्रमित दिवस निसि	२	२	भ्रमत स्रमित दिवस निसि	२	४	४	भमिंत देवस निसि प्रभु
७-१३ छं०	नवल नित	२	२	नव ललित	२	२	२	२
७-१४-७	मनजात	२	२[2]	मनुजात	२	४	२	जमुजाद
७-१४-१८	गद	२	२	मद	४/२	४	४	४
७-१५-१	भय	२	२	२	२	दाप	२	७
७-१५-५	नई	२	२	२	२	नितई	२	७
७-१५	देवस तिन्ह	२	२	२	२	दिवस निसि	२	७
७-१६-१	मन नाहीं	२	२	मन माहीं	४	४	४	४
७-१८-६	नाथ .	२	२[3]	जानि	४/२	४	२	४

१—(३) में पूर्व का पाठ 'कोटि छबि लाजे' था। ३—(३) में पूर्व का पाठ 'जानि' था।
२—(३) में पूर्व का पाठ 'मनुजात' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ३०)
७-१९	सैं	२	२	२	२	सन	२	७
७-१९	चित्त खगेस राम कर	२	२	२	२	चित खगेस अस राम कर	२	चित खगेस सुनि राम कर (७)
७-२०	सुखहि	२	सुख	३	३/२	२	३	३
७-२१-२	नीती	२	२	२	२	२	रीती	६
७-२१-७	घृनी[१]	२	पुनी	३	३/२	३	२	२
७-२२-५	मुनि बरद सुसीला	मुनि बर दमसीला[२]	१	२	१/२	२	१	मुनि बार सुसीला
७-२२	सुनिअ अस	२	२	२	२	२	अस सुनिअ जग	अससुनिअ(६)
७-२३-५	बहहीं[३]	२	चवहीं	३	३	३	३	३
७-२४-९	ब्रह्मानि बंदिता	ब्रह्मादि बंदिता[४]	१	१	१	२	१	ब्रह्मादिक बंदित
७-२६-१	सरऊ	२	सरजू	३	३	३	२	३

१—(१) में पूर्व का पाठ 'पुनी' था, उसको हरताल लगाकर 'घृनी' बनाया गया, और (२) में यही संशोधित पाठ उत्तर आया।

२—(१) में भी पूर्व का पाठ 'बरद सुसीला' था।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'चवहीं' था, उसको हरताल लगाकर 'बहहीं' बनाया गया, और उसी से (२) में भी 'बहहीं' पाठ उतर आया।

४—(१) में भी पूर्व का पाठ 'ब्रह्मानि बंदिता' था।'

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, उ०)
७-२६-७	गृह गृह होहिं	२	२	२	२	२	होहिं भेद	२
७-२७ छं०	खचे	२	२	२	२	पचे	२	७
७-२७	जे निरख मुनि ते मन	२	२	जे निरखत मुनि मन	२	४	४	निरखत मन मुनिमन(४)
७-२८-६	देखहिं	२	२	२	२/देखत (२)	२	निरखहिं	२
७-२८ छं०	रुचिर	२	२[1]	चारु	२	२	४	४
७-२९-४	तिन्हकी	तिन्हके[2]	१	१	१/२	१	जिन्हकी	१
७-२९-५	बसहिं	२	२	२	२	२	सबहिं	२
७-३०-५,६	[हैं]	२	२	२	२	२	[नहीं हैं]	२
७-३०	रहहिं	२	२	२	२	२	रह	२
७-३१-२	बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह	२	२[3]	बहुतेहु सुख बहुतन्ह	बहुतन्ह सुख बहुतन्ह/२	५	बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह	६
७-३३-८	पाइब	२	२	पाइअ	४	४	४	४
७-३३	संग	२	२	२	२	पंथ	२	७
७-३३	सद्ग्रंथ	२	२	२	२	२	सब ग्रंथ	६

१—(३) में पूर्व का पाठ 'चारु' था।
२—(१) में भी पूर्व का पाठ 'तिन्हकी' था।
३—(३) में पूर्व का पाठ 'बहुतेहु सुख बहुतेन्ह' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, उ०)
७-३४-३	जय जय गुन सागर	२	२	२	२	२	जयगुननिधि सागर	२
७-३४-४	अति अनु-पम	२	२[1]	अज अनु-पम	अनुपम अज(४)	५	५	४
७-३४	मन परिपूरन	२	२	२	२	२	मनपर पूरन	२
७-३५-२	सुरधेनु	२	२	२	२	२	धुकधेनु	×
७-३७-२	पुरानन्ह	२	२	२	२	२	पुरानन्हि	२
७-३७	घनहि	२	२	२	२	२	घनन्हि	६
७-३८-६	जनयित्री	२	२	२	२	जनजंत्री	२	७
७-४०-८	परद्रोह	२	२	२	२	सुरद्रोह	७	७
७-४१-८	परहिं	२	२	२	२	२	परिहिं	२
७-४२-६	अतिसय	२	२	२	२	२	सुर अति	अति सो(२)
७-४३-२	गुरु मुनि अरु द्विज	२	२	२	२	सदसि अनुज मुनि	७	२
७-४३-२	तव	२	२	भय	२	४	४	४
७-४४-३	ग्रहै	२	२[2]	गहै	४/२	४	२	४
७-४४	आत्माहन	२	२[3]	आतमहन	४	४	आत्महन(४)	४

१—(३) में पूर्व का पाठ 'अनुपम अज' था।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'गहै' था।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'आत्महन' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ३०)
७-४५-४	मोहिं प्रिय नहिं	२	२	२	२	२	प्रिय मोहिं न	६
७-४७-८	निज निज गृह गए	२	२	२	२	२	निज गृह गए सु	२
७-४८-२	पादोदक	२	२	२	२.	२	चरनोदक	६
७-४८-६	उपरोहित	उपरोहित्य[1]	१[2]	उपरोहिती	१/४	४	४	४
७-४९-५	कोइ	२	२	कोउ	४/२	४	४	४
७-५०-४	तेइ	२	जेइ	३	३/२	३	३	३
७-५०-८	सम नहिं	२	२	२	२	२	समान	६
७-५१-१	सोच	२	२	२	२	२	सोक	२
७-५१-८	ब्यलीक	२	२	२	२	बालिक	७	७
७-५२	कृपायतन	२	२	२	२	२	कृपालमइ	२
७-५३-६	निजात्मक	२	२[3]	निजातम	४/२	४	२	निलज कुल
७-५३-७	हरिचरित्र	२	२	२	२	रामचरित	२	२
७-५३	रामचरन	२	२	२	२	२	रामचरित	२
७-५५	करिहौं	२	२	२	२	कहउं मैं	२	२
७-५६-६	फिर्रौ बेरागा	२	२[4]	फिरौं बिरागा(२)	४	फिरौं बिभागा	फिरै बिरागा	२

१—(१) में पूर्व का पाठ 'उपरोहित' था।
२—(३) में पूर्व का पाठ 'उपरोहिती' था।
३—(३) में पूर्व का पाठ 'निजातम' था।
४—(३) में पूर्व का पाठ 'बिरागा' गा।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ३०)
७-५७-७	मुनहिं	२	२	२	२	२	सु।	२
७-५९-८	मोइ करहु जेहिं होइ निदेसा	२	२	२	२	सोइ करहु जो देहिं निदेसा	७	रहै न मोह निसा लवलेसा
७-६०-२	अति	२	२	२	२	उर	७	७
७-६०-५	मय जन	२	२	२	२	मय सब	२	माया
७-६१-२	बिनती	२	२	२	२	२	बिनीत	२
७-६२-१	तप	२	२[1]	जप	४/२	४	४	४
७-६२	मोहै	२	२	२	२	मोह है	२	७
७-६३-१	भुसुंडा, अखंडा	२	२[2]	२	भुसुंडी, अखंडी	५	५	५
७-६३	जेहि कै	२	२[3]	जिन्ह कै	४/२	जेहि की	२	७
७-६४-१	कारन	२	२	२	२	२	कारज	२
७-६४-३	पूग	पृंअ[4]	१	१	१	१	२	१
७-६५	जेहि	२	२	२	२	जाहि	२	२
७-६५	मन संग	२	२	२	२	सतसंग	२	२
७-६६	मिताई	२	२	२	२	मिताइ कहि	२	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'जप' था।
२—(३) में पूर्व का पाठ 'भुसुंडी, अखंडी' था।
३—(३) में पूर्व का पाठ 'जिन्ह कै' था।
४—(१) में भी पूर्व का पाठ 'पूग' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ३०)
७-६६	करि प्रभु कृत	२	२	२	२	करि प्रभु जु कृत	२	करी प्रभु
७-६६	बरनन	२	२	२	२/बरनत	बरने	बरनत	२
७-६६	ऋतु	२	अरु	३	३/२	२	कर	२
७-६७	लराई	२	२	२	२	लगाइ पुनि	२	२
७-६८-६	बरनन	२	२	२	२	२	बरनत(२)	बरना
७-६८	संदोह	२	२	२	२	२	सो मोह	२
७-६९-२	सोइ	२	२	२	२	गा	२	७
७-६९-८	सब	२	२	२	२	मम	७	७
५-६९	बानी	२	२	२	२	बानि बर	२	२
७-६९	गोप्यमपि	२	२	२	२/७	गोप्य मत	२	गुप्त मत
७-७०-८	बौरहा, दहा[१]	२	बौराहा, दाहा	३	३	३	बौरहा, दाहा	३
७-७०	मृगलोचनि के नैन[२]	२	मृगलोचनि लोचन	३	३/२	मृगनैनी के नयन	२	२
७-७१-४	को नहिं	२	२	२	२	केहि नहिं	काहि न	६

१—(१) में पूर्व का पाठ 'बौराहा' और 'दाहा' था, 'रा' और 'दा' की पाइयाँ हरताल से निकाल दी गईं, और (२) में यही संशोधित पाठ उतर आया।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'मृगलोचनि लोचन सर' था, उसको हरताल लगाकर 'मृगलोचनि के नैन सर' बनाया गया, और (२) में यही संशोधित पाठ उतर आया।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ७०)
७-७१-६	लोक	२	२[1]	नारि	लोक/२	४	२	४
७-७१-७	परिवारा	२	२	२	२	२	परिचारा	२
७-७२-३	बल	२	२	२	२	गुन	७	७
७-७२-५	अगुन अदंभ	अगुन अदभ	१	१	१	अगुन अदंभ	२	गुन अद-भाग्य
७-७२-६	निर्मम	२	२	२	२	२	निर्मल	६
७-७२	अनेक	२	२	२	२	अनेकन	२	२
७-७२	सोइ सोइ	२	२	२	२	जो जो	२	२
७-७३ ४	दिसि भ्रम	२	२	२	२	भ्रम दिसि	२	२
७-७३	जान नहिं	२	न जानहिं	३	३, २	२	२	३
७-७४	गनइ	२	गनत	३	३/२	२	२	३
७-७४	भजहु	२	२	२	२	२	भजमि	भजहि
७-७५	अतिसैसवं	२	२	अतिसय सभ	४	अतिसय सुखद	२	७
७-७६	चीर	२	२	२	२	२	चीर	२
७-७७-५	मोहिं होति अति	२	२	२	२	चरित होति मोहिं	७	७
७-७८	उआहिं	२	२	२	२	उगहिं	२	७

१—(३) में पूर्व का पाठ 'नारि था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ३०)
७-७९-१	हरि बिनु	२	२	२	बिनु हरि, २	५	५	२
७-७९-८	भुज हरि	२	२	२	२	हरि भुज	७	७
७-७९	चितएउं	२	२	२	२	चितवत	२	७
७-७९	जहाँ लागि गति	जहाँ लगें गति[1]	१	१	१/जहँ लगि-गति रहि	जहँ लगि गति रहि	१	७
७-८०	रहौं	२	२	रह्यौं	२	रहे	२	७
७-८१-५	जिनस	२	२	२	२	जिनिस(२)	२	जीव
७-८१-६	निनारी, सरऊ	२	२[2]	निहारी, सरजू	४, निनारी, सरजू	४	२	निनारी, सरजू
७-८१-७	कौसल्या सुनु ताता	२	२	२	२	कौशिल्यादिक माता	२	२
७-८१-८	अपारा	२	२	२	२	२	उदारा	६
७-८१	मैं दीख सब	२	२	२	२	२	सब दीख म(२)	सब देखेउँ
७-८१	सोइ	२	२	२	२	सो	×	२
७-८१	समीर	२	२	२	२	२	×	सरीर
७-८२-४	देखौं	२	२	२	२	देखेउं	×	७

१—(१) में भी पूर्व का पाठ 'जहाँ लागि गति' था। २—(३) में पूर्व का पाठ 'निनारी, सरजू' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ३०)
७-८३	मम बानी	२	२	२	२	मम बैन बर	×	२
७-८४-६	ऐसें	२	२	कैसे	४	४	×	४
७-८४	जेहि	२	२	२	२	जो	×	२
७-८६-६	पुनि	२	२	२	२	अरु	×	२
७-८६-७	जेहि भगति मोरि न	जेहि गति मोरि न[1]	१	१	१	१	×	१
७-८६-९	जीवहु	२	२[2]	जीवन	४/२	२	×	४
७-८७-८	भजइ	२	२	२	२	भजहि	×	७
७-८८-१	सुमिरेसु भजेसु	२	सुमिरेहु भजेहु	३	३/२	२	×	३
७-८८	जेहि	२	२	२	२	जो	×	२
७-८८	मोइ सुख	२	२	२	२	सो सुखकर	×	२
७-८८	ते नहिं गनहिं	२	२	२	२	सो नहिं गनै	×	२
७-९०-१	काम न	२	२	न काम	४/२	४	×	४
७-९०	जीव न लहइ	२	२	२	२	जिव कि लहै	×	जीव कि लहु(७)
७-९२-२	मम	२	२	२	२	सत	×	७
७-९२-२	पूग	२	पुंज	३	३	३	×	३

१—(१) में भी पूर्व का पाठ 'जेहि भगति मोरि न' था। २—(३) में पूर्व का पाठ 'जीवन' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, उ०)
७-९२-६	सम पालन	२	२	२	२/सत पालन	सत पालन	×	७
७-९२-८	धरा[१]	२	भार[२]	३	३/२	३	×	३
७-९३-२	प्रताप	२	२[३]	प्रभाव	४/२	२	×	२
७-९३-३	माना	२	२	२	२	जाना	×	७
७-९३	प्रसंसि	२	२	२	२	प्रसंसे	×	२
७-९४-६	मुधा	२	२	२	२	मृषा	×	७
७-९४	आए	२	२[४]	२	२	आयउं	×	७
७-९५-१	परम	२	२	सहित	४/२	४	×	४
७-९५	तेहितें	२	२	२	२	तातें	×	७
७-९६-२	भजै	२	भजिअ	३	३/२	२	×	२
७-९७	ग्रसे	२	२	२	२	ग्रासे	×	२
७-९७	लुप्त	२	२	२	गुप्त/२	लुपुत(२)	×	५
७-९८-१	रत सब नर	२	२	२	२	व्रत रत नर	×	व्रस नर औ
७-९८-२	बेंचक	२	२[५]	बंचक	२/४	४	×	४

१—(१) में पूर्व का पाठ 'भार' था, उसको हरताल लगाकर 'धरा' बनाया गया, और (२) में यही संशोधित पाठ उतर आया।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'धरा' था।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'प्रभाव' था।

४—(३) में पूर्व का पाठ 'आएउ' था।

५—(३) में पूर्व का पाठ 'बंचक' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, उ०)
७-९८-७	ज्ञान वैरागी	ज्ञानी सो बिरागी[1]	१	१	१/ज्ञानी वैरागी	ज्ञानी वैरागी	×	७
७-९८	पूजिअति	२	पूज्य ते	३	३/२	पूजित(२)	×	३
७-९८	मान्य तेइ	२	२	२	२	मान्यता	×	२
७-९९-३	श्रुति	२	२	२	२	गुरु	×	२
७-९९-६	क	का[2]	१	१	१/कर	१	×	कर
७-१००-३	जे कहुँ सत	२	२	२	२	जे कछु सत	×	निज कृत दोष
७-१००-५	नाना	२[3]	२	दाना	२	४	×	४
७-१००	कलि	२	२	२	२	कली	×	२
७-१०१-१	न रही	रही[4]	१	१	१/२	१	×	१
७-१०१-३	कुलवंति	२	कुलवंत	३	३/२	२	×	२
७-१०१-९	दूषक	२	२	दूषन	२	२	×	दोष के
७-१०१	बरषै[5]	२	२	२	२	बरषहिं	×	७
७-१०२	काल	२	२	२	२	कराल	×	२

१—(१) में भी पूर्व का पाठ 'ज्ञान वैरागी' ही था।
२—(१) में भी पूर्व का पाठ 'क' था।
३—(३) में पूर्व का पाठ 'दाना' था।
४—(१) में भी पूर्व का पाठ था 'न रही'।
५—(१) में पूर्व का पाठ 'बरषहिं' था उसको हरताल लगाकर 'बरषै' बनाया गया, और (२) में यही संशोधित पाठ उतर आया।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, उ०)
७-१०२	द्वापरहु	२	द्वापर	३	३/२	२	×	द्वापर महं
७-१०४-१	नित	२	कृत	२	२/३	३	×	३
७-१०४-७	काल धर्म	२	२	२	२.	काल कर्म	×	प्रभु प्रभाव
७-१०६	मंदिर	२	२	२	२	मंदिरहु	×	२
७-१०७	स्वर	२	२	२	गिरा	५	×	५
७-१०८-७	भ्रू सुनेत्रं	२	२	२	२/भ्रू त्रिनेत्रं(२)	शुभ्र नेत्रं	×	७
७-१०८	प्रभु मोपर	२	२	२	२/प्रभु मोहिं पर (२)	श्रति मोहि पर	×	२
७-१०८	भगति	२	२	२	२	भगती	×	२
७-१०८	तेहि	२	२	२	२	ता	×	२
७-१०९-५	मोहि प्रिय	२	२	२	२	मम प्रिय	×	प्रिय मम (७)
७-१०९-६	सहस अवस्य	२	सहस्र अवसि	३	३	२	×	३
७-१०९	बिंधि	२	२	२	२	सुबिंध	×	२
७-१०९	सो	२	२	२	२	सोउ	×	×
७-११०-३	चर्म	२	२	धर्म	२/४	चरम(२)	×	४
७-११०-४	तहं	तहूँ	१	१	१	तहां	×	७
७-११०-१३	ईषना	२	७	ईर्पना	४/२	४	×	न इरषा
७-११०	कृपानिधि	२	२	२	२	कृपायतन	×	२

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ३०)
७-११७	अवराधन	२	२	२	२	अवराधना	×	२
७-१११-७	मम	२	२	२	२	मोहिं	×	२
७-१११-१५	कीए, हीए	किए, हिए[1]	२	२	१	किएऊ, हिएऊ	×	१
७-१११-१५	ज्ञानिन्ह	२	२	ज्ञानिहुँ	४	ज्ञानी	×	४
७-११२-२	की होहिं	२	२[2]	की होइ	४/२	४	×	किमि होइ
७-११२-५	परमात्मा	२	२	२	२/परमारथ	परमातम(२)	×	परमारथ
७-११२-१७	बिनु तामस	पिसुनता सम[3]	१	१	१/२	२	×	२
७-११२	कंहिं	२	२	२	२	का	×	२
७-११३-४	सहन	सहत[4]	१	१	१/सहज(२)	२	×	सहज(२)
७-११३	जेंहि	२	२	२	२	जो	×	२
७-११३	बसब	२	२	२	२	बसहु	×	७
७-११४-४	हरि	२	२	२	२	प्रभु	×	७
७-११५	विपयाबस	२	२	२	२	बिपया बिबस	×	जो विपय बस
७-११५	बिबस	२	२	२	२	बिकल	×	७
७-११६-२	रीति	२	२	२	२	नीति	×	७

१—(१) में पूर्व का पाठ 'कीए, हीए' ही था।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'कि होइ' था।

३—(१) में भी पूर्व का पाठ 'बिनु तामस' ही था।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'सहन' है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ७०)
७-११६	जो जानै	२	२	२	२	जाने ते	×	७
७-११६	सु प्रबीन	२	२	२	२	परबीन	×	सो प्रबीन (२)
७-११६	अबिछीन	२	२	२	२/अवछीन	अवछीन	×	७
७-११७-१	जाइ	२	२	२	२	जात	×	७
७-११७	रूपिनी	२	२	२	२	निरूपिनी	×	निरूपन(७)
७-११७	तासु	जासु[1]	१	१	१/२	२	×	१
७-११८-४	उजियारा, निरुवारा	२	२	२	२	उजियारी, निरुवारी	×	७
७-११८-८	जाहिं	२	२	जाइ	४/२	४	×	२
७-११८	साधत	२	साधन	३	२/३	३	×	३
७-११९-१	ज्ञान पंथ	२	२	२	२	ज्ञान क पंथ	×	४
७-११९-४	भजत	२	भजन	२	२	भगति	×	२
७-१२०-१९	जोइ	२	२	२	२	जेइ	×	जो (२)
७-१२१-१०	सुभ	२	सुख	३	२	३	×	३
७-१२१-१२	बदले जे	बदले ते[2]	१	१	१/२	१	×	गहि सो नर
७-१२१-१३	जग नाहीं	२	२	२	२	कछु नाहीं	×	७

१—(१) में भी पूर्व का पाठ 'तासु' था। २—(१) में भी पूर्व का पाठ 'बदले जे' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, उ०)
७-१२१-१६	निति	२	नित	२	२	निज	×	२
७-१२१-२०	उदय	२	२	हृदय	२	२	×	२
७-१२१-२०	अनरथ[1]	२	आरति	३	३/२	२	×	आरत (३)
७-१२१-२९	तिन्हते	२	२	२	२	जाते	×	जेहिते
७-१२१-३५	डमरुआ	२	२	२	२	डमरुआ	×	७
७-१२१	ज्ञान	२	२	२	२	जोग	×	७
७-१२१	कोटिन्ह	२	२	२	२	कोटिन्हहु	×	२
७-१२२-२	गाए, पाए	२	२	२	२	गाईं, पाईं	×	गावा, पावा
७-१२२-२	हहिं	२	२	२	२	हैं	×	७
७-१२२-७	मतिपूरी	२	२	२	२	अतिरूरी	×	७
७-१२२-८	भलेहि रोग	भले हि सो रोग[2]	१[3]	भलेही रोग (२)	४/ भलेहि कुरोग	भलेहि कुरोग	×	७
७-१२३-३	मोहि से	२	२	२	२	मोहिते	×	२
७-१२३	रघुनायक	२	२	२	२/रघुनाथ कर	रघुनाथ कर	×	७
७-१२४-१	के	२	२	२	२	कर	×	७

१—(१) में पूर्व का पाठ 'आरति' था, हरताल लगाकर उसको 'अनरथ' बनाया गया, और यही संशोधित पाठ (२) में उतर आया।

२—(१) में भी पूर्व का पाठ 'भलेहि रोग' था।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'भलेही रोग' था।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, छ०)
७-१२४	मोपर सदा रहहु राम	२	मोहि तोहि पर सदा रहहु	३	३/२	मो तो पर सदा रहैं (३)	×	मम तुम पर सदा रहहु
७-१२५-३	भए, दए	२	२	२	२	भएऊ, दएऊ	×	७
७-१२५-७	परि	२	२[1]	पै	४/२	४	×	४
७-१२५-८	संत सुपुनीता	२	सुसंत पुनीता	३	३/२	२	×	३
७-१२७-४	सोइ, सोइ	२	सो, सो	३	३	३	×	२
७-१२७-५	देस सो जहं	२	२	२	२/सो देस जहां	सो देस जहां	×	७
७-१२७-७	जाकी[2]	२	पाकी	३	३	३	×	३
७-१२८-६	तेइ	२	ते	२	२	३	×	तुम्ह
७-१२८	चह	२	२	२	२/चहै	चहै	×	७
७-१२८	करौ	२	२	२	२	करै	×	७
७-१२९-१	समान	२	२	२	२	सम न	×	२
७-१२९-३	पंथाना	२	२	२	२	पथ नाना	×	७
७-१२९-५	पावा, गावा	२	२	२	२	पावै, गावै	×	७
७-१३७-८	भजिअ	२	भजहि[3]	२	२	२	×	३
७-१३७ छं०	रघुबर	२	२	२	२	रघुपति	×	७

१—(३) में पूर्व का पाठ 'पै' था।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'पाकी' था, उसका 'जाकी' बनाया गया, और यही (२) में उतरा।

३—(३) में भी पूर्व का पाठ 'भजिअ' था।

परिशिष्ट (क)

अतिरिक्त पाठ-चक्र

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
१-०-६ श्लो०	एकमेवहि	२	२	एवभातिहि	२	२
१-२-१०	सुलभ	स (क) ल[१]	१	१	१	१
१-४-७	गलहीं	२[२]	गरहीं	५अ	५अ	५अ
१-१० छं०	रघुबीर	रघुनाथ[३]	१	१	१	१
१-१४-६	सबनि	२	२	२	सबहिं	६
१-१४-११अ	[नहीं है]	२	[है]	५अ	२	२
१-२१-७	गुन	२	२	गति	७	७
१-२३-२	निहबूते	निज बूते	१	१	१	१
१-२८-१०	जानि सिरोमनि	जान सिरोमनि	१	१	१	१
१-२९-३	श्रुति	सुनि[४]	१	१	१	१
१-३०-१	सुनाई, सुहाई	२	सुनाई, सुनाई	सुहाई, सुनाई	७	७
१-३६-८	सकल	सकिलि[५]	१	१	१	१
१-३६	रुचि	बर[६]	१	१	१	१

१—(१) में 'क' पहले छूटा था, बाद में बढ़ाया गया है।

२—(१) में पहले 'गरहीं' था, उसको 'गलहीं' बनाया गया, और यही पाठ (२) में उतरा।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'रघुबीर' था।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'श्रुति' था।

५—(१) में पूर्व का पाठ 'सकल' था।

६—(१) में पूर्व का पाठ 'रुचि' था।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
१-३६	बिचारु, चारु	२	२	बिचारि, चारि	७	७
१-४३-६	मिटिह	मिटिहि (२)	मिटहिं	५अ	५अ	५अ
१-४५	अस	२	२	२	असि	६
१-४७-२	मुसकाई	मुसुकाइ[१]	१	१	१	१
१-४७	अब	२	सो	जेहि	७	७
१-४७	मिटहि	२	२	मिटै (२)	मिटिहि	२
१-५२-७	कै	२	करि	५अ	५अ	५अ
१-६०-४	जोइ	जाइ	१	१	१	१
१-६५-२	सुरन्हि	२	सुरन्ह	५अ	५अ	५अ
१-६७-७	जो	२	२	जे	७	७
१-६८-६	सखी उछंग बैठि	२	२	२	सखि उछंग बैठी	६
१-६९-४	समान	सम कह[२]	१	१	१	१
१-७५-४	जानिहु	२	जानहु	५अ	५अ	५अ
१-७८-१	मूरतिवंत	२	२	२	मूरतिमंत	६
१-७९-१	दच्छसुतन्हि	२	दच्छसुतन्ह	५अ	५अ	५अ
१-८६ छं०	अनिल	अनल[३]	१	१	१	१
१-९०-६	कहा	२	२	२	कहेहु	२
१-९०-६	सो	२	सोइ	५अ	५अ	५अ
१-९३ छं०	असुर	सुअर[४]	२	१	१	१

१—(१) में पूर्व का पाठ 'मुसकाई' था।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'समान' था।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'अनल' था, तदनंतर 'न' में इकार की मात्रा लगाकर पाठ 'अनिल' बनाया गया, और (२) में यही पाठ उतरा, किन्तु (१) में पुनः वह मात्रा निकाल दी गई है।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'असुर' था।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
१-९४ छं०	मुर	पुर[१]	१	१	१	१
१-९५ छं०	देखहि	२	देखिहि	५अ	५अ	५अ
१-९५ छं०	लरिकन्हि	२	२	लरिकन्ह	७	७
१-९६-७	भरे	भरे	२	२	१	२
१-९७-८	जिनि	जनि[२]	१	१	१	१
१-९८-३	संग	संभु[३]	१	१	१	१
१-९९-४	किछु	२	कछु	५अ	५अ	जग
१-१००-१ | १-१०२-२	लै	२	२	२	लेइ	२
१-१०० छं०	कोटि बहु	कोटिहु[४]	१	१	१	१
१-१०३-८	षटमुख[५]	२	पन्मुख	२[५]	५अ	५अ
१-१०७-२	भलि	भल	१	१	१	१
१-१०८	अमत	२	२	अमति	७	७
१-११६-८	पुरुष	परेस[६]	१	१	१	१
१-१२१-६	अधरम	२	अधम	५अ	२	५अ
१-१२३-३	मह्रा	तहाँ[७]	१	१	१	१
१-१२८-६	दिनन	२	दिनन्हि	५अ	२	२
१-१३०-३	सील	२	नीति	२	५अ	५अ

१—(१) में पूर्व का पाठ 'मुर' था।
२—(१) में पूर्व का पाठ 'जिनि' था।
३—(१) में पूर्व का पाठ 'संग' था।
४—(१) में पूर्व का पाठ 'कोटिबहु' था।
५—(१) में पूर्व का पाठ 'पन्मुख' था, उसका 'षटमुख' बनाया गया, और वही (२) में भी उतर आया।
६—(१) में पूर्व का पाठ 'पुरुष' था।
७—(१) में पूर्व का पाठ 'मह्रा' था।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
१-१३८	अंतर्ध्यान	अंतरधान[1]	२	१	१	२
१-१४१-२	तेहि	२	जेहि	५अ	५अ	५अ
१-१४३-१	तब	बन[2]	१	१	१	१
१-१४६	नीरनिधि	नीरधर[3]	१	१	१	१
१-१४९-६	जान हिअ	न जानहि[4]	१	१	१[5]	न जानत
१-१४९	सत भाउ	सति भाउ	१	१	१	१
१-१५१	बिलास	बिसाल[6]	१	१	१	१
१-१५२-५	जे	२	२	२	जेहि	जो
१-१५७-४	रिम भूप	रिम ब्रम्ह भूप	१	१	१	१
१-१६२-१	बन	जग[7]	१	२	१	१
१-१६४	जनि	२	जिनि	२	५अ	५अ
१-१६७-८	जल	जलधि[8]	२	१	१	१
१-१७३-४	पद	२	२	२	पग	२
१-१७५-२	तेहीं	जेहीं[9]	१	१	१	१
१-१७७-२	बल समेत	बल दल समेत	१	१	१	१
१-१८३ छं०	[ह्रस्वतुकांत]	२	[दीर्घतुकांत]	५अ	२	२
१-१८४-३	जानहु	२	२	२	जानेहु	२

१—(१) में पूर्व का पाठ 'अंतर्ध्यान' था।
२—(१) में पूर्व का पाठ 'तब' था।
३—(१) में पूर्व का पाठ 'नीरनिधि' था।
४—(१) में पूर्व का पाठ 'जान हिअ' था।
५—(६अ) में पूर्व का पाठ 'जानहि' था।
६—(१) में पूर्व का पाठ 'बिलास' था।
७—(१) में पूर्व का पाठ 'बन' था।
८—(१) में पूर्व का पाठ 'जल' था।
९—(१) में पूर्व का पाठ 'तेहीं' था।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
१-१८४ छंद	बसाईं, सहाईं	२	२	२	बसाइ, सहाइ	२
१-१८६ छं०	न कोउ दूजा	२	न दूजा	५अ	५अ	५अ
१-१८६ छं०	न पूजा	२	२	२	न कछु पूजा	२
१-१८७-८	फिरेउ	२	फिरे	५अ	२	५अ
१-१९२ छं०२,४	[ह्रस्व तुकांत]	२	[दीर्घ तुकांत]	५अ	२	५अ
१-१९५-२	सारद[1]	२	२	२	सादर	६
१-१९९-५	अति सोभा	२	२	सोभा अति	२	२
१-२०९	भगति	२	भगत	५अ	२	५अ
१-२१०-३	कोही	२	कोही	५अ	२	५अ
१-२१४-३	नृत	नृप	१	१	१	१
१-२१७-१	मुनि	मुनि[2]	१	१	१	१
१-२१७-१	चरित	चरन[3]	१	१	१	१
१-२२३	जहाँ जहं	२	२	२	जहं जहं	२
१-२३९-१०	आइ	२	आनि	२	५अ	५अ
१-२४०-६	जठर	जरठ[4]	२	२	१	२
१-२४१-२	सागर	सागर नागर	१	१	१	१
१-२४५	के	को[5]	१	१	१	१
१-२४९-३	हमारि	२	२	२	हमार	२
१-२५६-२	असि	२	अस	२	५अ	५अ
१-२६१-३	को	का	१	२	१	१
१-२६७-१	सिसु	ससु	१	१	१	१

१—(१) में पूर्व का पाठ 'सादर' था, जिसको 'सारद' बनाया गया, और (२) में यही पाठ उतरा।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'मुनि' था।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'चरित' था।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'जठर' था।

५—(१) में पूर्व का पाठ 'के' था।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
१-२६८-५-६	गिस	२	रिसि	२	५अ	५अ
१-२७०-४	लहि	लगि[1]	१	१	२	१
१-२७८-५	अति	२	२	२	बड	२
१-२८४-३	डेराना	सकाना[2]	१	१	१	१
१-२८४-३	आना	२	२	जाना	७	७
१-२८६-४	भय	भइ	२	१	१	१
१-२९२-३	तिन्ह कहं	२	२	२	तिन्ह	२
१-२९६-६	प्रीति कै प्रीति बहु	प्रीति कै रीति सबु[3]	१	१	१	१
१-२९८-८			१	१	१	१
१-३०८-६	बंदेहु	२	बंदे	५अ	२	५अ
१-३३३-१	बूझत	२	२	२	पूंछत	६
१-३५६-३	बरनि	बर बरनि[4]	१	१	१	१
२-१०-४	बिसमउ	×	बिसमय	५अ	५अ	२
२-११	काजु	×	आजु	५अ	२	५अ
२-२०-६	फुरि	×	फुर	२	५अ	२
२-२१-७	तें	×	तिन्ह	५अ	५अ	५अ
२-२६-८	परिहरहु	×	परिहरहि	५अ	५अ	५अ
२-२७-४	हृदउ	×	हृदय	५अ	५अ	५अ
२-२८-३	मूठहु	×	मूठेहु	५अ	५अ	५अ
२-३१-१	जरत	×	२	२	जरति	२
२-३१६२	कुआंरि पर मान	×	कूबरीमान	५अ	५अ	५अ

१—(१) में पूर्व का पाठ 'लहि' था

२—(१) में पूर्व का पाठ 'डेराना' था

३—(१) में पूर्व का पाठ 'बहु' था।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'बरनि' था

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
२-३३-३	प्रिय	×	जिय	५अ	२	५अ
२-४६	कटक लेइ	×	कटक (२)	कटकई	७	७
२-५५	भूपति	×	भूपतिहि	५अ	५अ	५अ
२-६८-८	[नहीं है]	×	[है]	५अ	५अ	५अ
२-१२२-६	सोइ	×	२	सो	७	२
२-१२५-७	बिसु	×	बिस्व	५अ	५अ	५अ
२-१२६-३	जेहि	×	जिन्ह	५अ	५अ	५अ
२-१३४-१	दिगपाला	×	२	दिसिपाला	७	७
२-१३४	जाप	×	जाग	५अ	५अ	५अ
२-१३६-४	भलि	×	२	भल	७	७
२-१४२	भएउ	×	भए	२	५अ	५अ
२-१४४-७	कृपन	×	कृपिन	५अ	५अ	२
२-१४८-५	तन	×	तल	५अ	५अ	५अ
२-१५३-२	देखउं	×	देखेउं	५अ	५अ	५अ
२-१७४-४	बचनेहि	×	बचनहिं	५अ	५अ	५अ
२-१७७-३	[एक पाठ है]	×	[अन्य पाठ है]	५अ	५अ	५अ
२-१८४-७	मतु	×	सठु	५अ	५अ	५अ
२-१८९-२	बिषाद	×	बिचार	५अ	५अ	२
२-१९२	मध्य	×	मध्य गति	५अ	५अ	५अ
२-१९५	मोरि	×	२	२	मोर	२
२-२०३-८	करहिं	×	२	गरहिं	७	७
२-२०७-८	तो	×	तौ(२)	२	त	६
२-२०८-६	सुखु	×	सुखु	५अ	५अ	५अ
२-२११-४	आनहि	×	जानहि	२	५अ	५अ
२-२१९-५	भरत भगत	×	रघुपति भगत	भगत अभगत	७	५अ
२-२२१	सब	×	२	२	बस	२

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
२-२३४	गुन	×	गुनि	५अ	५अ	५अ
२-२३५-३	मारी	×	२	२	भारी	२
२-२३६-३	बृक	×	२	बृष	७	७
२-२४१-३	मतिहि अनुहरई	×	मति अनुसरई	५अ	५अ	५अ
२-२४३-६	लुटत	×	२	२	लुठत	६
२-२४३-७	बरषहिं	×	२	२	बरिसहिं	६
२-२४६-४	दीख	×	सीय	५अ	५अ	५अ
२-२४८-८	सब	×	२	२	बस	२
२-३७२-८	मघवा निज् जानू	×	२	मघवान-जुवानू	७	७
३-५-१अ	[नहीं है]	२[१]	[है]	२	५अ	५अ
३-१६-५	कि	२	के	५अ	५अ	५अ
३-१८-३अ	[नहीं है]	२	२	२	[है][२]	६
३-१८-९ ३-३४-८	दोउ	द्वौ	२	२	१	१
३-१९-६	देहु, जाहु	२	देहिं, जाहु	२	देहिं, जाहिं	२
३-२६-५	देखी	देखा	१	१	१	देखेसि
३-२७	सुर[३]	२	प्रभु	५अ	५अ	५अ
३-२९-४	करति	२	करत	२	५अ	२

१—(१) में यहाँ पर दो अर्द्धालियाँ बढ़ाई थीं, किन्तु अब मिटा दी गई हैं।

२—(६) के अरण्य कांड में अन्य प्रक्षिप्त पंक्तियाँ भी हैं, किन्तु वे अन्य किसी प्रति में नहीं मिलतीं, इसलिए यहाँ नहीं रक्खी गई हैं, परिशिष्ट (ख) में दी गई हैं।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'प्रभु' था, उसको 'सुर' बनाया गया था, और यही (२) में भी उतर आया।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
३-३१	कहहु	२	२	२	कहेहु	६
३-३२छं०ं	बसेउ	बसउ	१	१	१	१
३-३४-२ अ, २ आ, २ इ	[हैं][1]	[नहीं हैं]	१	१	१	२
३-३८	ये	अति	१	१	१	२
३-३८	अति	ये	खल	५अ	५अ	२
४-६-७	तहं	२	२	२	सत	×
४-७	मोहि	भीरु	१	१	१	×
४-८-२	उभै	उभौ	२	१	१	×
४-८-६	सबै गै[2]	२	गई सब	५अ	५अ	×
५-५-७	दीखि	२	दीख	२	५अ	५अ
५-१३-८	फिरि	२	२	२	फिर	६
५-१४-१	गादी[3]	२	बाढ़ी	५अ	५अ	२
५-१५-१	बादी[4]	२	ठाढ़ी	५अ	५अ	२
५-२८	भज भजहीं जेहि सन	भजहु भजहिं जेहि संत[5]	१	१	१	१
५-४६ ६	तुम्हारि	२	२	२	तुम्हार	२

१—(१) में यहाँ पर तीन अर्द्धालियाँ बढ़ाई गई थीं, वे (२) में भी उतर आईं, यद्यपि उन पर अब (१) में हरताल लगा हुआ है।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'गई सब' था, उसके स्थान पर पाठ 'सबै गै' बनाया गया, और यही (२) पर भी उतर आया।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'बादी' था, उसको 'गादी' बनाया गया, और यही (२) में भी उतर आया।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'ठादी' था, उसको 'बादी' बनाया गया, और यही (२) में भी उतर आया।

५—(१) में पूर्व का पाठ 'भज भजहीं जेहि संत' था।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
५-५६	सरासन	सरानल[1]	१	[चरण ३ तथा ४ का पाठ भिन्न है]	१	१
६-३-९	कपिन्ह	२	२	२	कपि	६
६-४-५	अति[2]	२	तनु	५अ	५अ	५अ
६-३-१	गएउ	२	२	२	चला	६
६-६	सौंपि	२	सौंपहु	५अ	५अ	५अ
६-७-६	[है]	२	२	२	[नहीं है]	२
६-१५-४	मरुत	मारुत	१	१	१	१
६-१५/२	[है]	२	२	२	[नहीं है]	२
६-१६-४	बिलास	बिसाल[3]	१	१	१	१
६-१९	सुमिरि मन	२	२	२	संभारि उर	६
६-२४-१३	राखेउ	२	२	राखा	७	७
६-३०	जनकसुतहि	२	२	२	जनकसुता	२
६-३१-१	न कछु	नहिं कछु[4]	कछु नहिं (१)	५अ	५अ	५अ
६-३२-१	कीन्ह	२	२	२	कीन्हि	२
६-३२-६	तेहि लै	२	२	२	बहु कर	६
६-३३-३	मर्कटहीन करहुँ महि जाई	२	२	महि अकीस करि फेरि दोहाई	७	७
६-३३	तिष्ठिति	तृषित[5]	१	१	१	१

१—(१) में पूर्व का पाठ 'सरासन' था।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'तन' था, उसको 'अति' बनाया गया, और यही (२) में भी उतर आया।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'बिलास' था।

४—(१) में पूर्व का पाठ था 'न कछू' था।

५—(१) में पूर्व का पाठ 'तिष्ठिति' था।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
६-३७-८	आवत	२	२	आवइ	७	२
६-४०-१	सुना	२	२	२	सुनेउ	२
६-४१-८	चलावहिं[१]	२	ढहावहिं	५अ	५अ	५अ
६-४१-छं०	मंदिरन्ह	२	२	२	मंदिरन्हि	६
६-४३	सुना	२	२	सुने कि	सुनेउ कि	६
६-४३	रन	२	२	समर	७	७
६-४५	दलमलि[२]	२	२	२	दलमलेउ	६
६-४६-६	लरत	२	२	२	लरहिं	२
६-४६-६	मानहिं	२	२	२	मानत	२
६-४८	तासों	२	×	२	तेहि सन	६
६-५३	जनु	२	२	२	जिमि	६
६-५३	रह्यो	२	२	२	रह	६
६-६४-९	तैं	२	२	२	तुम्ह	६
६-६९-२	कियो	२	२	करि	७	७
६-७३-१०	सैं	२	२	सन	७	२
६-७३-१२	एक	२	२	रामु	७	७
६-७३	जासु	२	२	जाकर	७	७
६-७४-८	फिरायो, देखरायो	२	२	फिरावा, देखरावा	७	७
६-७६-१५	अति	करि	१	१	१	१
६-७७-१	उठायो, आयो	२	२	उठावा, आवा	७	×
६-७७-१	पुनि	२	२	२	तेहि	६

१—(१) में पूर्व का पाठ 'ढहावहिं' था, उसको 'चलावहिं' बनाया गया, और यही (२) में भी उतर आया।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'दलमले' था उसको 'दलमलि' बनाया गया, और यही (२) में भी उतर आया।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
६-७९-७	मरुत	२	२	२	पवनु	२
६-८५-८	मारा	२	मारेउ	५अ	५अ	५अ
६-८५-छं०	क्रुद्ध	२	२	कोपि	७	×
६-८९-८	अनुज सहित बहु कोसल-धनी	२	२	बहु अंगद लछिमन कपिधनी	७	७
६-९३	चली बिभीषन सनमुख	२	२	सनमुख चली बिभीषनहि	७	७
६-९८-६	ठएऊ, भएऊ	गएऊ, भएऊ[1]	१	१	गए, भए	६
६-९८-६	नखन्हि	२	२	२	नखन्ह	६
६-९८-१५	भालु कपि	भालु पति[2]	१	१	१	१
६-९९-४	कहा	२	२	काह	७	७
६-१०८-१०	कीस भालु	भालु कीस[3]	२	१	१	१
६-११५-६	मंथन पर मंदर	मंदर पर मंदर[4]	१	१	१	१
६-१२०	पुनि प्रभु आइ त्रिबेनी	२	२	बहुरि त्रिबेनी आइ प्रभु	७	७
६-१२७	सहित बिप्रन्ह कहँ	२	२	सहित महि-सुरन्ह कहुँ	समेत मही सुरन्ह	७
७-५-छं०	आरति	२	२	आरत	७	७
७-२७	गृह प्रति लिखे	२	२	२	प्रति रचि लिखे	प्रतिमा रचे

१—(१) में पूर्व का पाठ 'ठएऊ', 'भएऊ' था।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'भालु कपि' था।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'कीस भालु' था।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'मंथर पर मंदर' था।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
७-३२-८	ज्ञान जोति	ज्ञान जाति[1]	१	१	१	ज्ञान जोग
७-३५-१	की	अति[2]	१	१	१	१
७-६०	मो	२	मोहिं	५अ	५अ	५अ
७-६७-१	ग्वाज सकल दिसि धाए	२	२	२	ग्वाजन सकल सिधाए	२
७-७९-७	चलिउ	चलेउ	१	१	१	१

१—(१) में पूर्व का पाठ 'ज्ञान जोति' था।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'की' था।

परिशिष्ट (ख)

सं० १७०४ की प्रति के प्रक्षिप्त अंश

(१) ३-१-१ के बाद अधिक :—

बिनु पराध प्रभु हतैं न काहू। अवसर परे ग्रसै ससि राहू।
जब प्रभु लीन्ह सींक धनुबाना। क्रोध जानि भा अनल समाना।

(२) ३-२-८ के बाद अधिक :—

जिमि जिमि भाजत सक्रसुत व्याकुल अति दुखदीन।
तिमि तिमि धावत रामसर पाछे परम प्रबीन॥

बचहि उरग बरु ग्रसे खगेसा। रघुबर सर छुटि बचब अँदेसा।

(३) ३-२-९ के बाद अधिक :—

दूरिहि ते कहि प्रभु प्रभुताई। भजे जात बहु बिधि समुझाई।

(४) ३-४-४ के बाद अधिक :—

जनम जनम तव पद सुखकंदा। बढ़ै प्रेम चकोर जिमि चंदा।
देखि राम मुनि बिनय प्रनामा। बिबिध भाँति पाएउ बिस्रामा।

(५) ३-५-१ के बाद अधिक :—

जो प्रिय सकल लोक सुखदाता। अखिल लोक ब्रह्मांड कि माता।
तउ पाइ मुनिबर मुनिभामिनि। सुखी भई कुमुदिनि जिमि जामिनि।

(६) ३-५-३ के बाद अधिक :—

जाहि निरखि दुख दूरि पराहीं। गरुड़ जानि जिमि पन्नग जाहीं।

ऐसे बसन बिचित्र सुठि दिए सीय कहं आनि।
सनमानो प्रिय बचन कहि प्रीति न जाइ बखानि॥

(७) ३-५-११ के बाद अधिक :—

उत्तम मध्यम नीच लघु सकल कहौं समुझाइ।
आगे सुनहि ते भव तरहि सुनहु सीय चितु लाइ॥

(८) ३-६ के बाद अधिक :—

मुनिहु कि अस्तुति कीन्ह प्रभु दीन्ह सुभग बरदान।
सुमन वृष्टि नभ संकुल जय जय कृपानिधान॥

(९) ३-७-५ के बाद अधिक :—

आश्रम बिपुल देखि मग माहीं। देव सदन तेहि पटतर नाहीं।

बहु तड़ाग सुंदरि अवँराई। भाँति भाँति सब मुनिन्ह लगाई।
तेहि दिन तहँ प्रभु कीन्ह निवासा। सकल मुनिन्ह मिलि कीन्ह सुपासा।
आनि सुआसन मुदित मन पूजि पहुनई कीन्ह।
कंद मूल फल अमिय सम आनि राम कहँ दीन्ह॥
अनुज सीय मह भोजन कीन्हा। जो जेहि भाव सुभग बर दीन्हा।
होत प्रभात मुनिहु सिरु नावा। आसिरवाद सबन्हि सन पावा।
सुमिरि उमा सिव सिद्धि गनेसा। पुनि प्रभु चले सुनहु उरगेसा।
बन अनेक सुन्दर गिरि नाना। नांघत चले जाहिं भगवाना।

(१०) ३-७-६ के दूसरे चरण तथा ३-६-७ के स्थान पर :—

गरजत घोर कठोर रिसाला।
रूप भयंकर मानहु काला। बेगवंत धायउ जिमि ब्याला।
गगन देव मुनि किन्नर नाना। तेहि छन हृदय हारि कछु माना।
तुरतहि सो सीतहि लै चलेऊ। राम हृदय कछु बिसमय भएऊ।
समुझा हृदय केकई करनी। कहा अनुज सन बहु बिधि बरनी।
बहुरि लखन रघुबरहि प्रबोधा। पाँच बान छाँड़े कर क्रोधा।
भए क्रुद्ध लखन संधानि धनु मारि तेहि ब्याकुल कियो।
पुनि उठा निसिचर राखि सीतहि सूल लै छाँड़त भयो॥
जनु काल दंड कराल धावा बिकल सब खग मृग भए।
धनु तानि श्री रघुबंसमनि पुनि मारि तन जर्जर किए॥
बहुरि एक सर मारा परा धरनि धुनि माथ।
उठेउ प्रबल पुनि गरजेउ चलेउ जहाँ रघुनाथ॥
ऐसे कहत निसाचर धावा। अब नहिं बचहु तुम्हहि मैं खावा।
आव प्रबल एहि बिधि जनु भूधर। होइहि काह कहहिं ब्याकुल सुर।
तासु तेज सत मरुत समाना। टूटहिं तरु उड़ाहिं पाषाना।
जीव जन्तु जहँ लगि रहे जेते। ब्याकुल मानि चले तहँ लेते।
उरग समान जोरि सर साता। आवत ही रघुबीर निपाता।
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा।
तासु अस्थि गाड़ेउ प्रभु खनी। देवन्ह मुदित दुन्दुभी हनी।

सीता आइ चरन लपटानी। अनुज सहित तब चले भवानी।

(११) ३-१०-८ के बाद अधिक :—

सोउ प्रिय अति पातकी जिन्ह कबहुँ प्रभु सुमिरन कर्‌यो।
ते आजु मैं जिन नयन देखिहौं पुरित पुलकित हिय भर्‌यो॥
जे पद सरोज अनेक मुनि कर ध्यान कबहुँ न आवहीं।
ते राम श्री रघुबंसमनि प्रभु प्रेम तें सुख पावहीं॥
पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन।
यह बिचारि मुनि पुनि पुनि करत राम गुनगान॥

(१२) ३-१०-१६ के बाद अधिक :—

राम सु साहेब संत प्रिय सेवक दुख दारिद दवन।
मुनि सन प्रभु कह आइ उठु उठु द्विज मम प्रान सम॥

(१३) ३-११-२० के बाद अधिक :—

माया बस जग जीव रहहिं बिबस संतत मगन।
तिमि लागहु मोहिं प्रीय करुनाकर सुंदर सुखद॥

(१४) ३-११-२१ के बाद अधिक :—

राम भगति तजि चह कल्याना। सो नर अधम सृगाल समाना।

(१५) ३-१२-१ के बाद अधिक :—

मुनि प्रनाम करि कह कर जोरी। सुनहु नाथ कछु बिनती मोरी।

(१६) ३-१२-२ के बाद अधिक :—

चले जात मग तव पद कंजा। देखिहौं जो बिराध मद गंजा।

(१७) ३-१२-५ के बाद अधिक :—

आश्रम देखि महा सुचि सुंदर। सरित सरोवर हरषित भूधर।
बनचर जलचर जीव जहीं ते। बैर न करहिं प्रीति सबहीं ते।
तरुबर बिबिध बिहंगमय बोलत बिबिध प्रकार।
बसहिं सिद्ध मुनि तप करहिं महिमा गुन आगार॥

(१८) ३-१२ के बाद अधिक :—

पाइ सुथल जल हरषित मीना। पारसु पाइ सुखी जिमि दीना।

(१९) ३-१३-३ के बाद अधिक :—

निसिचर अत्र न बसहिं मुनिराई। जिमि पंकज बन हिम रितु आई।
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेउ नाथ मोहिं का जानी।

(२०) ३-१३-५ के बाद अधिक :—

भृकुटी निरखत नाथ नव रहत सदा पद कमल तर।
जिन डारे निज उदर महँ बिबिध बिधाता सिद्ध हर॥

अति कराल भव पर जगु जाना। औरो कहा सुनिअ भगवाना।

(२१) ३-१३-१३ के बाद अधिक :—

जेहि जीव पर तव मया रहत तुम्हहिं संतत बिबस।
तिन्हहुँ कि महिम न जान सेवक तुम्ह कहँ प्रान प्रिय॥

(२२) ३-१३-१५ के बाद अधिक :—

गोदावरि पुनीत तहँ बहई। चारिउ जुग प्रसिद्ध सो अहई।

(२३) ३-१३-१८ के बाद अधिक :—

दिव्य लता द्रुम प्रभु मन भाए। निरखि राम तेउ भए सुहाए।
लखन राम सिय चरन निहारी। कानन अत्र धा भा सुखकारी।

(२४) ३-१७-१ के बाद अधिक :—

नाथ सुने गत मम संदेहा। भएउ ज्ञान उपजेउ नव नेहा।
अनुज बचन सुनि प्रभु मन भाए। हरषि राम निज हृदय लगाए।

(२५) ३-१७-६ के बाद अधिक :—

अधम निसाचर कुटिल अति चली करन उपहास।
सुनु खगेस भावी प्रबल भा चह निसिचर नास॥

(२६) ३-१७-१९ के बाद अधिक :—

बिथुरे केस रदन बिकराला। भृकुटी कुटिल करन लगि गाला।

(२७) ३-१८-३ के बाद अधिक :—

चौदह सहस सुभट सँग लीन्हे। जिन्ह सपनेहु रन पीठि न दीन्हे।

(२८) ३-१८-६ के बाद अधिक :—

निज निज बल सब मिलि कहहिं एकहिं एक सुनाइ।
बाजन लाग जुझाऊ हरष न हृदय समाइ॥

(२९) ३-१८-९ के बाद अधिक :—

कोउ कह सुनहु सत्य हम कहहीं। कानन फिरहिं बीर कोउ अहहीं।
एकं कहा मष्ट भै रहहू। खर के आगे अस जनि कहहू।
बहु बिधि कहत बचन रनधीरा। आए सकल जहाँ रघुबीरा।

(३०) ३-१९-७ के बाद अधिक :—

भए काल बस मूढ़ सब जानहिं नहिं रघुबीर।
ममक फूँकि की मेरु उड़ सुनहु गरुड़ मतिधीर॥

(३१) ३-२२-८ के बाद अधिक :—

अति सुकुमारि पियारि पटतर जो गुन आहि कोउ।
मैं मन दीख बिचारि जहाँ रहै तेहि सम न कोउ॥

अजहुँ जाइ देखहु तुम्ह तबहीं। होइहौ बिकल तासु बस तबहीं।
जीवनमुक्त लोक अस ताके। दसमुख सुनु सुंदरि असि ताके।

(३२) ३-२२-१० के बाद अधिक :—

बिनु अपराध असि हाल हमारी। अपराधी किमि बचहि सुरारी।

(३३) ३-२२-१२ के बाद अधिक :—

भएउ सोच मन नहिं बिश्रामा। बीतहिं पल मानहुं सत जामा।

(३४) ३-२३-७ के बाद अधिक :—

रथ अनूप जोरे खर चारी। बेगवंत इमि बिधि उरगारी।
उरगारि सम अति बेगु बरनत जाइ नहिं उपमा कही।
सिर छत्र सोभित स्याम धन जनु चँवर सेत बिराजही॥
एहि भाँति नाँघत सरित सैल अनेक बापी सोहहीं।
बन बाग उपबन बाटिका सुचि नगर मुनिमन मोहहीं॥
बहु तड़ाग सुचि बिहग मृग बोलत बिबिध प्रकार।
एहि बिधि आएउ सिंधु तट सत जोजन बिस्तार॥

सुंदर जीव बिबिध बिधि जाती। करहिं कोलाहल दिन अरु राती।
कूदहिं ते गर्जहिं घन नाईं। महाबली बल बरनि न जाई।
कनक बालु सुंदर सुखदाई। बैठहिं सकल जंतु तहँ जाई।
तेहि पर दिब्य लता द्रुम लागे। जेहि देखत मुनि मनु अनुरागे।

गुहा विविध बिधि रहहिं बनाई। बरनत सारद मति सकुचाई।
चाहिय जहाँ रिषिन्ह कर बासा। तहाँ निसाचर करहिं निवासा।
दसमुख देखि सकल सकुचाने। जे जड़ जीव सजीव पराने।

(३५) ३-३-५ के बाद अधिक :—

रा अस नाम सुनत दसकंधर। रहत प्रान नहिं मम उर अंतर।

(३६) ३-२७-९ के बाद अधिक :—

अस कहि चले तहाँ प्रभु जहाँ कपट मृग नीच।
देव हरष बिस्मउ बिबस चातक बरषा बीच॥

(३७) ३-२८-५ के बाद अधिक :—

चहुं दिसि रेख खचाइ अहीसा। बारहिं बार नाइ पद सीसा।

(३८) ३-२८-६ के बाद अधिक :—

चितवहिं लखन सीय फिरि कैसे। तजत बच्छ निज मातुहिं जैसे।
एक डर डरपत राम के दूसरि सीय अकेलि।
लखन तेज तन हत भयो जिमि डाढ़ी दव बेलि॥

(३९) ३-२८-१० के बाद अधिक :—

करि अनेक बिधि छल चतुराई। माँगेउ भीख दसानन जाई।
अतिथि जानि सिय कन्द मूल फल। देन लगी तेहि कीन्ह बहुरि छल।
कह दसमुख सुनु सुंदरि बानी। बाँधी भीख न लेहुं सयानी।
बिधि गति बाम काल कठिनाई। रेख नाँघि सिय बाहर आई।
बिस्वभरनि अघ दल दलनि करनि सकल सुरकाज।
समुझि परी नहिं समय तेहि बंचक सती समाज॥

(४०) ३-२८-१५ के बाद अधिक :—

बायस कर चह खगपति समता। सिंधु समान होहिं किमि सरिता।
खरि कि होइ सुरधेनु समाना। जाहि भवन निज सुनु अज्ञाना।

(४१) ३-२९-२ के बाद अधिक :—

कैकेइ के मन जो कछु रहेऊ। सो बिधि आनु मोहिं दुख दएऊ।
पंचबटी के खग मृग जाती। दुखी भए जलचर बहु भांती।

(४२) ३-२९-१४ के बाद अधिक :—

मम भुज बल नहिं जानत आवत तपिन सहाइ।
समर चढ़ै तो एहि हतौं जियत न निज थल जाइ ॥

(४३) ३-२९-२० के बाद अधिक :—

दसमुख उठि कृत सर संधाना। गीध आइ काटेउ धनुबाना।
जेहि रावन निज बस किए मुनि गन सिद्ध सुरेस।
तेहि रावन सन समर कर धीर बीर गिद्धेस ॥
सुस्त भए पुनि उठि सो धावा। मरै गीध सनमुख नहिं आवा।
कीन्हेसि बहु जब जुद्ध खगेसा। थकित भएउ तब जरठ गिधेसा।

(४४) ३-२९-१ के बाद अधिक :—

उहाँ बिधाता मन अनुमाना। सुरपति बोलि मंत्र 'अस ठाना।
तात जनक तनया पहिं जाहू। सुधि न पाव जिमि निसिचर नाहू।
अस कहि बिधि सुंदर हवि आनी। सौंपि बहुरि बोले मृदु बानी।
एहि भच्छन कृत छुधा न प्यासा। बरष सहस एह संसय नासा।
सो प्रसाद तेइ आयसु पाई। चलेउ हृदय सुमिरत रघुराई।
कछु बासव निज माया सोई। रच्छक रहे गए तहं सोई।
तदपि डरत सीता पहिं आएउ। करि प्रनाम निज नाम सुनाएउ।
निसचय जानि सुरेस सुजाना। पिता जनक दसरथ सम माना।
करि परितोष दूरि करि सोका। हबिय खवाइ गएउ निज लोका।

(४५) ३-३०-३ के बाद अधिक :—

अहह तात भल कीन्हेहु नाहीं। सीय बिना मम जीवनु बाहीं।
एहि तें कवनि बिपति बड़ि भाई। छांड़ेहु सीय काननहिं आई।

(४६) ३-३०-६ के बाद अधिक :—

कानन रहेउ तड़ाग इव चक चकई सिय राम।
रावन निसि बिछुरन भएउ सुख बीते चहुँ जाम ॥
पर दुख हरन सो कस दुख ताही। भा बिषाद तिन्हहूँ मन माहीं।

(४७) ३-३०-१५ के बाद अधिक :—

फनि मनि हीन मीन जिमि त्यागत सीतल बारि।
तिमि ब्याकुल भए लखन तहं रघुबर दसा निहारि ॥

धरि उर धीर बुझावहिं रामहिं। तजहिं न सोक अधिक सुख धामहिं।

(४८) ३-३०-१७ के बाद अधिक :—

सरवर अमित नदी गिरि खोहा। बहु बिधि लखन राम तहँ जोहा।
सोच हृदय कछु कहि नहिं आवा। टूट धनुष सर आगे पावा।
कहुँ कहुँ सोनित देखिअ कैसे। सावन जल भर डावर जैसे।
कहत राम लछिमनहिं बुझाई। काहू कीन्ह जुद्ध एहि ठाँई।

(४९) ३-३६-९ के बाद अधिक :—

सब प्रकार तव भाग बड़ मम चरनन्हि अनुराग।
तव महिमा जेहि उर बसिहि तासु परम जग भाग॥

बचन सुनत सबरी हरषाई। पुनि बोले प्रभु गिरा सुहाई।

(५०) ३-३६-११ के बाद अधिक :—

रिषि मतंग महिमा गुन भारी। जीव चराचर रहत सुखारी।
बैर न कर काहू सन कोऊ। जा सनु बैर प्रीति कर सोऊ।
सिखर सुहावन कानन फूले। खग मृग जीव जंतु अनुकूले।
करहु सफल श्रम सब कर जाई। तहं होइहिं सुग्रीव मिताई।

(५१) ४-८-१ के बाद अधिक :—

बालि दीख सुग्रीवहि ठाढ़ा। हृदय क्रोध बहु बिधि पुनि बाढ़ा।

(५२) ४-११-२ के बाद अधिक :—

पुनि पुनि तासु सीस उर धरई। बदन बिलोकि हृदय मो हनई।
मैं [illegible] तुम्हहि बहुत समुझावा। कालबस्य कछु मनहिं न भावा।
अंगद कहं कछु कहइ न पाएहु। बीचहि सुरपुर प्रान पठाएहु।

(५३) ४-२७-५ के बाद अधिक :—

[illegible] चरनन चित लावै। तेहि सम आन न धन्य कहावै।

(५४) ४-२७-६ के बाद अधिक :—

तेहि देखि सब चले पराई। ठाढ़ कीन्ह ते सपथ देवाई।

(५५) ४-२८-१ के बाद अधिक :—

[illegible] राम कर काजू। तेहि सम धन्य आन नहिं आजू।

३

पाठ-विवेचन

आवश्यक सूचनाएँ

१—पाठ-चक्रखंड के अनुसार ही इस खंड में मुख्य पाठ-चक्र के पाठभेदों का विवेचन मुख्यांश में और उसके परिशिष्ट (क) के पाठभेदों का विवेचन इस खंड के परिशिष्ट में किया गया है। पाठ-चक्र खंड के परिशिष्ट (ख) के पाठभेदों का पाठ-विवेचन अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया गया है।

२—इस पाठ-विवेचन में पहले तो कांड-क्रम का अनुसरण किया गया है—सारा विवेचन सात कांडों के अनुसार सात अध्यायों में विभाजित है। फिर, प्रत्येक कांड में पहले उन स्वीकृत पाठभेदों का विवेचन किया गया है जिनमें पाठ-सुधार परिलक्षित होता है, और तदनंतर अस्वीकृत पाठों का विवेचन किया गया है। पुनः स्वीकृत तथा अस्वीकृत पाठभेदों के अंशों में प्रतियों के अनुसार अलग-अलग पाठ-विवेचन किया गया है।

३—स्वीकृत पाठ वाले अंशों तथा अस्वीकृत पाठ वाले अंशों में प्रतियों का जो क्रम है, उसमें एक अंतर है : स्वीकृत पाठ वाले अंशों में क्रमशः सं० १६६१/१७०४, कोदवराम, वंदन पाठक, रघुनाथदास, छक्कनलाल तथा १७२१ की प्रतियों के पाठभेद लिए गए हैं, और अस्वीकृत पाठ वाले अंशों में क्रमशः सं० १७६२, १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास, वंदन पाठक, कोदवराम तथा १६६१/१७०४ की प्रतियों के पाठभेद लिए गए हैं। ऐसा इसलिए किया गया है कि १७२१ के स्वीकृत पाठ तथा १७६२ के अस्वीकृत पाठ परस्पर सन्निकट रहें, क्योंकि एक सामान्य पाठभेद-समूह में से ही निकाल कर दोनों को एक-दूसरे से अलग किया गया है।

४—जैसा ऊपर कहा गया है, पाठ-सुधार वाले पाठभेदों में बाहुल्य ऐसे ही पाठभेदों का है जो स्पष्टतः अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। किन्तु ऐसे भी कुछ पाठभेद अवश्य

हैं जो अन्य पाठ की तुलना में समान लगते हैं। पाठ-विवेचन में पहले प्रकार के पाठभेद तो चिह्नित नहीं हैं, किन्तु दूसरे प्रकार के पाठभेदों के विवेचन को × चिह्न से चिह्नित कर दिया गया है। इसी प्रकार, अस्वीकृत पाठभेदों में कुछ अन्य पाठ की तुलना में समान, और कुछ उत्कृष्टतर भी प्रतीत होते हैं। इन्हें क्रमशः × तथा ꕥ चिह्नों से चिह्नित कर दिया गया है।

बाल कांड

सं० १६६१/१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

सं० १६६१/१७०४ के निम्नलिखित पाठ ऐसे हैं जो विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। किंतु, यह पाठ कुछ अन्य प्रतियों में भी मिलते हैं—केवल एक प्रति का उल्लेख यथेष्ट होगा, यह सं० १६०५ की है। इन पाठों के संबंध में एक बात और ध्यान देने की है : उक्त शेष प्रतियों में जोपाठ इनके स्थान पर मिलते हैं, उनकी तुलना में यह उत्कृष्टतर ज्ञात होते हैं।

(१) १-९-८ : 'कबि न होउँ नहिं चतुर प्रबीनू। सकल कला सब बिद्याहीनू।' १६६१/१७०४ में 'चतुर' के स्थान पर 'बचन' पाठ है। 'चतुर' और 'प्रबीनू' प्रायः समानार्थी हैं, इसलिए उक्त पाठ में पुनरुक्ति सी होती है। 'बचन' पाठ में यह पुनरुक्ति नहीं है।

(२) १-१२-८ : 'एतेहु पर करिहहिं जे असंका। मोहि तें अधिक ते जड़ मतिरंका।' १६६१/१७०४ में 'जे' के स्थान पर 'ते' तथा 'ते' के स्थान पर 'जे' पाठ है। पहले पाठ में 'असंका' करनेवाले 'जड़' और 'मतिरंक' होने का अभिशाप सा पाते हुए प्रतीत होते हैं, जो प्रसंग में अपेक्षित नहीं ज्ञान होता। दूसरे पाठ में उनकी 'जड़ता' और 'मतिरंकता' सहज और स्वभावगत सी है।

(३) १-१८ : 'गिरा अरथ जल बीचि सम देखिअत भिन्न न भिन्न।' १६६१/१७०४ में 'देखिअत' के स्थान पर 'कहिअत' पाठ है। दिए हुए अप्रस्तुतों में से 'गिरा' और 'अरथ' देखने के विषय नहीं हैं, और 'जल' और 'बीचि' तो देखने में भी सर्वथा भिन्न नहीं लगते, इसलिये 'देखिअत' के स्थान पर 'कहिअत' अधिक समीचीन है—उनकी नाम-मात्र की भिन्नता तो प्रकट है।

(४) १-२०-३ : 'कहत सुनत समुझत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के।' १६६१/१७०४ में 'समुझत' के स्थान पर पाठ 'सुमिरत' है। 'समझने' का प्रसंग बाद में आया है : 'समुझत सरिस नाम अरु नामी।' (१-२०-१) यहाँ पर तो 'राम' नाम के दोनों अक्षरों की मधुरता—जिसका संबंध 'कहने' और 'सुनने' से है—और उनके 'स्मरण' से सुख-साधन का प्रसंग है। इस प्रसंग में फलतः 'समुझत' की अपेक्षा 'सुमिरत' अधिक उपयुक्त है। कहा जा सकता है कि 'सुमिरत' तो पूर्ववाली अर्द्धालियों में आ चुका है, पुनः इसे न आना चाहिए था, किंतु इस अर्द्धाली में ऊपर की दोनों अर्द्धालियों का सार पुनः उल्लिखित हुआ है, इसलिए इसमें यह पुनरुक्ति आवश्यक और उचित है।

(५) १-२८-११: 'रीझत राम सनेह निसोतें। को जग मंद मलिन मन मो तें।' १६६१/१७०४ में 'मन' के स्थान पर पाठ 'मति' है। आगे ही आने वाला दोहा इस प्रकार है :

> सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहि राम कृपाल।
> उपल किए जलजान जेहिं सचिव सुमति कपिभालु ॥

'सुमति' की तुलना में 'मलिन मन' की अपेक्षा 'मलिन मति' को अधिक उपयुक्त पाठ मानना पड़ेगा।

(६) १-४१-७ : 'रामतिलक हित मंगलसाजा। परब जोग जनु जुरेउ समाजा।' १६६१ १७०४ में 'जुरेउ' के स्थान पर पाठ 'जुरे' मिलता है। एक एकवचन रूप है, तो दूसरा उसीका बहुवचन रूप। ग्रंथ में 'समाजा' का एकवचन प्रयोग तो मिलता ही है, बहुवचन प्रयोग भी पाया जाता है, यथा :

> पथिक समाज सोह सरि सोई। १-४१-३
> सुनि दारुन दुःख दुहूँ समाजा। १-३१७-६

इसलिए प्रयोग-सम्मत दोनों ही हैं, किंतु दूसरे पाठ में 'मंगलसाज' की 'विविधता' तथा 'आत्यंतिकता' की जो ध्वनि है, वह अधिक संगत लगती है।

(७) १-४१ : 'कलि खल अघ अवगुन कथन ते जलमल बग काग।' १६६१/१७०४ में 'कलि अघ खल अवगुन कथन' पाठ है, पहले पाठ में 'अघ-कथन' और 'अवगुन-कथन' दोनों का 'कलि' तथा 'खल' दोनों के साथ समास लगाया जा सकता है, जो कदाचित् अपेक्षित नहीं है। 'कलि-अघ' और 'खल-अवगुन' पाठ अधिक निर्भ्रम हैं।

(८) १-४७-१ : 'जैसे मिटइ मोह भ्रम भारी।' १६६१/१७०४ में 'मोह' के स्थान पर पाठ 'मोर' है। 'मोह' और 'भ्रम' प्रायः समानार्थी हैं, इसलिए प्रथम पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है। 'मोर' पाठ इस त्रुटि से मुक्त है :

(९) १-४९-८ : 'कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट दुसह दुख ताकें।' १६६१/१७०४ में 'दुसह' के स्थान पर पाठ 'बिरह' है। सीता के विरह में राम को सती ने व्यथित पाया था, उसी के संबंध में प्रस्तुत उक्ति है। 'जोग बियोग' के साथ 'दुसह दुख' की संगति उतनी नहीं है, जितनी 'बिरह दुख' की: 'दुसह दुख' अन्य कारणों से भी हो सकता है, 'बिरह दुख' केवल 'बियोग' से संभव है।

× (१०) १-५२-८: 'अस कहि जपन लगे हरिनामा। गईं सती जहं प्रभु सुखधामा।' १६६१/१७०४ में 'जपन लगे' के स्थान पर पाठ 'लगे जपन' है। यह प्रकट है कि उक्त कथन से इस 'जप' का कोई संबंध नहीं था, और साधारणतः यह 'जप' चलता ही रहता' था। इस तथ्य की व्यंजना 'जपन लगे' के स्थान पर 'लगे जपन' द्वारा कदाचित् अधिक स्पष्ट ढंग पर होती है। अन्यथा दोनों पाठ समान हैं।

(११) १-६२-८ : 'कह प्रभु जाहु जौं बिनहिं बुलाएं। नहिं भलि बात हमारेहि भाएं।' १६६१/१७०४ में 'हमारेहिं' के स्थान पर पाठ 'हमारे' मिलता है। 'हमारेहिं' के 'हिं'='ही' की प्रस्तुत प्रसंग में कोई आवश्यकता नहीं है, यह स्वतः प्रकट है।

× (१२) १-६३-६ : 'पाछिल दुख अस हृदयँ न व्यापा। जस

येह भएउ महा परितापा।' १६६१/१७०४ में 'अस हृदयँ न' के स्थान पर पाठ है 'न हृदयँ अस'। 'अस' 'व्यापा' का क्रिया-विशेषण है, इसलिए उसका उसके निकट होना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अन्यथा दोनों पाठों में अंतर नहीं है।

× (१३) १-८६-६ : 'प्रगटेसि तुरत रुचिर ऋतुराजा। कुसुमित नव तरु जाति बिराजा।' १६६१/१७०४ में 'जाति' के स्थान पर शब्द 'राजि' है। प्रसंग से प्रतीत होता है कि 'जाति' शब्द का प्रयोग यहाँ पर 'समूह' के अर्थ में किया गया है। 'जाति' शब्द का प्रयोग कभी-कभी 'समूह' के अर्थ में भी मिलता है, यद्यपि उन्हीं पदार्थों के संबंध में जिनकी जातियाँ पाई जाती हैं, यथा :

चित्रकूट के बिहंग मृग बेलि बिटप तृन जाति। २-१३८

संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भांती। ५-५०-६

इसलिए 'जाति' पाठ प्रयोग-सम्मत है। 'राजि' भी 'समूह' के अर्थ में प्रयोग-सम्मत है, यथा :

रोमराजि अष्टादस भारा। ६-१५-७

(१४) १-९५-२ : 'बरु बौराह बरद असवारा।' १६६१/१७०४ में 'बरद' के स्थान पर पाठ 'बसह' है। 'बरद' का प्रयोग ग्रंथ भर में अन्यत्र नहीं हुआ है, और 'बसह' का प्रयोग इस प्रसंग में ही अन्यत्र मिलता है :

कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा।

इसलिए 'बसह' अधिक प्रयोग-सम्मत प्रतीत होता है।

× (१५) १-१०२ : 'जननिहि बहुरि मिलि चलीं उचित असीस सब काहूँ दईं। फिरि फिरि बिलोकत मातु तन जब सखीं लै सिव पहिं गईं।' १६६१/१७०४ में दूसरे चरण के 'जब' के स्थान पर पाठ 'तब' है। अर्थ के ध्यान से दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है, अंतर केवल वाक्य के रूप में मिलता है। पहले पाठ में वाक्य का रूप मिश्र वाक्य का है : 'जब' से प्रारम्भ होने वाला उपवाक्य क्रिया-विशेषण उपवाक्य जैसा प्रतीत होता है, यद्यपि अर्थ में वह संयुक्त वाक्य

ही है ; दूसरे पाठ में उसका रूप भी संयुक्त वाक्य का है। 'प्रसंग' से 'फिरि फिरि बिलोकति मातु तन' और 'सखीं लै सिव पहिं गईं' का एक दूसरे से स्वतंत्र होना प्रकट है, क्योंकि उनमें कार्य-कारण भाव नहीं है—पहला माताओं से विदा होने का एक स्वाभाविक अनुभाव मात्र है।

(१६) १-११०-१ : 'जदपि जोषिता अनअधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी।' 'अनअधिकारी' के स्थान पर १६६१/१७०४ में पाठ 'नहिं अधिकारी' है, पहले पाठ में क्रिया की हानि है : 'अन-अधिकारी' से 'अनधिकारी है', यह आशय स्वतः नहीं निकलता है। 'नहिं अधिकारी' में यह कठिनाई नहीं है। 'नहिं' में 'नहीं है' का भाव अनिवार्य रूप से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त 'अन-अधिकारी' का शब्द-संगठन त्रुटिपूर्ण है : होना चाहिए 'अनधि-कारी'। किंतु इससे एक मात्रा की कमी पड़ती है ; 'नहिं अधिकारी' पाठ में यह त्रुटि भी नहीं है।

(१७) १-११५-३ : 'जिन्हहिं न सूझ लाभु नहिं हानी।' १६६१/१७०४ में 'जिन्हहिं न' के स्थान पर पाठ 'जिन्हकें' है। 'नहिं' बाद में आता ही है, इसलिए 'न' अनावश्यक है। 'जिन्हकें' का प्रयोग 'जिनको' के अर्थ में अन्यत्र भी हुआ है, यथा :

रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्हकें सतसंगति अति प्यारी। १-१२७-६

(१८) १-२६३-३ : 'सखिन्ह सहित हरषीं अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी।' १६६१/१७०४ में 'अति' के स्थान पर पाठ 'सब' है। 'अति' प्रायः अनावश्यक है, क्योंकि 'हरषीं' के संबंध की अप्रस्तुतोक्ति से उसकी व्यंजना पर्याप्त रूप में हो जाती है। अन्य पंक्तियों में भी 'अति' या किसी उसके समानार्थी का प्रयोग इस प्रसंग में नहीं हुआ है : अप्रस्तुतोक्ति से ही उसकी व्यंजना की गई है, यथा :

जनक लहेउ सुखु सोच बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई।
श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छबि छूटे। १-२६२-४,५

इसके अतिरिक्त रानियाँ कई थीं, एक नहीं। इसलिए भी 'सब' पाठ यहाँ अधिक उपयुक्त लगता है।

कोदवराम के स्वीकृत पाठभेद

कोदवराम के निम्नलिखित पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि १६६१/१७०४ तथा उपर्युक्त १६०५ में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। इन पाठों के संबंध में भी यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त शेष प्रतियों के पाठों की तुलना में यह उत्कृष्टतर लगते हैं ।

(१) १-१२-७ : 'समुझि बिबिध बिनती अब मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी।' कोदवराम में 'बिबिध बिनती अब' के स्थान पर 'बिबिध बिधि बिनती' पाठ है। प्रसंग में 'अब' अनावश्यक लगता है, क्योंकि प्रस्तुत के पूर्व यही कहा गया है :

जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहि लहऊँ।
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरेहि महं जानिहहिं सयाने।

'बिधि' उसकी अपेक्षा कम चिंत्य है, क्योंकि यद्यपि इससे अर्थ में कोई विशेषता नहीं आती, यह प्रसंग में खप जाता है।

(२) १-१४ : 'सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरिजस कहौं पुनि पुनि कहौं निहोर॥

कोदवराम 'कहौं निहोर' के स्थान पर पाठ 'करौं निहोर' है। पहले पाठ में एक तो दूसरे चरण के 'थोर' के साथ 'निहोरि' का तुक नहीं मिलता है और दूसरे 'कहौं' तीसरे चरण में आ चुका है, इसलिए 'कहौं निहोरि' पाठ में उसकी पुनरुक्ति हो रही है। कोदवराम का पाठ इन त्रुटियों से मुक्त है। प्रयोगसम्मत दोनों ही हैं, यथा :

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। १-५-१
देखि देव पुनि कहहिं निहोरा। २-१२-२ सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। २-४४७
देखउँ बेगि सो जतन करु सखा निहोरउँ तोहिं। ६-११६

(३) १-२०-४ : 'बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव इव सहज संघाती।' कोदवराम में 'इव' के स्थान पर पाठ है 'सम'। 'इव' का प्रयोग प्रायः वर्ण्य की किसी विशेष प्रकार की कार्यशीलता, अथवा किसी विशेष कार्य के लिए उसकी क्षमता की ही व्यंजना के लिये अप्रस्तुत लाने में किया गया है, जब कि 'सम' का प्रयोग साधर्म्य की व्यंजना के लिए किया गया है, यथा :

बिछुरत दीन दयाल प्रिय तन तृन इव परिहरेउ । १-१६
लुबुध मधुप इव तजइ न पासू । १-१७ ४खोजइ सो कि अज्ञ इव नारी । १-५१-२
कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन । १-१-४
तपइ अवां इव उरअधिकाई । १-५८-४ फनिमनिसमनिज गुन अनुसरहीं । १-३-१०
उदय केतु सम हित सबहीके । कुंभकरन सम सोवत नीके । १-४-६

यहाँ पर प्रसंग साधर्म्य का है, इसलिए 'सम' पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

(४) १-२७-३ : 'द्वापर परितोषन प्रभु पूजें ।' कोद्वराम में 'परितोषन' के स्थान पर पाठ 'परितोषत' है । पहले पाठ में 'परितोषन' से 'परितोष होता था' अर्थ लेना पड़ता है, और 'प्रभु' को उसके पूर्व ला कर 'प्रभु' और 'परितोषन' में समास की कल्पना करनी पड़ती है । 'परितोषत' पाठ में यह त्रुटियाँ नहीं है । 'परितोषत' = '[प्रभु] परितुष्ट होते थे' या 'वे [प्रभु को] परितुष्ट करते थे' संगत और समर्थ है ।

(५) १-२६ : 'तुलसी कहीं न राम से साहिब सीलनिधान ।' कोदवराम में 'कहीं' के स्थान पर पाठ 'कहूँ' है । 'कहीं' का प्रयोग ग्रन्थ भर में एकाध ही स्थान पर मिलता है, यथा:—

नर पीड़ित रोग न भोग नहीं । अभिमान विरोध अकारनहीं । ७-१०२-३

अन्यथा सर्वत्र 'कहूँ' या 'कहुँ' का प्रयोग हुआ है, यथा:—

पाएउ परम बिस्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ । ७-१३० छं०
सोभा असि कहुँ सुनियत नहीं । १-२२०-६
संत मिलन सम सुख कहुँ नाहीं । ७-१२१-१३
अस सुभाउ कहुँ सुनहुँ न देखउँ । ७-१२४-४

फलतः 'कहूँ' पाठ अधिक प्रयोग-सम्मत लगता है ।

(६) १-३४-२ : 'पुनि सब हीं प्रनवौं कर जोरी । करत कथा जेहिं लाग न खोरी ।' कोदवराम में 'प्रनवौं' के स्थान पर पाठ 'बिनवौं' है । प्रसंग यहाँ पर विनय करने का ही है—अपनी गरज 'करत कथा जेहि लाग न खोरी' उसी साँस में कह दी गई है—प्रणाम करने का नहीं । इसलिए 'प्रनवौं' की अपेक्षा 'बिनवौं' पाठ अधिक प्रसंग-सम्मत लगता है ।

× (७) १-३९-६ : 'सोइ सादर मज्जन सर करई।' कोदवराम में 'मज्जन सर' के स्थान पर पाठ 'सर मज्जनु' है। पहले पाठ में 'मज्जन' को 'सर' की अपेक्षा अधिक प्राधान्य मिल जाता है, क्योंकि वह पहले आ जाता है, किंतु वर्ण्य 'सर' या 'मानस' ही है, जैसा प्रसंग में देखा जा सकता है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है। अन्यथा दोनों पाठ एक से हैं।

(८) १-५६-१ : 'सतीं समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भयबस प्रभु सन कीन्ह दुराऊ।' कोदवराम में 'प्रभु' के स्थान पर 'सिव' पाठ है। प्रथम चरण में 'रघुबीर' शब्द आता है, और उनके 'प्रभाव' का उल्लेख है, इसलिए पहले पाठ में 'प्रभु' से 'रघुबीर' का भ्रम होने की संभावना यथेष्ट है। 'सिव' पाठ में इस प्रकार का कोई भ्रम नहीं हो सकता। 'प्रभु' से 'सिव' का ही अर्थ लिया जाना चाहिए, यह प्रसंग से प्रकट है।

× (९) १-५६ : 'परम प्रेम तजि जाइ नहिं किएं प्रेम बड़ पाप।' कोदवराम में 'तजि जाइ नहिं' के स्थान पर पाठ 'नहिं जाइ तजि' है। अर्थ में दोनों के कोई अंतर नहीं है—अंतर जो कुछ है वह है शब्दों के आगे-पाछे होने के कारण उनके बल में। 'तजने' के स्थान पर 'तजने' की 'असम्भावना' पर बल देना प्रसंग से अधिक समीचीन प्रतीत होता है, इसलिए पहिले 'तजि' और उसके अनंतर 'जाइ नहिं' की अपेक्षा पहिले 'नहिं जाइ' और उसके अनंतर 'तजि' अधिक उपयुक्त लगता है।

(१०) १-६९-८ : 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं।' कोदवराम में 'को' के स्थान पर पाठ 'कहुं' है। 'को' का प्रयोग इस स्थल पर कर्म कारक की विभक्ति के रूप में हुआ है, यह प्रसंग से प्रकट है, अर्थ है—'समर्थ को दोष नहीं होता है।' किन्तु ग्रन्थ भर में 'को' का प्रयोग कर्म की विभक्ति के रूप में न हो कर दो ही ढंग से हुआ है : या तो 'कौन' के अर्थ में, और या तो संबंध कारक की विभक्ति के रूप में। 'दोष' अथवा 'कलंक' के साथ भी ऐसे अवसरों पर 'कहुँ' का ही प्रयोग हुआ है, यथा :—

नयन दोष जा कहुँ जब होईं । पीत बरन ससि कहुँ कह सोई । १-७२-३
तुम्ह कहुँ भरत कलंक येह हम सब कहं उपदेसु। २-२०८

इसलिए 'कहुँ' पाठ ही प्रयोग-सम्मत है।

(११) १-७८ : 'अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्ह असीस। होइहि अब कल्यान सब संसय तजहु गिरीस।' कोदवराम में 'अब कल्यान सब' के स्थान पर 'यह कल्यान अब' पाठ है। प्रसंग यहाँ पर केवल गिरिजा के विवाह का है, इसी की चिंता उन के माता-पिता को है, 'सब प्रकार के' या किसी अन्य प्रकार के कल्याण की नहीं। इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रसंगोचित है।

(१२) १-७८-७ : 'नारद कहा सत्य हम जाना। बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना।' कोदवराम में 'सत्य हम' के स्थान पर 'सत्त सोइ' पाठ है। पहले पाठ में 'हम' के दोबारा दूसरे चरण में आने से पुनरुक्ति प्रकट है। दूसरे पाठ में यह पुनरुक्ति नहीं है, और उसकी संगति भी लग जाती है। 'सत्त' रूप अवश्य अन्यत्र नहीं आया है, 'सत्य' ही प्रयुक्त हुआ है।

× (१३) '१-८०-४ : सुनत बचन कह बिहंसि भवानी।' कोदवराम में 'बचन कह बिहंसि' के स्थान पर 'बिहंसि कह बचन' पाठ है। पहले पाठ में 'बचन' आगे पड़ता है और 'बिहंसि' पीछे—इसलिए 'बचन' को प्रधानता मिल गई है, अ। 'बिहंसि' गौण सा है; दूसरे पाठ में 'बिहंसि' आगे पड़ता है और 'बचन' पीछे, इसलिए 'बिहंसि' अपेक्षाकृत प्रधान है और 'बचन' अपेक्षाकृत गौण। अन्यथा दोनों पाठ एक से हैं।

(१४) १-८१-२: 'अब मैं जन्म संभु सैं हारा।' कोदवराम में 'सैं' के स्थान पर 'हित' पाठ है। पहले पाठ में ध्वनि यह हो सकती है कि 'अपना जीवन शंभु के कहने पर या उनकी इच्छा के अनुसार मैंने शंभु को दे दिया है।' किन्तु, अभी तक तो पार्वती शिव के संपर्क में आई नहीं हैं, इसलिए दूसरा पाठ ही अधिक समीचीन होगा, आशय यह होगा कि 'अपना जीवन मैंने शंभु के लिए ही उत्सर्ग कर रक्खा है।' तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में नहीं हैं।

× (१५) १-८२-८: 'तब बिरंचि पहिं जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे।' कोदवराम में 'पहिं' के स्थान पर 'सन' पाठ है। दोनों पाठों में विशेष अंतर नहीं प्रतीत होता है। 'पहिं पुकारे' में ध्वनि कुछ यह अवश्य प्रतीत होती है कि जिसके पास जाकर पुकार लगाई गई, वह विपत्ती की अपेक्षा अधिक बलशाली है, और उसको दंड देने की शक्ति रखता है। 'सन पुकारे' में इस प्रकार की ध्वनि नहीं प्रतीत होती। ब्रह्मा में इस प्रकार की कोई शक्ति नहीं थी कि वह स्वतः उस राक्षस को दंड दे सकते, इसलिए दूसरा पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। किंतु तुलनीय प्रयोग ग्रन्थ में नहीं मिलते, इसलिए आवश्यक निश्चय के साथ यह बात नहीं कही जा सकती।

(१६) १-८४-२ : 'परहित लागि तजैं जे देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही।' कोदवराम में 'तजैं जे' के स्थान पर 'तजै जो' पाठ है। 'तेही' = 'तेहि' एकवचन के लिए एकवचन 'जो' ही शुद्ध है, बहुवचन 'जे' नहीं, इसलिए दूसरा ही पाठ समीचीन प्रतीत होता है।

(१७) १-८४-३ : 'अस कहि चलेउ सबहि सिर नाई। सुमन धनुष कर लेत सहाई।' कोदवराम में 'लेत' के स्थान पर 'सहित' पाठ है। पहले पाठ में 'लेत' को देहरी-दीपक के रूप में प्रयुक्त मानना पड़ता है, और उसे 'सुमन धनुप कर' तथा 'सहाई' दोनों कर्मों की क्रिया मानना पड़ता है। 'सहित' पाठ में यह कठिनाई नहीं है : अर्थ की पूरी रक्षा तो हुई ही है, पाठ भी सुलझा हुआ है।

(१८) १-९१-६ : 'जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्ही पाती।' कोदवराम में 'दीन्ही' के स्थान पर 'दीन्हि सो' पाठ है। यह पत्रिका कोई नई नहीं थी: यह वही थी जिसे सप्तर्षियों ने हिमालय से लग्न के संबंध में प्राप्त किया था। इसलिए यह प्रकट है कि दूसरा पाठ अधिक प्रसंगोचित है।

(१९) १-१८२-५ : 'गर्जत गर्भ स्रवत सुररवनी।' कोदवराम में 'स्रवत' के स्थान पर पाठ 'स्रवहिं' है। कर्ता 'सुररवनी' बहुवचन ही होना चाहिए, क्योंकि किसी विशेष सुररमणी के संबंध में कुछ कहा नहीं गया है, इसलिए उसके लिए क्रिया भी एकवचन 'स्रवत'

की अपेक्षा बहुवचन 'सवहिं' ही अधिक समीचीन है। अन्यत्र भी इस प्रकार के स्थलों पर 'सवहिं' आया है :—

गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि सुनि कुठार गति घोर। १-२७६

गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी। ५-२८-१ स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी। ५-३६-७

× (२०) १-२७२ : 'महीसं'। कोदवराम में इसके स्थान पर 'महीप' पाठ मिलता है। दोनों के अर्थों में किसी प्रकार का अंतर नहीं है। यह अवश्य है कि 'महीप' ग्रन्थ में 'महीस' की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुआ है।

(२१) १-३०५-८ : 'मुदित बराती हने निसाना।' कोदवराम में 'बराती' के स्थान पर 'बरातिन्ह' है। यह बात किसी विशेष 'बराती' के लिए कही नहीं गई है, यह प्रसंग से सिद्ध है; और 'हने' क्रिया भी बहुवचन है, एकवचन नहीं। इसलिए बहुबचन रूप 'बरातिन्ह' अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

× (२२) १-३३५ : 'हरषि उठेउ रनिवास।' कोदवराम में 'उठेउ' के स्थान पर पाठ 'उठी' है। 'रनिवास' का प्रयोग ग्रंथ में स्त्रीलिंग में भी मिलता है, यथा:—

राजा सब रनिवासु बोलाई। जनकपत्रिका बाँचि सुनाई। १-२६४-१

और पुलिंग में भी, यथा:—

येहि अवसर मंगल परम सुनि रहसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु॥ २-७

फलतः दोनों पाठ समीचीन लगते हैं।

× (२३) १-३६०-१ : 'सुदिन साधि कल कंकन छोरे।' कोदवराम में 'साधि' के स्थान पर पाठ 'सोधि' है। ग्रंथ में दोनों प्रकार के प्रयोग ऐसे प्रसंगों में मिलते हैं, यथा :—

सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई। १-१५४-५

सुनि सिख पाइ असीस बड़ि जनक बोलि दिन साधि। २-३२३

सुदिन सोधि सबु साजु सजाई। २-३१-८

सुदिन सोधि मुनिबर तब आए। २-१७१-२

और वस्तुतः दोनों में कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है।

बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक की प्रति में एक ही पाठ ऐसा है जो कोदवराम, १६६१/१७०४ तथा १६०५ की प्रतियों में मिलता है, यद्यपि चौबे जा द्वारा उल्लिखित शेष प्रतियों में नहीं मिलता। यह पाठ भी अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होता है :

(१) १-३६-७ : ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्हकें राम-चरन भल चाऊ।' बंदन पाठका में 'चाऊ' के स्थान पर पाठ 'भाऊ' है। 'चाऊ' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'उत्साह' और 'उमंग' या 'प्रसन्नता' के अर्थ में हुआ है, 'प्रेम' अथवा 'भक्ति' के अर्थ में नहीं; और यहाँ पर प्रसग 'प्रेम' और 'भक्ति' का ही है, जिसके लिए 'भाऊ' प्रयुक्त हुआ है :

सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ। २-२५७

दिन दिन सय गुन भूपति भाऊ। १-३६०४ जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ। ७-१२१-१

फलतः 'भाऊ' पाठ का समीचीनता प्रकट है।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास की प्रति में भी, इसी प्रकार, निम्नलिखिति पाठ ऐसे हैं जो बंदन पाठक, कोदवराम, १६६१/१७०४ तथा उपर्युक्त १६०५ में मिलते हैं, यद्यपि शेष विवेचनीय प्रतियों में नहीं मिलते, और उक्त अन्य प्रतियों के पाठों की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं :

(१) १-५-२ : 'बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहिं कि कागा।' रघुनाथदास में 'कबहिं' के स्थान पर पाठ 'कबहुं' है। 'कबहिं' का प्रयोग ग्रंथ भर में केवल एक बार हुआ है, और वह भी 'कब' के अर्थ में, 'कभी' के अर्थ में नहीं :

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी। २-५२-५

'कभी' के अर्थ में 'कबहुं' का ही प्रयोग ग्रंथ में मिलता है, यथा :—

सहज एकाकिन्ह कें भवन कबहुं कि नारि खटाहिं। १-७६

कबहुं कि कांजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ। २-२३१

जन मन कबहुं कि करउं दुराऊ । ३-४२-३
तात कबहुं मोहिं जानि अनाथा । करिहहिं कृपा भानुकुलनाथा । ५-७-२

इसलिए वह समीचीन है ।

× (२) १-६ : 'ग्रहहिं' के स्थान पर रघुनाथ दास में 'गहहिं' पाठ है । 'ग्रहहिं' पाठ ग्रंथ भर में एकाध ही स्थलों पर अन्यत्र मिलता है, अन्यथा सामान्यतः 'गहहिं' ही मिलता है, यथा :

ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा । १-११८-७
गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई । ७-४४-३
भगत हेतु लीला तनु गहई । १-१४४-७
पतिब्रत धर्म छांडि छल गहई । ३-५-१८
करि माया नभ के खग गहई । ५-३-१
गहइ छांह सक सो न उड़ाई । ५-३३

(३) १-१७ : 'प्रनवौं पवन कुमार खल बन पावक ज्ञान घर । जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ।' रघुनाथदास में 'ज्ञान घर' के स्थान पर 'ज्ञान घन' पाठ है । तीसरे चरण में 'घर' का एक समानार्थी 'आगार' आया हुआ है, इसलिए पहिले पाठ में पुनरुक्ति स्पष्ट है । 'घन' पाठ में यह पुनरुक्ति नहीं है, यद्यपि अर्थ में उससे कोई अंतर वस्तुतः नहीं पड़ता है ।

(४) १-२०-८ : 'जन मन कंज मंजु मधुकर से । जीह जसोमति हरि हलधर से ।' रघुनाथदास में 'कंज मंजु' के स्थान पर पाठ 'मंजु कंज' है । 'मधुकरों' की 'मंजुता' की अपेक्षा 'कंजों' की 'मंजुता' अधिक समीचीन लगती है, इसलिए 'मंजु मधुकर' की अपेक्षा 'मंजु कंज' पाठ अधिक समीचीन प्रतीत होता है ।

(५) १-२० : 'तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजित दोउ ।' रघुनाथदास में 'बिराजित' के स्थान पर पाठ 'बिराजत' है । 'बिराजित' = 'बैठे हुए' का कोई प्रसंग नहीं है, 'बिराजत' = 'विशेष रूप से राजते–शोभा देते—हैं,' प्रसंग तो इस का है, इसलिए रघुनाथदास का पाठ ही प्रसंग-सम्मत है ।

(६) १-२२-४ : 'साधक नाम जपहिं लौ लाए। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए।' रघुनाथदास में 'लौ' के स्थान पर पाठ 'लय' है। प्रसंग से अर्थ इस शब्द का 'तन्मयता पूर्वक ध्यान' होना चाहिए, और 'तन्मयता पूर्वक ध्यान' के अर्थ में ग्रंथ भर में 'लय' शब्द का प्रयोग हुआ है, यथा :

राम काज लय लीन मन बिसरा तन कर छोह। ४-२३
ते नर धन्य जे ध्यान एहि रहत सदा लय लीन। ६-११
ब्रह्मानंद सदा लय लीना। ७-२२-४
केवल राम चरन लय लागा। ७-११०-६

केवल एक स्थान पर 'लौ' शब्द का प्रयोग हुआ है :

सब तजि तुम्हहि रहहि लउ लाई। तेहि के हृदय बसहु रघुराई। २ १३१-६

इसलिए रघुनाथदास का पाठ अधिक प्रयोग-सम्मत प्रतीत होता है।

(७) १-२२ : 'हमरे मत बड़ नाम दुहूँ तें।' रघुनाथदास में 'हमरे' के स्थान पर पाठ 'मोरें' है। प्रसंग भर में प्रथम पुरुष एक-वचन का प्रयोग हुआ है (यथा : १-२३-३ ; १-२३-५), इसलिए उसी के अनुरूप यहाँ भी प्रथम पुरुष एकवचन 'मोर' अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

(८) १-२७-५ : 'नाम काम तरु काल कराला। सुमिरत सकल समन जंजाला।' रघुनाथदास में 'सकल' और 'समन' परस्पर स्थानांतरित हैं। 'सकल' 'जंजाला' का विशेषण है, इसलिए जैसा रघुनाथदास में है, उसका 'जंजाला' के पास होना ही अधिक उपयुक्त है।

(९) १-२७-५ : पुनः उसी अर्द्धाली में रघुनाथदास में 'जंजाला' के स्थान पर 'जग जाला' पाठ है। प्रसंग नाम की महत्ता का है : 'जंजालों' को शमन करने में उसका वैसी महत्ता नहीं प्रतिपादित होती है जैसी 'जगजाल' को शमन करने में, क्योंकि 'जंजालों' के शमन के लिए तो अनेक उपचार हो सकते हैं, 'जग जाल' ही दुर्दमनीय होता है। इसलिए 'जग जाला' पाठ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

(१०) १-५३-५ : 'निज माया बल हृदयँ बखानी। बोले बिहँसि राम मृदु बानी। जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू।' रघुनाथदास में 'हरि' के स्थान पर 'निज' पाठ है। 'राम' और 'प्रभु' लगातार आ चुके हैं; उनके बाद ही समानार्थी 'हरि' का आना उतना ठीक नहीं प्रतीत होता जितना उसके स्थान पर 'निज' सर्व नाम का। इसलिए रघुनाथदास का पाठ अधिक उपयुक्त लगता है।

× (११) १-५७ : 'जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि। बिलग होत रस जाइ कपट खटाई परत पुनि।' रघुनाथदास में 'होत' के स्थान पर पाठ 'होइ' है। 'बिलग होना' और 'रस का नष्ट हो जाना' दोनों परिणामों का कारण एक ही है : 'खटाई पड़ना'। 'होत' पाठ से प्रतीत यह होता है कि 'खटाई पड़ना' और 'बिलग होना' अलग-अलग कारण हैं। फिर 'बिलग होत' के 'खटाई परत' के पहले आने से यह भ्रम हो सकता है कि 'बिलग होना' 'खटाई पड़ने' के पहले या साथ-साथ होता है। अन्यथा दोनो पाठ एक-से लगते हैं।

(१२) १-६१ : 'कृपा अयन' के स्थान पर रघुनाथदास में 'कृपा-यतन' पाठ है। 'कृपा अयन' ग्रंथ भर में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है, 'कृपायतन' अनेक स्थानों पर मिलता है, यथा :

चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि। १-२६०
तुम्हरी कृपा कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह। ७-५२

'करुणा अयन' का प्रयोग अवश्य ग्रंथ में मिलता है, किंतु यह ध्यान देने योग्य है कि केवल तीन स्थलों पर यह मिलता है, और तीनों स्थलों पर तुक की आवश्यकताओं के कारण इसे रखना पड़ा है : एक स्थान पर 'मयन' से तुक मिलाया गया है (१-१-सो०), और दो स्थानों पर 'बयन' से (१-१००; २-१३६)। यहाँ पर ऐसी कोई आवश्यकता नहीं थी।

(१३) १-६६-६ : 'सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि तब आसनु दीन्हा।' रघुनाथदास में 'तब' के स्थान पर पाठ 'बर' है।

'पद पखारि' के बाद 'तब' न केवल अनावश्यक है, बल्कि उसके आने से यह ध्वनि संभव है कि शैलराज ने उनके यदि पद न पखारे होते, तो वे उन्हें आसन न देते, जो कि ठीक नहीं है। 'पद पखारना' तथा 'आसन देना', दोनों केवल 'आदर' की भावना से शैलराज ने किया है। 'बर' पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

× (१४) १-७१-२ : 'नाथ न मैं बूझे मुनि बैना।' रघुनाथदास में 'बूझे' के स्थान पर पाठ 'समुझे' है। इस प्रसंग में 'बूझे' और 'समुझे' एक-से लगते हैं, क्योंकि दोनों ग्रंथ भर में समानार्थी की भाँति प्रयुक्त हैं, यथा :

समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा। १-१३३-२
बिनु समुझे निज अघ परिपाकू। २-२६१-६
समुझी नहि तसि बालपन। तब अति रहेउं अचेत। १-३०
को मैं चलेउं कहां नहिं बूझा। ३-१०-११
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। २-४७-२

(१५) १-७१ : 'प्रिया सोच अब परिहरहु सुमिरहु श्री भगवान।' रघुनाथ दास में 'अब' के स्थान पर 'सबु' पाठ है। 'अब' पुनः बाद वाली अर्द्धाली में ही आया हुआ है, इसलिए वह ठीक नहीं प्रतीत होता। उसके स्थान पर 'सबु' प्रसंग में खप जाता है, और उसमें पुनरुक्ति भी नहीं है।

(१६) १-७२-४ : 'अस बिचारि सब तजहु असंका। संबहिं भाँति संकर अकलंका।' रघुनाथदास में 'सब' के स्थान पर 'तुम्ह' पाठ है। 'सब' पूर्व वाली अर्द्धाली में आ चुका है, और 'सबहिं' के रूप में इस अर्द्धाली में भी बाद को आता है, इसलिए 'सब' के पुनरुक्तिपूर्ण पाठ की अपेक्षा 'तुम्ह' पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। प्रसंग में दोनों पाठ ठीक लगते हैं।

(१७) १-७५-४ : 'आवैं पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं। मिलहिं जबहिं अब सप्त रिषीसा। जानिहु तब प्रमान बागीसा।' रघुनाथदास में 'मिलहिं जबहिं अब' के स्थान पर पाठ 'मिलहिं तुम्हहिं जब' है। पूर्व वाली अर्द्धाली में 'जबहिं' आ

चुका है, इसलिए इस अर्द्धाली में 'जबहिं' की पुनरुक्ति ठीक नहीं लगती। 'तुम्हहिं जब' में भी 'जबहिं' की आंशिक पुनरुक्ति है, किंतु वह उतनी ही है जितनी पूर्व वाली अर्द्धाली के 'तबहीं' की इस अर्द्धाली के 'तब' में। अर्थ की दृष्टि से दोनों पाठों में अंतर नहीं है। इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक त्रुटिरहित प्रतीत होता है। 'मिलिहिं' और 'मिलहिं' का अंतर इसी पाठभेद के आधार पर है।'

(१८) १-७७ : 'पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु। गिरिहि जाइ पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु।' तीसरे चरण में आए हुए 'जाइ' के स्थान पर रघुनाथदास में 'प्रेरि' पाठ मिलता है। 'जाइ' पहले चरण में आ चुका है, इसलिए तीसरे चरण में पुनः उसके आने पर पुनरुक्ति-दोष आता है। 'प्रेरि' प्रासंगिक होते हुए इस दोष से मुक्त है, और प्रयोग-सम्मत भी है, यथा :

प्रेरि सतिहि जेहिं झूठ कहावा। १-५६-५ जाइ सुपनखा रावन प्रेरा। ३-२१-५
तस कहिहौं हिय हरि के प्रेरें। १-३१-३ हृदय राम माया के प्रेरें। ७-१०-४?

(१९) १-१०७-५ : 'पति हिय हेतु अधिक मन मानी। बिहंसि उमा बोली मृदु बानी।' रघुनाथदास में 'मन मानी' के स्थान पर पाठ 'अनुमानी' है। पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

पारबती भल अवसरु जानी। गईं संभु पाहुं भवानी।
जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हरि दीन्हा।

यहाँ पर 'मन में मानने' का कोई प्रसंग नहीं है : 'मानने' का प्रसंग तो तब होता जब कोई उन्हें इस प्रकार का विश्वास दिलाने का यत्न करता होता। 'अनुमानी' की प्रासंगिकता प्रकट है, इसलिए वह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

(२०) १-२६३-८ : 'सतानंद तब आयेसु दीन्ही। सीता गमनु राम पहिं कीन्ही।' रघुनाथदास में 'दीन्ही' और 'कीन्ही' के स्थान पर क्रमशः 'दीन्हा' और 'कीन्हा' हैं। 'आयेसु' और 'गमन' दोनों ही ग्रंथ भर में पुल्लिंग के रूप में व्यवहृत हुए हैं, और उनके साथ क्रिया भी पुल्लिंग ही मिलती है, यथा :

प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयेसु दीन्हा। १-१८२-२
निसि प्रवेस मुनि आयेसु दीन्हा। १-२२६-१
जो मुनीस जोहि आयेसु दीन्हा। २-७-१
सखा अनुज सिय सहित बन गवन कीन्ह रघुनाथ। २-१०४
अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। २-४६-५
बिप्रन्ह सहित गवन गुर कीन्हा। २-२०३-२

इसलिए 'दीन्हा' और 'कीन्हा' पाठ ही शुद्ध लगता है।

छक्कनलाल के स्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल की प्रति में भी इसी प्रकार कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि रघुनाथदास, वंदन पाठक, कोदवराम, १६६१/१७०४ की प्रतियों में मिलते हैं, विवेचनीय शेष दो—अर्थात् १७२१ और १७६२ ——में नहीं मिलते। इन पाठों की भी विशेषता यह है कि यह अन्यों की उपेक्षा उत्कृष्टतर लगते हैं।

(१) १-०-१ : 'गुरु पद मृदु मंजुल रज अंजन। नयन अमिअ दृगदोष बिभंजन।' छक्कनलाल में 'मृदु मंजुल रज' के स्थान पर 'रज मृदु मंजुल' पाठ है। प्रसंग से यह प्रकट है कि 'पद' तथा 'रज' का समास होना चाहिए, किंतु पहले पाठ में दोनों एक दूसरे से इतने दूर पड़ रहे हैं कि कुछ इस प्रकार के अर्थ का भ्रम होना संभव है : 'गुरु के मृदु चरणों में लगा हुआ मंजुल रज का अंजन'। दूसरे पाठ में इस प्रकार के भ्रम की कोई संभावना नहीं है, और 'पद-रज' का समास स्वतः लग जाता है।

(२) १-१६-५ : 'जान आदि कबि नाम प्रभाऊ। भएउ सुद्ध कहि उलटा नाऊ।' छक्कनलाल में 'प्रभाऊ' के स्थान पर 'प्रतापू' तथा 'कहि उलटा नाऊ' के स्थान पर 'करि उलटा जापू' है। 'प्रभाऊ' ऊपर वाली अर्द्धाली में तुक के रूप में आता है, इसलिए प्रस्तुत अर्द्धाली में उसका पुनः प्रयुक्त होना—सो भी तुक के ही रूप में—ठीक नहीं लगता। 'प्रतापू' पाठ में यह पुनरुक्ति नहीं है। शेष पाठभेद 'प्रतापू' के साथ तुक मिलाने के लिए ही कदाचित् आवश्यक है, अन्यथा

उससे अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता। 'प्रताप' और 'प्रभाव' में प्रयोग-सम्मत दोनों हैं : यथा:

नारद जानेउ नाम प्रतापू। १-२६-३ नाम प्रभाउ जान सिव नीको। १-१८-८
भव भय भंजन नाम प्रतापू। १-२३-६
निरगुन तें इहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार। १ २३

(३) १-२६-५ : 'ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊं। थापेउ अचल अचल अनूपम ठाऊं'। छक्कनलाल में 'थापेउ' के स्थान पर 'पाएउ' पाठ है। 'थापेउ' में ध्वनि यह प्रतीत होती है कि उक्त 'अचल' और 'अनुपम' स्थान ध्रुव को पहले से ही प्राप्त था, 'हरिनाम जप' से वह सुरक्षित हो गया। किंतु यह ध्वनि अपेक्षित नहीं है, यह बात 'सग लानि' क्रिया-विशेषण से प्रकट है। 'पाएउ' पाठ अतः 'थापेउ' स्थान पर इस प्रसंग में अधिक समीचीन लगता है।

(४) १-३७-३ : 'राम सीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बिमल बिलास मनोरम।' छक्कनलाल में 'बिमल' के स्थान पर पाठ 'बीचि' है। 'बिलास' से 'लहरियों' का अर्थ निकालने में—जो कि उक्ति की पूर्ति के लिए आवश्यक है—कुछ दूर का अन्वय लेकर 'सलिल' के साथ उसका संबंध लगाना पड़ता है। 'बीचि' पाठ में इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं उपस्थित होती।

(५) १-४६-८ : 'नारि बिरह दुख लहेउ अपारा। भए रोषु रन रावन मारा।' छक्कनलाल में 'भए' के स्थान पर पाठ 'भएउ' है। यह शंकात्मक कथन राम के संबंध में उपस्थित किया गया है। 'भए रोष' पाठ से ध्वनि यह ली जा सकती है कि 'रुष्ट होने पर' ही उन्होंने 'रावण का वध किया', अन्यथा संभव है उसका वध वे न करते। किंतु यह ध्वनि प्रसंग में अपेक्षित नहीं है। शंका तो इस बात को लक्ष्य करके उपस्थित की गई थी कि अवधेशकुमार राम के तो समस्त आचरण मानवीय थे : ईश्वर काम और क्रोध से अभिभूत नहीं हो सकता, किंतु वे तो काममोहित होने के कारण ही नारि के विरह दुःखी हुए थे, और क्रोधाभिभूत होने के कारण ही उन्होंने

रावण का बध किया था। 'भएउ' पाठ में उपर्युक्त भ्रम की संभावना नहीं है, इसलिए वह अपेक्षाकृत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

(६) १-४६-७ : 'बिरह बिकल इव नर रघुराई। खोजत फिरत बिपिन दोउ भाई।' छक्कनलाल में 'इव नर' के स्थान पर 'नर इव' पाठ है। 'इव नर' पाठ में 'नर' को 'रघुराई' के विशेषण के रूप में मान लेने की संभावना है, जो कि कवि को अभीष्ट नहीं हो सकती थी। 'नर इव' पाठ में इस भ्रम की संभावना नहीं है, यद्यपि अर्थ में दोनों के कोई अन्तर नहीं है।

(७) १-५०-१ : 'संभु समय तेहिं रामहिं देखा। उपजा हिय तेहिं हरषु बिसेषा।' छक्कनलाल में दूसरे 'तेहिं' के स्थान पर 'अति' पाठ है। 'तेहिं' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'उसने' के अर्थ में अन्य पुरुष एकवचन कर्त्ता के लिए ही हुआ है, यथा :

तेहि सब लोक लोकपति जीते। १-८२-६
तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। १-८३-३
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाईं। १-२२८-८
बंस सुभाउ उतरु तेहिं दीन्हा। १-२८२-२

शिव के लिए उसका प्रयोग खटकता है, क्यों कि उस प्रसंग में ही उनके लिए बहुवचन कर्त्ता का रूप आया है :

चले जात सिव सती समेता।१-५०-४
भए मगन छबि तासु बिलोकी। ५-५०-८
तिन्ह नृप सुतन्ह कीन्ह परनामा। १-५०-८
बोले बिहंसि महेस हरि माया बलु जानि जिअँ। १-५१

दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और वह प्रसंग में भी खप जाता है, इसलिए वह अपेक्षाकृत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

(८) १-६१ : 'जौं ऐसहिं हिसिषा करहिं नर बिबेक अभिमान। परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान।' छक्कनलाल में पहले दो चरणों का पाठ इस प्रकार है :

जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान।

इसके पूर्व ही नारद ने कहा है कि यदि सामर्थ्यवान लोग एक बार कोई अनुचित आचरण भी करें, तो बुद्धिमान लोग उन्हें दोषी नहीं ठहराते, और इस संबंध में वे 'रवि' 'पावक' और 'सुरसरि' का उदाहरण देते हैं, किंतु पुनः वे इन पंक्तियों में सावधान करना चाहते हैं कि 'भानु' और 'कृसानु' का अनुकरण करके यदि कोई ज्ञानाभिमानी मनुष्य सर्वरसभक्षी हो जावे, अथवा यदि वह 'सुरसरि' का अनुकरण करके शुचिता-अशुचिता का ध्यान न रक्खे, तो उसे तो कल्प पर्यन्त नर्क में निवास करना पड़ेगा। इस प्रकार का ज्ञानाभिमानी वास्तव में 'ज्ञानी' नहीं 'जड़' ही होगा, इसलिए 'जड़' युक्त दूसरा पाठ अधिक युक्तियुक्त लगता है। 'ऐसहि' और 'अस' का अंतर केवल छंद की गति के अनुसार किया गया प्रतीत होता है।

(९) १-७३-८ : 'प्रिय परिवार पिता अरु माता। भएउ बिकल मुख आव न बाता।' छकनलाल में 'भएउ' के स्थान पर 'भए' पाठ है। 'भएउ' क्रिया के कर्त्ता कई हैं, इसलिए उसका यह एकवचन रूप अशुद्ध है, उसका 'भए' बहुवचन रूप ही व्याकरण-सम्मत है।

(१०) १-१०३-७ : 'हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल गयऊ। जब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहिं मारा।' छकनलाल में 'जब' के स्थानपर पाठ 'तब' है। पहले पाठ में 'जब' किसी क्रिया-विशेषण उपवाक्य का वाचक नहीं है, वरन् दो स्वतंत्र उपवाक्यों को जोड़ने भर का वाचक है, यह प्रसंग से प्रकट है। 'तब' इस कार्य को और अच्छी तरह करता है, इसलिए वह अधिक उपयुक्त है।

×(११) १-१२६-३ : 'चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु जगावनिहारी।' छक्कनलाल में 'जगावनि' के स्थानपर पाठ 'बढ़ावनि' है। दोनो पाठ समान रूप से संगत प्रतीत होते हैं। ग्रंथमें तुलनीय प्रयोग नहीं मिलते हैं।

(१२) १-१६५-५ : 'चलै न ब्रह्म कुल सब बरिआई।' छक्कन लाल में 'चलै' के स्थान पर पाठ है 'चल'। 'चलै' पाठ का 'ऐ' छंद की

गति के लिए प्राय: उच्चरित नहीं होता है। 'चल' में यह त्रुटि नहीं है, और इसी प्रकार 'चलै' के अर्थ में अन्यत्र वह प्रयुक्त हुआ भी है :

कबहुँ प्रबल चल मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं। ४-१५
आजु सबन्ह कहँ भच्छन करऊं। दिन बहु चल अहार बिनु मरऊं। ४-२६-३

(१३) १-२८८-३ : "सिसु सम प्रीति न जाति बखानी।' 'जाति' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'जाइ' है। 'जाति बखानी' ग्रंथ भर में अन्यत्र नहीं मिलता है, जब कि 'जाइ बखानी' अन्यत्र भी आया है :

परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि। २-११०
जाइ न कोटिहु बदन बखानी। १-६६-८
सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। १-२४६-१
सगुन सुगंध न जाइ बखानी। १-३४५-७

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोग-सम्मत प्रतीत होता है।

(१४) १-२२६-७ : 'आजु लगे कीन्हेउं तुम सेवा।' 'कीन्हेउं' के स्थानपर छक्कनलाल में पाठ है 'कीन्हिउं'। 'सेवा' ग्रंथभर में स्त्रीलिंग है, यथा :

करइ सदा नृप सब कै सेवा। १-१५५-४
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। २-१०६-६
हैं तुम्हरी सेवा बस राऊ। २-२१-८
तोषे राम सखा की सेवा। २-२२१-३

कर्म के स्त्रीलिंग होते हुए भूतकाल की सकमक क्रिया का भी स्त्रीलिंग होना ही समीचन है। 'कीन्हेउ' का प्रयोग ग्रंथ में पुल्लिग रूप में हुआ है, कहीं भी उसके साथ स्त्रीलिंग कर्म नहीं आया है। इसलिए स्त्रीलिंग रूप 'कीन्हेउ' ही यहाँ समीचीन है।

(१५) १-२७५ : 'गाधिसूनु कह हृदय हँसि मुनिहि हरिअरे सूझ।' 'हरिअरे' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'हरिअरै'। पहला रूप सप्तमी का है, अर्थ होगा 'हरियाली में' ही, जो प्रसंग में अभीष्ट नहीं है। अपेक्षित अर्थ है 'हरियाली ही' जो प्रसंग से

प्रकट है। इसलिए इसका बोध कराने वाला 'हरिअरे' पाठ ही प्रसंग सम्मत होगा।

(१६) १-३०१-१ : 'गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ गज बाजि हिंसहिं चहुं ओरा।' 'हिंसहिं' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'हिंस'। 'घंटा धुनि' और 'रथरव' के साथ एकरूपता 'बाजि हिंस' में ही मिलता है, 'बाजि हिंसहिं' में नहीं। अन्यथा दोनो पाठों में अंतर नहीं है।

(१७) १-३४५-३ : 'जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृह छाए।' 'छाए' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'आए'। 'छाए' में कभी-कभी एक 'जबरदस्ती' की ध्वनि भी हो सकती है, जो 'आए' में संभव नहीं है। प्रसंग यहाँ पर 'उछाह' का है, इसलिए 'आए' अधिक उपयुक्त लगता है।

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

सं० १७२१ की प्रति में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि सं० १७६२ की प्रति में नहीं मिलते, पर ऊपर जिन प्रतियों के पाठांतरों का विवेचन हो चुका है, उन सभी में मिलते हैं। किंतु इन पाठांतरों में सभी ऐसे नहीं है जो नवीन पाठ प्रस्तुत करते हों—ऐसे तो दो ही हैं जो निम्नलिखित हैं। जो शेष संख्या ऐसों की है जो १७६२ की प्रति के लिपि-प्रमाद वाले स्थलों पर वास्तविक पाठ मात्र देते हैं।

(१) १-१४६-१ : 'सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी।' १७२१ में 'बोली' के स्थान पर पाठ 'बोले' है। प्रसंग मनु सतरूपा की वर-याचना का है। उनसे राम ने वर माँगने के लिए कहा है, और उसी के उत्तर में निवेदन किया जा रहा है। प्रसंग से प्रकट है कि यह निवेदन मनु कर रहे हैं, क्योंकि यह कहने पर कि :

एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं।

सो जानहु तुम अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी।

राम कहते हैं :

सकुच बिहाइ मांगु नृप मोहीं। मोरे नहिं अदेय कछु तोही।

और इसी आदेश पर मनु विवेचनीय पंक्ति से अभीष्ट वर की याचना प्रारम्भ करते हैं। सतरूपा से राम ने अलग वर की याचना करने का आदेश किया है :

सतरूपहि बिलोकि कर जोरे। देबि मांगु बरु जो रुचि तोरे।

और सतरूपा ने उसी पर कहा है :

जो बरु नाथ चतुर नृप मांगा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा।

किंतु, मनु कर्त्ता के साथ क्रिया 'बोले' ही होगी, 'बोली' नहीं। कहा जा सकता है कि उसके साथ 'मृदु बानी' जो आया है, उसके कारण स्त्रीलिङ्ग रूप होना चाहिए। किंतु यह ठीक नहीं है। 'बोलना' या 'करना' क्रिया के साथ 'मृदु बानी' ग्रंथ भर में अनेक स्थलों पर आया है, किंतु उस के साथ क्रिया का रूप पुल्लिङ्ग ही है--कारण यह है कि 'मृदु बानी' वहां कर्म के रूप में नहीं, क्रिया-विशेषण के रूप में प्रयुक्त है, यथा:

बोले अति पुनीत मृदु बानी। १-४५-६ कहेउ मातु सन अति मृदु बानी। २-५३-५
पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी। १-१५६-२ बिहंसि लखन बोले मृदु बानी। १-२७२

कपट बोरि बानी मृदुल बोले जुगुति समेत। १-१६०

(७) १-२१०-१० : 'धनुष जग्य कहं रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा।' १७२१ में 'कहं' के स्थान पर पाठ 'सुनि' है। 'कहं', का अर्थ 'को'—अथवा इस प्रकार के प्रसंगों में 'के लिए'—होगा, इसलिए 'कहं' पाठ से यह भ्रम हो सकता है कि राम स्वतः धनुष यज्ञ करने के लिए चले। 'सुनि' पाठ में इस भ्रम की संभावना नहीं है।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-८-१४ : 'सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई।' 'सकृत' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सकृति'। 'सकृति' यहाँ पर अर्थहीन है। 'सकृत' = 'एकाघ' ही ठीक है, यह प्रसंग से प्रकट है।

(२) १-२९-८ : 'राज सभा रघुबीर बखाने।' १७६२ में 'राज-सभा' के स्थान पर पाठ है 'राम सभा'। 'राम सभा' में रघुबीर

बखान करें, यह पुनरुक्तिपूर्ण है : 'राजसभा' ही शुद्ध पाठ प्रतीत होता है।

(३) १-७५ : 'चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम। बिचरहिं महि धरि हृदय हरि सकल लोक अभिराम।' १७६२ में 'काम' के स्थान पर पाठ है 'मान'। 'मान' और 'अभिराम' का तुक नहीं बैठता, और प्रसंग में भी 'काम' अधिक उपयुक्त लगता है, क्योंकि आगे कि अर्द्धाली ही इस प्रकार है :

जदपि अकाम तदपि भगवाना। नारि बिरह दुख दुखित सुजाना।

(४) १-१००-८ : 'जाइ न कोटिहुं बदन बखानी।' १७६२ में 'कोटिहुं' के स्थान पर पाठ 'कोटि बहु'। 'कोटि बहु' पाठ में या तो एक मात्रा बढ़ जाती है, या किसी दीर्घ को ह्रस्व की भाँति पढ़ना पड़ता है। 'कोटिहु' पाठ में यह दोष नहीं है, यद्यपि अर्थ में कोई वास्तविक अंतर दोनों में नहीं है।

(५) १-१२४-१ : 'तासु स्राप हरि कीन्ह प्रवाना।' १७६२ में 'कीन्ह' के स्थान पर पाठ 'दीन्ह' है। 'दीन्ह प्रवाना' या उसका कोई रूप ग्रंथ में कहीं नहीं मिलता, सर्वत्र 'प्रवान करना' ही मिलता है, यथा :

बरष चारि दस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान। २-५३

नृपहि बचन प्रिय नहि प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रमाना। २-१७४-५

(६) १-१२७-८ : 'बार बार बिनवौं मुनि तोही। जिमि यह चरित सुनाएहु मोही। तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूं। चलेहुं प्रसंग दुराएहु तबहूँ।' १७६२ में 'सुनाएहु' स्थान पर भी पाठ 'सुनावहु' है। यह वाक्य शंकर ने नारद से कहे हैं। 'दुराएहु' के भविष्य कालिक रूप से 'सुनाएहु' के भविष्य कालिक रूप की समीचीनता प्रकट है; उसके साथ वर्त्तमान कालिक रूप 'सुनावहु' नहीं हो सकता।

(७) १-१३१-८ : 'हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला।' 'हे' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'हैं'। दोनों 'बिधि' एक ही अर्थ में प्रयुक्त नहीं हो सकते। 'उपाय' के अर्थ में दूसरा ही 'बिधि' है, यह 'कवन' विशेषण से प्रकट है; इसलिए पहला 'बिधि' 'विधाता' के अर्थ में प्रयुक्त

ज्ञात होता है। ऐसी दशा में संबोधनात्मक 'हे' ही समीचीन होना चाहिए, क्रिया 'हैं' नहीं।

(८) १-१४३-८ : 'सत समाज नित सुनहिं पुराना।' 'सत' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'संत'। पढ़ने में छंद की गति की रक्षा के लिए 'संत' को 'सँत' की भाँति पढ़ना अनिवार्य है, जो ठीक नहीं लगता है। 'सत' पाठ में यह दोष नहीं है, यद्यपि दोनों के अर्थों में अंतर नहीं है।

(९) १-१५०-५ : 'प्रभु परतु सुचि होत ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सुहाई।' 'भगत' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'भगति' 'भगति हित' का कोई प्रसंग नहीं है; प्रसंग यहाँ पर भक्त की वर-याचना का है, जिसमें 'भगत हित' ही समीचीन प्रतीत होता है।

(१०) १-१८४-छं० : इस छंद के चरण दीर्घ के स्थान पर १७६२ में ह्रस्व तुकांत है। 'छंद' ग्रंथ भर कई बार आए हैं, किन्तु उनके चरण सर्वत्र दीर्घ तुकांत हैं, ह्रस्व तुकांत नहीं। यहां पर ह्रस्व तुकांत चरण होने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।

(११) १-१८६ छं० : इस छंद के भी कतिपय चरण १७६२ में ह्रस्व तुकांत हैं, यद्यपि अन्य दीर्घ तुकांत हैं, यथा:

जेहि सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा।

अतः यहाँ चरणों के ह्रस्व तुकांत होने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। अन्यत्र भी ग्रंथ भर में 'छंद' दीर्घ तुकांत हैं।

(१२) १-२३४-५ : 'परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भएउ गहरु सब कहहिं सभीता। पुनि आउब एहि बेरिआं काली। अस कहि मन बिहंसी एक आली।' १७६२ में 'भएउ' के स्थान पर पाठ है 'भए'। 'भए' पाठ में 'कहहिं' का कोई कर्म नहीं रह जाता, और वाक्य अधूरा रह जाता है। यदि यह कहा जावे कि 'पुनि आउब एहि बेरिआं काली' 'कहहिं' का कर्म है, तो यह इसलिए ठीक नहीं है कि फिर 'कहि' क्रिया कर्महीन हो जाती है। 'भएउ' पाठ में यह दोष नहीं है।

(१३) १-२६०-७ : 'खेलत रहे तहां सुधि पाई । आए भरत सहित हित भाई ।' १७६२ में 'हित' के स्थान पर पाठ 'दोउ' है । राम और लक्ष्मण मिथिला में थे, यहाँ पर केवल भरत और शत्रुघ्न थे । इसलिए 'दोउ' पाठ की असंगति प्रकट है । 'हित' 'शुभाकांक्षी' पाठ प्रसंग में खप जाता है, और प्रयोग-सम्मत भी है :

मोरे हित हरि सम नहि कोई ।१-१३२-२

बारेहि तें निज हित पति जानी । लछिमन राम चरन रति मानी । १-१६८-३

(१४) १-२६२-७ : 'सकै उठाइ सरासुर मेरू । सो हिय हारि गएउ करि फेरू ।' 'सरासुर' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सुरासुर' । बाणासुर और रावण शिव के धनुष को देख कर ही वापस चले गए थे, उसी की ओर यहाँ संकेत किया गया है । रावण की वापसी का संकेत बाद वाली पंक्ति में है : 'जेहिं कौतुक सिव सैल उठावा । सोउ 'तेहि' सभा पराभव पावा ।' इस पंक्ति में 'बाणासुर' की वापसी की ओर संकेत है, यह प्रकट है । किंतु 'सुरासुर' पाठ से वह अर्थ नहीं निकलता, 'सरासुर' से ही वह अर्थ निकलेगा ।

(१५) १-३४२-८ : 'बिनती बहुत भरत सन कीन्ही ।' 'बहुत' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'बहु' । 'बहु' पाठ से छंद की गति ठीक नहीं बैठती, क्योंकि एक मात्रा कम पड़ जाती है । 'बहुत' पाठ में यह दोष नहीं है, यद्यपि अर्थ में दोनों अभिन्न हैं ।

(१६) १-३४६-६ : 'छुहे पुरट घट सहज सुहाए । मदन सकुन जनु नीड़ बनाए ।' 'सकुन' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सकुच' । 'नीड़' 'मदन' या 'सकुच' नहीं, 'सकुन'='पक्षी' ही बनाता है, इसलिए 'सकुन' पाठ का समीचीनता प्रकट है ।

१७६२ के कुछ पाठ ऐसे हैं जो अशुद्ध ज्ञात होते हैं, किंतु १७२१ में भी जिनके स्थान पर १७६२ का ही पाठ है : इन पर नीचे विचार किया जाता है ।

(१७) १-२७-५ : 'साधु चरित सुभ सरिस कपासू । १७६२/१७२१ में पाठ है : 'साधु चरित सुभ चरित कपासू ।' दूसरे पाठ में 'चरित' की अनावश्यक पुनरुक्ति प्रकट है ।

(१८) १-१३-१० : 'मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहिं भाई'। 'सुगम' के स्थान पर १७६२/१७२१ में पाठ 'सुलभ' है। 'मग' के प्रसंग में 'सुगम' ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है, 'सुलभ' नहीं।

(१९) १-१५-७ : 'सोउ महेस मोहिं पर अनुकूला। करिहिं कथा मुदमंगल मूला।' 'सोउ' के स्थान पर १७६२/१७२१ में पाठ है 'होउ' तथा 'करिहिं' स्थान पर है 'करहु'। पूर्व की पंक्ति है :

अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू। और बाद की पंक्ति है :

सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनौं राम चरित चित चाऊ। पूर्व की पंक्ति में 'महेस' की प्रभविष्णुता का उल्लेख किया गया है, इसलिए विवेचनीय पंक्ति में उनके लिए 'सोउ' विशेषण लाने से पूर्व की पंक्ति के उक्त कथन के साथ प्रासंगिकता स्थापित होती है। इसी प्रकार बाद की पंक्ति में 'पाइ पसाऊ' तक का उल्लेख हो जाता है, इसलिए विवेचनीय पंक्ति में पूर्ण निर्भरता सूचक क्रिया 'करिहिं' अधिक प्रसंग-सम्मत लगती है। 'होउ' और 'करहु' पाठ कुछ असंगत से लगते हैं।

(२०) १-१०२ छं० : 'जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले।' 'भवन' के स्थान पर १७६२/१७२१ में पाठ है 'भवनहिं'। यद्यपि दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत है, यथा :

निज लोकहि बिरंचि देवन्ह इहै सिखाइ। १-१८७
गए देव सब निज निज धामा। १-१८८-१

किंतु दूसरे पाठ में एक मात्रा बढ़ जाने के कारण छंद की गति बिगड़ जाती है, जब कि पहले पाठ में ऐसी कोई त्रुटि नहीं है।

(२१) १-१८४-३ : 'जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सम प्रानी।' 'सम' के स्थान पर १७६२/१७२१ में पाठ है 'सब'। पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट पर धन पर दारा।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।

निशिचरों का स्वतंत्र रूप से विस्तारपूर्वक उल्लेख इसके पूर्व हो चुका है। यहाँ तो प्रसंग ऐसे खलों का है जो—उनके अनुकरण में संभवत:—उनके समान ही अनाचार और अत्याचार करने लग गए थे, और जो इसलिए पृथ्वी के लिए भारस्वरूप होने लग गए थे। अतः 'सम' ही प्रसंगसम्मत लगता है, 'सब' नहीं।

(२२) १-१८८-५ : 'गिरि कानन जहं तहं भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी।' १७६२/१७२१ में 'रचि' के स्थान पर पाठ 'रुचि' है। 'रूरी रुचि' का यहाँ प्रसंग नहीं है, प्रसंग यहाँ 'रूरी अनीकों' का है यह प्रकट है—आशय है 'देवतागण वानरों का शरीर धारण कर अनुपमेय दल बल बना कर रामावतार की प्रतीक्षा करने लगे थे।' इसलिए 'रचि' पाठ ही संगत लगता है।

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

सं० १७२१ की प्रति में कुछ अस्वीकृत पाठ और आते हैं। नीचे इन पर हम विचार करेंगे।

(१) १-६-८ : 'कासी मग सुरसरि क्रमनासा।' १७२१ में 'क्रमनासा' के स्थान पर पाठ है 'कबिनासा'। किंतु 'कबिनासा' अर्थहीन है। यद्यपि किसी-किसी टीकाकार ने 'क' से 'कर्म' और 'बिनासा' से 'विनाश करनेवालो' का अर्थ लगाया है, किंतु 'क' का यह अर्थ न किसी कोश-ग्रंथ में मिलता है, और न तुलसीदास में ही अन्यत्र मिलता है। 'कर्म' के लिए 'क्रम' शब्द का प्रयोग अवश्य बराबर मिलता है, यथा :

राम भगत तुम्ह मन क्रम बानी। १-४७-३

मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू। १-५६-८

दासी मन क्रम बचन तुम्हारी। १-११०-१

मन बच क्रम बानी छांड़ि सयानी सरन सकल सुर जूथा। १-१८६ छं०

(२) १-६-११ : 'सत्य कहौं लिखि कागर कोरे।' 'कागर' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'कागद'। ग्रंथ में तुलनीय प्रयोग नहीं मिलते, किंतु तुलसीदास के समय में 'कागर' के ही प्रचलित होने के

प्रमाण मिलते हैं, 'कागद' के नहीं। सूरदास ने कई स्थलों पर इसी का प्रयोग किया है, और बाद के भी कवियों में भी बहुत काल तक इसी का प्रयोग पाया जाता है।[1] 'कागद' पीछे का प्रचलन ज्ञात होता है।

*(३) १-६४-४ : 'काटिअ तासु जीभ जो बसाई।' १७२१ में 'काटिअ' के स्थान पर पाठ 'काढ़िअ' है। यद्यपि दोनों पाठ अर्थ में एक से हैं, किंतु दूसरा अधिक प्रयोगसम्मत ज्ञात होता है :

तव धरि जीभ कढ़ावौं तोरी। २-१४-८
जौं न उपारौं तव दस जीहा। ६-३४-७

(४) १-६१-७ : 'सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि तब आसनु दीन्हा। नारि सहित मुनि पद सिरु नावा। चरन सलिल सबु भवन सिंचावा।' १७२१ में उपर्युक्त दूसरी अर्द्धाली के 'सबु' के स्थान पर पाठ 'तब' है। 'तब' पूर्व की अर्द्धाली में ही आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति होती है। 'तब' का अपेक्षा 'सब' अधिक साभिप्राय भी है : 'सब' भवन सिंचाने में श्रद्धा की भावना कुछ और विशेष प्रतीत होती है।

(५) १-८६-६ : 'प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु जाति बिराजा।' १७२१ में 'जाति' के स्थान पर पाठ 'सखा' है। आगे की ही पंक्ति में त्रिविध समीर को काम का सखा कहा गया है :

सीतल सुगंध सुमद मारुत मदन अनल सखा सही।

यह 'सखा' केवल 'कुसुमित नव तरु' पर ही 'बिराजे', यह बुद्धिसम्मत नहीं है। 'जाति' [तथा एक अन्य पाठभेद 'राजि'] की सार्थकता पर ऊपर विचार हो चुका है।[2]

(६) १-६१-७ : 'जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बांचत प्रीति न हृदय समाती। लगन बाँचि अज सबहिं सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई।' दूसरी अर्द्धाली के 'अज' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'बिधि'। 'बिधिहि' पूर्व वाली अर्द्धाली में आ चुका है,

---

१—देखिए 'हिंदी शब्दसागर' में 'कागर' शब्द।

२—देखिए ऊपर १६६१।१७०४ के स्वीकृत पाठ, यही स्थल।

इसलिए दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति है। पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है। अर्थ में दोनों पाठ अभिन्न हैं।

(७) १-१०७-५ : 'पति हिय हेतु अधिक मन मानी। बिहंसि उमा बोली मृदु बानी।' १७२१ में 'मन माना' के स्थान पर पाठ 'मन माहीं' तथा 'मृदु बानी' के स्थान पर 'हर पाहीं' है। पहला ही पाठ सार्थक लगता है, दूसरा निरर्थक प्रतीत होता है। पहले पाठ का आशय होगा, पति के हृदय में [अपने प्रति] प्रेम मन में अधिक मान कर....', और दूसरे का होगा 'पति के हृदय के लिए अपने मन में अधिक', जो निरर्थक है।

(८) १-११२ : 'राम कृपा तें पारबति सपनेहु तव मन माहिं। सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं।' 'पारबति' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'हिमसुता'। यद्यपि कोशों में 'हिमजा' पार्वती के अर्थ में मिलता है, किंतु तुलसीदास ने कहीं भी इसका प्रयोग नहीं किया है, जबकि 'पारबती' का प्रयोग बहुधा किया है :

पारबती भल अवसर जानी। १-१०७-३

पारबती तपु कीन्ह अपारा। १-८६-२ जनमी पारबती तनु पाई। १-६५-६

पारबतिहि निरमएउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान। १-७१

इसलिए 'पारबति' पाठ ही प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(९) १-११९-२ : 'रघुबर बस उर अंतरजामी।' १७२१ में 'बस' के स्थान पर पाठ 'सब' है। दोनों पाठ संगत लगते हैं : पहले में 'उर' 'बस' के कर्म के रूप में है, और 'अंतरजामी' स्वतंत्र है—अर्थ होगा 'हृदयों में स्थित हैं, और अंतःकरण की जानने वाले हैं।' दूसरे का अर्थ होगा 'सभी के हृदय की जानने वाले हैं।' किंतु, 'उर अंतरजामी' 'सब उर अंतरजामी' और 'सकल उर अंतरजामी' के रूपों में 'उर' और 'अंतरजामी' के समासयुक्त पाठ राम को संबोधित करके उनसे किसी वर की याचना अथवा उनसे किसी कामना का निवेदन करने के ही प्रसंग में अन्यत्र आए हैं—ध्वनि उन स्थलों पर यह है कि 'आप तो सब के हृदय की जानने वाले हैं, मेरे हृदय की भी आप जानते ही हैं, फिर भी आपके आदेश

के अनुसार मैं निवेदन कर रहा हूँ।'[1] किंतु इस प्रकार का कोई प्रसंग यहीं नहीं है, इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(१०) १-१४२-८: 'तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयेसु सब बिधि प्रतिपाला।' १७२१ में 'सब' के स्थान पर भी पाठ 'बहु' है। 'बहु' पूर्ववर्ती चरण में ही आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में व्यर्थ की पुनरावृत्ति है। पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

(११) १-१४३-१: 'बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा।' 'तब' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'नृप'। किंतु प्रसंग में 'तब' आवश्यक लगता है। पूर्व की पंक्तियाँ हैं:

तेहि मनु राज कीन्ह बहुकाला। प्रभु आयेसु सब बिधि प्रतिपाला।
होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपनु।
हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरि भगति बिनु॥

'सब बिधि प्रभु आयेसु का प्रतिपालन' करने पर भी जब बिषय बिराग नहीं हुआ तब पुत्र को बरबस राज देकर उन्होंने बन को प्रस्थान किया।' 'नृप' पाठ से इस प्रकार पूरी संगति नहीं लगती।

(१२) १-१७६-८: 'कृपारहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाइ बिस्वपरितापी।' १७२१ में 'जाइ' के स्थान पर पाठ 'जाहिं' है। प्रथम पाठ के अनुसार आशय उपर्युक्त अर्द्धाली का यह होगा '[यों तो] यह सभी राक्षस कृपारहित और हिंसापरायण थे, किंतु विश्व-परितापी—विश्व भर को पीड़ित करने वाले—रावण का तो वर्णन ही नहीं हो सकता।' दूसरे पाठ में सभी राक्षसों को 'विश्वपरितापी' कहा गया है और उन्हें 'कृपारहित' और 'हिंसक' कहते हुए भी 'अवर्णनीय' कहा गया है। स्पष्ट ही यह दूसरा कथन वैसा युक्ति-युक्त नहीं लगता जैसा पहला है।

(१३) १-१८८-५: 'गिरि कानन जहं तहं भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी।' 'भरि' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'महि' है। पहले पाठ का आशय यह होगा कि 'जहाँ पर गिरि-कानन थे, वहाँ पर जहाँ तहाँ [वानर शरीरधारी देवगण] पूर्ण रूप से भर

१—यथा: १-१५०-६, २-७२-६; ५-४६-५; ७-८४-८।

कर और अपनी-अपनी सुंदर सेनाओं की रचना कर [राम के आगमन की प्रतीक्षा में] रहने लगे।' दूसरे पाठ का आशय होगा '......वे समस्त मही में पूरित होकर...रहने लगे।' दूसरा कथन स्पष्ट ही वास्तविक नहीं है, और इसलिए असंगत है। पहले की संगति प्रकट है।

(१४) १-२०८-५ : 'सब सुत प्रिय प्रान की नाईं।' १७२१ में 'प्रिय' के स्थान पर पाठ है 'प्रिय मोहिं'। पहले पाठ में 'प्रिय' को 'प्रीय' की भाँति पढ़ना पड़ता है--तब छंद की गति ठीक होती है। दूसरे में यह कठिनाई नहीं है, यद्यपि अर्थ में पहले से वह अभिन्न है।

× (१५) १-२२६-५ : 'गुरु पद कमल पलोटत प्रीते।' १७२१ में 'कमल' के स्थान पर पाठ 'पदुम' है। अर्थ में दोनों अभिन्न है। दूसरे में अनुप्रास अवश्य आ गया है।

(१६) १-२६४-५ : 'महि पाताल नाक जसु ब्यापा।' 'नाक' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'ब्योम'। 'ब्योम' का अर्थ होता है 'आकाश'। किंतु 'शून्य' में यश व्याप्त होने का कोई अर्थ नहीं है; यश तो वहाँ पर व्याप्त होना चाहिए जहाँ कुछ समर्थ या भले लोग रहते हों। यहाँ पर इसलिए प्रसंग से स्वर्गलोक या देवलोक का वाचक कोई शब्द होना चाहिए, यह प्रकट है। 'नाक' पाठ ही से 'देवलोक' का बोध हो सकता है। 'आकाश' कहीं भी देवताओं के लोक या निवास-स्थान के रूप में नहीं आया है, बल्कि वह उससे भिन्न रक्खा गया है, यथा :

कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी। ५-३४-८

ग्रंथ में देवगण नरलोक की लीलाओं को देखने मात्र के लिए 'नभ' तक आया करते हैं, वहाँ रहते नहीं हैं।

*(१७) १-२६७-४ : 'हरिपद विमुख परा गति चाहा।' १७२१ में 'परा गति' के स्थान पर पाठ है 'सुगति जिमि'। ग्रंथ में अन्यत्र 'परा गति' का प्रयोग नहीं मिलता, यद्यपि वह संगत है, 'सुगति' का ही मिलता है, यथा :

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ। १-२४
स्वाद तोष सम सुगति सुधा के।१-२०-७
सपनेहु सो सुख सुगति न लहहीं। २-१६६-४

इसलिए 'सुगति' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(१८) १-२७५-६ : 'खर कुठार मैं अकरुन कोही।' १७२१ में 'अकरुन' के स्थान पर पाठ है 'अकरन'। कोषों में 'अकरन' के तीन अर्थ मिलते हैं : (१) कर्महीनता की दशा, (२) अकरणीय, तथा (३) इंद्रियहीनता। किंतु इनमें से कोई अर्थ प्रस्तुत प्रसंग में नहीं ठीक बैठता। 'अकरुन' की संगति प्रकट है।

(१९) १-२७७ : 'लषन कहेउ हंसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल। जेहिबस जन अनुचित करहि चरहिं बिस्व प्रतिकूल।' 'चरहिं' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'होहिं'। 'चरहिं' का अर्थ है 'आचरण करते हैं।' क्रोध के आवेश में 'विश्व के प्रतिकूल' होने की अपेक्षा 'लोकविरुद्ध आचरण' करना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है, और वही यहां पर अधिक प्रसंगसम्मत भी है, क्योंकि परशुराम केवल प्रतिकूल होकर रह जाने वाले व्यक्ति नहीं थे, उन्होंने उसी के अनुरूप आचरण भी किया था, और इस समय भी परशु दिखा कर उसी प्रकार के आचरण की धमकी दे रहे थे।

*(२०) १-२६७-२ : 'बिधु बदनी मृग बालक लोचनि।' 'बालक' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'सावक'। ग्रंथ में अन्यत्र भी 'मृग सावक' ही आया है' 'मृग बालक' नहीं :

जहं बिलोक मृगसावक नयनी। १-२३२-२ बिधुबदनी मृगसावक नयनी। २-८-८

इसलिए 'सावक' पाठ 'बालक' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(२१) १-३१५-७ : 'मरकत कनक बरन बर जोरी।' १७२१ में 'बर' के स्थान पर पाठ 'तन' है। प्रसंग विवाह का है। राम और भरत मरकत वर्ण के हैं, और लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न कनक वर्ण के; 'मरकत और कनक वर्ण की यह दोनों जोड़ियाँ उत्कृष्ट हैं,' पहले पाठ का आशय यह है। दूसरे पाठ का 'तन' यहाँ असंगत लगता है।

*(२२) १-३२२ : 'नवसत्त साजे सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनी।' 'सत्त' के स्थान में १७२१ में पाठ 'सप्त' है। 'सत्त' ग्रंथ में अन्यत्र नहीं आया है, और 'सप्त' आया है; इसलिये 'सप्त' अधिक प्रयोगसम्मत है। यथा :

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। १-३७-१

संबत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार। १-१४४

सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी। ७-१२१-२ येहि महं रुचिर सप्त सोपाना। ७-१२६-३

(२३) १-३३२-५ : 'भरि भरि बसह अपार कहांरा। पठई जनक अनेक सुसारा।' 'सुसारा' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'सुआरा'। 'सुसारा'='सुंदर सामग्री' की संगति प्रकट है। 'सुआरा'='रसोइया' की संगति भी लग सकती है। किंतु 'सुआरा' पुल्लिंग कर्म के साथ 'पठई' स्त्रीलिंग क्रिया अशुद्ध हो जाती है। यदि यह कहा जावे कि 'पठई' का संबंध ऊपर की अर्द्धाली से है :

बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना।

तो यह भी ठीक नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह कर्म भी पुल्लिंग है। 'सुआरा' पाठ यहाँ फलतः किसी प्रकार भी ठीक नहीं बैठता है।

(२४) १-३४४-२ : 'झांझ भेरि डिंडिभी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई।' 'भेरि' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'बीरि'। 'भेरि' की सार्थकता प्रकट है, यद्यपि उस में पुनिरुक्ति अवश्य है, क्योंकि वह पूर्ववाली अर्द्धाली में आ चुका है :

हने निसान पवन बर बाजे। भेरि संखधुनि हय गय गाजे।

किंतु 'बीरि' शब्द अर्थहीन है, और वह किसी कोश में भी नहीं दिखाई देता है।

छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल के कुछ अस्वीकृत पाठ तो १७६२, तथा १७२१ के ऊपर विवेचित अस्वीकृत पाठों में से हैं, और कुछ उनके अतिरिक्त हैं। नीचे इन पर विचार किया जावेगा।

(१) १-३-६ : 'पारस परस कुधातु सुहाई।' 'परस' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'परसि' है। 'पारसपरस' का अर्थ होगा 'पारस

के स्पर्श से', और 'पारस परसि' का अर्थ होगा 'पारस का स्पर्श करके'। कुधातु स्वतः पारस का स्पर्श नहीं करती, उसे पारस का स्पर्श कराया जाता है, इसलिए 'परसि' की अपेक्षा 'परस' पाठ अधिक समीचीन लगता है। अन्यथा दोनों पाठों में अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(२) १-२३-३ : 'प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की।' 'प्रौढ़ि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'प्रौढ़'। 'प्रौढ़ि' का अर्थ 'प्रौढ़ोक्ति' अर्थात् 'बढ़ाकर कही हुई बात' है, और यह प्रकट है कि प्रसंग में वह ठीक भी है; 'प्रौढ़'= 'परिपक्व' का यहाँ कोई प्रसंग प्रतीत होता नहीं है।

(३) १-६९-५ : 'जौ अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोष धरहीं।' 'कर' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'कहुं'। दूसरे का आशय होगा 'बुद्धिमान लोग दोष उनको बिल्कुल नहीं रखते', जबकि पहले का आशय होगा 'बुद्धिमान लोग उनका यह दोष बिल्कुल नहीं मानते'। 'दोष उनको बिल्कुल नहीं रखते' या तो अर्थहीन है, या कम से कम ठीक मुहावरा नहीं है। 'उनका यह दोष बिल्कुल नहीं मानते' ही संगत प्रतीत होता है। एक स्थान पर 'दोष' के साथ 'कहं' अवश्य आया है :

समरथ कहुँ नहिं दोष गुसाईं। १-१६९-८

किंतु 'कहुं' यहाँ लुप्त क्रिया 'होना' के साथ है—आशय है कि 'समर्थ को दोष नहीं [होता]'; 'धरना' क्रिया के साथ 'कहुँ' की समस्या इससे भिन्न है।

(४) १-९२ : 'होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान।' छक्कनलाल में 'सुभद' के स्थान पर पाठ है 'सुभग'। शकुनों और मंगलों के प्रसंग में 'सुभद'= 'कल्याणकारी' ही सार्थक है, 'सुभग'= 'सुंदर' नहीं।

(५) १-९७-१ : छक्कनलाल में 'काह' के स्थान पर पाठ 'कहा' है। यद्यपि दोनों के अर्थों में कोई अंतर नहीं है, किंतु गोस्वामी जी

ने प्रायः सर्वत्र 'काह' का प्रयोग किया है। 'काह' का प्रयोग तो कम से कम तीन दर्जन स्थलों पर ग्रंथ में मिलता है, यथा :

अब धौं बिधिहि काह करनीया। १-२६७-७
करउं काह मुख एक प्रसंसा। १-२८५-५
आयेसु काह कहिअ किन मोही। १-२७१-२
तौ मैं काह कोप करि कीन्हा। १-२७६-८

किंतु 'कहा' निर्विवाद रूप से केवल एक बार प्रयुक्त हुआ है :

दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं।
अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं। २-२०६-८

इसलिए 'काह' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(६) १-१११-६ : 'प्रस्न उमा कै सहज सुहाई।' 'कै' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'कर' है। अंतर दोनों में लिंग का है : 'कै' स्त्रीलिंग का रूप है, और 'कर' पुल्लिंग का है, यथाः

जानि कृपा कर किंकर मोहू। १-८-३
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। १-३५-६
राम नाम कर अमित प्रभावा। १-४६-२
मैं संकर कर कहा न माना। १-५४-१
भामिनि भइउ दूध कै माखी। २-१६-७
जनम लाभ कै अवधि अघाई। २-५२-८
नीति निपुन जिन्ह कै जग लीका। २-१३१-२
तिन्हकइ गति मोहि संकर देऊ। २-१६८-८

और 'प्रस्न' सर्वत्र स्त्रीलिंग है, यथाः

कीन्हि प्रस्न जेहि भांति भवानी। १-३३-१
कीन्हिहु प्रस्न मनहु अति मूढ़ा। १-४७-४
कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी। १-११२-८
प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी। ७-६५-१
सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई। ७-६५-३
कहेउं तात सब प्रस्न तुम्हारी। ७-११४-१६

इसलिए 'कै' पाठ ही समीचीन है, 'कर' नहीं।

(७) १-११२-६ : 'धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी।' 'उपकारी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'अधिकारी' है। प्रसंग से पहला ही पाठ सिद्ध है, क्योंकि अगली पंक्तियों में कहा जाता है :

पूंछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा।
तुम रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हहु प्रस्न जगत हित लागी।

'अधिकारी' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है।

(८) १-१२०-३ : 'नाथ कृपां अब गएउ बिषादा। सुखी भइउं प्रभु चरन प्रसादा।' 'प्रभु' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'अब' है। 'अब' अर्द्धाली के प्रथम चरण में आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनिरुक्ति प्रकट है। इसके अतिरिक्त 'अब' पाठ से 'चरन' निर्विशिष्ट रह जाता है, और यह नहीं ज्ञात होता कि किसका 'चरन' कहा गया है।

(९) १-१२१-१ : 'सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए।' 'सुहाए' और 'गाए' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुहावा' तथा 'गावा'। 'राम चरित' को गोस्वामी जी ने अनेक मानकर इस प्रकार के प्रसंगों में सर्वत्र उसको बहुवचन की क्रिया के कर्म के रूप में बहुवचन विशेषणों के साथ रक्खा है, यथा :

कलप भेद हरि चरित सुहाए। भांति अनेक मुनीसन्ह गाए। १-३३-७
राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित स्रुति गाए। १-११५-३
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए। १-१४१-६
बाल चरित अति सरल सुहाए। सारद सेष संभु स्रुति गाए। १-२०४-१

इसलिए यहाँ पर भी बहुवचन पाठ ही समीचीन लगता है, एकवचन नहीं।

(१०) १-१२८-५ : छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा। हरषि मिले उठि कृपानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता।' छक्कनलाल में 'मिले उठि' के स्थान पर पाठ है 'उठे प्रभु'। हर्षित होकर उठना मात्र—आदर प्रदर्शन की भावना से भी—

तुलसीदास के समय के शिष्टाचार में नहीं था। उठने के अनंतर मिलना ही समीचीन लगता है।

*(११) १-१३१-८ : 'जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलै कवन बिधि वाला।' 'तेहि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'येहि'। प्रसंग नारद-मोह का है। पूर्व तथा अनंतर की पंक्तियाँ यह हैं :

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी। १-१३१-७

येहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल॥

हरि सन मांगौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई। १-१३२-१

यह पंक्तियाँ नारद के मुख से कहलाई गई हैं। इसलिए विवेचनीय पंक्ति भी नारद की कही हुई मानी जानी चाहिए, और नारद ने स्वत: ऊपर उद्धृत दोहे में 'येहि अवसर' शब्द रक्खे हैं; इसलिए 'येहि काला' 'तेहि काला' की अपेक्षा अधिक संगत लगता है।

(१२) १-१४८-३ : 'तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई।' 'पुनीत' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'बिचित्र' है। रामकथा-प्रबंध के प्रसंग में 'पुनीत' विशेषण जितना समीचीन लगता है, 'बिचित्र' उतना नहीं।

(१३) १-१४३-१ : 'बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा।' 'तब' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'पुनि' है। प्रसंग में 'तब' की आवश्यकता पर ऊपर विचार किया जा चुका है।[१] 'पुनि' उसका वास्तविक समानार्थी नहीं है। 'पुनि' में अतिरिक्तता, तथा आवर्तन आदि की ध्वनियाँ होती हैं, जो प्रसंग में अपेक्षित नहीं हैं। इसलिए 'तब' पाठ ही समीचीन लगता है।

(१४) १-१५१-१ : 'सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बच रचना। कृपासिंधु बोले मृदु बचना।' छक्कनलाल में 'बच' के स्थान पर पाठ है 'बर'। प्रसंग शतरूपा की वर-याचना का है; 'वच-रचना' = 'वचन-रचना' द्वारा ही उसका निर्देश किया जा सकता है, केवल 'रचना

१—देखिये ऊपर १७२१ के अस्वीकृत पाठ, यही स्थल।

द्वारा नहीं। इसके अतिरिक्त 'रुचिर' के होते हुए 'वर' अनावश्यक हो जाता है। पहला ही पाठ इसलिए समीचीन लगता है।

*(१५) १-१८२-८ : 'देइ देवतन्ह गारि पचारी।' 'पचारी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'प्रचारी' अन्यत्र ग्रंथ में तत्सम पाठ ही मिलता है, इसलिए वह प्रयोग की दृष्टि से अधिक समीचीन ज्ञात होता है।

(१६) १-१८३-१ : 'इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ।' छक्कनलाल में 'पहिलेहिं' के स्थान पर पाठ 'पहिले' है। उक्ति का चमत्कार 'हिं'='ही' में ही निहित है, यह स्पष्ट है, इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(१७) १-१८४-४ : 'अतिसय देखि धरम कै हानी। परम सभीत धरा अकुलानी।' 'हानी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'ग्लानी' है। प्रसंग में दोनों पाठ एक से बैठते हैं, किंतु प्रयोग-सम्मत 'हानी' ही प्रतीत होता है; अन्यत्र वही आया है :

जब जब होइ धरम कै हानी। १-१२१-६

(१८) १-१६४-२ : 'ब्रह्मानंद मगन सब लोई।' 'सब' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'नर'। 'लोई' 'लोक' का अपभ्रंश है, और उसमें स्वतः 'नर' की भावना निहित है। 'नर' और 'नारी' भेद का भी कोई प्रसंग यहाँ नहीं है। इसलिए 'सब' पाठ ही प्रसंगसम्मत और युक्ति-युक्त लगता है।

×(१६) १-१६४ : 'गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटेउ प्रभु सुख-कंद।' 'प्रगटेउ प्रभु' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'प्रभु प्रगटे'। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत है, यथा:

प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला। १-१३२-३

भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना। १-१४६-८

जग निवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिस्राम। १-१६१

(२०) १-१६६-५ : 'परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले।' 'मगन मन' के स्थान पर छक्कनलाल में है 'सकल-रस'। 'रस' का प्रयोग गोस्वामी जी ने शृंगारादि केवल पार्थिव

रसों के लिए नहीं, वरन् 'शांत रस', 'राम भक्ति रस', 'राम ध्यान रस', 'बाल केलि रस', 'ज्ञान बिराग भगति रस', आदि अपार्थिव रसों के लिए भी किया है। इसलिए 'परमानंद प्रेम'='राम प्रेम' या 'राम भक्ति' के रहते हुए 'सकल रस' की असंगति, और 'मगन मन'='आह्लाद पूरित मन' की संगति स्पष्ट है।

×(२१) १-२०३ : छक्कनलाल में 'भाजि' के स्थान पर पाठ 'भागि' है। दोनों पाठ ग्रंथ भर में मिलते हैं, इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं। अर्थ में तो दोनों अभिन्न हैं ही।

×(२२) १-२१३-२ : 'मनिमय जनु विधि स्वकर संवारी।' छक्कनलाल में 'जनु बिधि' के स्थान पर पाठ है 'बिधि जनु'। दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं है, किंतु सामान्यत: वाचक का उक्ति के प्रारंभ में ही आना ठीक लगता है, इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन माना जा सकता है।

(२३) १-२२६-१ : 'देखन बागु कुंअर दुइ आए।' 'दुइ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'दोउ'। 'दोउ'='दोनों ही' के 'ही' का कोई अवसर नहीं है। 'ही' तब ठीक लगता जब कि इसके पूर्व ही दोनों राजकुमारों की चर्चा उन्हीं श्रोताओं-वक्ताओं के बीच हो गई रही होती। किंतु वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। अभी तक इनकी कोई चर्चा नहीं थी, यहीं से वह प्रारंभ होती है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है, दूसरा नहीं।

(२४) १-२३१-४ : 'फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता।' 'सुभद' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुभग'। प्रसंग यहाँ 'नख शिख' की भाँति किसी अंग के वर्णन का नहीं है। प्रसंग यहाँ पर ऐसे अंगों का है जिनका फड़कना 'शुभद'='कल्याणकारी' माना जाता है। इसलिए पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत है' दूसरा नहीं।

(२५) १-२३१-५ : 'रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरै न काऊ।' दूसरे चरण का पाठ छक्कनलाल के अनुसार है 'भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।' आगे की पंक्ति में कहा गया है :

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहु पर नारि न हेरी।

'अतिशय प्रतीति' की बात 'मन' के संबंध में इस पंक्ति में कही ही न जाती—वह असंगत होती—यदि उसके संबंध में कोई सामान्य प्रतीति की बात पहले न कही गई होती। इसलिए पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं।

(२६) १-२३३-२ : 'गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के।' छक्कनलाल में 'गुच्छ बीच बिच' के स्थान पर पाठ है 'गुच्छे बिच बिच'। 'गुच्छे' रूप पश्चिमी हिंदी का है, इसलिए ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण वह ठीक नहीं लगता। 'गुच्छ' में इस प्रकार की कोई त्रुटि नहीं है।

(२७) १-२३५-२ : 'प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी।' 'गुन' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'कै'। सीता को अनेक स्थलों पर 'गुन की खानि' कहा गया है, यथा :

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी। १-२४७-१
हा गुनखानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता। ३-३०-७
राम बाम दिसि सोभित रमा रूप गुन खानि। ७-११-३

यहाँ पर भी वह संगत लगता है; उन्हें केवल 'सुख-सनेह-सोभा की खानि' कहना उतना ठीक नहीं लगता है।

(२८) १-२३५-३ : 'परम प्रेम मय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिखि लीन्ही।' 'भीती' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'भीतर'। यहाँ पर उक्ति है सीता की सुंदर मूर्ति को अंकित करने की। चित्रांकन किसी भित्ति पर ही होगा, किसी वस्तु के भीतर न होगा। इसलिए 'चित्त भीती' की संगति तथा 'चित्त भीतर' की असंगति प्रकट है।

(२९) १-२५२-२ : 'रहौ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई।' 'सके' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सकेउ'। यह कथन किसी विशेष राजा के संबंध में नहीं, वरन समस्त राजाओं के संबंध में किया जा रहा है—और धनुष को भूमि से उठाने के लिए समस्त राजाओं का सम्मिलित

प्रयास भी इसके पूर्व वर्णित है, इसलिए बहुवचन क्रिया 'सके' एक-वचन क्रिया 'सकेउ' की अपेक्षा अधिक संगत लगती है।

×(३०) १-२५३-५ : 'जौ तुम्हार अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं। कांचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी।' दूसरे 'जिमि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'इव'। 'इव' तथा 'जिमि' दोनों का ही प्रयोग इसके पूर्व हुआ है, इसलिए पुनरुक्ति दोनों में है। अर्थों में भी दोनों के कोइ वास्तविक अंतर यहाँ नहीं ज्ञात होता है।

*(३१) १-२५६-५: 'सखि बिधिगति कछु जाति न जानी।' 'जाति' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'जाइ'। 'जाति' तथा 'जाइ' में अंतर केवल काल का है, पहली सामान्य वर्त्तमान की क्रिया है, दूसरी आसन्न वर्त्तमान की; पहली का अर्थ है 'जानी नहीं जाती' और दूसरी का है, 'जानी नहीं जा रही है'। किंतु 'जाइ' पाठ अधिक प्रयोग सम्मत लगता है, क्योंकि 'जानना' के साथ 'जाइ' के ही प्रयोग मिलते हैं :

> जानि न जाइ नारि गति भाई। २-४७-८
> जानि न जाइ काह परिनामा। २-५६-४
> जानि न जाइ निसाचर माया। ५-४३-६
> जानि न जाइ राम प्रभुताई। ७-८६-६
> बिधि करतब कछु जाइ न जाना। २-५८-४

(३२) १-२५७-३ : 'सखी बचन सुनि भै परतीती। मिटा बिषाद बढ़ी अति प्रीती। 'बढ़ी अति' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'भई मन'। एक तो पूर्व वाले चरण में 'भै'='भइ' आ चुका है, जिसके कारण दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति है; दूसरे, 'प्रीति' अब नहीं उत्पन्न हो रही थी; यह अवसर तो धनुर्भंग का है, इससे बहुत पूर्व फुलवारी प्रकरण में ही प्रीति पुरानी हो रही थी : 'प्रीति पुरातनि लखै न कोई।' (१-२२९-८) और स्नेहाधिक्य के कारण उसके अनेक अनुभाव बरबस प्रकट हो रहे थे; यथा : 'अधिक सनेह देह भइ

भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।' (१-२३२-६, इसलिए दूसरा पाठ असंगत लगता है, और पहला ही संगत लगता है।

×(३३) १-२५८-८ : 'लव निमेष जुग सय सम जाहीं।' 'सय' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सत'। 'सय' और 'सत' दोनों प्रयोग-सम्मत हैं, यथा :

> दिन दिन सय गुन भूपति भाऊ। १-३६०-४
> कामधेनु सय सरिस सुहाई। २-२६६-१
> रामचरित सत कोटि महं लिय महेस जिय जानि। १-२५
> जपहु जाइ संकर सत नामा। १ १३८-५

अर्थ में वे अभिन्न हैं ही।

(३४) १-२५८ : 'प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।' छक्कनलाल में 'चितइ' के स्थान पर भी पाठ 'चितव' है। पहले पाठ का आशय है 'प्रभु को देख कर [लज्जा या व्रीड़ावश ?] सीता पृथ्वी की ओर देखने लग जाती है...' दूसरे पाठ का आशय होगा 'प्रभु को देखती है, और तदनंतर पृथ्वी की ओर देखती है...'। दोनों पाठों से संगति लगाई जा सकती है, किंतु दूसरे पाठ से कुछ ऐसा लगता है जैसे प्रभु की ओर देखना और पुनः पृथ्वी की ओर देखना एक दूसरे से नितांत असंबद्ध और निरपेक्ष कार्य हैं, जो प्रसंग से सिद्ध नहीं है। पहले में यह त्रुटि नहीं है, इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(३५) १-२६१-१ : 'देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कल्प सम तेही।' 'बिपुल बिकल' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'बिकल अतिहि है'। पहले पाठ की त्रुटिहीनता प्रकट है। दूसरा पाठ अन्वय की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है। 'बिकल अतिहि' के स्थान पर 'अतिहि बिकल' बिना किसी छंद भंग के भी पाठ हो सकता था।

(३६) १-२६१ : 'संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु। बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहि मोह बस। छक्कनलाल में 'बूड़ सो' के स्थान पर पाठ 'बूड़ा' है। दोहे के चतुर्थ चरण में जो 'जो'

आता है, उससे प्रकट है कि उसके सहचर 'सो' से संयुक्त पाठ ही ठीक है।

(३७) १-२६५-३ : 'नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटी। बार बार कुसुमांजलि छूटी।' 'कुसुमांजलि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'कुसुमावलि'। प्रसंग से यह प्रकट है कि देवबधुएँ उक्त अवसर पर ऊपर आकाश से पुष्पवर्षा कर रही हैं, फलतः 'कुसुमांजलि' पाठ की प्रासंगिकता और युक्तियुक्तता प्रकट है; 'कुसुमावलि' छूटने में वैसी सहेतुकता और समादर की ध्वनि नहीं है, और इसलिए वह यहाँ असंगत लगता है।

(३८) १-२६८-१ : 'खरभर देखि बिकल पुरनारीं। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारीं।' 'पुरनारीं' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'नरनारीं'। 'बिकलता' की अवस्था में 'गारी' देने की बात नरवर्ग में वैसी नहीं, नारीवर्ग में ही प्रायः देखी जाती है। इसलिए दूसरा पाठ उतना समीचीन नहीं लगता जितना पहला।

(३९) १-२६८-७ : 'बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृग छाला।' 'जनेउ माल मृगछाला' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'जनेऊ कटि मृगछाला'। किंतु अगले ही चरण में आता है 'कटि मुनि बसन तून दुइ बांधे।' कटि में ही मृगचर्म भी हो और मुनिवसन भी, यह बुद्धिसम्मत नहीं है। पहला ही पाठ इसलिए समीचीन है।

×(४०) १-२७०-७ : 'बिधि अब संवरी बात बिगारी।' 'अब संवरी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'संवारि सब'। दोनों पाठ एक से लगते हैं।

(४१) १-२७२ : 'मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीप किसोर।' 'करसि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'करहि' है। दोनो में से पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है, यथा:

आइ पार पुनि देखिहौं मन जनि करसि मलान। २-५३
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। ३-२९-९
जमिहहिं पंख करसि जिन चिंता। ४-२८-६

इसलिए वही समीचीन है, दूसरा नहीं।

(४२) १-२७८ : 'सुनि लछिमनु बिहंसे बहुरि नैन तरेरे राम। गुर समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम।' 'सकुचि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'बहुरि'। किंतु 'तरेरे नैनों' द्वारा राम के मना करने पर लक्ष्मण का 'सकुचना' जितना उनके चरित्र के अनुकूल लगता है, उतना 'न सकुचना' नहीं। दूसरे, 'बहुरि' दोहे के पहले चरण में आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति भी है।

*(४३) १-२८४ : 'जोरि पानि बोले बचन हृदय न प्रेम अमात।' 'अमात' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'समात'। दोनों के अर्थों में कोई अंतर नहीं है। किंतु ग्रंथ में 'समाना' का ही प्रयोग मिलता है, इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(४४) १-२९६-३ : 'भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू।' 'भरा' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'भएउ'। इसी प्रकार के एक अन्य प्रसंग में भी 'भरना' क्रिया मिलती है :

हर गिरिजा कर भएउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू। १-१०१-६

अतः पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(४५) १-३२२-६ : 'नारि बेष जे सुरबर बामा। सकल सुभाय सुंदरी स्यामा। तिन्हहिं देखि सुखु पावहिं नारी। बिनु पहिचानि प्रान तें प्यारी।' 'पहिचानि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'पहिचान'। अंतर दोनों में भाषा का है—पहला अवधी का रूप है, और दूसरा पश्चिमी हिंदी का रूप। ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी है, इसलिए पहला अधिक समीचीन लगता है।

(४६) १-३२८-७ : 'सूपकारी' अन्य पाठ है, उसके स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सूपकारक'। 'कारक' प्रत्यय ग्रंथ में एकाध ही बार आया है, अन्यथा 'कारी' ही प्रत्यय मिलता है; इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(४७) १-३३२-१ : 'जनक सनेहु सीलु करतूती। नृप सब राति सराह बिभूती।' 'सराह बिभूती' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ

है 'सराहत बीती'। पहले पाठ में 'नृप' कर्त्ता और 'सराह' उसकी क्रिया है; दूसरे पाठ में 'बीती' क्रिया और 'राति' उसका कर्त्ता है। किंतु दूसरे पाठ में 'नृप' शेष शब्दावली से असंबद्ध हो जाता है, इसलिए दूसरा पाठ सदोष है।

(४८) १-३३३-५ : 'भरि भरि बसह अपार कहारा। पठईं जनक अनेक सुसारा।' छक्कनलाल में 'पठईं' के स्थान पर पाठ 'पठए' तथा 'सुसारा' के स्थान पर पाठ 'सुआरा' है। पहला ही पाठ बुद्धिसम्मत लगता है, क्योंकि यदि अनेक 'सुसारा'='सुंदर सामग्री' नहीं भेजी गईं, तो 'बसह भर भर कर' और 'अपार कहारों' द्वारा कौन सी वस्तु गई ? 'सुआर'='रसोइए' तो इस भाँति 'बसह भर भर कर' तथा 'कहारों द्वारा' भेजे नहीं जा सकते थे।

(४९) १-३३६-५ : 'राउ अवधपुर चहत सिधाए। बिदा होन हम इहाँ पठाए।' 'हम इहाँ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'हित हमहिं'। पहिले पाठ का आशय है : 'बिदा होने के लिए हम यहाँ (राजा के) भेजे हुए हैं,' और दूसरे का आशय होगा '(स्वतः) अपनी बिदाई के लिए (राजा ने) हमको भेजा है।' कहने की आवश्यकता नहीं कि पहला ही आशय प्रसंगसम्मत है।

(५०) १-३४४-२ : 'झांझ भेरि डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई।' 'भेरि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'बीन' है। 'बीन' के साथ 'झांझ', 'डिंडिमी' और 'सहनाई' जैसे शोर करने वाले बाजे ग्रंथ में कहीं नहीं आए हैं, यह तो 'भेरी' के साथ ही मिलते हैं। तुलनीय स्थल निम्नलिखित हैं :

बीना बेनु संख धुनि द्वारा। २-३७-५ बाजहिं ताल पखाउज बीना। ६-१०-६
झांझ मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल डिंडिमी सुहाई। १-२६३-१
मधुकर मुखर भेरि सहनाई। ३-३८-६ मुखहि निसान बजावहिं भेरी। ६-३९-१०
बाजहिं भेरि नफीरि अपारा। ६-४१-३ भेरि नफीरि बाज सहनाई। ६-७९-६

×(५१) १-३४६-५ : 'अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा।' 'मंजरि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'मंगल'। यहाँ पर वर्णन उन मंगल द्रव्यों का किया जा रहा है

जिन्हें रानियाँ परिछन के लिए सज रही हैं। 'मंगल' शब्द एक बार पुनः दो अर्द्धाली बाद आया है : 'मंगल सकल सजहिं सब रानी।' इसलिए विवेचनीय स्थल पर बिना 'मंगल' के भी अर्थ लग जाता है। किंतु 'मंगल' का वहाँ होना भी अर्थ लगाने में बाधक नहीं है। 'तुलसी' और 'तुलसी मंजरी' में यहाँ कोई भेद नहीं प्रतीत होता है।

×(५२) १-३५३-४ : 'बिप्र बधू सब भूप बोलाईं। चैल चारु भूषन पहिराईं।' छक्कनलाल में 'चैल' के स्थान पर पाठ 'चीर' है। तुलनीय प्रयोग 'मानस' में नहीं है। किंतु दोनों समानार्थी प्रतीत होते हैं।[1]

(५३) १-३५८-६ : 'बंदि मागधन्हि गुनगन गाए।' 'बंदि मागधन्हि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'बंदी मागध'। किसी विशेष 'बंदी' या 'मागध' से आशय न होने के कारण तथा 'गाए' क्रिया के बहुवचन होने के कारण 'मागधन्हि' पाठ जितना उपयुक्त लगता है, 'मागध' उतना नहीं।

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठों में से अंशतः १७६२, १७२१, तथा छक्कनलाल के हैं, और अंशतः उनके अतिरिक्त हैं। इन पर नीचे विचार किया जाएगा।

(१) १-२-११ : 'बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथ साज समाज सुकरमा।' 'साज' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'राज'। पहले पाठ का आशय होता है 'सुकर्मियों के समाज (संत समाज) में [उक्त] तीर्थ का साज इस प्रकार है।' यह उस उक्ति के मध्य की कड़ी है जिसमें पहले तो संत समाज में तीर्थराज प्रयाग के समस्त प्रमुख उपकरण दिखाए गए हैं, और तदनंतर संत समाज

---

[1] तुलना कीजिए : पीत निर्मल चैल मनहुँ मरकत सैल
पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहज ही। गीता० ७-६।
कीर के कागर ज्यों नृपचीर बिभूषन उप्पम अंगनि पाई। कविता० २-१।
कागर कीर ज्यौं भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यौं काई। कविता० २-२

में उक्त तीर्थराज से भी कुछ विशेषताएँ दिखाई गई हैं । उक्ति का प्रारंभ निम्नलिखित पंक्ति से होता है :

मुद मंगल मय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथराजू ।

यहाँ से लेकर विवेचनीय स्थल तक उपमेय और उपमान की समानता बताई गई है, किंतु इसके बाद ही उपमेय की विशेषता इस प्रकार कही गई है :

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा । सेवत सादर समन कलेसा ।
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ । देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ ।

अतः 'साज' पाठ की संगति स्पष्ट है । 'राज' पाठ से उक्ति रूपक मात्र रह जाती है, जो वस्तुस्थिति से भिन्न है । 'जंगम तीरथराज' से ही यह प्रकट हो जाता है कि तीरथराज से कुछ विशेषता संत-समाज में कवि प्रतिपादित करने जा रहा है, और अंत की पंक्तियों से तो यह नितांत स्पष्ट हो जाता है कि वह उसे तीर्थराज से बढ़ा-चढ़ा कहता है । फलतः पहला ही पाठ समीचीन लगता है ।

(२) १-७ : 'सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह । ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ।' 'पोषक सोषक' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सोषक पोषक' । पहले पाठ की संगति और दूसरे पाठ की असंगति स्पष्ट है, क्योंकि शशि का पोषक होने के कारण ही शुक्ल पक्ष को यश और शशि का शोषक होने के कारण ही कृष्ण पक्ष को संसार अपयश देता है ।

(३) १-१० : 'गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहिं सुनहिं सुजान ।' रघुनाथदास में 'ग्राम्य' के स्थान पर पाठ 'ग्राम' है । पाठ यदि 'ग्राम गिरा' होता तो समास मान कर संगति लग सकती थी, और छंद-संबंधी कोई बाधा भी 'ग्राम गिरा' पाठ को में न होती । किंतु ऐसा नहीं है, इसलिए 'गिरा ग्राम' पाठ को अशुद्ध मानना पड़ेगा ।

(४) १-१२-६ : 'ताते मैं अति अलप बखाने । थोरेहिं महं जानिहहिं सयाने ।' थोरेहि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'थोरे' । ऊपर आए हुए 'अति अलप' के अनुरूप 'थोरेहिं' ही है, 'थोरे' नहीं, इसलिए वही ठीक लगता है ।

(५) १-१२-८ : 'एतेहु पर करिहहिं ते असंका। मोहिं ते अधिक जे जड़ मतिरंका।' 'असंका' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'संका'। यहाँ पर प्रसंग 'संदेह' का है, यह स्वतः देखा जा सकता है, और 'संदेह' के पर्याय के रूप में ग्रंथ में 'असंका' का प्रयोग हुआ है, यथा :

अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका। १-७२-४
तदपि असका कीन्हिहु सोई। १-११३-१

दूसरी ओर, कहीं भी 'संदेह' के अर्थ में 'संका' का प्रयोग नहीं हुआ है। इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है।

(६) १-१४ : 'करहु कृपा हरि जस कहौं पुनि पुनि कहौं निहोरि।' रघुनाथदास में 'निहोरि' के स्थान पर पाठ 'निहोर' है। 'निहोर' संज्ञा कहीं भी 'कहना' क्रिया के कर्म के रूप में नहीं आई है। 'निहोरि' क्रिया-विशेषण अवश्य 'कहना' क्रिया के साथ आया है, यथा :

देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। २-१२-२
सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। २-४४-७

×(७) १-२२ : 'प्रेम' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'प्रेम' है। दोनों रूप ग्रंथ भर में मिलते हैं, यथा :,

सियराम पेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को। २-३२६ छं०
पूरन राम सुपेम पिऊषा। २-२०६-५
प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं। २-२०८-३
तात किएं प्रिय प्रेम प्रमादू। २-७७-४
नेमु प्रेम संकर कर देखा। १-७६-४

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं।

(८) १-२५ ५ : 'राम सकल कुल रावन मारा।' 'सकल कुल' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सकुल रन'। यहाँ पर प्रसंग राम-पक्ष और नाम-पक्ष की तुलना का है। ऊपर की पंक्ति राम-पक्ष की है; नाम-पक्ष की समानांतर पंक्ति यह है :

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु स्रम प्रबल मोह दल जीती।

तुलनीय यहाँ हैं राम और नाम, रावण और मोह, उसका कुल, और मोह का दल। प्रथम पाठ की संगति इसलिए प्रकट है। दूसरे पाठ में 'रज' शब्द भी राम-पक्ष में आ जाता है, जिसका समानांतर नाम-पक्ष में कुछ नहीं है, इसलिए दूसरा पाठ ठीक नहीं ज्ञात होता।

(९) १-२६-३ : 'भगति भोरि मति स्वामि सराही।' 'भोरि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'मोरि'। पहले पाठ का आशय होगा 'भक्ति में भूली हुई मति', और दूसरे का होगा 'भक्ति और मति'। किंतु प्रसंग में भक्ति में तन्मयता या भक्तियुक्त मति ही सराहना का विषय हो सकती है, भक्ति से अलग मति नहीं। इसलिए पहला ही पाठ मान्य प्रतीत होता है।

(१०) १-३०-६ : 'ते स्रोता बकता सम सीला। सबदरसी जानहिं हरि लीला। जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना। करतलगत आमलक समाना।' रघुनाथदास में 'सबदरसी' के स्थान पर पाठ 'समदरसी' है। 'समदर्शन' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, प्रसंग सर्वज्ञ होने का है, जो आगे आए हुए 'हरिलीला ज्ञान' तथा 'त्रिकाल ज्ञान' से प्रकट है।

× (११) १-३७-१४ : 'समजम नियम फूल फल ज्ञाना।' 'नियम' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'नेम'। 'जम' या 'संजम' के साथ ग्रंथ में अनेक स्थलों पर यह शब्द आया है, किंतु पाठ प्रायः 'नियम' है, यथा :

भट जम नियम सैल रजधानी। २-२३५-७

सम दम संजम नियम उपासा। २-३२५-४

मुनिमन अगम जम नियम समदम बिषम व्रत आचरत को। २-३२६

अन्यथा 'नेम' रूप भी ग्रंथ में मिलता है, और इसलिए वह अप्रयुक्त नहीं कहा जा सकता।

(१२) १-४१-४ : 'घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबंध राम बरबानी।' 'सुबंध' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'सुबंधु' है। 'सुबंधु'='अच्छा भाई' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है। नदियों के

किनारे भली भाँति बँधे हुए घाटों की प्रशंसा होती ही है, इसलिए सुबंध [पढ़ने में 'सुबद्ध'] की संगति प्रकट है।

× (१३) १-४८ : 'गुपुत' अन्य पाठ है, उसके स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'गुप्त' है। दोनों रूप ग्रंथ में प्रयुक्त मिलते हैं, यथा :

गुपुत प्रगट जहं जो जेहि खानिक। १-१८

अउरउ एक गुपुत मत सबहिं करहुँ कर जोरि। ७-४५

जिमि पाखंडबाद तें गुप्त होहिं सद्ग्रंथ। ४-१४

यह सब गुप्त चरित मैं गावा। ७-६-४

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

* (१४) १-५०-६ : 'सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ तन काऊ।' 'तन' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'उर'। 'संसय' का स्थान अन्यत्र ग्रंथ भर में 'तन' नहीं है 'उर' ही है, यथा :

अस संसय आनत उर माहीं। १-११६-६

अबहीं ते उर संसय होई। ६-१०-३

तव प्रसाद अब मम उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं। ७-११५-६

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत ज्ञात होता है।

× (१५) १-६७-६ : 'त्रिय' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'तिय'। दोनों रूपों का प्रयोग ग्रंथ में हुआ है, यथा :

भगति सुतिय कल करन बिभूषन। १-२०-६

तिय बिसेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि। २-१४

देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। १-६२-६

बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना। ३-४४-८

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(१६) १-७१ : 'पारबती निरमएउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान।' 'पारबती' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'पारबतिहि' है। अन्यत्र 'निरमएउ' क्रिया का कर्म 'हि' के बिना ही आया है, यथा :

बंदउ मुनिपद कंज रामायन जेहिं निरमएउ। १-१४

निज माया बसंत निरमएऊ। १-१२६-१

इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

*(१७) १-७७-३ : 'मातु पिता प्रभु गुर कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी।' 'प्रभु गुर' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'गुर प्रभु'। यह उक्ति राम को संबोधित शिव के वाक्यों में से है। राम उनके 'प्रभु' हैं, इसलिए 'प्रभु' शब्द का बीच में पड़ना उतना उपयुक्त नहीं लगता जितना एक ओर पड़ना, क्योंकि बीच के शब्द पर उतना बल नहीं होता जितना प्रारंभ में।

(१८) १-७७ : 'गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु।' 'पठएहु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'पठवहु'। भविष्य काल की सहयोगी क्रिया 'करेहु' के साथ भविष्य काल का 'पठएहु' रूप ही समीचीन लगता है, वर्त्तमान काल का 'पठवहु' रूप नहीं।

(१९) १-७८-३ : 'केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु सब कहहू।' 'सब' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'किन'। 'किन' दोनों पक्षों में किसी विशेष आत्मीयता के होने पर ही संगत हो सकता था; किंतु इस प्रकार की आत्मीयता को कोई संकेत प्रसंग में नहीं मिलता। दूसरे, 'किन' पाठ तब संगत हो सकता था जब दो-एक बार पूछने पर भी प्रश्नकर्त्ता से मर्म न बताया गया होता, किंतु यह भी नहीं है; प्रश्न पहली बार किया जा रहा है। ऐसी दशा में दूसरे पक्ष की असंगति प्रकट है। 'सब' के संबंध में इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं है।

×(२०) १-७८-८ : 'देखहु मुनि अबिबेकु हमारा। चाहिअ सिवहिं सदा भरतारा।' 'सिवहिं सदा' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सदा सिवहिं'। अर्थ में दोनों के कोई अंतर नहीं हैं, और न दोनों में किसी अन्य विषय में ज्ञात होता है।

(२१) १-१०२-४ : 'बचन कहत भरे लोचन बारी।' 'भरे' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'भर'। 'भर' एकवचन है, और 'भरे' बहुवचन, यथा :

> सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
> सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल॥ २-२२६

इसलिए 'लोचन' बहुवचन के साथ 'भरे' बहुवचन पाठ ही समीचीन है।

(२२) १-१०३-७ : 'तब जनमेउ षट बदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहिं मारा।' 'जनमेउ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जनमे'। षटबदन कुमार के लिए विवेचनीय स्थल पर 'जेहिं' सर्वनाम प्रयुक्त हुआ है, और 'जेहिं' का प्रयोग ग्रंथ भर में एकवचन में 'जिसने' के अर्थ में हुआ है, और उसकी संज्ञा के लिए एकवचन की ही क्रिया आई है, यथा :

कालकेतु निसिचर तहं आवा। जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा। १-१७०-२
सोचहिं दैवहिं दूषन देहीं। बिरचत हंस काग किय जेहीं। १-१७५-२
एक बिधातहि दूषन देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिष जेहीं। २-४६-१
गारी सकल कैकेइहिं देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं। २-१५६-७

इसलिए प्रस्तुत स्थल पर एकवचन की क्रिया 'जनमेउ' ही समीचीन है, बहुवचन क्रिया 'जनमे' नहीं।

*(२३) १-१०४-२ : 'नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी।' 'नयनन्हि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'नयन'। अन्यत्र सामान्यतः 'नयन' ही इस प्रकार के स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है, यथा :

नयन नीर पुलकित अति गाता। ५-४५-६
नयन-नीर मन अति हरषाना। ७-६३-२

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(२४) १-१०७-५ : 'बिहंसि उमा बोली मृदुबानी।' 'मृदु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'प्रिय'। 'प्रिय' विशेषण का प्रयोग 'बानी' के साथ प्रायः सुनी हुई वाणी के संबंध में हुआ है; और कही हुई वाणी के साथ प्रायः 'मृदु' विशेषण मिलता है, यथा :

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। २-५-५
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ६-६८
सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। १-१९३-१
मुनि तापस बोलेउ मृदु बानी। १-२७३-१
बोले राउ रहसि मृदु बानी। २-४-१

बिहंसि लषन बोले मृदु बानी । १-२७३-१

हरषि मुनास कहेउ मृदु बानी । २-६-१

इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(२५) १-१३०-४ : 'बिस्वमोहिनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूप निहारी।' 'जिसु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जेहि'। 'राजकुमारी' के लिए अगली ही अर्द्धाली में 'तासु' का प्रयोग हुआ है : 'सोभा तासु कि जाइ बखानी।' इसलिए यहाँ 'जिसु' पाठ की समीचीनता प्रकट है। 'जेहि' कर्म का रूप है, इसलिए वह स्पष्ट ही अशुद्ध है।

(२६) १-१४४-५ : 'नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा।' 'निजानंद' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'चिदानंद'। 'नेति नेति', 'निरुपाधि' तथा 'अनूपा' जैसे नकारात्मक विशेषणों के साथ 'निजानंद' पाठ अधिक समीचीन लगता है, क्योंकि वह भी एक प्रकार से नकारात्मक है, और विशेषण तो वह है ही; 'चिदानंद' न तो उस प्रकार नकारात्मक है और न विशेषण ही।

×(२७) १-१५१-६ : 'मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन मिति तुम्हहि अधीना।' 'मिति' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'तिमि'। दोनों पाठों से संगति लग जाती है : पहले का आशय होगा : '(उसी प्रकार) मेरी जीवनावधि तुम्हारे अधीन हो।' और दूसरे का होगा : 'उसी प्रकार मेरा जीवन तुम्हारे आधीन हो।'

×(२८) १-१६१-६ : 'बग' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'बक'। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत लगते हैं, यथा :

हंसहि बक गादुर चातकही। १-९-२ चक्रवाक बक खग समुदाई। ३-४०.३

चक्रवाक बक हंस उड़ाही। ४-२४-६ इहा आइ बक ध्यानु लगावा। ६-८५-६

कलि अघ खल अवगुन कथन ते जल मल बग काग। १-४१

अति खल जे बिषई बग कागा। १-३८-३

(२९) १-१७९-८ : 'एक बार कुबेर पर धावा।' 'पर' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'कहुं'। 'पर' की संगति तो प्रकट है। 'कहुं' का अर्थ होता है 'को' या 'के लिए', जो यहाँ पर असंगत है।

×(३०), १-१८७: 'निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहै सिखाइ। बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ।' 'धरि धरि महि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'धरि धरनि महं'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही ज्ञात होता है।

(३१) १-१९४-२: 'ब्रह्मानंद मगन सब लोई।' रघुनाथदास में 'लोई' के स्थान पर पाठ है 'कोई'। यद्यपि अर्थ के ध्यान से दोनों पाठों में विशेष अंतर नहीं है, किंतु अगली अर्द्धाली में 'लोगाई' का वर्णन आया है: 'बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं। सहज सिंगार किए उठि धाईं।' इसलिए 'लोगाईं' के साथ 'लोई' = 'लोक' (लोग) पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(३२) १-२०६-७: 'एहूं मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई।' रघुनाथदास में 'एहूं मिस' के स्थान पर पाठ है 'एहि मिस मैं'। अंतर वस्तुतः 'एहूं' और 'एहि' का है। पहले में ध्वनि यह है कि 'राम चरण दर्शन के लिए यह भी एक अच्छा मिस (निमित्त) मिल गया है'; दूसरे में ध्वनि होगी कि 'राम दर्शन ही सर्वप्रमुख कार्य है, शेष तो उसी के लिए एक बहाना (निमित्त) मात्र होगा'। पहला अधिक संगत लगता है, क्योंकि विश्वामित्र मुख्यतः दोनों भाइयों को साथ लाने के लिए जा रहे थे, जैसा अर्द्धाली के दूसरे चरण में स्पष्ट है।

*(३३) १-२०७: 'धर्म सुजस प्रभु तुम्हकौं इन्ह कहुँ अति कल्यान।' 'तुम्हकौं' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'तुम्ह कहुँ'। 'कौं' अन्यत्र नहीं प्रयुक्त हुआ है। दूसरी ओर 'इन्ह कहुँ' में ही 'कहुँ' आया है, और ग्रंथ भर में मिलता है, यथाः

सुख सोहाग तुम्हकहुँ दिन दूना। २-२१-४
तुम्हकहुँ बन सब भांति सुपासू। २-५५-७
सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। २-७७-६
तुम्हकहुँ तौ न दीन्ह बनबासू। २-७८-८

(३४) १-२०९-४: 'मोहि निति पिता तजेउ भगवाना।' 'निति'

के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'हित'। 'निति' का अर्थ 'निमित्त' होता है, और अन्यत्र वह इस अर्थ में प्रयुक्त भी है : यथा :

मीन जिअन निति बारि उलीचा। २-१६१-८

किंतु, 'मोहिं हित' कहीं नहीं मिलता, उसके स्थान पर सर्वत्र मम हित लागि' मिलता है, यथा :

सो ममहित लागी जन अनुरागी प्रगट भए श्रीकंता। १-१९२ छं०
ममहित लागि नरेस पठाए। १-२१६-८
ममहित लागि तजेहु पितु माता। ६-६१-४
ममहित लागि तजे इन्ह प्राना। ६-११४-२

अतः पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं।

× (३५) १-२११ : 'अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित कृपाल। तुलसीदास सठ ताहि भजु छांड़ि कपट जंजाल।' 'तेहि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'ताहि' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही। १-४-१०
सकल बिघ्न ब्यापहि नहिं तेही। १-३९-५
पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही। १-७९-८
तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी। १-१२३-७

(३६) १-२३१-७ : 'जिन्हकै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहि पावहिं पर तिय मन दीठी। मंगन लहहिं न जिन्हकै नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं।' रघुनाथदास में दूसरे चरण के 'पावहिं' के स्थान पर पाठ 'लावहिं' है। 'पावहिं' पाठ का अर्थ है : 'अन्यों की स्त्रियाँ जिनका मन और जिनकी दृष्टि नहीं पातीं (जिनको आकृष्ट नहीं कर सकतीं)।' दूसरे पाठ की संगति इस प्रकार नहीं लगती। यदि 'पर तिय' को 'लवाहिं' कर कर्त्ता माना जावे, तो अर्थ होगा 'पराई स्त्रियाँ जिस पर अपना मन और अपनी दृष्टि नहीं लगातीं।' किंतु प्रसंग से यह ठीक नहीं लाता, क्योंकि इस विशेषता के कारण कोई 'नर वर' नहीं कहा जा सकता। यदि 'जे' को लुप्त कर्त्ता मान

लिया जावे, तो 'पर तिय' का तृतीया में 'परस्त्री से' अर्थ नहीं लिया जा सकता।

(३७) १-२३३-२ : 'मोर पंख' सिर सोहत नीकें।' रघुनाथदास में 'मोर पंख' के स्थान पर पाठ है 'काक पच्छ'। 'काक पच्छ' का अर्थ होता है, बालों की वह लटें जो कानों के पास लटकती रहती हैं। फलतः 'काक पच्छ' की असंगति प्रकट है। काक पच्छ शिर में शोभा भी नहीं दे सकता। 'मोर पंख' को शिर पर धारण करने के विषय में कुछ कहना नहीं है, उसे तो कृष्ण जी ने इस प्रकार कृतार्थ किया ही था।

(३८) १-२३४-६ : 'पुनि आउब येहिं बेरिआं काली। अस कहि मन बिहंसी एक आली।' रघुनाथदास में 'बेरिआं' के स्थान पर पाठ है 'बिरिआं'। 'बेरिआं' की संगति प्रकट है—सखी कह रही है '(आज इतना ही रहने दो; यदि अभी मन न भरा हो तो कल भर लेना।) कल हम लोग इसी बेला फिर आवेंगी।' 'बिरिआं' अर्थहीन है।

(३९) १-२३५-७ : 'नहिं तव आदि अंत अवसाना।' 'अंत' केसे स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'मध्य' है। 'मध्य' न मानने से तो अस्तित्व का भी अस्वीकार हो जाता है, जो ठीक नहीं होगा। पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है। उसमें अधिक से अधिक इतनी ही त्रुटि दिखलाई पड़ती है कि 'अत' तथा 'अवसान' किसी अंश तक एक दूसरे के पर्याय हैं।

(४०) १-२४२-६ : 'रामहि चितव भायं जेहि सीया। सो सनेहु सुख नहिं कथनीआ।' 'भायँ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'भाव'। तुलनीय प्रयोग हैं :

भायं कुभायं अनख आलसहूं। नाम जपत मंगल दिसि दसहूं। १-२७-१

एक उदास भायं सुनि रहहीं। २-४८-६

सकल भायं सेवहिं सनमानी। २-१२६-८

फलतः 'भायं' की प्रयोगसम्मतता सिद्ध है। 'भाव' का प्रयोग कहीं भी 'भावपूर्वक' के अर्थ में नहीं हुआ है, सर्वत्र वह 'मनो-

भाव' – विशेष रूप से 'प्रेम' या 'भावे'='अच्छा लगे' के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा :

जो जेहिं भाव नीक तेहि सोई। १-५-६
मांगहु वर जोइ भाव मन । १-१-४८
भावभेद रसभेद अपारा । १-६-१०
भाव भगति आनंद अघाने। २-१०८-१

(४१) १-२४४-३ : 'एकटक लोचन चलत न तारे।' 'तारे' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'टारे'। 'तारे'='आँख की पुतलियाँ' की संगति प्रकट है। 'टारे' पाठ का अर्थ होगा : 'एकटक नेत्र हटाने पर भी नहीं चलते'। किंतु, 'टारे' के साथ 'चलत न' की संगति नहीं बैठती; 'टारे' के साथ 'टरत न' होता तो संगति भले ही लगती।

*(४२) १-२४६-१ : 'मनमोदकन्हि कि भूख बताई।' 'बताई' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'बुताई'। तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में कोई नहीं मिलते। लोक में अधिक प्रचलित 'बुताई' है।

* (४३) १-२५२-६ : 'तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना।' 'को' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'का'। निर्जीव 'पिनाक' के लिए 'को' की अपेक्षा 'का' अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

* (४४) १-२५७-७ : 'गननायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउं तुअ सेवा।' 'तुअ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'तव'। ग्रंथ भर में साधारणतः 'तव' का ही प्रयोग मिलता है, इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(४५) १-२५६-४ : तन मन बचन मोर पनु साँचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा।' 'चितु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'मन'। 'मन' तो पहले ही अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए 'मन' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

× (४६) १-२५६-८ : 'गरुर' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'गरुड़' है। यद्यपि साधारणतः 'गरुड़' पाठ ही ग्रंथ में मिलता है, किंतु 'गरुर' भी कहीं-कहीं पर प्रयुक्त मिलता है, यथा :

खेल गरुर जिमि अहिगन मीला । ६-६६-१
मिले गरुर मारग महं मोहीं । ७-६१-३
सुनत गरुर कै गिरा बिनीता । ७-६४-५
बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुर बहोरि । ७-६३

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं ।

(४७) १-६१-६ : दमकेउ 'दामिनि जिमि जब लएऊ । पुनि नभ धनु मंडल सम भएऊ । लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहुं न लखा देख सबु ठाढ़े ।' 'नभ धनु मंडल' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'धनु नभ मंडल' । पहले पाठ का आशय यह है कि 'दर्शकों ने धनुष की केवल दो स्थितियाँ देखीं; एक तो उसको लेने की स्थिति, और दूसरी आकाश में उसकी मंडलाकार स्थिति; बीच की स्थितियाँ —उसे चढ़ाने और खींचने की—किसी ने नहीं देखीं, यद्यपि सब लोग खड़े देख रहे थे ।' दूसरे पाठ से भी यह अर्थ लिया जा सकता है, किंतु एक किंचित् भिन्न अर्थ की भी उसमें संभावना है— 'दर्शकों ने धनुष की केवल दो स्थितियां देखीं : एक तो उसको लेने की स्थिति, और दूसरी आकाश मंडल के समान उसकी स्थिति . .।' साधारण 'मंडल' में और 'आकाश मंडल' में कुछ अंतर है । साधारण 'मंडल' वर्षा ऋतु में आकाश में सूर्य या चंद्रमा के चारों ओर गोल आकार का दिखाई पड़ता है; 'आकाश मंडल' यद्यपि गोल माना जाता है, किंतु देखने में दोनों क्षितिज दो छोरों के सदृश एक दूसरे से अलग ज्ञात होते हैं । यहाँ पर तुलना इसलिए की गई है कि धनु के दोनों छोर 'गाढ़े खैंचने' के कारण एक दूसरे से मिल रहे थे । धनुष की इस स्थिति के ध्यान से पहला पाठ अधिक सार्थक प्रतीत होता है ।

(४८) १-२६६ : 'रामहि देखहु नयन भरि तजि इरिषा मदु कोहु । लषन रोषु पावक प्रबल जानि सलभ जनि होहु ॥' 'कोहु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'मोहु' । प्रसंग यहाँ पर 'क्रोध' का ही है, 'मोह'='अज्ञान' का नहीं, जैसा ऊपर आए हुए 'माषे' ='क्रुद्ध

हुए' से प्रकट है :

तब सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माषे।

इसलिए पहला ही पाठ संगत है।

(४६) १-२६७-३ : 'लोभ लोलुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई।' 'लोभ लोलुप कल' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'लोभी लोलुप'। प्रसंग में आए हुए समस्त उदाहरणों में एक ही एक अप्रस्तुत आता है (देखिए १-२६७-१—४), और क्रिया 'चहई' भी एकवचन की है। एकवचन पाठ 'लोभ-लोलुप' ही इसलिए समीचीन है, बहुवचन पाठ 'लोभी-लोलुप' नहीं। 'लोभी' और 'लोलुप' अन्यत्र अलग-अलग ही प्रयुक्त हैं :

लोभी लंपट लोलुप चारा। जे ताकहिं पर धनु पर दारा। २-१६८-३

×(५०) १-२६६-३ : 'जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानइ जनु आइ खुटानी।' 'आइ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'आयु'। तुलनीय प्रयोग कोई नहीं मिलते। सामान्यत: प्रयोग में दोनों आते हैं।

(५१) १-२७५ : 'गाधिसूनु कह हृदय हंसि मुनिहि हरिअरै सूझ। अयमय खांड न ऊखमय अजहुं न बूझ अबूझ॥ 'खांड' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'खंड' है। पहले पाठ में 'खांड' श्लिष्ट रूप में प्रयुक्त है—एक अर्थ है 'खांडा' या 'तलवार', और दूसरा अर्थ है 'शक्कर'। पहले पाठ की संगति 'अयमय' और 'न ऊख मय' से स्वतः सिद्ध है। 'खंड' से इस प्रकार का श्लेषपूर्ण अर्थ नहीं लिया जा सकता, अतः वह प्रस्तुत प्रसंग में अर्थहीन है।

(५२) १-२८५-५ : 'काह' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'कहा' है। यद्यपि अर्थ में दोनों अभिन्न हैं, किंतु ग्रंथ में सर्वत्र 'काह' का प्रयोग हुआ है, 'कहा' का नहीं। यथा:

अब धौं बिधिहि काह करनीया। १-२६७-७
करौं काह मुख एक प्रसंसा। १-२८५-५
आयेसु काह कहिअ किन मोहीं। १-२७१-२

तो मैं काह कोप करि कीन्हा। १-२७६-८

इसलिए 'काह' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(५३) १-२८८-१: 'बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरव परहि नहिं चीन्हे।' 'सपरव' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सपरन'। 'सपरव' (सपल्लव) का अर्थ है 'कोमल पत्तियों के सहित'; 'सपरन' (सपर्ण) का अर्थ है 'पत्तियों—और विशेष रूप से बड़ी पत्तियों—के सहित'। किंतु यह देखा जाता है कि वृक्षों की जितनी शोभा कोमल पत्तियों—कोपलों—से होती है उतनी बड़ी पत्तियों से नहीं, इसलिए पहला पाठ अधिक युक्तियुक्त लगता है। 'पल्लव' तथा 'पर्ण' का उपर्युक्त अंतर नीचे लिखे उदाहरणों से प्रकट होगा:

नव पल्लव फल सुमन सुहाए। १-२२७-५
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। ३-४०-७
नव पल्लव भए बिटप अनेका। ४-१५-२
सब तरु कुसुमित पल्लव नए। ७ ३२-४
भरि भरि परन पुटी रचि रूरी। २-२५०-२
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। १-७४-७

(५४) १-२९८-४: 'रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे।' 'रुचि' के स्थान पर भी रघुनाथदास में पाठ 'रचि' है। इस प्रसंग में सभी वर्ण्य सुंदरतासूचक विशेषणों से अलंकृत किए गए हैं, यथा: 'बर बाजि' (१-२९८-४), और 'सुभग सकल' (१-२९८-५)। इस कारण 'रुचि'='सुंदर' की संगति प्रकट है। 'रचि' पाठ से अर्थ तो किसी प्रकार लग जाता है, किंतु उक्ति-सौंदर्य को क्षति पहुँचती है।

(५५) १-२९८-७: 'तिन्ह सब छयल भए असवारा। भरत सरिस बय राजकुमारा। 'बय' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सब'। पहले पाठ का अर्थ है 'भरत के समवयस्क राजकुमार', और दूसरे पाठ का अर्थ है 'भरत के समान (गुण वाले) सब राजकुमार।' पहला ही पाठ संगत लगता है, क्योंकि अन्य राजकुमार

भी भरत के सदृश (गुण वाले) थे, यह मानना ठीक नहीं प्रतीत होता है।

×(५६) १-३०२-७ : 'घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सरौ करहिं पाइक फहराहीं।' 'पाइक' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'पायक' है। तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में नहीं मिलते। दोनों रूप प्रचलित हैं।

(५७) १-३४५-५ : 'सो सुखु सुजसु सुलभु मोहिं स्वामी। सब सिधि तव दरसन अनुगामी।' 'सिधि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'बिधि'। 'बिधि' का कोई प्रसंग नहीं है; 'सुखु' और 'सुजसु' के साथ 'सिधि' ही ठीक लगता है।

(५८) १-३४६-१ : 'मोद प्रमोद बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भए गाता।' 'मोद' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'प्रेम' है। किंतु 'प्रेम' पहिले ही आ चुका है :

कौसल्यादि राम महतारीं। प्रेम बिबस तनु दसा बिसारीं॥

इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(५९) १-३५०-८ : 'मूक बदन जनु सारद छाई। मानहु समर सूर जय पाई।' 'जनु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जिमि'। किंतु प्रसंग भर में उत्प्रेक्षा-माला आई है :

पावा परमतत्व जनु जोगी। अमृत लहेउ जनु संसत रोगी।
जनम रंकु जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभ सुहावा।

इसलिये उदाहरण के वाचक 'जिमि' की अपेक्षा उत्प्रेक्षा का वाचक 'जनु' अधिक समीचीन लगता है।

(६०) १-३५२-४ : 'आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले मन तोषे।' 'मन तोषे' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'परितोषे'। दूसरे पाठ में 'परि' की पुनरावृत्ति है, और 'परिपोषे' तथा 'परितोषे' का त्रुटिपूर्ण तुक भी है। पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(६१) १-३५६-१ : 'जटित कनक मनि पलंग डसाए।' रघुनाथदास में 'जटित' के स्थान पर पाठ 'जड़ित' है। तुलनीय प्रयोग नहीं मिलते। फिर भी, पहला अधिक समीचीन लगता है, क्योंकि

वह शब्द के रूप तथा व्याकरण के रूप--दोनों में तत्सम है, और दूसरा व्याकरण के रूप में तो तत्सम है, किंतु शब्द के रूप में तद्भव है।

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में १७६२, १७२१, छक्कनलाल और रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त जो अस्वीकृत पाठभेद हैं उन पर नीचे विचार किया जाता है।

×(१) १-८-२ : 'हंसहि बक गादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही।' 'गादुर' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'दादुर' है। पहले चरण में तुलना के लिये 'हंस' और 'बक' दोनों पक्षिवर्ग से चुने गए हैं, इसलिए 'चातक' से तुलना के लिए पक्षिवर्ग का 'गादुर'='चमगादर' ठीक ही लगता है। 'गादुर' और 'चातक' का परस्पर विपरीत स्वभाव प्रसिद्ध है : चातक की वृत्ति ऊर्ध्वमुखी होती है– मरते समय तक वह आकाश की ओर चोंच उठाए रहता है, और गादुर सदैव मुँह नीचे किए लटका रहता है। और ध्वनि भी एक की मधुर और दूसरे की कर्कश होती है। किंतु, 'दादुर' और 'चातक' में से एक जलजीव है, और दूसरा पक्षी है, और दोनो के स्वभावों में भी परस्पर ऐसी विपरीतता नहीं पाई जाती। इन दोनों में समानता यह है कि दोनों वर्षा के जल के लिए ही आवाज लगाते हैं, और विषमता यह है कि एक की ध्वनि मधुर होती है और दूसरे की कर्कश।

(२) १-२१-३ : 'जानी चहहिं गूढ़ गति जेऊ।' 'जानी' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'जाना'। स्त्रीलिंग कर्म 'गति' के साथ स्त्रीलिग क्रिया 'जानी' ही समीचीन है, पुल्लिग 'जाना' नहीं। ग्रंथ भर में इस नियम का निर्वाह हुआ है, यथा :

सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी। ७-३६-३

(३) १-६४-६ : 'गए सकल तुहिनाचल गेहा।' बंदन पाठक में 'तुहिनाचल' के स्थान पर पाठ 'तु हिमाचल' है। 'तुहिनाचल'=

'हिमालय पर्वत' की संगति प्रकट है, किंतु 'तु हिमाचल' = 'तो हिमाचल' के 'तो' का कोई अवसर यहाँ नहीं है।

(४) १-१०२-४ : 'बचन कहत भरे लोचन बारी।' 'भरे' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'भरि' है। पूर्व की पंक्तियाँ हैं,

जननी उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही।
करेहु सदा संकर पद पूजा। नारी धरमु पतिदेव न पूजा।

अतः विवेचनीय पंक्ति की यह उक्ति कि 'इन बातों को कहते ही नेत्रों में आंसू भर आए....' स्पष्ट ही प्रसंगसम्मत है। 'भरि' पाठ का आशय यह लगता है कि 'नेत्रों में आँसू भर कर यह वचन कहने लगी,' जो कि प्रसंग के सर्वथा विपरीत है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में क्रिया के लिंग के संबंध में भी आपत्ति होगी, क्योंकि 'कहत' पुल्लिग है, और वक्ता स्त्री है। पहले पाठ के विषय में एक शंका हो सकती है—'बारी' एकवचन है, और 'भरे' बहुवचन, किंतु यह शंका ठीक नहीं है; अन्यत्र भी 'बारी' का इसी प्रकार प्रयोग हुआ है, यथा :

उमहिं बिलोकि नयन भरे बारी। १-७२-६
उमगे भरत बिलोचन बारी।२-२३४-१
बचनु न आव नयन भरे बारी। ५-१४-७

'बारी' का अर्थ इस प्रकार के समस्त स्थलों पर 'आसू की बूँदें' हैं।

×(५) १-१०३ : 'येह उमा संभु बिबाह जे नर नारि कहहिं जे गावहीं। कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुख पावहीं।' 'कहहिं' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'सुनहिं'। कुछ फलश्रुतियों में 'सुनहिं' और 'गावहिं' साथ-साथ अवश्य आए हैं, किंतु 'गावहिं' और 'कहहिं' को भी कभी-कभी साथ रक्खा गया है, यथा :

जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई। ४-३० छं०
मन कामना सिद्धि नर पावा। जो यह कथा कपट तजि गावा।
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते भवनिधि गोपद इव तरहीं। ७-१२६-५-६
रघुबंस भूषन चरित येह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं। ७-१३० छं०

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(६) १-१३४-३ : 'करहिं कूटि नारदहि सुनाई । नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ।' 'कूटि' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'कूट' है । 'कूटि करना' = 'हँसी उड़ाना' या 'आड़े हाथ लेना' की संगति प्रकट है । 'कूट' = 'क्लिष्ट अथवा अस्पष्ट वाक्य-संगठन या शब्द-संगठन' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, और न 'कूट करना' कोई मुहावरा है ।

(७) १-१७६-८ : 'एक बार कुबेर पर धावा ।' 'बार' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'बेर' । 'बेर' का प्रयोग ग्रंथ भर में एकाध ही बार हुआ है, (यथा ७-१८-२) अन्यथा सर्वत्र 'बार' का ही प्रयोग मिलता है । इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत है ।

×(८) १-१८७ : 'निज लोकहिं बिरंच गे देवन्ह इहै सिखाइ । बानर तनु धरि धरि महि हरिपद सेवहु जाइ ।' 'धरि महि' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'धरि धरनि' । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं ।

(९) १-२०-३ : 'भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाइ । भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ।' 'किलकत' के स्थान पर 'बंदन पाठक' में पाठ 'किलकात' है । तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में नहीं है । किंतु किलकना' ही ठीक लगता है, प्रेरणार्थक 'किलकाना' नहीं ।

(१०) १-२४४-३ : 'देखि लोग सब भए सुखारे । एकटक लोचन चलत न तारे ।' 'चलत न तारे' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'टरै न टारे' । प्रसंग में नेत्रों को हटाने की कोई आवश्यकता नहीं है, इसलिए दूसरा पाठ अप्रासंगिक लगता है । 'एकटक लोचन' के साथ 'चलत न तारे' = 'पुतलियाँ नहीं हिलतीं' की संगति प्रकट है ।

(११) १-२६१-३ : 'का बरषा सब कृषी सुखाने । समय चुकें पुनि का पछिताने ।' 'सब' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'जब' है । पहले पाठ की सार्थकता प्रकट है, आशय है 'सब कृषि के सूख जाने पर वर्षा से ही क्या लाभ ?' दूसरा पाठ निरर्थक लगता

है : 'जब कृषि के सूख जाने पर वर्षा से ही क्या लाभ ?' में 'कृषि के सूख जाने पर' के साथ 'जब' पाठ असंभव है।

(१२-१३) १-२६१ : 'संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु। बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोहबस ॥' बंदन पाठक में 'बूड़ सो' के स्थान पर पाठ है 'बूड़े', और 'चढ़ा' के स्थान पर है 'चढ़े'। विचारणीय यह है कि समूहवाची 'समाजु' प्रस्तुत प्रसंग में एकवचन है या बहुवचन। इस 'समाज' के संगठन का उल्लेख प्रसंग में पहले किया गया है, और वह इस प्रकार है :

सब कर संसय अरु अज्ञानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू।
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्हि केरि कदराई।
सियकर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा।
संभुचाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई।

उपर्युक्त 'संग' में अनेक समाज नहीं है, यह स्पष्ट है। फलतः दोहे के 'समाज' को एकवचन ही होना चाहिए, और उसके लिए प्रयुक्त क्रियाएँ भी एकवचन की होनी चाहिए।

(१४) १-२७२-५ : 'केवल मुनि जड़ जानहि मोहीं।' 'जानहि' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'जानेहि'। 'जानहि' वर्त्तमान काल का रूप है, और 'जानेहि' भूत काल का, यथा:

निपटहि द्विज करि जानहि मोहीं। मैं जस बिप्र सुनावौं तोही। १-२८३-१
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा। ५-४-३
रे कपिपोत बोलु संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहिं सुरारी। ६-२१-१

विवेचनीय से पूर्व की अर्द्धाली में भूतकालिक रूप 'सुनेहि' आया है :

बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा। १-२७२-४

फलतः पहला ही पाठ शुद्ध प्रतीत होता है।

× (१५) १-२९९-५ : 'सावं करन', के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'स्याम करन'। तुलनीय प्रयोग कोई नहीं हैं। अंतर दोनों में तद्भव और तत्सम का है। अर्थ में दोनों अभिन्न हैं।

(१६) १-३१६ : 'प्रभु मनसहि लयलीन मनु चलत चालि छबि

पाव । भूषित उडुगन तड़ित धनु जनु बर बरहि नचाव ।' 'चालि' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'बाजि'। किंतु, कर्त्ता 'बाजि'— और समानार्थी 'तुरंग'—पहिले ही आ चुका है :

जेहि तुरंग पर रामु बिराजे । गति बिलोकि खगनायकु लाजे ।
कहि न जाइ सब भांति सुहावा । बाजिबेषु जनु काम बनावा ।

इसलिए दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति है। इसके अतिरिक्त 'चालि' निकाल देने पर अर्थ में एक अपूर्णता आ जाती है। घोड़े की साधारण चाल की तुलना मोर की नाच से नहीं की जा सकती, उसकी एक विशेष प्रकार की 'गति' या 'चाल' की ही तुलना इस प्रकार की जा सकती है।

(१७) १-३१३-३ : 'पंच सबद धुनि मंगल गाना । पट पांवड़े परहिं बिधि नाना ।' 'धुनि' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'सुनि'। 'होहिं' क्रिया लुप्त है—पहले पाठ का अर्थ है 'पंचशब्द, पंच ध्वनि और मंगलगान हो रहे हैं।'' और दूसरे पाठ का अर्थ होगा 'पंचशब्द सुनकर मंगल गान हो रहे हैं।' पंचशब्दों का इससे पहले कोई उल्लेख नहीं मिलता है, इसलिए 'पचशब्द सुनकर···' —अर्थात् दूसरा पाठ उतना संगत नहीं लाता है जितना 'पंचशब्द और···'—अर्थात् पहला पाठ।

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२, १७२१, छक्कन लाल, रघुनाथ दास, तथा बंदन पाठक के उपर्युक्त अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त भी जो अस्वीकृत पाठ कोदवराम के संस्करण में हैं, उन पर हम नीचे विचार किया जा रहा है।

(१) १-५-३ : 'बंदौं संत असज्जन चरना । दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ।' 'असज्जन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'असंतन'। अगली अर्द्धाली इस प्रकार है :

बिछुरत एक प्रान हरि लेई । मिलत एक दुख दारुन देई ।

'एक' जिसका सर्वनाम है, उसकी संज्ञा एकवचन ही हो सकती है, बहुवचन नहीं। इसलिए 'असज्जन' एकवचन पाठ ही

संभव हो सकता है, 'असंतन' बहुवचन नहीं। तुलनीय 'संत' का एकवचन भी पहले ही पाठ का समर्थन करता है।

(२) १-८-१४ : 'सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई।' 'सकृत' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सुकृत'। 'सकृत'='एकाध' की संगति प्रकट है, किंतु 'सुकृत'='सत्कर्म' यहाँ पर अर्थहीन है।

(३) १-८ : 'पैहहिं सुख सुनि सुजन जन खल करिहहिं उपहास।' 'जन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सब'। तुलना यहाँ पर सुजनों की खलों के साथ है, इसलिए 'खल' के विरुद्ध 'सुजन जन' ही संगत लगता है। 'सब' का विशेषण तुलनीय कोई 'खल' पक्ष में नहीं है।

(४) १-१३-४ : 'जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू। गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू।' दूसरे चरण में आए हुए 'जेहिं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'तेहि' है। वाक्य के संगठन से प्रकट है कि पहले तीन चरण चौथे चरण के मुख्य वाक्य के विशेषण उपवाक्य हैं, जिन्हें संबंधवाचक सर्वनाम के द्वारा मुख्य वाक्य से संबद्ध होना चाहिए। पहले उपवाक्य में 'जेहि' आया ही है; तीसरे में 'जो' लुप्त है' किंतु वह सरलता से लगा लिया जाता है; इसलिए दूसरे में भी संबंधवाचक सर्वनाम 'जेहिं' ही समीचीन लगता है, अन्य-पुरुष वाचक 'तेहि' नहीं।

(५) १-१४-६ : 'प्रनवों सबहिं कपट छल त्यागे।' 'छल' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सब'। 'कपट' और 'छल' प्रायः साथ आए हैं; यथा :

मोहि कपट छल छिद्र न भावा। ५-४४-५

तजि मद मोह कपट छल नाना। ५-४८-३

इसलिए पहला पाठ प्रयोगसम्मत है। 'कपट सब' कहीं नहीं मिलता, और इसके अतिरिक्त उसमें अनावश्यक पुनरुक्ति भी है, क्योंकि 'सबहिं' तो उसके एक ही शब्द पूर्व आया हुआ है।

(६) १-१५-७ : 'सो महेस मोहिं पर अनुकूला।' 'महेस' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'उमेस'। ऊपर की अर्द्धाली में 'महेस' ही आया है :

अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू।

इसलिए, उन प्रतापशाली देवाधिदेव की अनुकूलता का उल्लेख करते समय 'सो महेस' की समीचीनता प्रकट है, और पुनरुक्ति साभिप्राय है। इस अभिप्राय 'महा + ईस' की तुलना में 'उमेस' = 'उमा + ईश' यहाँ पर अप्रासंगिक लगता है।

(७) १-२१ : 'रामनाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहरौं जौ चाहसि उजिआर।' 'बाहरौं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बाहिरउ'। 'बाहेर' ही प्रयोग-सम्मत है, क्योंकि वही अन्यत्र भी मिलता है, 'बाहिर' नहीं।

गएउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाई। २-८२
मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह। १-१११
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽति दीन पुकारहीं। ६-८५ छं०
बिहंसत ही मुख बाहेर आएउं सुनु मति धीर। ७-८२

(८) १-२६ : 'नाम राम को कलपतरु कलिकल्यान निवासु। जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदास।' 'भयो' के स्थान पर कोदवराम में 'भव' मिलता है। प्रसंग से 'हुआ' का समानार्थी इस स्थान पर सिद्ध है, किंतु 'भव' शब्द का प्रयोग ग्रंथ भर में कहीं 'हुआ' के अर्थ में नहीं हुआ है, 'भयो' का ही हुआ है। इसलिए 'भव' पाठ ठीक नहीं लगता।

(९) १-२७-५ : 'नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला।' दूसरे चरण की शब्दावली के स्थान पर कोदवराम में 'सुमिरत सुखद सुलभ सब काला' मिलती है। 'काल कराला' तो प्रथम चरण में ही आ चुका है, इसलिए 'सब काला' संयुक्त पुनरुक्तिपूर्ण पाठ दूसरे चरण में संभव नहीं लगता है।

×(१०) १-३७-१३ : 'भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा

दया दम लता बिताना।' कोदवराम में 'दम' के स्थान पर 'द्रुम' पाठ है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

×(११) १-३७-१४ : 'सम जम नियम फूल फल ज्ञाना। हरिपद रति रस बेद बखाना।' कोदवराम में 'सम जम' के स्थान पर 'संजम' मिलता है। प्रसंग में दोनों पाठ बैठते हैं, और कवि के प्रयोगों अनुसार भी दोनों संभव है, यथा:

समजम नियम सिलीमुख नाना। ६-८०-६
सम दम संजम नियम उपासा। २-३२५-४
ब्रह्मचर्ज व्रत संजम नाना। १-८४-७
राम करहु सब संजम आजू। २-१०-३

(१२) १-३६-११ : 'चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो।' कोदवराम की प्रति में दोनों चरणों के तुक में 'सी' है। 'सो कविता सरिता' में संकेत है पूर्व की निम्नलिखित उक्ति का :

भएउ हृदय आनंद उछाहु। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू।
और 'सो राम बिमल जसजल' में संकेत है पूर्व की निम्नलिखित उक्तियों का :

सुमति भूमथल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू।
बरषहिं राम सुजस बरबारी। मधुर मनोहर मंगलकारी।
राम सीअ जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।

'सी' में इस संकेत का अभाव है, जो प्रसंग के लिये आवश्यक है। इसके अतिरिक्त 'सी' तुलना का वाचक है; उससे विवेचनीय पहले चरण की संगति तो लग जाती है, किंतु दूसरे की नहीं लगती; 'सरिता-सी' तो ठीक है, किंतु 'भरिता-सी' अर्थहीन है।

*(१३) १-४३-१ 'आरति बिनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न खोरी।' कोदवराम में 'न खोरी' के स्थान पर पाठ है 'न थोरी'। 'न खोरी' का अर्थ है 'दोषहीनता', और 'न थोरी' का अर्थ है 'थोड़ी नहीं है'। यद्यपि पहले पाठ से अर्थ लग जाता है,

किंतु दूरान्वय के साथ; दूसरे पाठ में इस प्रकार की कठिनाई नहीं होती है। प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं।

*(१४) १-५१-६ : 'सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ तन काऊ।' कोदवराम में 'तन' के स्थान पर पाठ 'मन' है। संशय-धारण के लिए 'मन' 'तन' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है, यथा :

अस संसय मन भएउ अपारा। १-५१-४
अजहूँ कछु संसउ मन मोरे। १-१०६-५
अस समुझत मन संसय होई। १-१५०-७
करेसि जो संसय निज मन माहीं। ७-५६-३

(१५) १-५२-५ : 'इहां संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुं नहिं कल्याना।' कोदवराम में 'इहां' के स्थान पर पाठ 'उहां' है। प्रसंग में सती शिव को बैठे छोड़ कर राम की परीक्षा लेने गई थीं :

चली सती सिव आयसु पाई।

अस कहि जपन लगे हरिनामा। गइं सती जहं प्रभु सुखधामा। इसलिए यह प्रकट है कि शिव के संबंध में 'इहां' ही प्रसंगसम्मत है, 'उहां' नहीं।

(१६) १-६८-५ : 'मिलन कठिन भा मन संदेहू।' कोदवराम में 'भा मन' के स्थान पर पाठ है 'मन भा'। दूसरे पाठ में 'मन' के आगे रहने के कारण जो प्राधान्य मिल जाता है, प्रसंग में वह आवश्यक नहीं है। वरन् 'मन' के बिना भी केवल 'भा संदेहू' से काम चल सकता था, इसीलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(१७) १-७१-२ : 'पतिहि इकांत पाइ कह मयना। नाथ न मैं समुझे मुनि बैना।' कोदवराम में 'समुझे' के स्थान पर पाठ हैं 'समुझउं' मिलता है। इस समय तक 'मुनि' नारद चले गए थे :

अस कहि ब्रह्म भवन मुनि गैऊ। आगिल चरित सुनहु जस भैऊ। १-७१-१

इसलिए 'समुझउं' वर्त्तमान काल की अपेक्षा 'समुझे' भूतकाल अधिक प्रसंगसम्मत लगता है :

(१८) १-८२-६ : 'तेहिं सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख संपति रीते।' कोदवराम में 'तेहिं' के स्थान पर पाठ 'ते' है। प्रसंग यहाँ पर तारकासुर का है :

तारकु असुर भएउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला।

उसके लिए 'ते'—बहुवचन रूप नितांत अनुपयुक्त है।' तेहिं' का प्रयोग अन्यत्र भी 'उसने' के अर्थ में एकवचन कर्त्ता के लिए हुआ है, यथा :

तेहिं सब लोक लोकपति जीते। १-८२-६
तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। १-८३-३
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। १-२२८-८
बंस सुभाउ उतरु तेहिं दीन्हा। १-२८२-२

इसलिए वह प्रसंग में सर्वथा उचित है।

(१९) '१-९१-७: 'लगन बाँचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई।' कोदवराम में 'मुनिसब' के स्थान पर 'मुनिबर' मिलता है। यदि किसी विशेष मुनि की वहाँ पर उपस्थिति का उल्लेख पहले से होता तो 'मुनिवर' पाठ ठीक था, किंतु ऐसा कोई उल्लेख उक्त प्रसंग में नहीं है, इसलिए दूसरा पाठ मान्य नहीं लगता।

(२०) १-९१ : 'लगे संवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान। होहिं सगुन मंगल सुभद करहि अपछरा गान।' कोदवराम में 'सुभद' के स्थान पर 'सुखद' मिलता है। प्रसंग यहाँ 'मंगल' और 'कल्याण' का है, इसलिए 'सुभद' = 'कल्याणकारी' पाठ ही ठीक होगा' 'सुखद' = 'सुख देने वाला' नहीं।

(२१) १-९४-५ : 'कामरूप सुंदर तनु धारी। सहित समाज सहित बर नारी। गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा।' दूसरे चरण में कोदवराम 'सहित समाज' के स्थान पर 'सकल समाज' पाठ है। यह ठीक है कि 'सहित' बाद में भी आता है, किंतु, 'सकल' भी इसी प्रकार पुनः दूसरी अर्द्धाली में आता है। 'सकल समाज' इसलिए नहीं हो सकता कि अभी तक एक भी समाज का उल्लेख नहीं हुआ था। ऊपर की पंक्तियाँ हैं :

सैल सकल जहं लगि जगमाहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं।
बन सागर सब नदीं तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा।
'सहित समाज' = 'दल बल सहित' की संगति प्रकट है, और प्रस्तुत अर्थ में यह शब्दावली प्रायः आई है, यथा:

बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज। १-६३
राम बिरह ब्याकुल भरत सानुज सहित समाज। २-२१४
देव दया बस बड़ दुख पाएउ। सहित समाज कानूनहिं आएउ। २-३१६-२
राम प्रेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा। २-३२५-६

(२२) १-६६-४ : 'बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भएउ बिसेषा।' कोदवराम में 'अबलन्ह' के स्थान पर पाठ 'अबलन्हि', है। पहला संबंध कारक का रूप है, और दूसरा कर्म कारक का; 'उर' के होने से संबंध कारक रूप सिद्ध है, क्योंकि अन्यथा 'अबलन्हि भय भएउ बिसेषा' ही होना चाहिए था। इसलिए दूसरा रूप ठीक नहीं लगता।

(२३) १-१३०-७: 'मुनि कौतुकी नगर तेहिं गएऊ। पुरबासिन्ह सब पूंछत भएऊ।' कोदवराम में 'सब' के स्थान पर 'सन' है। अगली अर्द्धाली में 'सब' पुनः आता है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति अवश्य है, किंतु 'सब' के स्थान पर 'सन' कर देने पर 'पूंछत' का कर्म नहीं रह जाता—क्या पूछा ? और 'सन' यहाँ आवश्यक भी नहीं है, क्योंकि इसी प्रकार अन्यत्र भी प्रयोग मिलते हैं, यथा :

अस्थि सभूह देखि रघुराया। पूछा मुनिन्ह लागि अतिदाया। ३-३-८
सुनिमन बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।
मोहिं सादर पूंछत भए छिन आएहु केहि काज॥ ७-११०

इसलिए पहला ही पाठ मान्य लगता है।

(२४) १-१४०-३ 'तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई।' इसके स्थान पर कोदवराम में पाठ है :

तब तब कथा विचित्र सुहाई। परम पुनीत मुनीसन्ह गाई।

'सुहाए' तीन अर्द्धाली बाद आया हुआ है;

रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए।

इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। दूसरी ओर 'प्रबंध बनाई' नितांत प्रासंगिक है, और 'बिचित्र सुहाई' प्रसंग निरपेक्ष है, क्योंकि अगली ही अर्द्धाली में कहा गया है .

बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने।

इसलिए कोदवराम का पाठ मान्य नहीं प्रतीत होता।

* (२५) १-१४५-६ : 'माँगु माँगु धुनि भइ नभ बानी। परम गंभीर कृपामृत सानी।' 'धुनि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'बर' है। 'बर' प्रासंगिक है, और यहाँ पर संभव है। 'बानी' के साथ 'धुनि' अनावश्यक लगता है।

× (२६) १-१६३ : 'मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तब।' कोदवराम में 'बिचारि' के स्थान पर पाठ 'देखि' मिलता है। किसी से उसकी चतुरता का बखान या उल्लेख करते समय यद्यपि अधिकतर 'जानना' क्रिया के रूपों का प्रयोग हुआ है यथा :

जब जाना मैं श्री चतुराई। १-६-७

चतुराई तुम्हारि मैं जानी। १४७-३

और 'बिचारना' उसके निकट पड़ता है, किंतु एकाध स्थल पर 'देखना' का प्रयोग भी मिलता है :

रीझेउं देखि तोरि चतुराई। माँगेहु भगति मोहि अति भाई। ७-८५-५

इसलिए 'देखि' का प्रयोग भी समीचीन लगता है।

(२७) १-१६८-४ : 'जोग जुगुति जप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ।' कोदवराम में 'जप' के स्थान पर पाठ 'तप' है। 'योग-युक्ति' में जिस प्रकार का समास है, उसी प्रकार का समास 'जप-मंत्र' और 'प्रभाव' में भी है। 'जप' का 'मंत्र' होता ही है, उसका 'प्रभाव' भी माना जाता है; 'तप' का न कोई 'मंत्र' होता है और न 'प्रभाव' ही। इसलिए 'जप' पाठ ही समीचीन है।

(२८) १-२०६-७ : 'येहूं मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई।' कोदवराम में 'येहूं मिस देखौं' के स्थान पर पाठ है 'यहि मिसु देखौं प्रभु'। पाठ है अंतर केवल 'येहूँ' और 'यहि' का

विवेचनीय है, शेष से अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता। 'येहूँ' और 'यहि' के इस अंतर पर हम ऊपर अन्यत्र विचार कर चुके हैं, [1] और वहाँ हम देख चुके हैं कि 'येहूँ' पाठ ही समीचीन है।

×(२६) १-२१६: 'राम लषनु दोउ बंधु बर रूप सील बलधाम। मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम॥ कोदवराम में 'जिते' के स्थान पर पाठ 'जीति' मिलता है। 'जिते' का प्रयोग 'जीते' की भाँति ही ग्रंथ में हुआ है, यथा :

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हमकेते। ३-१३-३

सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए तकहु गिरिकंदर। ६-६६-७

और न केवल 'जिते', बल्कि 'जितहिं', 'जितिहहिं', 'जितहु', 'जिता', 'जिति', 'जितेउ' और जितेहु' रूप भी मिलते हैं। फलतः 'जिते' में कोई अशुद्धि नहीं है। 'जीति' में भी कोई अशुद्धि नहीं है, और न प्रसंग से कोई विरोध है। दोनो में अंतर केवल इतना पड़ता है कि 'जिते' पाठ से 'जिते असुर संग्राम' एक स्वतंत्र उप-वाक्य रहता है, और 'जिति' पाठ से 'जीति असुर संग्राम' 'मख राखेउ' का एक क्रिया-विशेषण उपवाक्य बन जाता है।

(३०): १-२२६-४ 'एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि संग आए काली।' कोदवराम में 'तेइ' के स्थान पर 'सोइ' है। 'सोइ' की अशुद्धि स्पष्ट है, कारण यह है कि 'सोइ' एक वचन है, जब कि 'नृपसुत' के लिए प्रयुक्त सर्वनाम और क्रिया दोनों दूसरे चरण में बहुवचन हैं।

(३१) १-२३२-१: 'चितवति चकित चहूं दिसि सीता। कहं गए नृप किसोर मन चिंता।' कोदवराम में 'चिंता' के स्थान पर 'चीता' पाठ है। 'सीता' और 'चिंता' का तुक निस्संदेह आदर्श नहीं है, किंतु पाठ में कोई अशुद्धि या असंगति नहीं है। 'चीता' पाठ दूसरी ओर दोषपूर्ण है। एक तो 'चीता' शब्द का प्रयोग ग्रंथ में अन्यत्र नहीं मिलता, दूसरे 'मन चीता' 'नृपकिसोर' का विशेषण नहीं हो सकता, क्योंकि 'नृपकिसोर' बहुवचन के रूप में

१—देखिए रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठों में यही स्थल।

प्रयुक्त है, जो उसकी क्रिया 'गए' से भली भाँति प्रकट है। 'मनचीते' पाठ होता तो बात दूसरी थी।

×(३२) १-२३६-१ : 'बरदायिनी पुरारि पिआरी।' इसके स्थान पर कोदवराम में मिलता है 'बरदायिनि त्रिपुरारि पिआरी।' अर्थ की दृष्टि से दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है, और 'पुरारि' तथा 'त्रिपुरारि' दोनों ही प्रयोगसम्मत भी हैं, यथा:

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि। १-४६
मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी। १-४८-६
जगदातमा महेस पुरारी। १-६४-५
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। १-३२-८

(३३) १-२३६-४ : 'अस कहि चरन गहे बैदेही।' कोदवराम में 'गहे' के स्थान पर 'गही' मिलता है। सकर्मक क्रिया 'गहना' का कर्म 'चरण' पुल्लिंग तो है ही, बहुवचन भी है, क्योंकि किसी विशेष चरण के ग्रहण करने का कोई उल्लेख नहीं है। क्रिया का रूप भीफलतः उसी के अनुसार पुंल्लिग और बहुवचन 'गहे' होना चाहिए।

(३४) १-२४५-८ : 'येह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरम-सील हरि भगत सयाने।' 'अवर महिप' के स्थान पर कोदवराम में 'अपर भूप' मिलता है। अर्थ दोनों पाठों का एक ही है, और कोई अशुद्धि भी किसी में नहीं ज्ञात होती है। किंतु ऊपर 'अपर भूप' केवल तीन अर्द्धाली पूर्व 'अविवेक अंध' और 'अभिमानी' राजाओं के लिए प्रयुक्त हो चुका है :

बिहँसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी।

और उन्हीं की बातें सुनकर राजा हँसे हैं, इसलिए इन्हें भी 'अपर भूप' कहना संगत नहीं ज्ञात होता। उन 'अविवेक अंध' और 'अभिमानी' राजाओं से इन 'धरमसील' और 'हरि भक्त' राजाओं को अलग करने के लिए भिन्न शब्दावली का आश्रय ही ठीक लगता है।

(३५) १-२४७-३ : 'उपमा सकल मोहिं लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागी। सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि

कहाइ अजस को लेई।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली के 'सिय बरनिअ' के स्थान पर 'सीय बरनि' पाठ है। दूसरी अर्द्धाली का अर्थ पहले पाठ के अनुसार होता है 'उन्हीं उपमाओं को देकर (उन्हीं उपमाओं की सहायता से) सीता का वर्णन कीजिए, तो कुकवि कहला कर अयश कौन ले?'। 'सीय बरनि' पाठ कर देने पर दूसरी अर्द्धाली का पहला चरण क्रिया-विशेषण उपवाक्य के रूप में नहीं रह जाता है—क्योंकि उसमें कोई क्रिया नहीं रह जाती है, और 'सीय बरनि' और 'तेइ उपमा देई' दोनों को 'कुकबि कहाइ अजस को लेई' का क्रिया-विशेषण वाक्यांश बन जाना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि 'तेइ उपमा देई' के समान ही 'सीय बरनि' भी कोई कुकवि कहा सकता है, और अपयश का भागी हो सकता है, यह अर्थ लेना पड़ता है, जो किसी प्रकार संगत नहीं है। फलतः कोदव-राम का पाठ मान्य नहीं प्रतीत होता है।

× (३६) १-२४८ : 'गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि। लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि।' कोदवराम में 'लागि' के स्थान पर पाठ 'लगी' है। अर्थ की दृष्टि से दोनों पाठ ठीक हैं, और प्रयोग की दृष्टि से अशुद्ध भी दोनों में से कोई नहीं है, यथा :

लगीं देन गारी मृदु बानी। १-६६-८
लगीं देन सिख सील सराही। २-४६-४
जाइ बिपिन लागी तपु करना। १-७४-१
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी। १-२११ छं०

(३७) १-२४६-१ : 'राम रूपु अरु सिय छबि देखें। नरनारिन्ह परिहरीं निमेषें।' कोदवराम में 'देखें' और 'निमेषें' के स्थान पर क्रमशः 'देखी' और 'निमेषी' पाठ आता है। 'निमेष' रूप ही ग्रंथ भर में मिलता है, और यहाँ की भाँति 'देखे' और 'निमेषे' भी एक स्थान पर मिलते हैं :

थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहू परिहरीं निमेषें। १-२३७-५

'निमेषी' रूप अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता, और न 'निमेष' अकारांत का 'निमेषी' ईकारान्त होना ही संभव है।

(३८) १-२५०-७ : 'तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बल करहीं।' कोदवराम में 'ताकि' के स्थान पर भी 'तमकि' पाठ है। प्रश्न यह है कि 'तमकि तमकि' और 'तमकि ताकि' में से अधिक प्रसंगोचित कौन है, और अधिक प्रयोगसम्मत कौन है। जहाँ तक प्रसंग का प्रश्न है, दोनों पाठ खप सकते हैं। किंतु प्रयोग के ध्यान से 'तमकि तमकि' ग्रंथ भर में नहीं मिलता, यद्यपि 'तमकि' का प्रयोग ग्रंथ में कम से कम आधे दर्जन बार हुआ है, और ऐसे स्थलों पर भी हुआ है जहाँ पर 'तमकि' के विशेष्य कर्त्ता एक से अधिक हैं, यथा :

तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठै न चलहिं लजाइ। १-२५०

अति तरल तरुन प्रताप तर्जहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए।
कपि भालु चढ़ि मन्दिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भए॥ ६-४१

प्रभु बल पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए। ६-६७-७

दूसरी ओर, यद्यपि 'ताकि तकि' का प्रयोग अन्यत्र नहीं मिलता, 'तकि तकि' का प्रयोग 'ताकि ताकि' के अर्थ में बराबर मिलता है, यथा :

तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा। १-१५७-३

रघुपति बिरह सबिषसर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी। ६-६६-६

और 'ताकि' के अर्थ में अकेले 'तकि' का भी प्रयोग मिलता है, यथा :

अब प्रभु पाहि सरन तकि आएउँ। ३-२-१३

इसलिए 'ताकि तकि' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत ज्ञात होता है।

(३९) १-२५४-८ : 'ठाढ़ भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुवा मृगराज लजाएं।' कोदवराम में 'सुभाएं' के स्थान पर 'सुहाए' पाठ है। 'शोभा' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है, प्रसंग यहाँ पर उनके उठने और उठकर धनुष के समीप तक जाने की क्रिया का है, जैसा दूसरे चरण की उक्ति से स्पष्ट है; इसलिए 'स्वाभाविक रूप से'

अर्थ का क्रियाविशेषणात्मक पहला ही पाठ प्रासंगिक लगता है, 'सुंदर' अर्थ का विशेषणात्मक दूसरा पाठ नहीं।

(४०) १-२६३-१ : 'झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई। बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहं तहं जुवतिन्ह मंगल गाए।' कोदवराम में पहली अर्द्धाली के 'सुहाई' के स्थान पर 'बजाई' है। यह भली भाँति स्पष्ट है कि पहली अर्द्धाली में केवल बाजों के नाम गिनाए गए हैं, उनके बजने का उल्लेख दूसरी अर्द्धाली में किया गया है, और 'बजाई' पाठ मान लेने पर अगली ही पंक्ति में शब्द की पुनरावृत्ति 'बाजहिं' रूप में होती है, इसलिए 'सुहाई' पाठ अधिक मान्य प्रतीत होता है।

(४१) १-२६५-७ : 'सोहति सीय राम कै जोरी।' कोदवराम में 'सोहति' के स्थान पर 'सोहत' पाठ है। 'जोरी' स्त्रीलिंग है, और उसके पूर्व की विभक्ति 'कै' भी स्त्रीलिंग की ही है, इसलिए उसकी क्रिया भी स्त्रीलिंग की होनी चाहिए। 'सोहत' पाठ इसलिए मान्य नहीं हो सकता।

*(४२) १-२६७-४ : हरिपद बिमुख परा गति चाहा।' कोदवराम में 'परा' के स्थान पर पाठ 'परम' है। ग्रंथ में 'परा गति' अन्यत्र नहीं मिलता, और 'परम गति' एकाध स्थलों पर मिलता है,

बिनु स्रम नारि परम गति लहई। ३-५-१८

इसलिए 'परम गति' अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(४३) १-२७०-२ : 'सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चाप खंड महि डारे।' कोदवराम में 'फिरि' के स्थान पर 'तब' है। 'फिरि' का अर्थ है 'घूमकर', और प्रसंग में यही अर्थ ठीक लगता है। प्रसंग में 'तब' की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि 'सुनत बचन' उससे कहीं अधिक निश्चयात्मक समयवाचक के रूप में वहाँ पहले से है।

(४४) १-२७०-३ : 'कहु जड़ जनक धनुष कैं तोरा।' कोदवराम में 'कैं' के स्थान पर पाठ है 'को'। 'कौन' के अर्थ में ही 'को' का प्रयोग ग्रंथ भर में मिलता है, 'किसने' के अर्थ में नहीं। इसलिए

'को' पाठ मान्य नहीं है। 'कैं' के विषय में यह कठिनाई नहीं है, यद्यपि अन्यत्र वह 'मानस' में कहीं नहीं आया है।

(४५) १-२७५ : कोदवराम में 'गाधिसूनु' के स्थान पर पाठ 'गाधिसुवन' मिलता है। यह शब्द ग्रंथ भर में एक ही स्थान पर और मिलता है, और वहाँ भी 'गाधिसूनु' ही है (१-२१२-२)। इसलिए 'गाधिसूनु' 'गाधिसुवन' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(४६) १-२७७ : 'लखन कहेउ हंसि सुनहु मुनि क्रोधु पापकर मूल। जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल।' कोदवराम में 'चरहिं' के स्थान पर पाठ है 'परहिं'। 'विश्व के प्रतिकूल 'पड़ने' को अनुचित 'करहिं' कहना बुद्धिसंगत नहीं लगाता। 'प्रतिकूल आचरण करने' को ही "अनुचित 'करहिं' कहना ठीक होगा।

(४७) १-२७६-६ : करिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनि-नायक सोई करौं उपाई। कोदवराम में 'करौं' के स्थान पर पाठ 'करिअ' है। यद्यपि कभी-कभी 'करिअ' का प्रयोग 'किया जाय' के अर्थ में हुआ है, यथा :

डर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिअ उपाऊ। १-६८-८

किंतु इस प्रकार के प्रयोग में कहने वाले और कहे जाने वाले के बीच परस्पर सहयोग की एक ध्वनि होती है, जो प्रस्तुत प्रसंग में नहीं है। उसके सामान्य अर्थ 'करो' (विधि) की असंगति तो प्रकट है, क्योंकि यदि परशुराम को ही उपाय भी करना था तो जिस उपाय से उनका क्रोध दूर हो सकता था, उसे उन्हें कहने की क्या आवश्यकता हो सकती थी? 'करौं' की संगति स्पष्ट है।

(४८) १-२८५ : 'हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय सूल। कोदवराम में 'मिटी' के स्थान पर पाठ 'मिटा' है। 'सूल' स्त्रीलिंग के रूप में ही प्रयुक्त है, यथा—

राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्वभइ सूला।

इसलिए उसके साथ पुल्लिग क्रिया का पाठ 'मिटा' मान्य नहीं हो सकता।

×(४६) १-२६०-७ : 'खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरतु सहित हित भाई।' कोदवराम में 'हित' के स्थान पर 'लघु' पाठ है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, और प्रयोग की दृष्टि से भी ठीक हैं।

(५०) १-२६१ : 'सुनहु महीपति मुकुटमनि तुम्ह सम धन्य न कोउ। रामु लखनु जाके तनय विस्व बिभूषन दोउ।' कोदवराम में 'जाके' के स्थान पर पाठ 'जिन्हके' मिलता है। यह सर्वनाम एकवचन 'तुम्ह' के लिए प्रयुक्त हुआ है, इसलिए एकवचन 'जाके' ही संगत लगता है, बहुवचन 'जिन्हके' नहीं।

(५१) १-३०२-७ : 'भुवन चारिदस भरा उछाहू। जनक सुता रघुबीर बिआहू। कोदवराम में 'भरा' के स्थान पर पाठ 'भरेउ' है। दोनों पाठों में 'भरा' अधिक समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि अन्यत्र भी 'उछाहू' कर्त्ता के साथ क्रिया का यही रूप आया है; यथा :

सकल भुवन भरि रहा उछाहू। हर गिरिजा कर भएउ बिआहू। १-१०१-६

(५२) १-३०२-७ : 'घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सरौ करहिं पाइक फहराहीं।' कोदवराम 'जाहीं, फहराहीं' के स्थान पर 'जाई, फहराई' आते हैं। दोनों क्रियाओं के कर्त्ता एक से अधिक हैं, इसलिए उनका बहुवचन रूप ही समीचीन है।

(५३) १-३०७ : 'भूप बिलोके जबहि मुनि आवत सुतन्ह समेत। उठे हरषि सुख सिंधु महं चले थाह सी लेत। कोदवराम में 'उठे' के स्थान पर पाठ 'उठेउ' है। कर्त्ता 'भूप' के लिए दोहे में 'बिलोके' तथा 'चले' रूप आ चुके हैं, इसलिए 'उठे' रूप ही समीचीन लगता है, 'उठेउ' नहीं।

×(५४) १-३१२-३ : 'निज निज गेह गए महिपाला।' कोदवराम 'गेह' के स्थान पर 'भवन' है। दोनों ही पाठ प्रयोग की दृष्टि से शुद्ध हैं।

(५५) १-३१२-८ : 'सुनी सकल लोगन येह बाता। कहहिं

जोतिषी अपर विधाता।' कोदवराम में 'अपर' के स्थान पर 'बिप्र' पाठ है। पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

ग्रह तिथि नखतु जोग बरबारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू।
पठै दीन्ह नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई।

आशय यह है 'ब्रह्मा ने लग्न निर्धारित की, और उसे नारद के हाथ [जनक के यहाँ] भेजा। जनक के गणकों ने भी यही लग्न गणना के अनंतर निर्धारित कर रक्खा था। यह बात जब लोगों ने सुनी तो वे कहने लगे कि ज्योषिती भी दूसरे विधाता ही होते हैं।' 'बिप्र' का यहाँ पर कोई प्रसंग नहीं है, और न यही कहना ठीक होगा कि 'बिप्र ज्योतिषी' ही विधाता हैं। फलतः 'अपर' पाठ ही समीचीन है।

(५६) १-३१५-५ : 'साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिं सुर सेवा।' कोदवराम में 'सुर' के स्थान पर पाठ 'सुख' है। 'साधु समाज' तथा 'महिदेवों' की तुलना 'सुख' से नहीं हो सकती, यह विरक्त और अकिंचन वर्ग 'सुख' का प्रतीक नहीं हो सकता। दूसरी ओर, ब्राह्मणों को तो 'महीसुर' कहा ही गया है, यथा :

सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। १-१७४-८
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। १-२७३-६
मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू। २-३२२-१

एक स्थान पर कदाचित् 'संतों' को भी 'महासुर' कहा गया है :

बंदौं प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।
सुजन समाज सकल गुन खानी। करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी। १-२-३-४

×(५७) १-३१६ : 'जराव' के स्थान पर कोदवराम में मिलता है 'जड़ाव'। तुलनीय प्रयोग नहीं मिलते। अर्थ विषयक अंतर दोनों में नहीं है।

×(५८) १-३१६-२ : 'बेदविदित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब व्यवहारू।' कोदवराम में 'आचारू' और 'व्यवहारू' के स्थान पर क्रमशः 'व्यवहारू' और 'आचारू' हैं। जिस प्रकार 'बेद

बिदित आचारु' मिलता है, उसी प्रकार 'बंस ब्यवहारु' भी मिलता है, यथा :

तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र पुन वृद्ध गुर बेद बिदित आचारु ॥ १-२८६

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं।

(५६) १-३२६ : 'अपराधु छमिबो बोलि पठंए बहुत हौं ढीठ्यों दई।' कोदवराम में 'दई' के स्थान पर पाठ 'कई' है। 'कई' 'की' के अर्थ में कहीं भी ग्रंथ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। और यहाँ पर ढीठ्यों [ढीठेउँ]='धृष्टता की' के साथ उसका प्रयोग निरर्थक भी होगा। 'दई'= 'दैव !' प्रसंगानुकूल है, यथा :

आइ दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फल अनइस पावा। ३-१६३-६

इसलिए 'दई' पाठ ही समीचीन ज्ञात होता है।

(६०) १-३२९-५ : 'छ रस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भांती।' कोदवराम में 'भांती' के स्थान पर 'जाती' और 'जाती' के स्थान पर 'भांती' है। 'बिंजन' में तो 'भांती' और 'जाती' दोनों पाठों की संगति लग सकती है, किंतु 'एक एक रस' में अगणित 'जाति' हो, यह ठीक नहीं माना जा सकता; 'एक-एक रस' के साथ 'अगनित भांती' पाठ ही मान्य प्रतीत होता है।

(६१) १-३५०-८ : 'मूक बदन जनु सारद छाई। मानहु समर सूर जय पाई।' कोदवराम में 'जनु' के स्थान पर पाठ 'जस' है। कई चरण पूर्व से ही 'जनु' का प्रयोग उत्प्रेक्षामाला में होता चला आ रहा है, और अगले चरण में भी उत्प्रेक्षा का वाचक 'मानहु' प्रयुक्त हुआ है, इसलिए प्रस्तुत उक्ति में भी 'जनु' पाठ ही मान्य प्रतीत होता है। उदाहरण का वाचक 'जस' नहीं।

(६२) १-३५२-४ : 'आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस सकल मन तोषे।' कोदवराम में 'सकल'के स्थान पर पाठ 'चले' है। 'चले' शब्द स्थान-सापेक्ष है—किसी निर्दिष्ट स्थान की ओर जाना ही चलना कहा जाता है। किंतु प्रसंग में किसी स्थान विशेष की ओर जाने का निर्देश नहीं है, इसलिए 'चले' पाठ ठीक नहीं है। 'सकल'

की संगति प्रकट है—अर्थ है 'आदर, दान, और प्रेम से परिपुष्ट सभी [ब्राह्मण] मन से संतुष्ट होकर आशीर्वाद दे रहे थे।'

(६३) १-३५८-४ : 'सुंदर बधूं सासु लै सोईं।' कोदवराम में सुंदर 'बधूं' के स्थान पर 'सुंदरि बधुन्ह' पाठ है। 'बंधुओं को' के अर्थ में कर्मकारक बहुवचन में 'बधुन्ह' का प्रयोग ग्रंथ भर में नहीं हुआ है, 'बधूं' का ही हुआ है :

'बधूं' सप्रेम गोद बैठारीं। बार बार हिय हरषि दुलारीं। १-३५४-४
बिप्र बधूं सब भूप बोलाईं। चैल चारु भूषन पहिराईं। १-३५३-४

इसलिए 'बधुन्ह' पाठ मान्य नहीं लगता, मान्य 'बधूं' ही लगता है। 'सुंदर' और 'सुंदरि' में से दोनों प्रयोगसम्मत लगते हैं, यथा :

जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि। १-१८२
मयतनया मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा। १-१७८-२

(६४) १-३५९-८ : 'सुनि आनंदु भएउ सब काहू। राम लखन उर अतिहि उछाहू।' कोदवराम में 'अतिहि' के स्थान पर पाठ 'अधिक' है। 'अधिक' आगे के दोहे में ही इस प्रकार पुनः आता है:

मंगल मोद उछाहु नित जाहिं दिवस येहि भाँति।
उमगी अवधि अनंदभरि अधिक अधिक अधिकाति॥

इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है। अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है।

१६६१ तथा १७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

सं० १६६१ तथा १७०४ की प्रतियों के अस्वीकृत पाठ कुछ अपवादों को छोड़ कर एक ही हैं, इसलिए यथासंभव उन पर सम्मिलित रूप से विचार किया गया है। १७६२, १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास, तथा कोदवराम के जो अस्वीकृत पाठ ऊपर गिनाए गए हैं, उनमें से कुछ इनमें भी पाए जाते हैं। उनके अतिरिक्त जो अस्वीकृत पाठ १६६१ तथा १७०४ दोनों में पाए जाते हैं; उन्हीं पर नीचे विचार किया जायेगा।

(१) १-६-८ : 'कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मालव महि-

देव गवासा।' १६६१/१७०४ में 'मालव' के स्थान पर 'मारव' मिलता है। इस प्रसंग में भले और पोच विधाता की सृष्टि में किस प्रकार साथ-साथ मिलते हैं, यह दिखलाया गया है। इससे प्रकट है कि 'मरु' का विरोधी ही यहाँ पर होना चाहिए। 'मारव' 'मरु' शब्द से बना है, और उसका अर्थ होगा 'मरु से उत्पन्न', जो कि इस प्रसंग में असंगत होगा। मालवा मरु प्रदेश में अपने उपजाऊपन के लिए प्रसिद्ध है। इसलिए 'मालव' पाठ ही समीचीन ज्ञात होता है।

(२) १-१-१७ 'सिर धुनि गिरा लगति पछिताना।' १६६१/१७०४ में 'लगति' के स्थान पर पाठ 'लगत' है। 'गिरा' ग्रंथ भर में स्त्रीलिंग है, इसलिए उसके लिए स्त्रीलिंग वाची क्रिया भी 'लगति' ही समीचीन है।

(३) १-२२-३ : जानी चहहिं गूढ़ गति तेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ। १६६१/१७०४ में 'जानहिं' के स्थान पर 'जानहुं' पाठ है। ऊपर ही 'जागहिं' 'अनुभवहिं' तथा नीचे 'होहिं' और 'मिटहिं' आदि सामान्य वर्त्तमान के रूप आए हैं :

नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा।
साधक नाम जपहिं लै लाएं। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएं॥

इसलिए बीच में भी सामान्य वर्त्तमान का रूप 'जानहिं' ही मान्य प्रतीत होता है, इच्छावाची 'जानहुँ' नहीं।

(४) १-२६-२ : 'सुक सनकादि साधु मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।' 'साधु' के स्थान पर १६६१/१७०४ में पाठ है 'सिद्ध'। 'सुकसनकादि' को ग्रंथ में कहीं पर भी 'सिद्ध' नहीं कहा गया है। 'भगत' वे अवश्य कहे गए हैं, यथा :

'सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिबर बिग्यान बिसारद। १-१८-५

'साधु' शब्द 'सिद्ध' की अपेक्षा 'भगत' के अधिक निकट लगता है।

(५) १-३७-१४ : 'सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरिपद रति रस बेद बखाना।' 'रतिरस' के स्थान पर १६०१/१७०४ में पाठ

है 'रसबर'। 'रस' अप्रस्तुत है। वह 'हरिपद' का उपमान हो यह असंभव है; वह 'हरि पद रति' का ही उपमान हो सकता है, इसलिए पहला ही पाठ बुद्धि-सम्मत है।

*(६) १-४६-६ : 'मृग वधि बंधु सहित प्रभु आए।' १६६१/१७०४ में 'प्रभु' के स्थान पाठ 'हरि' है। 'प्रभु' पूर्ववर्ती अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति है। दूसरा इससे मुक्त है।

(७) १-५०-६ : 'संकर जगत बंद्य जगदीसा। सुरनर मुनि सब नावहिं सीसा।' 'नावहिं' के स्थान पर १६६१/१७०४ में पाठ है 'नावत'। 'सीस', 'सिर' तथा 'माथा' के साथ 'नमस्कार करते हैं' के अर्थ में ग्रंथ में सामान्य वर्त्तमान का 'नावहिं' रूप ही मिलता है, 'नावत' नहीं, यथा :

मातु पिता गुर नावहिं माथा। १-२०५-७

भए परसपर प्रेम बस फिरि फिरि नावहिं सीस। १-३४२

आइ राम पद नावहिं माथा। ४-२२-२

तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा। समय दिसिप सब नावहि माथा। ६-१०४-११

इसलिए यहाँ 'नावहिं' ही प्रयोगसम्मत है, 'नावत' नहीं।

(८) १-५२-४ : 'चली सती सिव आयसु पाई। करइ बिचारु करौं का भाई।' १६६१/१७०४ में 'करइ' के स्थान पर पाठ है 'करहि'। 'करहि' ग्रंथ भर में विधि के रूप में प्रयुक्त है, और यहाँ पर विधि का कोई प्रसंग नहीं है, इसलिए 'करइ' पाठ ही समीचीन है। यदि यह कहा जावे कि पाठ 'करहिं' रहा होगा, और 'हिं' का अनुस्वार भूल से रह गया, तो यह देखा जा सकता है कि प्रसंग में सती के लिए एक वचन क्रियाएँ ही आता हैं, यथा:

सती दीख कौतुक मग जाता। १-५६-४

फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। १-५६-५

कहइ न निज अपराध बिचारी। १-६१-७

(९) १-५६ : 'परम प्रेम तजि जाइ नहिं किए प्रेम बड़ पापु। प्रगटि न कहत महेस कछु हृदय अधिक संतापु।'

१६६१/१७०४ में पहले चरण का पाठ है 'परम पुनीत न जाइ तजि'। प्रसंग यहाँ पर 'भक्ति'='दिव्य प्रेम' और 'प्रीति'='लौकिक प्रेम' के तुलनात्मक महत्व का है। सीता शिव की भक्ति का आलंबन थीं, और उन्हीं का वेष सती ने धारण किया था, फलतः अब यदि सती से वह प्रेम करते हैं, तो सीता के प्रति जो उनकी भक्ति थी, उसका निर्वाह नहीं होता है, और इस भक्ति को भी वह छोड़ नहीं सकते। इसीलिए वह अपने मन में कहते हैं :

जौं अब करौं सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती। १-५६-८

और इसी के सिलसिले में—विवेचनीय दोहे में—वह कहते हैं : 'परम प्रेम रूपा भक्ति ("सा परम प्रेम रूपा"—'भक्ति सूत्र') छोड़ी नहीं जा सकती, और सती से प्रेम करने पर बड़ा भारी पाप लगता है······।' ऐसा ज्ञात होता है कि 'प्रेम' की जो बाद में आता था—पुनरुक्ति बचाने के लिए पाठ-परिवर्तन कर दिया गया, किंतु 'परम पुनीत' से 'भक्ति' का आशय लेना कष्ट-कल्पना ही होगी, विशेष रूप से जबकि 'तजि' का कर्म कोई संज्ञा होनी चाहिए, और 'पुनीत' केवल विशेषण है। फलतः 'परम प्रेम' पाठ ही मान्य लगता है।

(१०) १-५७: 'जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि। बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत ही।' १६६१/१७०४ में 'ही' के स्थान पर 'पुनि' पाठ है। 'पुनि'='उसके अनंतर' की कोई आवश्यकता यहाँ नहीं है, और 'ही' से तत्काल जल के विलग होने की भावना प्रकट होती है, जो प्रसंग के लिए आवश्यक है। इसलिए 'ही' पाठ ही मान्य प्रतीत होता है।

(११) १-६६-८ : 'निज सौभाग्य बहुत बिधि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना।' 'बिधि' के स्थान पर १६६१/१७०४ में 'गिरि' पाठ मिलता है। 'गिरि' की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि 'शैलराज' कर्त्ता ऊपर आ चुका है (१-६६-६); दूसरी ओर 'बहुत बरना' का प्रयोग ग्रंथ भर में कहीं नहीं मिलता, प्रयोगसम्मत 'बहुत बिधि बरना' ही है।' यथा:

सो मैं बरनि कहौं बिधि केही। २-१३६-७
सो मैं कहौं कवन बिधि बरनी। १-३५६-६
रघुपति महिमा बहु बिधि बरनी। ४-२७-११
रामकथा मुनि बहु बिधि बरनी। ७-३२-८

(१२) १-७४-६ : 'बेल पाति महि गिरइ सुखाई। तीनि सहस संबत सो खाई।' १६६१/१७०४ में 'बेल पाति' के स्थान पर 'बेल बाति' है। दूसरे पाठ का कोई अर्थ नहीं है, और पहले की सार्थकता प्रकट है। इसलिए पहले को ही समीचीन मानना होगा।

(१३) १-७८-४: 'कोहि अवराधहु का तुम चहहू। हम सन सत्यमरमु [सब कहहू। सुनत रिषिन्ह के बचेन भवानी। बोली गूढ़ मनोहर बानी। कहत मरमु] मन अति सकुचाई। हंसिहहु सुनि हमारि जड़ताई।' कोष्ठकों के अंदर का अंश दोनों प्रतियों में छूट गया है। अशुद्धि स्पष्ट है।

(१४) १-८३-८ : 'अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अस हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झखकेतू।' १६६१/१७०४ में 'अस' के स्थान पर 'अति' है। ऊपर वाले चरण में ही 'अति' आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। इसके अतिरिक्त 'अस' अधिक प्रसंगोचित्त भी है। 'अस्तुति सुरन्ह कीन्ह असहेतू' का अर्थ यह है कि 'इस प्रकार के देवहित के कार्य के लिए ही देवताओं ने काम की स्तुति की।' क्योंकि बिधि ने ऊपर की ही अर्द्धाली में कहा था—

येहि बिधि भलेहि देव हित होई। मत अति नीक कहइ सब कोई। १-७१-६

इसलिए 'अस' पाठ ही समीचीन है।

(१५) १-९५-२: 'करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना।' १६६१/१७०४ में 'सजि' के स्थान पर 'सब' पाठ है। दूसरे पाठ से 'बाहन नाना' कर्म की क्रिया नहीं रह जाती, और 'बाहन नाना' को 'चले' का कर्त्ता माना नहीं जा सकता, क्योंकि 'नाना बाहन सादर अगवाना लेन चले' में असंगति स्पष्ट है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(१६) १-१०१ : 'नाथ उमा मम प्रान प्रिय गृह किंकरी करेहु।'

१६६१/१७०४ में 'प्रिय' के स्थान पर 'सम' है। 'प्रिय' के स्थान पर 'सम' होने से प्रेम की व्यंजना में बल कम हो जाता है, और उसके बल के कम होने का प्रसंग में कोई औचित्य नहीं है, इसलिए 'प्रिय' पाठ ही ठीक लगता है।

(१७) १-१२०-३ : 'नाथ कृपाँ मम गएउ बिषादा। सुखी भइउं प्रभु चरन प्रसादा।'. १६६१/१७०४ में 'भइउं' के स्थान पर 'भएउं' पाठ है। पार्वती वक्ता के लिए स्त्रीलिंग क्रिया 'भइउं' ही ठीक है, पुल्लिंग 'भएउं' नहीं।

×(१८) १-१६८-३ : 'अवसि काज मैं करिहौं तोरा। मन क्रम बचन भगत तैं मोरा।' १६६१/१७०४ में 'क्रम' के स्थान पर पाई 'तन' है। दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं, और प्राय: एक ही अर्थ में भी प्रयुक्त हुए हैं, यथा :

मन क्रम बचन अगोचर जोई। १-२०३-५
मन क्रम बचन रामपद नेहू। २-६३-६
मन क्रम बचन राम अनुरागी। २-११०-८
करम बचन मन राउर चेरा। २-१३१-८
मन तन बचन तजे तृन तूरीं। २-३२४-५
तन मन बचनु मोर पनु साचा। १-२५६-४

(१९) १-१८६ : 'जो भवभय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा।' १६६१/१७०४ में 'गंजन' के स्थान पर पाठ 'खंडन' है। राम की स्तुति की जा रही है। 'गंजन' का अर्थ होता है 'नष्ट करना', और 'खंडन' का अर्थ होता है 'तोड़ना'। राम 'बिपति बरूथ' को केवल 'तोड़ते' हैं, (आमूल उसे नष्ट नहीं कर देते), यह उक्ति मान्य नहीं हो सकती। इसलिए पहला ही पाठ युक्ति-संगत लगता है।

(२०) १-१९४ : 'गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटेउ प्रभु सुखकंद। हरषवंत सब जहं तहं नगर नारि नर बृंद।' १६६१/१७०४ में 'प्रभु' छूटा हुआ है। भूल स्पष्ट है। १६६१ में संशोधन में 'सुष' को 'सुषमा' कर दिया गया है। 'बधावा बजने' और 'हरषवंत

होने' के साथ संगति 'सुषकंद' = 'सुखमूल' को ही है, 'सुषमाकंद' = 'सुंदरता के मूल' की नहीं।

(२१) १-२१०-५ : 'पावक सर सुबाहु पुनि जारा। १६६१/१७०४ में 'जारा' के स्थान पर पाठ 'मारा' है।' 'पावकसर' के साथ 'जारा' पाठ 'मारा' की अपेक्षा अधिक संगत तो है ही, 'मारा' ऊपर वाली अर्द्धाली में—और इसी प्रकार तुक के रूप में—आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति भी है।

(२२) १-२२३-१ : 'सोभासींव सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजात सरीरा।' १६६१/१७०४ में 'जलजात' के स्थान पर पाठ 'जलजाभ' है। 'जलज' में 'आभा' अन्यत्र कहीं नहीं कही गई है, और वस्तुतः होती भी नहीं है, इसलिए 'जलजाभ' पाठ ठीक नहीं लगता है। 'जलजात सरीरा' की रूपकातिशयोक्ति संगत ही है।

(२३) १-२५५-७ : 'चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी। बंदि पितर सुर सुकृत संभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे।' १६६१/१७०४ में ऊपर की दूसरी अर्द्धाली के 'सुर' के स्थान पर पाठ 'सब' हैं। 'सब' ऊपर वाली पहली ही अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए 'सब' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है, और 'सब' या 'कम'—अर्थात् परिमाण का कोई प्रसंग भी नहीं है। 'सुर' प्रसंग में भली भाँति निभ जाता है, और उसमें 'सब' पाठ की भाँति कोई त्रुटि भी नहीं है।

(२४) १-२५६-५ : 'भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जाति न जानी।' १६६१/१७०४ में 'कछु' के स्थान पर पाठ 'कहि' हैं। 'कछु' की संगति प्रकट है। 'कहि जात' = 'कही जाती है' की कोई संगति नहीं है, क्योंकि 'बिधि गति' की व्याख्या करने का कोई अवसर नहीं है।

(२५) १-२७१-२ : 'का छति लाभु जून धनु तोरे। देखा राम नए के भोरे।' १६६१/१७०४ में 'नए' के स्थान पर पाठ 'नयन' हैं। 'जूनु' धनुष को भूल से 'नया' समझ कर ही तो तोड़ा, अन्यथा 'पुराना' धनुष तोड़ने से उन्हें क्या लाभ-हानि हो सकती थी?'

इस पूर्वापर प्रसंग में 'नए' की संगति प्रकट है। 'नयन' पाठ अर्थ-हीन लगता है : 'नयन के मोरे' आखिर क्या देखा ?

*(२६) १-२७४ : 'सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।' विद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहिं प्रलापु। १६६१/१७०४ में 'करहिं प्रलापु' के स्थान पर पाठ 'कथहिं प्रतापु' है। 'कथहिं प्रतापु' 'करहिं प्रलापु' की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त और प्रासंगिक लगता है, क्योंकि सूरों के संबंध में दोहे के प्रथम चरण में इसी का निषेध किया गया है : 'कहि न जनावहिं आपु।'

(२७) १-२८५-६: 'अनुचित बहुत कहेउं अज्ञाता। छमहु छमा-मंदिर दोउ भ्राता।' १६६१/१०४ में 'बहुत' के स्थान पर पाठ 'बचन' है। जिस प्रकार के वाक्य पूरे प्रसंग में परशुराम के द्वारा कहलाए गए हैं, उनके विषय में पश्चात्ताप और क्षमायाचना करते हुए 'बहुत' पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है, यद्यपि 'बचन' पाठ से भी अर्थ लग जाता है।

(२८) १-३०५-१ : 'कनक कलस कल कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा। भरे सुधासम सब पकवाने। भांति भांति नहिं जाहिं बखाने।' १६६१/१७०३ में 'कल' के स्थान पर पाठ 'भरि' है। 'भरि' पाठ मानने पर, केवल एक 'कोपर थारा' का निर्देश कर 'भाजन ललित अनेक प्रकारा' कहना उतना युक्तिसंगत नहीं लगता, जितना 'कनक कलस' और 'कोपर थारा' कहने के अनंतर लगता है। फिर, पकवान ही तो इन दोनों तथा शेष अनेक प्रकार के भाजनों में भरे गए थे, इसलिए कनक कलसों के लिए स्वतंत्र क्रिया के रूप में 'भरि' अनावश्यक है।

(२९) १-३१२-८ : 'ग्रह तिथि नखतु जोगु बरबारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू। पठै दीन्हि नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई। सुनी सकल लोगन्ह एह बाता। कहहिं जोतिषी अपर बिधाता।' १६६१/१७०४ में अंतिम चरण में आए हुए 'अपर' के स्थान पर 'आहि' पाठ है। 'ऊपर' पाठ से अंतिम चरण का आशय होगा, वे कहने लगे कि ज्योतिषियों को भी दूसरा बिधाता

ही समझना चाहिए।' ऊपर वाली अर्द्धाली में आए हुए 'गनी जनक के गनकन्ह जोई' के साथ फलतः इस पाठ की संगति स्पष्ट है। किंतु, 'आहि' पाठ के अनुसार 'ब्रह्मा ही ज्योतिषी है' अर्थ मान लेने पर 'गनी जनक के गनकन्ह जोई' नितांत महत्वहीन और असंगत हो जाता है। यह भी नहीं माना जा सकता कि पाठ 'आहिं' था, जिसका अनुस्वार गिर गया है, क्योंकि 'ज्योतिषी गण ब्रह्मा हैं', यह कथन अत्युक्ति की सीमा का भी अतिक्रमण कर जाएगा।

(३०) १-३२२-६ : 'बिन पहिचान प्रानतें प्यारी।' १६६१/१७०४ में 'प्रान' के स्थान पर 'प्रानहु' पाठ है। 'हु' से एक मात्रा अधिक हो जाती है, और छंद की गति बिगड़ जाती है, यद्यपि अर्थ में कोई विशेषता नहीं आती, इसलिए 'प्रान' पाठ ही समीचीन जान पड़ता है।

× (३१) १-३२३ : 'मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महं चहैं। भरे कनक कोपर कलस सो तब लिए परिचारक रहैं।' १६६१/१७०४ में 'लिए' के स्थान पर 'लिएहि' पाठ है। 'हि' = 'ही' यद्यपि प्रसंग में आवश्यक नहीं है, किंतु उसमें खप जाता है। इसलिए दोनों पाठ प्रायः एक से हैं।

(३२) १-३२५-२,३ : 'जाइ न बरनि मनोहर जोरी।' जो उपमा कछु कहौं सो थोरी। राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं। मनहु मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिबाहु अनूपा। दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी।' १६६१/१७०४ में पहली दो अर्द्धालियाँ छूट गई हैं। उक्त दोनों पंक्तियों के न रहने से तीसरी और चौथी पंक्तियों की अप्रस्तुतोक्ति की कोई संगति नहीं रह जाती। कहा गया है कि यह उक्ति दर्शकों के संबंध में की गई है, किंतु अगली ही अर्द्धाली में उनके संबंध में कहा गया है :

भए मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे।

दोनों कथन परस्पर कहाँ तक संगत हैं? क्या जनक भी इन दर्शकों की भाँति 'दरस लालचा सकुच न थोरी' 'बहोरि बहोरी' प्रकट

होते और दुरते थे ? फलतः प्रसंग में उक्त प्रथम दो अर्द्धालियों की अनिवार्यता प्रकट है।

(३३) १-३२५ : 'जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै। सो जनक दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै।' १६६१/१७०४ में 'जनक' के स्थान पर 'तनय' पाठ है। 'तनय' का अर्थ 'पुत्री' ग्रंथ भर में कहीं नहीं है, और उसके साधारण अर्थ 'पुत्र' की कोई संगति यहाँ नहीं है। दूसरी ओर, 'जनक' ही 'ब्याहि दीन्ही' क्रिया के कर्त्ता हैं, इसलिए 'जनक' पाठ की समीचीनता प्रकट है।

(३४) १-३२६ : 'ये दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुनामई। अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यों दई।' १६६१/१७०४ में 'करुनामई' के स्थान पर 'करुनानई' पाठ है। 'करुनानई' = 'नई करुणा' प्रसंग में अर्थहीन है।

(३५) १-३३२-१ : 'जनक सनेहु सीलु करतूती। नृप सब राति सराह बिभूती। दिन उठि बिदा अवधपति मांगा। राखहिं जनकु सहित अनुरागा।' १६६१/१७०४ में 'राति' के स्थान पर पाठ है 'भाँति'। 'दिन उठि बिदा अवधपति मांगा' के साथ 'सब राति सराह बिभूती' की संगति प्रकट है। दूसरी ओर 'सब भांति' और 'बिभूती' में अनावश्यक पुनरुक्ति दिखाई पड़ती है।

(३६) १-३४१ : 'सबुइ सुलभ जग जीव कहं भए ईस अनुकूल। १६६१/१७०४ में 'सबुइ सुलभ' के स्थान पर पाठ है 'सबइ लाभ'। यद्यपि अर्थ में दोनों प्रायः एक हैं, किंतु दूसरा पाठ अन्यत्र नहीं मिलता, पहला ही मिलता है, यथा :

बंदौं बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू। १-११२-३

इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(३७) १-३४२-८ : 'बिनती बहुत भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्ही।' १६६१/१७०४ में 'बहुत' के स्थान पर पाठ 'बहुरि' है, और 'कीन्हीं', 'दीन्ही' के स्थान पर 'कीन्हा', 'दीन्हा'

है। इसके ठीक पूर्व जनक की प्रशंसा से परितुष्ट होकर राम ने जनक से 'विनय' की है :

करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने।

'बहुरि' पाठ से यह भ्रम हो सकता है कि राम ने ही भरत से बिनती की, जो वस्तुस्थिति से नितांत भिन्न है। बिनती जनक ने भरत से की है। समानार्थी 'पुनि' बाद में आता ही है, इसलिए भी 'बहुरि' की असंगति प्रकट है। 'बहुत' पाठ प्रासंगिक है, और उसमें इस प्रकार की कोई त्रुटि नहीं है। पुनः ग्रंथ भर में 'बिनती' और 'आसिष' स्त्रीलिंग के रूप में व्यवहृत हुए हैं, यथा :

पतिहि सौंपि बिनती अति कीन्ही। १-३३६-
आसिष दीन्हि सखी हरषानी। १-२६
हरषित आसिष दीन्हि मुनीसा। ७-११
चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। ४-२०-१
आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। ५-१७-२
तिन्ह लहि सुख सिय आसिष दीन्ही। २-२५२-४

इसलिए उनकी सकर्मक क्रियाएँ 'कीन्ही', 'दीन्ही' स्त्रीलिंग की ही समीचीन हैं, 'कीन्हा', 'दीन्हा' पुल्लिंग की नहीं।

(३८) १-३५६-२ : 'जटित कनकमय पलंग डसाए।' 'जटित' के स्थान पर १६६१/१७०४ में पाठ है 'जरित'। 'जटित' मूल तथा रूप दोनों के अनुसार तत्सम है, और 'जरित' केवल रूप में तत्सम है, मूल में तद्भव है, इसलिए पहला अधिक समीचीन लगता है।

कुछ पाठांतर ऐसे हैं जो १६६१ में हैं किंतु १७०४ में इसलिए नहीं मिलते कि उसमें उनके पन्ने बदले हुए हैं। असंभव नहीं कि यह पाठांतर १७०४ में भी मिलते यदि पन्ने बदले हुए न होते, यद्यपि यह नितांत निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। नीचे इन पर विचार किया जाएगा।

(३९) १-८२-६ : 'तेहिं सब लोक लोकपति जीते।' १६६१ में, 'तेहिं' के स्थान पर पाठ 'तेइ' है। प्रसंग से यह प्रकट है कि विवेचनीय शब्द से आशय 'उसने' का निकलना चाहिए, किंतु 'तेइ'

का प्रयोग ग्रंथ भर में 'वे' या 'वे ही' के अर्थ में हुआ है, और 'उसने' के अर्थ में 'तेहिं' का ही हुआ है, यथा:

तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। १-८३-३
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। १-२२८-८
बंस सुभाउ उतरु तेहिं दीन्हा। १-२८२-२

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है, दूसरा नहीं।

(४०) १-२३५-६ : 'सादर सिय प्रसाद सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु हिय भरेऊ।' १६६१ में 'भरेऊ' के स्थान पर 'भएऊ' पाठ है। दूसरे पाठ से उक्ति में शिथिलता आ जाती है—'हर्ष' तो 'हिय' में होता ही है। और तुक भी बिगड़ जाता है—'धरेऊ' और 'भरेऊ' में जितना अच्छा तुक है, उतना अच्छा 'धरेऊ' और 'भएऊ' में नहीं है।

(४१) १-२३७ : 'मनु जाहिं राचो मिलिहिं सो बरु सहज सुंदर सांवरो। करुनानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो।' १६६१ में 'सांवरो-रावरो' के स्थान पर 'सांवरे-रावरे' मिलता है। 'जाहि', 'सो' और 'मिलिहि' के एकवचन से यह प्रकट है कि संबंधित संज्ञा तथा उसके विशेषण को एकवचन होना चाहिए, बहुवचन नहीं। फलतः 'सांवरो' पाठ सिद्ध है, और उसके तुक में 'रावरो' पाठ ही ठीक होगा।

(४२) १-२५० : 'तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठै न चलहिं लजाइ। मनहु पाइ भट बाहुबल अधिकु अधिकु गरुआइ।' १६६१ में 'उठै न' के स्थान पर 'उठे न' पाठ है। दोहे के तीसरे और चौथे चरणों में आई हुई उक्ति धनुष के न उठने के विषय में है, उसके न उठने पर राजाओं के लज्जित होकर वापस जाने के विषय में नहीं, यह स्पष्ट है। इसलिए, 'धनुष नहीं उठता' इस आशय का एक मुख्य वाक्य होना चाहिए, और वह केवल 'उठै न' पाठ से संभव है, इसलिए 'उठै न' पाठ ही समीचीन है।

(४३) १-२५४-१ : 'लखन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले।' १६६१ में 'जब' के स्थान पर 'जे' पाठ है। दूसरे चरण में लुप्त 'तब' से प्रकट है कि पहले चरण में 'जब' कहीं न

कहीं आना चाहिए। फलतः 'जब' पाठ ही मान्य लगता है, 'जे' पाठ असंगत लगता है।

(४४) १-२५६-७ : 'प्रभु तन चितै प्रेम पन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना।' १६६१ में 'पन' के स्थान पर भी 'तन' है। 'तन' तो दो शब्द पूर्व आ ही चुका है, और यहाँ पर वह अर्थहीन भी है। दूसरी ओर, 'पन' शब्द प्रसंग से आवश्यक ज्ञात होता है, क्योंकि अन्यथा राम के जानने की उसमें बात ही क्या थी ?

(४५) १-२६७ : 'अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप। मनहुं मत्त गज गन निरखि सिंह किसोरहि चोप।' १६६१ में 'किसोरहि' के स्थान पर 'किसोरहुं' पाठ है। 'किसोरहि' का अर्थ 'किसोर को' और 'किसोरहुं' का 'किसोर भी' होता है। पहले पाठ का आशय स्पष्ट है –'जिस प्रकार मत्त गजों को देख कर सिंह के किशोर को क्षोभ होता है।' दूसरा पाठ--'सिंह किशोर भी क्षोभ होता है' निरर्थक है।

(४६) १-२७५-६ : 'कर कुठारु मैं अकरुन कोही।' १६६१ में 'कर' के स्थान पर 'खर' पाठ मिलता है। 'खर' पाठ से 'कुठार' की स्थिति कहाँ है, अथवा वह किसका कुठार है, इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता, और प्रसंग में ही 'करकुठार' का प्रयोग अन्यत्र भी मिलता है, 'खर कुठार' का नहीं, यथा :

कटि मुनि बसन तून दुइ बांधे। धनु सर कर कुठार कल कांधे। १-२६७-४

इसलिए 'कर' पाठ 'खर' की अपेक्षा अधिक प्रासंगिक और प्रयोग-सम्मत प्रतीत होता है।

(४७) १-२८१-६ : 'टेढ़ जानि संका सब काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू।' १६६१ में 'संका सब' के स्थान पर 'सब बंदे' पाठ है। दूसरे चरण में जो उक्ति आई है, उससे 'सब बंदे' या 'बंदै सब' की संगति नहीं मिलती। कहा यह गया है कि 'बक्र चंद्रमा को [डर के मारे] राहु भी नहीं ग्रसता', न कि 'वक्र चंद्रमा की वंदना राहु भी करता है।' इसलिए 'संका सब' पाठ ही संगत लगता है।

(४८) १-२८१ : 'प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर

रोसु। बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहूं नहिं दोसु।' १६६१ में 'बालकहूं' के स्थान पर 'बालक' पाठ है। चौथे चरण में 'बालक' पाठ से दो मात्रा कम हो जाती हैं, और छंद की गति बिगड़ जाती है; साथ ही आगे आनेवाली पंक्तियों में लक्ष्मण के रुख का जो औचित्य प्रतिपादित किया गया है, उसकी नींव डालने के लिए 'बालक हूं नहिं दोस'--'बालक का भी कोई दोष नहीं है'--पाठ आवश्यक है, इसलिए 'बालकहूं' पाठ ही समीचीन लगता है।

(४६) १-२८३-४ : 'समिध सेन चतुरंग सुहाई।' महा महीप भए पसु आई। मैं येहि परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जग कोटिन्ह कीन्हे।' १६६१ में 'जग' के स्थान पर 'जप' पाठ है। जिस 'समर जग्य' का वर्णन उपर्युक्त पंक्तियों में किया गया है, 'जप' उसके प्रसंग में नितांत असंगत है, 'जग' ही संगत लगता है।

(५०) १-२८६-७ : 'जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लाग भुवन दस चारी।' १६६१ में 'लाग' के स्थान पाठ 'लगत' है। 'निहारी' = 'देखा' क्रिया के साथ 'लाग' = 'लगा' पाठ ही समीचीन लगता है, 'लगत' = 'लगता था' नहीं।

इसी प्रकार का एक अस्वीकृत पाठ १७०४ में भी है, जो १६६१ में कदाचित् पत्रा बदला हुआ होने के कारण नहीं मिलता। यह निम्नलिखित है :

(५१ क) १-४-१ : 'जे बिनु काज दाहिनेहु बाएं।' १७०४ में 'दाहिनेहु' के स्थान पर पाठ 'दाहिनहु' है। 'बाएं' की तुलना में 'दाहिनेहु' जितना ठीक लगता है, 'दाहिनहु' उतना नहीं।

कुछ ऐसे पाठांतर हैं जो १६६१ में तो मिलते हैं, किंतु १७०४ के पुराने पत्रों में नहीं मिलते, और अस्वीकृत किए गए हैं। इन पर नीचे विचार किया जाता है।

× (५२ क) १-२२ : 'नाम पेम पीयूष ह्रद तिन्हहु' किए मन मीन। 'पेम' से स्थान पर १६६१ में पाठ है 'सुप्रेम'। दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं। 'पेम' और 'प्रेम' दोनों के प्रयोग ग्रंथ में मिलते

हैं[1] और 'पेम' के रूप जिस प्रकार मिलते हैं, उसी प्रकार कभी-कभी 'सुप्रेम' के रूप भी मिलते हैं, यथा :

राम सुप्रेमहि पोषत पानी। १-४३ ३

× (५३ क) १-१२६ : गहेसि जाइ मुनि चरन कहि सुठि आरत मृदु बैन।' 'कहि सुठि आरत मृदु बैन' के स्थान पर १६६१ में पाठ है 'तब कहि सुठि आरत बैन।' दोनों पाठ प्रसगसम्मत हैं।

(५४ क) १-३१६-२ : 'ब्याह बिभूषन बिबिध बनाए। मंगल-मय सब भांति सुहाए।' 'मय' के स्थान पर भी १६६१ में पाठ 'सब' है। 'सब' तो बाद में आता ही है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। दूसरे, यहाँ पर वर्ण्य 'मंगल' = 'मंगल की सामग्री' नहीं, वरन् राम का दूलह वेष है। इसलिए भी 'मंगलमय' पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है।

(५५ क) १-३१६-४ : 'बेद बिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू।' १६६१ में 'आचारू' के स्थान पर भी 'ब्यवहारू' पाठ है। पहले पाठ में कोई अशुद्धि या असंगति नहीं है, इसलिए पुनरुक्ति पूर्ण पाठ को ठीक मानने का कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता।

(५६ क) १-३२७ छं० : 'निज पानि मनि महुं देखि प्रतिमूरति सुरूप निधान की। चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी।' १६६१ में 'देखि प्रतिमूरति' के स्थान पर 'देखियति मूरति'। 'पाणि मणि' में 'मूर्ति' नहीं 'प्रतिमूर्ति' ही देखी जा सकती है। दूसरे, ग्रंथ भर में 'देखियत' आत्मवाची क्रिया 'देखता है' के अर्थ में नहीं, वरन् अनात्मवाची क्रिया 'देखा जाता है' के अर्थ में प्रयुक्त है, यथा :

देखिअत चक्रवाक खग नाहीं। ४-१५-६

देखिअत प्रगट गगन अंगारा। ५-१२-८

बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे। ६-८१-८

और उसके अनुसार 'देखियति' का अर्थ होगा 'देखी जाती

१—देखिए ऊपर रघुनाथदास का अस्वीकृत पाठ-विवेचन, इसी स्थल पर।

है', जो आत्मवाची सर्वनाम 'निज' के साथ असंगत है। इसलिए 'देखि प्रतिमूरति' पाठ ही समीचीन है।

(५७ क) १-३३७-३ : 'राम बिदा मांगा कर जोरी। कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी। १६६१ में 'मांगा' के स्थान पर पाठ 'मांगत' है। बिदा मांगने का उल्लेख इसके पूर्व या तो हुआ ही नहीं है, और या तो बहुत पहिले हुआ है। (१-३३६-५,६) यदि यह मान लिया जावे कि यहाँ उसी बिदा मांगने का उल्लेख पुनः हुआ है, तो उसके और इसके बीच में कुछ अन्य बातों के भी उल्लेख आते हैं, यथा :

सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू।
हृदय लगाइ कुंअरि सब लीन्हीं। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्हीं।

इसलिए विवेचनीय पंक्ति में उस पहिले की बिदा मांगने की बात के संबंध में कुछ कहा गया हो, यह कम संभव प्रतीत होता है, और उस दशा में भी यही उचित होगा कि चलने के पूर्व राम पुनः बिदा मांगें। फलतः बिदा माँगने का उल्लेख यहाँ पर स्वतंत्र रीति से होना आवश्यक है, और इसलिए पाठ 'मांगा' ही समीचीन होगा।

(५८ क) १-३४२-२ : 'होहिं सहस दस सारद सेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा। मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा।' १६६१ में 'करहिं' के स्थान पर 'करिहिं' पाठ है। पूर्व में आने वाले 'होहिं' और बाद में आने वाले 'सिराहिं' के साथ 'करहिं' पाठ ठीक है, और 'करिहिं' नहीं, यह प्रकट है।

(५६ क) १-३४५-३ : 'जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृह आए।' १६६१ में 'आए' के स्थान पर 'वाए' पाठ है। 'वाए' की निरर्थकता और 'आए' की सार्थकता स्पष्ट है।

सं० १७०४ में—उसके पुराने पत्रों में—भी इसी प्रकार कुछ पाठांतर ऐसे हैं जो १६६१ में नहीं है, और जो अस्वीकृत किए गए हैं। नीचे इन पर विचार किया जाता है।

(५२ च) १-१२-४ : 'जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस मराला। तिन्ह महं प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरम ध्वज

धंधक घोरी।' १७०४ में 'धंधक' के स्थान पर 'धंध्रक' पाठ है। 'धंधक' का अर्थ है 'धंधा करने वाला', और प्रसंग में यह ठीक ही है; 'धंध्रक' अर्थहीन है।

(५३ च) १-२६-७ : 'अपतु अजामिल गज गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ।' १७०४ में 'अपतु' के स्थान पर 'अपरु' पाठ है। 'अपरु'='दूसरा' का कोई प्रसंग नहीं है। 'अपतु'='अपमानित', अथवा 'अपवित्र' का ही यहाँ प्रसंग है, इसलिए वही समीचीन है।

(५४ च) १-३२-१२ : 'सुकबि सरद नभ मन उडुगन से। रामभगत जन जीवन धन से। १७०४ में 'धन' के स्थान पर धर' पाठ है। 'जीवन धन' की प्रासंगिकता और प्रयोगसम्मतता प्रकट है, किंतु 'जीवनधर'='जीवधारी' की प्रस्तुत प्रसंग में कोई संगति नहीं है।

(५५ च) १-३७-३ 'रामसीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।' 'बीचि' के स्थान पर १७०४ में 'बीच' पाठ है। 'सलिल' में 'बीचि-बिलास'='छोटी-छोटी लहरों का उठना और विलीन होना' की संगति स्पष्ट है, किंतु 'बीच बिलास' अप्रासंगिक है, क्योंकि 'विलास'='[लहरों का] उठना और विलीन होना' बीच में ही नहीं होता, किनारों पर तो वह कदाचित् और अधिक होता है।

(५६ च) १-६३-६ : 'पाछिल दुख न हृदयं अस ब्यापा। जस यह भएउ महा परितापा।' १७०४ में 'न हृदयं अस' के स्थान पर पाठ 'हृदय न अस' है। यद्यपि इस पाठांतर से अर्थ में अंतर नहीं पड़ता, किंतु छंद की गति विकृत हो जाती है। इसलिए पहला ही पाठ ठीक लगता है।

(५७ च) १-६६-२ : 'सहज बयर सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा।' १७०४ में 'जीवन्ह' के स्थान पर 'जीवइ' पाठ है। 'जीवन्ह'='जीवों ने' की प्रासंगिकता तो प्रकट है। 'जीवइ'='जीवों ने ही' का कोई प्रसंग नहीं है।

(५८ च) १-८१-५ : 'जनम कोटि लगि रगरि हमारी। बरौं संभु नतु रहौं कुमारी।' १७०४ में 'रगरि' के स्थान पर पाठ 'रगर'

है। स्त्रीलिंग रूप 'रगरि' ही समीचीन है, क्योंकि उसका विशेषण 'हमारी' स्त्रीलिंग है।

(५६ च) १-२१०-१० : 'धनुष जग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा।' १७०४ में 'सुनि' के स्थान पर 'करि' पाठ है। प्रसंग से 'सुनि' की संगति प्रकट है। 'करि' नहीं हो सकता, क्योंकि राम ने स्वतः कोई धनुर्यज्ञ नहीं किया था।

२

अयोध्या कांड

१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

१७०४ के निम्नलिखित पाठ केवल राजापुर की प्रति में पाए जाते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। इनकी विशेषता यह है कि उक्त अन्य पाठों की तुलना में यह उत्कृष्टतर ठहरते हैं। नीचे इन पर विचार किया जाएगा।

(१) २-६०-७ : 'भूपति भवनु सुभायं सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा।' १७०४ में 'पावा' के स्थान पर पाठ 'आवा' है। मुहावरा 'पटतर आवा' ही है, और ग्रंथ में अन्यत्र यही मिलता है :

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोगु बनावइ लागा।

कीन्ह बहुत स्रम एक न आए। तेहि इरिषा बन आनि दुराए। १-१२०-५६

(२) २-१९७-२ : 'सोहत दिए निषादहि लागू। जनु तनु धरे बिषय अनुरागू।' १७०४ में दूसरे चरण के 'तनु' के स्थान पर पाठ 'धनु' है। वर्ण्य यहाँ पर भरत हैं, यह बात बाद में ही आनेवाली निम्नलिखित अर्द्धाली से भी व्यक्त होती है :

येहि बिधि भरत सेन सब संगा। दीख जाइ जग पावनि गंगा।

और यह भरत निषाद को टेक कर खड़े हैं, जिसके कारण उनका आकार धनुष का हो गया है। ऐसी अवस्था में यह कहना कि 'निषाद को टेक कर के खड़े हुए भरत इस प्रकार शोभा दे रहे हैं मानो विषय ने अनुराग का धनुष धारण कर रक्खा हो' यह कहने की अपेक्षा अधिक संगत लगता है कि 'मानो विषय और अनुराग ने शरीर धारण किया हो', क्योंकि अन्यथा निषाद को टेक कर खड़े भरत की मुद्रा का वर्णन बेतुका हो जाता है।

×(३) २-३०२ : 'मुनिगन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'मुनि जन'। दोनों का प्रयोग ग्रंथ में प्रायः एक ही प्रकार से हुआ

है, इसलिए दोनो पाठ एक से प्रयोगसम्मत हैं।

(४) २-३२५-१ : 'देह दिनहि दिन दूबरि होई। घट तन तेज बल मुख छबि सोई।' १७०४ में 'घट तन' के स्थान पर पाठ 'घटइ' है। अर्थों में दोनों के कोई अंतर नहीं है। केवल पहले में एक मात्रा अधिक पड़ती है और गति ठीक नहीं है, दूसरे में यह दोष नहीं है।

कोदवराम के स्वीकृत पाठभेद

कोदवराम की प्रति में एक भी पाठ ऐसा नहीं है जो १७०४ की तथा राजापुर की प्रतियों में भी मिलता हो, और विवेचनीय शेष प्रतियों में से किसी में न मिलता हो, और साथ ही जो उक्त शेष प्रतियों में मिलने वाले पाठ से उत्कृष्टतर पाठ प्रस्तुत करता हो।

बंदन पाठक, रघुनाथदास और छक्कनलाल के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक रघुनाथदास और छक्कनलाल भी प्रतियों की भी वही दशा है, जिसका परिचय कोदवराम की प्रति के संबंध में ऊपर दिया गया है।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल की प्रति में कुछ पाठ ऐसे अवश्य हैं जो यद्यपि रघुनाथदास, बंदन पाठक, कोदवराम, १७०४ तथा राजापुर की प्रतियों में मिलते हैं, और १७६२ की प्रति में नहीं मिलते। १७२१ की प्रति का अयोध्या कांड अप्राप्त है, इसलिए उसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता। किंतु इन पाठभेदों में से कोई भी ऐसा नहीं है जिसमें वास्तविक पाठ-सुधार दिखाई पड़ता हो—सभी ऐसे हैं जो केवल १७६२ के लिपिकार की पढ़ने या लिखने की भूलों से उत्पन्न विकृत पाठों को शुद्ध रूप में प्रस्तुत करते प्रतीत होते हैं। नीचे इन पर विचार किया जाएगा।

(१) २-१२-५ 'चली बिचारि बिबुध मति पोची।' १७६२ में 'बिबुध' के स्थान पर पाठ 'बिबिध' है। शारदा का आह्वान कर उससे वह सब करने के लिए कहा है जिससे राम बन गमन करें,

और देवताओं की इसी कुमंत्रणा के विषय में उनके समाज से लौटती हुई शारदा के मन में यह भाव कवि ने रक्खा है। अतः 'बिबुध' पाठ की संगति स्पष्ट है—'देवताओं की बुद्धि को पोची (नीच) समझ कर वह चल पड़ी।' 'बिबिध' पाठ की संगति तभी लग सकती है जब 'मति' का अर्थ 'युक्ति' लिया जावे, और उसे 'बिचारि' का कर्म माना जावे। किंतु अन्यत्र कहीं भी न 'मति' 'युक्ति' का पर्याय है, और न वह 'विचारना' के कर्म के रूप में आया है। आगे आनेवाली पंक्ति भी अन्य पाठ का ही समर्थन करती है—उसमें 'बिबुध मति पोची' का ही विस्तार है, 'बिबिध मति पोची' का नहीं :

ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती।

(२) २-२७-६ : 'लखी न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई।' १७६२ में 'मनि' के स्थान पर पाठ 'मति' है। 'मति' ग्रंथ भर में 'बुद्धि' का पर्याय है, न कि जैसा ऊपर कहा गया है 'युक्ति' का, और इसीलिए 'मति' के साथ संख्यावाचक विशेषण भी ग्रंथ भर में कहीं नहीं आया है। 'मनि' की संगति प्रकट है—अन्वय होगा 'कोटि कुटिल मनि (मंथरा) की पढ़ाई कपट चतुराई भूप न लखी।'

(३) २-५०-१ : 'अस बिचारि उर छांड़हु कोहू। सोक कलंक कोटि जनि होहू।' 'कोटि' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'कोपि' है। 'कोपि' पाठ से वाक्य की संगति नहीं लगती, क्योंकि 'सोक' और 'कलंक' 'कोपि'= 'क्रोध करके' 'न हो' कोई अर्थ नहीं रखता है। 'कोटि' या 'कोठि'='कोठी' पाठ ही संगत है, अर्थ होगा 'शोक और कलंक की कोठी या भांडार न बनो।'

(४) २-१३६-६ : 'कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन।' १७६२ में 'सुषमा' के स्थान पर पाठ 'सुषमा' है। 'जसि' विशेषण के स्त्रीलिंग होने से प्रकट है कि विशेष्य भी स्त्रीलिंग का होना चाहिए। 'सुषमा' ही स्त्रीलिंग है, इसलिए वही समीचीन है, 'सुख' पुल्लिंग नहीं।

(५) २-१८०-१ : 'कैकेई भव तनु अनुरागे। पांवर प्रान अघाइ

अभागे।' १७६२ में 'पांवर' के स्थान पर पाठ 'पावन' है। अन्यत्र भी इस प्रकार के प्रसंग में शब्द 'पांवर' ही आया है, यथा :

अैसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान।

तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पांवर प्रान॥ २-६७

और 'पांवर' का यह प्रयोग 'प्रान' की ही भाँति 'जीव', 'नर' आदि समानार्थियों के साथ भी मिलता है, इसलिए उसकी समीचीनता प्रकट है। किंतु 'पावन' का प्रयोग कहीं भी 'प्राण' या उसके समानार्थियों के विशेषण के रूप में नहीं हुआ है, इसलिए वह प्रयोग-सम्मत नहीं है। इसके अतिरिक्त 'प्रान' 'तनु अनुरागे' कहे गए हैं, इसलिए उनका 'पांवर' होना ही युक्तियुक्त है, 'पावन' होना नहीं।

(६) २-२२५-२ : १७६२ में निम्नलिखित अर्द्धाली नहीं है :

भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं राम मिटिहि दुख दाहू।

पूर्व को अर्द्धाली निम्नलिखित है :

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू।

इस 'मंगल सगुन' से क्या परिणाम निकाला गया, प्रसंग में इसका उल्लेख करना आवश्यक लगता है, और इसलिए विवेचनीय अर्द्धाली प्रसंग में आवश्यक है।

(७) २-२५३-६ : 'जौ हठ करउं त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू।' १७६२ में 'हर' के स्थान पर पाठ 'हइ' है। 'हइ' ग्रंथ भर में अन्यत्र कहीं नहीं आया है, सर्वत्र रूप 'है' है। और 'हरगिरि' गुरुता में कैलाश के लिए अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है :

हरगिरि जान जासु भुज लीला। ६-२५-१

हरगिरि मथन निरखि मम बाहू। ६-२८-८

ऐसे वाक्यों में 'है' क्रिया के लुप्त रहने पर भी अर्थ लगाने में कोई कठिनाई नहीं होती। इसलिए 'हर' पाठ ही समीचीन लगता है।

(८) २-२६२-८ : 'जिन्हहि निरखि मग सांपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिष तामस तीछी।' 'तामस' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'तापस' है। 'तापस' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है, प्रसंग यहाँ पर 'तामस' = 'बुराई करने की प्रवृत्ति' का है, यह प्रकट है।

(९) २-२८४ : 'बेगि पाउं धारिअ थलहि कह सनेह सतिभाय। हमरें तव अब ईस गति कै मिथिलेसु सहाय।' १७६२ में 'ईस' के स्थान पर पाठ 'भूप' है। यह वाक्य जनकमहिषी से कौशल्या के हैं। 'भूप' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है, क्योंकि 'मिथिलेसु' शब्द बाद ही में आता है, और 'भूप गति' अर्थहीन भी है। 'ईस' पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और उसकी संगति भी प्रकट है।

(१०) २-२९६-२ : १७६२ में निम्नलिखित अर्द्धाली नहीं है :

गए जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा।

यह अर्द्धाली प्रसंग के लिए आवश्यक है, क्योंकि आगे ही राम ने उस समाज में मिथिलेश की विद्यमानता की ओर संकेत किया है :

बिद्यमान आपुनु मिथिलेसू। मोर कहब सब भांति भदेसू।

(११) २-३२५-७ : १७६२ में निम्नलिखित अर्द्धाली भी नहीं है :

'भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती।'

यह भी प्रसंग में आवश्यक है, क्योंकि इसके न होने से अगली अर्द्धाली—और विशेष रूप से उसमें आने वाले 'सकल'—की संगति नहीं लगती :

बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। शेष गनेस गिरा गमु नाहीं।

छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल में १७६२ के उपर्युक्त अस्वीकृत पाठभेदों में से कोई नहीं है। उसके जो अपने अस्वीकृत पाठभेद हैं, नीचे उन पर विचार किया जाएगा।

(१) २-२ -६ : 'सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन बनावहिं देव कुचाली।' छक्कनलाल में 'बनावहिं' के स्थान पर पाठ 'मनावहिं' है। 'विघ्न मनाने' है कोई विस्तार नहीं है, 'विघ्न बनाने' का ही विस्तार है : आगे की पंक्तियों में शारदा को बुलाकर राम के वन-गमन का उपाय करने के लिए उनका आग्रह 'विघ्न बनाना' ही है। इसलिए 'बनावहिं' पाठ 'मनावहिं' की अपेक्षा अधिक प्रसंग-सम्मत ज्ञात होता है।

(२) २-१७-७ : 'भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा।' छक्कनलाल में पाठ 'जल' के स्थान पर 'जर' है। 'जर' का 'जड़' के अर्थ में प्रयोगविरुद्ध होना स्पष्ट है, क्योंकि आगे की ही अर्द्धाली में 'जड़' के अर्थ में 'जरि' रूप आया है :

जरि तुम्हारि चह सवति उखारी।

'जल' ग्रंथ में अनेक बार आया है, और इसलिए वह प्रयोगसम्मत तो है ही, संगति के ध्यान से भी वही ठीक लगता है। पूर्व की पंक्ति है :

रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते।

विवेचनीय पंक्ति में इसी कथन को उदाहृत किया गया है। जड़ से कमल को अलग करने, 'अब ते दिन बीते' तथा 'समउ फिरने' में परस्पर कोई संगति नहीं है; इनकी संगति 'जल के न होने' के साथ ही है : समय (ऋतु) के परिवर्तन से जब सरोवर का जल सूखकर बिल्कुल घट जाता है, उस समय कमल का पोषक सूर्य ही उसे जला डालता है।

(३) २-२२-८ : 'होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें।' छक्कनलाल में 'प्रिय' के स्थान पर पाठ 'फुर' है। कैकेयी ने इसके पूर्व मंथरा से कहा है :

परउं कूप तुअ बचन पर सकौं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि। २-२१

उसी की ओर संकेत करते हुए मंथरा कह रही है। 'चाहे तुम्हें मेरी बात हृदय से ही प्रिय क्यों न लगी हों, फिर भी आज की रात यों ही बीत जाने पर तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध न हो सकेगा [यह बात मैं कहे देती हूँ]'। यहाँ पर प्रसंग "प्रिय' का ही है; उसकी बातें अपने प्राण, अपने पुत्र और अपने पति से भी अधिक प्रिय हैं, यही तो कैकेयी ने ऊपर के दोहे में कहा है।

(४) २-२८-३ : 'झूठहु हमहिं दोष जनि देहू। दुइ कै चारि मांगि मकु लेहू। छक्कनलाल में 'बरु' के स्थान पर पाठ 'मकु' है।

'मकु' का प्रयोग ग्रंथ में असंभावनाओं को संभव कल्पित करने के ही प्रसंग में हुआ है, यथा :

तिमिरि तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहिं मिलई।
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृप मद भरतहि भाई। 2-232-3

जहाँ पर दो बातों में से एक का निषेध करके दूसरी को उसके अभाव में करने या होने की अनुमति दी गई हो, वहाँ पर 'बरु' पाठ ही प्रयोगसम्मत है, यथा :

जौं घर बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा।
न त कन्या बरु रहउ कुआँरी। कंत उमा मम प्रान पिआरी। 1-71-3,4
अजसु होउ जग सुजसु नसाऊँ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊँ।
सब दुख दुसह सहावउ मोहीं। लोचन ओट रामु जनि होहीं। 2-45-1, 2
बरु तीर मारहिं लषन पै जब लगि न पाँय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं॥ 2-100 छं०
बरु अपजसु सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं।
अब अपलोक सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा। 6-61-11,12

(5) 2-28-6 : 'सत्य मूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मुनि गाए।' छक्कनलाल में 'मुनि' के स्थान पर पाठ 'मनु' है। बहुवचन क्रिया 'गाए' का कर्त्ता भी बहुवचन ही होना चाहिए, इसलिए बहुवचन अर्थ में प्रयुक्त 'मुनि' पाठ ही शुद्ध है, 'मनु' एकवचन उसका कर्त्ता नहीं हो सकता।'

(6) 2-31-5 : 'प्रिया बचन कस कहसि कुभांती। भीर प्रतीति प्रीति करि हाती।' छक्कनलाल में 'भीर' के स्थान पर पाठ 'भीरु' है। 'भीरु' संबोधन यहाँ नितांत अप्रासंगिक है; यहाँ तो कैकैयी में 'भीरुता' के स्थान पर उसका ठीक विरोधी कराल 'रोष' है :

आगे दीखि जरत रिसि भारी। मनहुं रोष तरवारि उघारी।

प्रसंग में 'भीर' = 'भय' पाठ ही समीचीन है, क्योंकि राजा के कहने का आशय यह है कि सामान्यतः इस प्रकार के अनुचित वचन मुख से निकालते हुए उसे किंचित् 'भय' का अनुभव करना चाहिए था, जो पहले ही समाप्त हो चुका था; फिर राजा की 'प्रतीति' ही

करके उसे इस प्रकार के वाक्य नहीं निकालते थे, वह 'प्रतीति' भी जाती रही थी ; यदि और कुछ नहीं, तो उसे दशरथ की 'प्रीति' का ही संकोच करके इस प्रकार की बातें मुंह से नहीं निकालनी थीं, किंतु वह 'प्रीति' भी नष्ट हो चुकी थी। 'भीर' शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी 'भय' के अर्थ में हुआ है, यथा 'भव भीर' में :

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु विषम भव भीर ॥ ७-१३०

(७) २-४२-४ : 'तेउ न पाइअ संसउ चुकाहीं।' छक्कनलाल में में 'तेउ न पाइअ' के स्थान पर पाठ 'तेऊ पाय न' है। दोनों के अर्थों में वास्तविक अंतर नहीं है, किंतु 'पाय' प्रयोगसम्मत नहीं है। 'पाय' केवल 'पैर' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, और 'पाकर' के अर्थ में 'पाइ' ही आया है। 'पाइअ' सर्वथा प्रयोगसम्मत है, यथा :

सुनत स्रवन पाइअ बिस्रामा। १-३५-७
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। २-१५४-७
पुरइन सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म। ३-३६
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि। ७-१२०

अर्थ होगा—'आप उन्हें भी नहीं पाते (देखते) हैं कि अवसर पर वे चूक जावें।'

×(८) २-४८-८ : 'रामु भरत कहुं परम पिआरे।' छक्कनलाल में 'परम' के स्थान पाठ 'प्रान' है। 'प्रान पिआरे' और 'परम पिआरे' दोनों पाठ प्रसंग और प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

तात पितहि तुम्ह प्रान पिआरे। २-५४-६
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पिआरे। २-१३०-८
सिय रघुबीरहि प्रान पिआरे। २-२००-८
रामहि सेवक परम पिआरा। २-२१६-१

(९) २-५३-८ : 'जनि सनेहबस डरपसि भोरें। आनंद अंब अनुग्रह तोरें।' छक्कनलाल में 'भोरें' के स्थान पर पाठ 'मोरे' है। यद्यपि 'मोरे' प्रसंगविरुद्ध या अशुद्ध नहीं है, किंतु 'भोरें'='भूल में भी' जितनी प्रासंगिकता है, उतनी 'मोरे' में नहीं है; 'मोरे' तो

एक प्रकार से अनावश्यक है, क्योंकि 'सनेहबस' का आशय ही है 'मोरे सनेहबस'।

(१०) २-६६-४ : 'सेवा समय दैअ बनु दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा।' छक्कनलाल में 'सफल' के स्थान पर पाठ 'सुफल' है। 'मनोरथ' के साथ इस शब्द का प्रयोग केवल एक स्थान पर और मिलता है; वहाँ पर भी पाठों में यही भेद है:

सफल मनोरथ होहि तुम्हारे। राम लषन सुनि भए सुखारे। १-२३७-४

प्रश्न यहाँ पर 'सुफल' या 'कुफल' का नहीं है, बल्कि 'सफल मनोरथ' और 'विफल मनोरथ' होने का है, यह प्रकट है। इसलिए पहला पाठ अधिक प्रसंगसम्मत लगता है।

(११) २-७५-२ : 'नतरु बांझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित हानी।' छक्कनलाल में 'हानी' के स्थान पर 'जानी' है। कोई माता पहले से 'हित जान कर' 'राम बिमुख सुत' नहीं जन सकती, इसलिए 'जानी' पाठ असंगत है। अन्य पाठ की संगति प्रकट है : 'राम बिमुख पुत्र से उसके हित की हानि ही होगी।'

(१२) २-७५-४ : 'सकल सुकृत कर फल सुत एहू। सीयराम पद सहज सनेहू।' छक्कनलाल में 'फल सुत' के स्थान पर पाठ 'बड़ फल' है। 'बड़े फल' और 'सामान्य फल' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है, यहाँ तो 'फल' ही पर्याप्त प्रतीत होता है।

(१३) २-८४-२ : 'नगर सफल बनु गहबर भारी। खगमृग बिपुल सकल नरनारी। बिधि कैकेई किरातिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहुं दिसि दीन्ही।' छक्कनलाल में 'सफल' के स्थान पर भी पाठ 'सकल' है। बाद वाले चरण में 'सकल' आया हुआ है, इसलिए 'सकल' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। इसके अतिरिक्त 'सफल' उसकी अपेक्षा अधिक सगत भी है; 'वन' के प्रसंग में 'सकल' एक प्रकार से निरर्थक है, किंतु 'सफल' बन में आग लगाना—ऐसे बन में आग लगाना जिसके आधार पर किसी प्राणि-समुदाय का जीवन-निर्वाह होता हो—निर्विवाद रूप से गर्हित कार्य होगा।

(१४) २-८६-८ : 'सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि

भरि राखेसि आनी।' छक्कनलाल में 'आनी' के स्थान पर 'पानी' पाठ है। 'पानी' पाठ से 'सुचि फल फूल' क्रिया-विहीन हो जाता है, यदि 'राखेसि' क्रिया का संबंध 'पानी' कर्म से मान लिया जाता है; और 'पानी' क्रिया-विहीन हो जाता है, यदि 'राखेसि' क्रिया का संबंध 'सुचि फल मूल' कर्म के साथ मान लिया जाता है। इसलिए 'पानी' पाठ की अशुद्धि प्रकट है, 'आनी' पाठ ही शुद्ध ज्ञात होता है।

(१५) २-६०-४ : 'आपु लषन पहं बैठेउ जाई। कटि भाथी सर चाप चढ़ाई।' छक्कनलाल में 'भाथी' के स्थान पर पाठ 'भाथा' है। यद्यपि सामान्यतः 'भाथा' ही प्रयुक्त हुआ है, किंतु निषादों के लिए 'भाथी' का ही प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है, यथा:

सुमिरि राम पद पंकज पनुही। भाथी बांधि चढ़ाएसि धनुही। २-१०१-४

इसलिए निषादराज के प्रसंग में यहाँ भी 'भाथी' ही पाठ समीचीन लगता है।

(१६) २-६८-१ : 'पितु बैभव बिलासु मैं डीठा। नृपमनि मुकुट मिलत पद पीठा।' छक्कनलाल में 'मिलत' के स्थान पर पाठ 'मिलित' है; 'मिलित' = 'मिला हुआ' रूप ग्रंथ भर में प्रयुक्त नहीं हुआ है, और न वह यहाँ प्रसंगसम्मत है: 'मुकुट मिले हुए पदपीठ' का कोई अर्थ नहीं है। 'मिलत' = 'मिलते हुए या स्पृष्ट होते हुए' ही सार्थक लगता है। प्रयोगसम्मत तो वह है ही, यथा :

रामहिं मिलत कैकेयी हृदय बहुत सकुचानि। ७-६

(१७) २-६८-२ : 'सुखनिधान अस माइक मोरें। पिय बिहीन मन भाव न मोरें।' छक्कनलाल में 'माइक' के स्थान पर पाठ 'पितु-गृह' है। अर्थ में दोनों अभिन्न हैं, किंतु 'पितु' ऊपर आ चुका है :

पितु बैभव बिलासु मैं दीठा।

इसलिए पुनरुक्तिविहीन पाठ 'माइक' अधिक समीचीन ज्ञात होता है।

(१८) २-६८-६ : 'बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि कोउ सपनेहुं सुखद न लागा।' छक्कनलाल में 'कोउ' के स्थान पर पाठ 'सब' है। 'सब' का 'न' के साथ अर्थ होगा 'कुछ न कुछ' या 'कोई न कोई', जो प्रसंग से सर्वथा असिद्ध है। 'कोउ न' की संगति प्रकट है।

(१६) २-१००-१ : 'जासु बियोग बिकल पसु ऐसें। प्रजा मातु पितु जीवहिं कैसे।' छक्कनलाल ने 'जीवहिं' के स्थान पर पाठ है 'जीहहिं'। 'जीहहिं' या 'जिइहहिं' = 'जीएँगे' उतना संगत नहीं लगता जितना 'जीवहिं' = 'जीते हैं', कारण यह है कि राम से वियुक्त तो वे हो ही चुके हैं, इसलिए उनका दुःख वर्त्तमान की समस्या है, भविष्य की समस्या नहीं।[1]

(२०) २-१२१-२ : 'नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं। मृदुपद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदय कहइ मृदु बानी।' छक्कनलाल में उपर्युक्त दूसरी अर्द्धाली के 'कहइ' के स्थान पर पाठ है 'कहहिं'। प्रश्न यह है कि 'गहबरि हृदय (नारि)' 'कहइ' का कर्त्ता है, या पहले आया हुआ 'नारि' कर्त्ता है, और 'गहबरि हृदय' उसकी क्रिया 'कइह' का क्रिया-विशेषण है। 'गहबरि' के स्त्रीलिंग रूप से 'गहबरि हृदय (नारि)' का कर्त्ता होना ही समीचीन लगता है; क्रिया-विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने पर पाठ 'गहबरि हृदय' न होकर 'गहबर हृदय' होता।

(२१) २-१२१-२ : 'उपर्युक्त दूसरी अर्द्धाली में ही 'मृदु बानी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'बर बानी' है। 'मृदु' उसी अर्द्धाली में पहले चरण में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति अवश्य है, किंतु 'बर बानी' जहाँ कहीं ग्रंथ में प्रयुक्त हुआ है 'सुनि' के कर्म के रूप में ही मिलता है— अर्थात् कही जाने के अनंतर ही उसकी प्रशंसा 'बर' शब्द के द्वारा की गई है—केवल नभ-वाणी जैसी दिव्य वाणी के प्रसंग में वाणी के सुनाई पड़ने से पूर्व भी 'बर' शब्द प्रयुक्त हुआ है, यथा :

सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी। २-१०३-४

१—अन्यत्र भी इस प्रकार के एक प्रसंग में, 'जीवहिं' का समानार्थी 'जियो है' प्रयुक्त हुआ है :

ऐसी मनोहर मूरति ये बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आंखिन में सखि राखिबे जोग इन्हैं किमि कै बनबास दियो है॥
(कवितावली २. २०)

इसलिए, 'बर' की अपेक्षा 'मृदु' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(२२) २-१२७-५ : 'चिदानंदमय देह तुम्हारी।' 'चिदानंद' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'चितानंद' है। पहले की सार्थकता और दूसरे की अर्थहीनता प्रकट है।

(२३) २-१३३-६ : 'रमेउ राम मन देवन्ह जाना। चले सहित सुरथपति प्रधाना। कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए।' छक्कनलाल ने 'सुरथपति प्रधाना' के स्थान पर पाठ 'सुर-पति परधाना' है। 'सुरपति' तो एक इंद्र ही है, उसके साथ 'पर-धाना' अर्थहीन है। 'सुर-थपति प्रधाना' 'देवताओं के प्रधान 'थवई (स्थापत्यकार)' अर्थात् 'विश्वकर्मा' बोधक पाठ ही यहाँ सार्थक और प्रसंगसम्मत है, क्योंकि अगली अर्द्धाली में 'सदन-निर्माण' का कार्य उनके द्वारा कराया गया है।

(२४) २-१३६-५ : 'हम सब भांति करब सेवकाई।' छक्कन-लाल में 'करब' के स्थान पर पाठ 'करबि' है। किंतु दो अर्द्धाली बाद उसी वक्ता ने 'खेलाउब' और 'देखाउब' कहा है :

तहं तहं तुम्हहिं अहेर खेलाउब। सर निरझर थल ठाउं देखाउब।

इसलिए यहां 'करबि' की अपेक्षा 'करब' पाठ अधिक समीचीन है।

(२५) २-१४४-४ : 'रहिहि न अंतहु अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू।' छक्कनलाल में 'रहिहि' के स्थान पर पाठ 'रही' है। 'रहेगा' या 'रहेगी' के अर्थ में 'रही' कहीं नहीं आया है, 'रहिहि' ही प्रयुक्त हुआ है, यथा:

जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही। १-६५ छं०

संबत मध्य नास तब होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ। १-१७४-३

इसलिए 'रहिहि' ही प्रयोगसम्मत है, 'रही' नहीं।

(२६) २-१४८-२ : 'अति आरत सब पूंछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी। सुनइ न स्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप तेहि तेहि बूझा।' छक्कनलाल में 'तेहि तेहि' के स्थान पर पाठ 'जेहि तेहि' है। रामादि के संबंध में प्रश्न करती हुई रानियों की उपेक्षा कर सुमंत्र का दूसरों से यह पूछना कि 'राजा कहाँ हैं?' ठीक नहीं

लगाता। ठीक यह लगता है कि राजा से मिलने के लिए आतुर सुमंत्र ने प्रत्येक के प्रश्न का उत्तर देने के स्थान पर उससे ही 'राजा कहाँ है ?' यह प्रश्न किया। इसलिए पहला पाठ दूसरे की अपेक्षा अधिक संगत लगता है।

(२७) २-१५२-१ : 'पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएहु बिनती मोरी।' 'सुनाएहु' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुनाएउ'। प्रसंग से प्रकट है कि विवेचनीय क्रिया का रूप भविष्य काल का होना चाहिए, भूतकाल का नहीं। भविष्य के लिए 'सुनाएहु' ही प्रयुक्त हुआ है, 'सुनाए' नहीं, यथा :

तात सक्र सुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु। ५-२७-५

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है।

×(२८) २-१५६-२ : 'जिअत राम बिधुबदन निहारा। राम बिरह करि मरन संवारा।' छक्कनलाल में 'करि' के स्थान पर पाठ है 'भरि'। 'भरि' अनेक स्थलों पर आया है, किंतु कहीं भी अकर्मक 'से भरकर' के अर्थ में नहीं, वरन् सकर्मक 'को भरकर' के अर्थ में' यथा :

अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना। १-१०१-८
कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा। १-१६४-४
भरि भरि बसह अपार कहारा। पठईं जनक अनेक सुसारा। १-३३३-५
कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करन्ह लिए मातु। १-३४६

इसलिए 'भरि' पाठ प्रयोगसम्मत नहीं लगता। 'राम बिरह करि' = 'राम विरह को निमित्त बना कर' की संगति स्पष्ट है, यद्यपि तुलनीय प्रयोग का अभाव है।

×(२६) २-१६६-१ : 'मुख प्रसन्न मन रंगु न रोषू।' छक्कनलाल में 'रंगु' के स्थान पर पाठ 'राग' है। यहाँ पर 'रंग' = 'प्रसन्नता' और 'राग' = 'प्रेम' दोनों ही प्रसंग में खप सकते हैं।

(३०) २-१६७ : 'जे परिहरि हरिहर चरन भजहिं भूत गन घोर। तिन्ह कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर।' 'गन' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'घन'। 'घनघोर' का प्रयोग

ग्रंथ में अन्यत्र नहीं मिलता है, और न वह यहाँ पर सार्थक है। 'भूतगन' की संगति प्रकट है, 'घोर' उसका विशेषण है।

(३१) २-१६६-२ : 'बिधु बिष बमइ स्रवइ हिमु आगी।' छक्कनलाल में 'बमइ' के स्थान पर पाठ 'चवइ' है। 'विष वमन करना' एक तो मुहावरा है, दूसरे वह अधिक संगत भी है : यदि चंद्रमा के लिए सुधा के स्थान पर विष 'चूना' असंभव है, तो उसके लिए विष 'वमन करना' और भी असंभव है।

× (३२) २-१७५-३ : 'बेद बिहित सम्मत सबही का। जेह पितु देइ सो पावइ टीका।' छक्कनलाल में 'बिहित' के स्थान पर पाठ बिदित' है। जहाँ पर विधानों या नियमों का प्रसंग है, पाठ साधारणत : 'बेद बिहित' है, यथा :

बेद बिहित करि सकल बिधाना। २-५-५

नृप तन बेद बिहित अन्हवावा। २-१५०-१

'बेद बिदित' साधारणतः कथाओं के प्रसंग में आया है, यथा :

सकल कामप्रद तीरथराऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ। २-२०४-६

किंतु एकाध स्थल पर 'बिदित' का प्रयोग 'बिहित' की भाँति भी हुआ है, यथा :

बूझि बिप्र कुल बृद्ध गुर बेद बिदित आचारु। १-२८६

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं।

(३३) २-१७५-७ : 'मरम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि। सौंपेहु राजु राम के आएं। सेवा करेहु सनेह सुहाएं।' छक्कनलाल में 'मरम' के स्थान पर पाठ 'प्रेम' है। उपर्युक्त दूसरी अर्द्धाली से यह प्रकट है कि यहाँ पर प्रश्न राज्य करने का नहीं है, वरन् राम की अनुपस्थिति में अयोध्या का राज्य की थाती समझ कर उसे यथावत् सुरक्षित रखने का है—वशिष्ठ अभिषेक-स्वीकार के पक्ष में यही दृष्टिकोण रख रहे हैं। इसलिए 'मरम' = 'आंतरिक अभिप्राय' ही प्रसंगसम्मत है, 'प्रेम' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है।

*(३४) २-१७६-३ : 'बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम्ह एहि

भाँति तात कदराहू ।' छक्कनलाल में 'सुरपति' के स्थान पर पाठ है 'सुरपुर'। दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है। पहले पाठ का अर्थ होगा 'दशरथ इस समय सुरपति हैं'—अर्थात् देवलोक वासी हो चुके हैं। दूसरे पाठ का अर्थ स्पष्ट ही है। किंतु 'सुरपति' का प्रयोग अन्यत्र 'इंद्र' के ही अर्थ में हुआ है, इसलिए, दूसरा पाठ अधिक समीचीन और प्रयोगसम्मत लगता है।

(३५) २-१८५ : 'जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ ।' छक्कनलाल में 'सहज' के स्थान पर पाठ 'सहस' है। रामभक्ति में कोई 'सहस सहाय' न करे, किंतु फिर भी सहायता करे, तो वह विनष्ट होने के योग्य है' यह धारणा तो कवि की नहीं प्रतीत होती। इसलिए दूसरा पाठ समीचीन नहीं प्रतीत होता है। 'सहज'='स्वाभाविक' या 'स्वभावतः' की युक्तियुक्तता प्रकट है।

(३६) २-१८६-७ : 'जो जेहि लायक सो तहं राखा ।' छक्कनलाल में 'तहं' के स्थान पर पाठ 'तेहि' है। वैसे तो 'तेहि' पाठ अधिक उपयुक्त हो सकता था, क्योंकि 'जेहि' का वही ठीक-ठीक साथी है, किंतु 'जेहि' के साथ 'तंह' का ऐसा ही प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है, यथा:

जेहि जेहि जोनि करम भ्रमहीं। तहं तहं ईस देहु यह हमहीं। २-२४-६

इसलिए पहला पाठ कदाचित् अधिक प्रयोगसम्मत है।

(३७) २-१९०-५ : 'राम काज करिहौं रन रारी। जस धवलिहौं भुवन दस चारी ।' 'करिहौं' तथा 'धवलिहौं' के स्थान पर छक्कनलाल में क्रमशः 'करिहहुं' तथा 'धवलिह हुं' पाठ हैं। 'करिहौं' ग्रंथ में अनेक बार आया है, किंतु 'करिहहुं' एक बार भी नहीं आया है, इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है, यथा :

करिहौं रघुपति कथा सोहाई। १-१४-१
करिहौं चरित भगत सुष दाता। १-१५२-२
अवसि काज मैं करिहौं तोरा। १-१६८-३
नारद बचन सत्य सब करिहौं। १-१८७-६

(३८) २-१९७-१ : 'सोहत दिए निषादहि लागू। जनु तनु धरे

बिषय अनुरागू। छक्कनलाल में 'बिषय' के स्थान पर पाठ 'बिनय' है। 'बिनय' और 'अनुराग' में परस्पर वैसा कोई साधर्म्य या वैधर्म्य नहीं है जैसा 'बिषय' और 'अनुराग' में है, और जैसा निषाद और भरत में है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(३९) २-२००-१ : 'लालन जोगु लषन लघु लोने। भे न भाइ अैसे अहहिं न होने।' छक्कनलाल में 'अैसे' के स्थान पर पाठ 'अस' है। छंद की दृष्टि से 'अैसे' की अपेक्षा 'अस' अवश्य ही अधिक ठीक लगता है, किंतु 'अस' ग्रंथ भर में एकवचन में, और इसी प्रकार 'अैसे' बहुवचन में प्रयुक्त है, यथा :

तहां बेद अस कारन राखा। १-१३-२
असमंजस अस मोहि अंदेसा। १-१४-१०
जिन्ह पठए बन बालक अैसे। २-८९-२

और यहाँ पर 'भाइ' बहुवचन है, जैसा 'भे' क्रिया से प्रकट है, इसलिए 'अैसे' पाठ ही यहाँ समीचीन है।

(४०) २-२००-८ : 'सारद कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुनगन लेखा।' छक्कनलाल में 'सारद' के स्थान पर पाठ 'सादर' है। 'सादर' पाठ में पहला 'कोटि' निरर्थक हो जाता है, क्योंकि बाद में 'कोटि सत' आता है। 'सारद' पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और वह 'कोटि' और 'कोटि सत' का अन्यत्र जैसा प्रयोग हुआ है उसके अनुरूप ही प्रयुक्त हुआ है, यथा:

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोट सत सम गंभीरा। ७-९२-३
बिष्नु कोटि सम पालनकर्त्ता। रुद्रकोटि सत सम संहर्त्ता। ७-९२-६

(४१) २-२०६-४ : 'मूरतिवंत भाग्य निज लेखे।' छक्कनलाल में 'मूरतिवंत' के स्थान पर पाठ 'मूरतिमंत' है। अन्यत्र भी समासों में 'वंत' ही मिलता है, यथा :

नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी। २-११९.१
बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी। १-२०२-५

इसलिए पहला पाठ ही प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(४२) २-२०७-४ : 'राउ सत्यब्रत तम्हहि बोलाई। देत राज

सुखु धरमु बड़ाई ।' छक्कनलाल में 'बोलाई' के स्थान पर पाठ 'बलाई' है। ग्रंथ भर में 'बोलाना' के ही रूप प्रयुक्त हैं, 'बलाना' के नहीं; इसलिए प्रयोगसम्मत पाठ 'बोलाई' ही है।

×(४३) २-२१०-६: 'भरत धन्य तुम्ह जगु जसु जयेऊ।' छक्कनलाल में 'जगु जसु' के स्थान पर पाठ 'जसु जगु' है। दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है। पहले पाठ का अर्थ होगा 'तुमने संसार में यश की विजय की।' और दूसरे पाठ का अर्थ होगा 'तुमने यश रूपी जगत् की विजय की।'

(४४) २-२११-५: 'मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुख जियं जग जानिहि पोचू। नाहिंन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर नाहिंन सोचू।' दूसरी अर्द्धाली के दूसरे चरण के 'नाहिंन' के स्थान पर छक्कनलाल में 'मोहि न' पाठ है। 'मोहि न' प्रथम अर्द्धाली के प्रथम चरण में आ चुका है, इसलिए 'मोहि न' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। 'नाहिंन' पाठ में भी पुनरावृत्ति है, किंतु उससे कथन में बल आ गया है, और वह इसलिए दोषहीन है।

(४५) २-२१२-६: 'मिटइ कुजोगु राम फिरि आएं। बसइ अवध नहिं आन उपाएं।' छक्कनलाल में 'कुजोगु' के स्थान पर पाठ 'कुरोग' है। 'कुरोग' की उक्ति ऊपर आ चुकी है, और वह एक अन्य प्रसंग में है :—

राम लषन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं।
एहि दुख दाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती।
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं। सोधेउं सकल बिस्व मन माहीं।

यहाँ पर तो प्रसंग 'कुयोग' का ही है :—

मातु कुमत बढ़ई अघमूला। तेहि हमार हित कीन्ह बसूला।
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्रू।
मोहि लगि येहु कुठाटु तेहि ठाटा। घालेसि सबु जगु बारह बाटा।
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएं। बसइ अवध नहिं आन उपाएं।

"अपने 'कुजंत्र' और 'कुमंत्र' से 'कुठाट' ठट कर कैकेयी ने बसे हुए अवध को जो तहस-नहस कर दिया है, और सब जग को

बारह बाट कर दिया है, वह 'कुयोग'='दुरवस्था' केवल राम के लौटने से मिट सकती है" भाव यह है। 'कुरोग' यहाँ पर अप्रसंगिक है।

×(४६) २-२१७: छक्कनलाल में 'सुप्रेम' के स्थान पर 'सुपेम' पाठ है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं। 'पेम' और 'प्रेम' दोनों का प्रयोग ग्रंथ में हुआ है।' :यथा

राम सुप्रेमहिं पोषत पानी। १-४३-३

सियराम पेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को। १-३२६ छं०

पूरन राम सुपेम पिऊषा। २-२०६-५

पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं। २-२०८-३

(४७) २-२२६-७: 'अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहि उपचरा न थोरा।' छक्कनलाल में 'उपचरा' के स्थान पर 'उपचार' पाठ है। 'भरत' कर्त्ता के साथ 'उपचरा' क्रिया आवश्यक है—अन्वय स्पष्ट है। यदि 'हमहि' को द्वितीया के स्थान पर सप्तमी में माना जाए, और यह आशय लिया जावे कि 'भरत में और हममें उपचार कम नहीं है', तो पाठ 'भरतहि' होना चाहिए था, जैसे 'हमहि' है। अन्यत्र भी इसी प्रकार हुआ है:

हमहिं तुम्हहिं सरबरि कस नाथा। १-२८२-५

(४८) २-२३५-२: 'मोरे सरन राम की पनहीं। रामु सुस्वामि दोसु सब जनहीं।' छक्कनलाल में 'राम' के स्थान पर पाठ 'रामहिं' है। किसी अन्य की शरण में जाने का कोई प्रश्न नहीं है, इसलिए केवल 'राम' पाठ ही पर्याप्त है। 'रामहिं' से छंद की गति भी बिगड़ जाती है।

(४९) २-२३७-४: 'नील सघन पल्लव फल लाला। अबिचल छांह सुखद सब काला।' छक्कनलाल में 'अबिचल' के स्थान पर पाठ 'अबिरल' है। प्रसंग में दोनों पाठ खप जाते हैं, किंतु 'अबिरल' का पर्यायवाची 'सघन' पूर्ववर्ती चरण में ही आया हुआ है, इसलिए 'अबिरल' पाठ में पुनरुक्ति है।

*(५०) २-२३६-८: 'जिय की जरनि मनहुं हंसि हेरत।'

छक्कनलाल में 'मनहुं' के स्थान पर पाठ 'हरत' है। दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है। पहले पाठ का अर्थ होगा; 'जब वह हँसते हुए किसी की ओर देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो हँसते हुए दूसरे के हृदय की ज्वाला की खोज कर रहे हैं?' दूसरे पाठ का अर्थ होगा; 'हँसते हुए दृष्टि-निक्षेप करके वह दूसरों के हृदय की ज्वाला का अपहरण कर लेते हैं।' किंतु दूसरा पाठ अधिक सार्थक लगता है।

(५१) २-२४०-४ : 'बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवाँ बस जोरा।' छक्कनलाल में 'बस' के स्थान पर पाठ 'बर' है। 'बर' यहाँ प्रायः निरर्थक ही है। यदि वह 'जोरा' का विशेषण है, और यदि 'बरजोरा' एक शब्द है और वह 'सेवा' का विशेषण है तो 'सेवा' स्त्रीलिंग के साथ उसका पुल्लिंग रूप ठीक नहीं है। 'बस जोरा' पाठ में ऐसी कोई त्रुटि नहीं है, और वह प्रसंग में भी ठीक बैठता है।

*(५२) २-२४० : 'बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान। भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान।' छक्कनलाल में 'बिसरे' के स्थान पर पाठ 'बिसरा' है। दोनों पाठ ठीक लगते हैं। 'सबहि' कर्त्ता की क्रिया के लिए बहुवचन रूप 'बिसरे' उपयुक्त ही है, 'अपान' को यदि कर्म और एकवचन माना जावे तो उसकी एकवचन क्रिया 'बिसरा' भी उसके अनुरूप ही है। एक और स्थान पर भी एकवचन रूप ही इस प्रकार के वाक्य में प्रयुक्त हुआ है:

> केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।
> देखि भानु कुल भूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान॥ १-२३३

इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(५३) २-२४८-४ : 'सुद्ध भयें दुइ बासर बीते। बोले गुर सन मातु पिरीते।' छक्कनलाल में 'मातु' के स्थान पर पाठ 'राम' है। 'पिरीते' का अर्थ होता है 'प्रेमपात्र', और 'राम-पिरीते' का अर्थ होता है 'राम के प्रेमपात्र', जैसा वह अन्यत्र है:

> (भरत के लिए) जलु थलु देखि बसे निसि बीतें।
> कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीते। २-२२६-२

(हनुमान के लिए) कपितव दरस सकल दुख बीते।
मिले आजु मोहि राम पिरीते। ७-२-११

और यहाँ पर राम स्वतः गुरु से निवेदन कर रहे हैं, इसलिए 'राम-पिरीते' पाठ असंगत है, 'मातु-पिरीते' पाठ ही संगत और समीचीन है।

(५४) २-२५१ छं० : 'तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै नौका तिरा।' छक्कनलाल में 'नौका' के स्थान पर पाठ 'लौका' है। 'लौका' लौह लेकर कहीं तिरते हुए नहीं देखा जाता, 'नौका' ही, जो लकड़ी की होती है, लौह लेकर नदी तिरते देखी जाती है। इसलिए 'नौका' पाठ ही समीचीन है।

(५५) २-२५७-४ : 'औरु करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई।' छक्कनलाल में 'सरसी सीपि कि' के स्थान पर पाठ 'सर सीपी किमि' है। 'सरसी' सर से भी छोटा उत्पत्ति स्थान है; इसलिए उसकी सीप में कुछ और भी लघुता की ध्वनि हो सकती है, जो समुद्र की महानता की तुलना में कदाचित् अधिक उपयुक्त होगी। 'कि' तथा 'किमि' दोनों संगत हैं : दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है।

(५६) २-२८७-५ : 'सीय सकुच महुं मनहु समानो।' छक्कनलाल में 'महुं' के स्थान पर 'महि' पाठ है। 'सकुच' के साथ 'महि' पाठ अर्थहीन है। 'सकुच' करके भी सीता कुछ लुप्त तो हो नहीं गईं, कि यह कल्पना करनी पड़े कि मानो वह पृथ्वी में समा गईं। यहां पर तो भाव यह है कि उन्होंने अत्यधिक संकोच का अनुभव किया, और उसके लिए यह कहना कि 'मानो वह संकोच में समा गईं' उपयुक्त ही है।

(५७) २-२९५-६ : 'चंदिनि कर कि चंडकर चोरी।' छक्कनलाल में 'चंडकर' के स्थान पर 'चंद कर' पाठ है। 'चंद कर चोरी' का अर्थ होगा 'चंद्रमा की चोरी', किंतु इस प्रकार के अर्थ के लिए 'कर' के स्थान पर 'कै' या 'कइ' का प्रयोग होना चाहिए था, क्योंकि 'चोरी' स्त्रीलिंग है, इसलिए 'चंद कर' पाठ शुद्ध नहीं है। 'चंडकर चोरी' में समास है, यथा नीचे के 'परत्रिय चोरी' में:

हमहुं सुनी कृत परत्रिय चोरी। ६-२२-५

इसलिए उसमें यह अशुद्धि नहीं है। दूसरे, 'चंद' की चोरी की अपेक्षा 'चंडकर'='सूर्य' की चोरी कुछ और असंभव भी है, इसलिए प्रसंग में असंभावना की ध्वनि के लिए वह उसकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त भी है।

*(५८) २-३०५-३ : 'तुम्हहि बिदित सबही कर करमू।' छक्कनलाल में 'करमू' के स्थान पर पाठ 'मरमू' है। यह वाक्य राम के भरत के प्रति हैं। प्रसंग तो 'मरम'='मन की बात' का है। भरत सब के 'कर्म' जानते हैं, इस कथन की वैसी संगति नहीं ज्ञात होती है।

×(५९) २-३०६-४ : 'मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू। साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी।' छक्कनलाल में 'साधक' के स्थान पर पाठ 'साधन' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप जाते हैं।

(६०) २-३११-५ : 'कटु कठोर कुबस्तु दुराई। 'कटु' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'कटुक' है। 'कटुक' ग्रंथ भर कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ है। 'कटु' का प्रयोग यों तो साधारणतः मिलता ही है, 'कठोर' के साथ भी मिलता है, यथा :

पुनि कह कटु कठोर कैकेई। २-३४-३

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है।

(६१) २-३१४-१ : 'पुरजन परिजन प्रजा गोसाई। सब सुचि सरस सनेह सगाई।' छक्कनलाल में 'सुचि' के स्थान पर पाठ 'रुचि' है। 'रुचि' प्रसंग में अर्थहीन है। यहाँ पर तो कहा यह जा रहा है कि 'पुरजन, परिजन, तथा प्रजा तभी हमारे लिए 'सुचि'='पवित्र' और 'सरस'='प्रीति के पात्र' हैं जब आपसे उनका स्नेह है।' यहाँ पर 'सुचि' ही प्रसंग-सिद्ध है, 'रुचि' नहीं।

*(६२) २-३२५-१ : 'देह दिनहि दिन दूबरि होई। घटत न तेज बलु मुख छबि सोई।' छक्कनलाल में 'घटत न' के स्थान पर पाठ 'घटत' है। यद्यपि दोनों पाठ परस्पर विरोधी हैं, किंतु प्रसंग में दोनों खप जाते हैं, और पहले पाठ की तुलना में दूसरे पाठ में छंद की गति ठीक हो गई है, इसलिए दूसरा अधिक उपयुक्त लगता है।

(६३) २-३२५ : 'मांगि मांगि आयेसु करत राजकाज चहुं भांति।' छक्कनलाल में 'चहुं' के स्थान पर पाठ 'बहु' है। राजनीति चार प्रकार की मानी गई है, और इसीलिए नीति' चार की संख्या का प्रतीक बन गया है। फलतः 'चहुं' पाठ की समीचीनता प्रकट है। 'बहु' पाठ में 'सभी नहीं' की ध्वनि भी हो सकती है जो प्रसंगोचित नहीं है।

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास की प्रति में कुछ अस्वीकृत पाठ तो १७६२ तथा छक्कनलाल के हैं, किंतु कुछ अन्य भी हैं। इन पर नीचे विचार किया जाएगा।

(१) २-२७-५ : 'औसि पीर बिहंसि तेहिं गोई।' रघुनाथदास में 'तेहिं' के स्थान पर पाठ 'तेइ' है। प्रसंग से यह प्रकट है कि विवेचनीय शब्द से 'उसने' का अर्थ निकलना चाहिए। किंतु 'उसने' के अर्थ में ग्रंथ भर में 'तेहिं' आया है, 'तेइ' नहीं, यथा :

तेहि सब लोक लोकपति जीते। १-८२-८
तेहि तपु कीन्ह संभु पति लागी। १-८३-६
तेहि दोउ बंधु बिलोके जाई। १-२२८-१
बंस सुभाउ उतरु तेहि दीन्हा। १ २८२-२

और कैकेयी के लिए भी उसने के अर्थ में 'तेहिं' ही आया है :

तेहि कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी। २-५०

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है।

(२) २-२८-३ : 'झूठेहु हमहिं दोसु जनि देहू। दुइ कै चारि मांगि बरु लेहू।' रघुनाथदास में 'बरु' के स्थान पर पाठ 'किन' है। पहले चरण में एक कार्य के लिए निषेध किया जा रहा है, जब कि उसके स्थान पर दूसरे चरण में एक अन्य कार्य करने का अधिकार दिया जा रहा है। इस प्रकार के स्थल पर 'बरु'='भले ही' समीचीन प्रतीत होता है, 'किन'='क्यों नहीं' नहीं।

१—देखिए छक्कनलाल का अस्वीकृत पाठ, यही स्थल।

×(३) २-३६-१ : 'चहत न भरत भूपतहि भोरें । बिधिबस कुमति बसी जिय तोरें ।' रघुनाथदास में 'भूपतहि' के स्थान पर पाठ 'भूपपद' है । 'भूपतहि' = 'भूपता को', और 'भूप-पद' = 'राजपद' का अर्थ एक ही है, और दोनों व्याकरण की दृष्टि से भी शुद्ध लगते हैं ।

(४) २-३६-८ : 'मारसि गाइ नहारू लागी ।' रघुनाथदास में 'नहारू' के स्थान पर 'नहारुहि' है । 'हि' से या तो हीनता की व्यंजना की जाती है, या तो किसी उल्लिखित विषय की ओर संकेत किया जाता है । इनमें से एक भी परिस्थिति प्रस्तुत प्रसंग में नहीं है, इस लिए 'नहारू' पाठ ही समीचीन लगता है ।

×(५) २-३७ : 'जागे अजहु न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि ।' रघुनाथदास में 'जागेउ' के स्थान पर पाठ 'जागे' है । दोनों पाठ संगत हैं । दूसरा यद्यपि बहुवचन रूप का है, किंतु आदर की भावना के कारण व्यवहृत हो सकता है ।

(६) २-४१-४ : 'सेवहिं अरंडु कल्पतरु त्यागी । परिहरि अमृत लेहि बिषु मांगी । तेउ न पाइअ समउ चुकाहीं । देखु बिचारि मातु मन माहीं ।' तीसरे चरण के 'तेउ न पाइअ' के स्थान पर रघुनाथदास में 'तेउ न पाइ अस' पाठ है । पहले पाठ की समीचीनता अन्यत्र देखी जा चुकी है,[1] अर्थ है 'वे भी ऐसे नहीं देखे जाते कि अवसर को हाथ से जाने दें ।' दूसरे पाठ का अर्थ होगा 'वे भी इस प्रकार का अवसर पा कर नहीं चूकते ।' किंतु ग्रंथ में कहीं भी 'चूकना' अकर्मक क्रिया के रूप में प्रयुक्त नहीं है; वह सर्वत्र सकर्मक है. और कुछ स्थलों पर तो 'समय' और 'अवसर' ही उसके कर्म भी हैं :

भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई । १-७-२
चुकइ न घात मार मुठभेरी । २-१३३-४
अहह मंद मन अवसर चूका । २-१४४-६
समय चुकें पुनि का पछिताने । १-२६१-३

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है ।

(७) २-४२-८ : 'राउ धीर गुन उदधि अगाधू । भा मोहितें कछु

१—देखिए छक्कनलाल का अस्वीकृत पाठ, यही स्थल ।

बड़ अपराधू। जातें मोहिं न कहत कछु राऊ। मोरि सपथु तोहिं कहु सति भाऊ।' रघुनाथदास में 'जाते' के स्थान पर 'तातें' पाठ है। 'तातें' से कुछ अधिक निश्चयात्मकता ध्वनित होती है, जो प्रसंग से सिद्ध नहीं है। इसलिए पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत लगता है।

(८) २-४८ : 'चंदु चवइ बरु अनल कन सुधा होइ बिष तूल।' रघुनाथदास में 'चवइ' के स्थान पर पाठ 'चुवइ' है। अन्यत्र जहाँ--कहीं यह शब्द प्रयुक्त है, रूप 'चवइ' या 'चवहीं' ही मिलता है, दूसरा नहीं, यथा :

बिधु बिष चवइ स्रवइ हिमु आगी। २-१६६-२

लताबिटप मांगे मधु चवहीं। ७-२३-५

इसलिए 'चवइ' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(९) २-५१-८ : 'मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोच जनि राखइ राऊ।' रघुनाथदास में 'मिटा' के स्थान पर पाठ 'इहै' है। किंतु अर्द्धाली में ही 'चित चौगुन चाऊ', और आगे वाले दोहे में 'अनंद अधिकान' कहा गया है :

नव गयदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।

छूट जानि बनगवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥

इसलिए पहला ही पाठ प्रसंग से सिद्ध है, दूसरा नहीं; यदि 'सोच' होता तो 'आनंद का और अधिक होना' तो असंभव था।

(१०) २-७५ छं० : 'उपदेसु येहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुखु पावहीं।' रघुनाथदास में 'तात' के स्थान पर पाठ 'जात' है। 'जात' का अर्थ होता है 'जाते', जो प्रसंग में उपयुक्त नहीं है; यदि इसके स्थान पर 'गएं'='जाने से' होता, तो वह कदाचित् प्रसंगोचित हो सकता था। ऊपर सुमित्रा ने कहा है :

तात तुम्हार मातु बैदेही। पिता रामु सब भांति सनेही।

'तात' का प्रयोग उसी भावना के अनुरूप है। 'तात' का प्रयोग 'पिता' के अर्थ में अन्यत्र भी मिलता है, यथा :

तात तात बिनु बाति हमारी। केवल गुरकुल कृपा संभारी। २-२०५-६

*(११) २-७९-८ : 'राम तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननी सिर नाई।' रघुनाथदास में 'जननी' के स्थान पर पाठ 'जननिहि' है। दूसरा अधिक प्रयोगसम्मत पाठ प्रतीत होता है, क्योंकि अन्यत्र जहाँ कोई संज्ञा 'सिर नाई' का कर्म है, वहाँ उसके साथ द्वितीया की 'हि' विभक्ति लगी हुई है, यथा :

तब हम जाइ सिवहि सिरु नाई। १-८४-३

प्रात नहाइ प्रभुहि सिरु नाई। २-२५३-८

(१२) २-८०-४ : 'जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे।' रघुनाथदास में 'परितोषे' के स्थान पर पाठ 'परिपोषे' है। 'परिपोषण करने'='पालने' का कोई प्रसंग नहीं है। पहले चरण के 'संतोषे' के अनुरूप किंतु उससे अधिक पूर्णता वाचक होने के कारण 'परितोषे' ही दूसरे चरण में प्रसंगसम्मत है।

(१३) २-९८ : 'मोर सोच जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायं।' रघुनाथ दास में 'मोर' के स्थान पर पाठ 'मोरि' है। 'सोच' पुल्लिङ्ग है, यथाः

मिटा सोच जनि राखइ राऊ।२-५१-८

उस के साथ 'मोर' स्त्रीलिंग पाठ समीचीन नहीं लगता है, 'मोर' पुल्लिंग ही ठीक है।

(१४) २-११८-७ : 'मिटा मोदु मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने।' रघुनाथदास में 'दीन्हि' के स्थान पर पाठ 'दीन्ह' है। 'निधि' ग्रंथ भर में स्त्रीलिंग की भाँति प्रयुक्त है, यथा :

हरषे जनु नव निधि घर आई। २-१३६-१

इसलिए उसके लिए 'दीन्हि' स्त्रीलिंग रूप ही समीचीन है, 'दीन्ह' पुल्लिग रूप नहीं।

×(१५)२-१३०-१ : 'काम कोह मद मान न मोहा।' रघुनाथ दास में 'कोह' के स्थान पर पाठ 'क्रोध' है। दोनों रूप ग्रंथ में प्रयुक्त हैं :

केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा। ७-७०-८

अपराधिहु पर कोह न काऊ। २-२६०-५

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं।

(१६) २-१४३-६ : 'अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें।' रघुनाथदास में 'अढुकि' के स्थान पर पाठ 'अटकि' है। प्रसंग यहाँ पर 'अढुकि पड़ने'='चलते चलते एकाएक रुक जाने' का है, 'अटकने' ='किसी वस्तु से उलझ जाने' का नहीं है। इसलिए 'अढुकि' पाठ ही प्रसंगसम्मत है।

(१७) २-१६१-२ : 'तात राउ नहिं सोचइ जोगू।' रघुनाथदास में 'सोचइ' के स्थान पर पाठ 'सोचन' है। दोनो रूपों का प्रयोग ग्रंथ में मिलता है, यद्यपि '-न' रूप सामान्यतः किसी वांछनीय क्रिया के साथ दिखाई पड़ता है, यथा :

अवसि देखिअहि देखन जोगू। १-२२६-६
पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। १-२६२-१
लालन जोगु लषन लघु लोने। २-२००-१
सब बिधि भरत सराहन जोगू। २-३२६-१

और '-इ' रूप सामान्यतः किसी अवांछनीय क्रिया के साथ, यथा :

फोरइ जोगु कपारु अभागा। २-१६-२
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानइ जोग। २-७७
बैषावस सोइ सोचइ जोगू। २-१७३-१

(१८) २-१६२-७: 'अस को जीव-जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं। भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तूं अहसि सत्य कहु मोही।' रघुनाथदास में 'तेउ' के स्थान पर 'प्रिय' पाठ है। 'प्रिय' प्रसंग-विरुद्ध है, और 'तेउ' प्रथम अर्द्धाली में आए हुए कथन के प्रकाश में अनिवार्य है, यह प्रकट है।

×(१६) २-१६६-५ : 'मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि परितोषू। चले बिपिन सुनि सिय संग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी।' रघुनाथदास में 'रंग' के स्थान पर पाठ 'हरष' है : 'रंग'='प्रसन्नता' और 'हर्ष' दोनो ही प्रसंग में खप सकते हैं।

(२०) २-१६६-१ : 'राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहुं ते प्यारे।' रघुनाथदास में पहले चरण के 'प्रानहु' के

स्थान पर भी पाठ 'प्रान' है। हाँ पर भरत को संबोधित करके उनके राम-प्रेम तथा राम के भरत-प्रेम की तुलना की गई है। 'तुम राम को प्राणों से भी अधिक प्रिय हो' इसकी तुलना में यह कहना अधिक संगत और समीचीन है कि 'राम तुम्हारे लिए प्राणों से भी अधिक प्राण हैं—यदि इस प्रकार की कोई वस्तु हो सकती है।' 'प्रान ते प्रान' इस प्रसंग में अर्थहीन है।

(२१) २-१६६ : 'तात हृदय धीरजु धरहु करहु जो अवसरु आजु। उठे भरत गुर बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु।' रघुनाथदास में 'साजु' के स्थान पर पाठ 'काजु' है। 'करहु जो अवसरु आजु' तो दूसरे चरण में आ ही चुका है, इसलिए 'करन कहेउ सबु काज' में अनावश्यक पुनरुक्ति होगी। प्रसंग यहाँ पर राजा के मृत शरीर की अंत्येष्टि-क्रिया करने का है। उसी को आगे सविधि संपन्न किया गया है :

नृप तनु बेद बिहित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमान बनावा।

फलतः 'साजु' पाठ ही यहाँ प्रसंग से सिद्ध है।

*(२२) २-१७२-६ : 'सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी।' 'अवमानी' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'अपमानी'। ग्रंथ में साधारणतः 'अपमान' शब्द का प्रयोग मिलता है, और एक स्थल पर 'बिप्र अपमाना' भी मिलता है :

अब जनि करसि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना। ७-१०६-१२

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

×(२३) २-१७४-५ : 'करहु तात पितु बचन प्रवाना।' रघुनाथदास में 'प्रवाना' के स्थान पर पाठ 'प्रमाना' है। दोनों रूप ग्रंथ में मिलते हैं, यथा :

कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई। १-१५०-७

अति सरोष माषे लखन लखि सुनि सपथ प्रवान। २-२३०

बरष चारि दस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान। २-५३

जानेहु तब प्रमान बागीसा। १-७५-४

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं।

×(२४) २-१७८-२ : 'मैं अनुमानि दीखि मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं।' रघुनाथदास में 'दीखि' के स्थान पर पाठ 'दीख' है। 'दीखि' और 'दीख' के प्रयोग में अंतर केवल 'लिंग' का है, यथा :

दसमुख सभा दीखि कपि जाई। ५-२०-६
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। २-४७-३
लछिमन दीख उमा कृत बेषा। १-५३-१

यहाँ पर उक्त क्रिया का कर्म लुप्त है। यदि उसका कर्म 'यह बात' माना जाय—जैसा कि बोलचाल में देखा जाता है[1]—तो 'दीखि' पाठ ठीक है, अर्थ होगा 'मैंने मन में अनुमान करके [यह बात] देखी'। और यदि 'यह' मात्र उसका कर्म माना जावे तो पाठ 'दीख' उचित होगा; अर्थ होगा 'मैंने मन में अनुमान करके यह देखा।' दोनों पाठ इसलिए दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

(२५) २-१-८० : ग्रह गृहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार। तेहि पिआइअ बारुनी कहहु कौन उपचार।' रघुनाथदास में तृतीय चरण के 'तेहि' के स्थान पर पाठ 'ताहि' है। ग्रंथ में कहीं-कहीं एक साथ ही दोनों रूपों का प्रयोग मिलता है, और पुनरुक्ति बचाने के ध्यान से यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। यद्यपि एक ही रूप का प्रयोग भी शुद्ध है, यथा :

भंजेहु रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महं मारेसि लाता।
दुसरे सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना। ६-४३-७,८
जेहि तें नीच बड़ाई पावा। सो प्रमथहिं हठि ताहि नसावा।
धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई। ७ १०६-९,१०

(२६) २-१८७-५ : 'अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ।' रघुनाथदास में 'समाऊ' के स्थान पर 'समाजू' और 'राऊ' के स्थान पर 'राजू' पाठ हैं। 'मुनिराऊ' और 'मुनिराजू'

१—ग्रियर्सन ने कनौजी ही में इस प्रवृत्ति का उल्लेख किया है (लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिआ, जिल्द ६, भाग १, पृ०-८४) किंतु अवधी में भी यह प्रवृति पाई जाती है।

मे कोई वास्तविक अंतर नहीं है, किंतु 'अगिनि समाऊ' और 'अगिनि-समाजू' में अंतर ज्ञात होता है। 'समाऊ' का अर्थ 'सामग्री' है। 'अगिनि समाऊ' = 'अग्निहोत्र की सामग्री' की प्रासंगिकता प्रकट है। 'समाजू' से यह अर्थ नहीं निकलता। प्रस्तुत प्रसंग में वह अर्थहीन लगता है।

(२७) २-१६१-४ : 'सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भाथी बांधि चढ़ाइन्हि धनुहीं।' रघुनाथदाथ में 'भाथी' के स्थान पर पाठ 'भाथा' है। निषादों की 'धनुही' के साथ 'भाथी' ही समीचीन लगता है, और इसी प्रकार वह निषादराज के लिए भी आया है :

आपु लषन पहं बैठेहु जाई। कटि भाथी सर चाप चढ़ाई। २-९०-४

×(२८) २-१६४-५ : 'राम राम कहि जे जंबुहाही।' रघुनाथ-दास में 'जंबुहाहीं' के स्थान पर पाठ 'जमुहाहीं' है। दोनो पाठों में वस्तुतः कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है। तुलनीय प्रयोग न हैं।

(२६) २-१६७-१ : 'भे सनेह सब अंग सिथिल तब।' रघुनाथ-दास में 'सब' के स्थान पर पाठ 'बस' है। 'सनेहबस सिथिल' ग्रथ भर में कहीं नहीं आया है; जहाँ आया है 'सनेह सिथिल' ही आया है :

भईं सनेह सिथिल सब रानी। १-३३७-५

कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह। २-१५२

सकल सनेह सिथिल रघुबर के। २-२२६-१

सकुच सनेह सिथिल सब गाता। २-२३४-४

इसलिए पहला पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

*(३०) २-२०१-६ : 'कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाता। साइंदोह मोहि कीन्ह कुमाता।' रघुनाथदास में 'दोह' के स्थान पर पाठ 'द्रोहि' है। ग्रंथ भर में 'द्रोह' शब्द ही स्वतंत्र रूप से तथा अनेक समासों में आया है, यद्यपि कदाचित् 'दोह' उसी का तद्भव रूप है। इस लिए 'द्रोहि' ही प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।[1]

१—'विनय पत्रिका' में दोनों रूप आते हैं :—

हौं तो साईं द्रोहों पै सेवक हितु साईं। ७२

स्वामी की सेवक हितता सब कछु निज साइं दोहाई। १७१

*(३१) २-२०६-५ : 'गुर अवमान दोष नहिं दूषा ।' रघुनाथदास में 'अवमान' के स्थान पर पाठ 'अपमान' है। ग्रंथ भर में साधारणतः 'अपमान' शब्द का ही प्रयोग हुआ है, और अन्यत्र 'गुरु अपमानता'। प्रयुक्त भी मिलता है :

अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस । ७-१०६

इसलिए 'गुरु अपमान' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(३२)२-२०६-६ : 'कीन्हिहु सुलभ सुधा बसुधा हूं ।' रघुनाथदास में 'कीन्हिहु' के स्थान पर पाठ 'कीन्हेहु' है। 'करना' क्रिया का कर्म 'सुधा' है, जो ग्रंथ भर में स्त्रीलिंग है, यथा :

मधु सुचि सुंदर स्वाद सुधा सी । २-२५०-१

इसलिए स्त्रीलिंग रूप 'कीन्हिहु' ही समीचीन है।

*(३३) २-२१०-१ : 'कीरति बिधु तुम्ह कीन्हि अनूपा ।' रघुनाथदास में 'कीन्हि' के स्थान पर पाठ 'कीन्ह' है। 'कीन्हि' क्रिया स्त्रीलिंग कर्म की ही हो सकती है, इसलिए उसका कर्म 'कीरति' को मानना पड़ेगा। किंतु यहाँ पर 'कीर्ति-बिधु' का वर्णन है, और 'बिधु' ग्रंथ भर में सर्वत्र पुल्लिग रूप में हैं; इसलिए 'कीन्ह' पाठ अधिक समीचीन लगता है।

*(३४)२-२१७ : 'बेगरन' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'बिगरन' है। 'बिगरना' रूप ही ग्रंथ में प्रायः आया है, 'बेगरना' नहीं :

जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारी। ४-१५-७

नाहिंन डरु बिगरिहि परलोकू। १-२११-५

बिधि अब संवरी बात बिगारी । १-२७०-७

इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

*(३५) २-२१६-३ : 'गहहिं न पाप पुन्नु गुन दोषू।' रघुनाथदास में 'पुन्नु' के स्थान पर पाठ 'पुन्य' है। ग्रंथ में प्रायः 'पुन्य' ही प्रयुक्त है, और एक स्थान पर 'पाप पुन्य' का युग्म भी है :

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति कुजाती। १-५-५

इसलिए 'पुन्य' अधिक प्रयोगसम्मत पाठ प्रतीत होता है।

(३६) २-२२६ : 'तुलसी उठे अवलोकि कारनु काहु चित सचकित रहे।' रघुनाथदास में 'सचकित' के स्थान पर पाठ 'चक्रित' है। 'चक्रित' ग्रंथ भर में अन्यत्र नहीं आया है। और 'सचकित' भी नहीं आया है, किंतु 'चकित' अनेक स्थलों पर मिलता है। इसलिए 'सचकित' पाठ अपेक्षाकृत अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(३७) २-२३१-६ : 'कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सबतें कठिन राजमदु भाई। जो अंचवत नृप मातहिं तेई। नाहिंन साधु सभा जेहिं सेई।' रघुनाथदास में 'नृप मातहिं' के स्थान पर 'मातहिं नृप' पाठ है। दूसरे पाठ में कुछ इस प्रकार के अर्थ का भ्रम प्रसंग से परिचित न होने पर हो सकता है, 'जो इसका आचमन करते ही मतवाले हो जाते हैं, वे ही [वास्तव में] नृप हैं'—जो प्रसंग में अभीष्ट नहीं है। इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(३८) २-२३१-७ : ऊपर की दूसरी अर्द्धाली में रघुनाथदास में 'जेहिं' के स्थान पर पाठ 'जेइ' है। प्रसंग से प्रकट है कि विवेचनीय शब्द से 'जिसने' का अर्थ निकलना चाहिए। किंतु ग्रंथ भर में 'जिसने' के अर्थ में 'जेइ' का प्रयोग कहीं नहीं हुआ है, 'जेहिं' का ही प्रयोग मिलता है, यथा :

जेहिं तिरहुति तेहि समय निहारी। १-२८६-७
जेहि कौतुक सिवसैलु उठावा। १-२६२-८
कहत न बनइ जान जेहि जोवा। १-३५६-४
जेहिं बलि बाँधि सहसभुज मारा। ६-६-८

इसलिए 'जेहिं' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(३९) २-२३६-८ : 'कर कमलनि धनु सायक फेरत। जिअकी जरनि मनहुं हंसि हेरत।' रघुनाथदास में 'जिअ' के स्थान पर पाठ 'हिय' है। अन्यत्र भी 'जिअ कै जरनि' पाठ है, 'हिय कै जरनि' नहीं :

देखें बिनु रघुनाथ पद जिअ कै जरनि न जाइ। २-१८२

इसलिए 'जिअ' पाठ ही प्रयोग सम्मतप्रतीत होता है।

×(४०) २-२६१-४ . 'फरै कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव की संबुक काली।' रघुनाथदास में 'काली' के स्थान पर पाठ 'ताली' है। प्रसंग में 'ताली' पाठ से 'ताल की' का अर्थ निकलने पर संगति लग सकती है। दूसरी ओर, मोती संबुक (घोंघो) से नहीं निकलता है, सीपी से ही निकलता है, और वह सीपो भी चाँदी के समान चमकदार सफेद होती है, काली नहीं। इसलिए पहला पाठ ही समीचीन लगता है।

(४१) २-२६६-३ : 'देव दीन्ह सब मोहिं अभारू। मोरे नीति न धरम बिचारू।' रघुनाथदास में 'अभारू' के स्थान पर पाठ 'सिर भारू' पाठ है। 'मोहिं सिर' नहीं सकता, क्योंकि 'मोहि' का अर्थ कहीं भी 'मेरा' नहीं है, और 'भार' के साथ 'मोहिं' मात्र पर्याप्त समझा भी गया है, 'सिर' की आवश्यकता नहीं पड़ी है, यथा:

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोहीं। १-१८४-५

'अभारू' शब्द का प्रयोग, दूसरी ओर, यद्यपि तुलसीदास में अन्यत्र नहीं मिलता, किंतु 'ऐसा भार जो उठाए न उठता हो' के अर्थ में बोलचाल की अवधी में प्रायः मिलता है। इसलिए 'अभारू' पाठ दूसरे की अपेक्षा अधिक समीचीन लगता है।

×(४२) २-२७३-४ : 'करि मज्जन पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी।' रघुनाथदास में दूसरे चरण के स्थान पर पाठ 'गनपति गौरि पुरारि तमारी' है। दोनों में अर्थ-विषयक अंतर नहीं है, और दोनो व्याकरणसम्मत हैं।

×(४३) २-२८३-१ : 'बिबुध सरि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'देवसरि' है। दोनों पाठ वस्तुतः एक-से हैं, और प्रयुक्त हो सकते हैं।

(४४) २-२९२-४ : 'हम अब बनतें बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई।' रघुनाथदास में 'बड़ाई' के स्थान पर पाठ 'बढ़ाई' है। 'बिबेक बढ़ा कर लौटने' का कोई प्रसंग नहीं है। यहाँ तो प्रसंग है अपने 'विवेक की गुरुता [के अभिमान] में लौटने का'।

(४५) २-२६६-५ : को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाजु साज सब साजी।' रघुनाथदास में 'समाजु' के स्थान पर पाठ 'समान' है। 'आपु समान साज' का कोई अर्थ नहीं है। 'स्वामी के समान साज' कौन सा हो सकता है? अर्थ तो यह होना चाहिए कि 'स्वतः समाज [के उपयुक्त] साज सजा देगा।' और यह अर्थ पहले ही पाठ से निकलता है।

×(४६) २-३०७-८ : 'देउ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'देव' है। ग्रंथ में यद्यपि 'देव' ही प्रायः आया है, किंतु 'देउ' भी एकाध स्थलों पर आया है, यथा :

प्रनतपाल पालिहि सब काहू। देउ दुहूँ दिसि ओर निबाहू। २-३१४-४

*(४७) २-३२५-२ : 'देह दिनहि दिन दूबरि होई। घटत न तेज बलु मुख छबि सोई।' 'घटत न' के स्थान पर रघुनादास में पाठ है 'घट न' यद्यपि अर्थ में दोनों पाठ प्रायः समान हैं और दूसरे पाठ में छंद की गति ठीक हो गई है,

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में १७६२ के अस्वीकृत पाठभेद नहीं हैं, किंतु छक्कनलाल तथा रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद अनेक हैं, और उनके अतिरिक्त कुछ अन्य अस्वीकृत पाठभेद भी हैं, जिन पर हम नीचे विचार करेंगे।

(१) २-११-२ : 'भरत आगमन सकल मनावहिं। आवहुं बेगि नयनफल पावहि।' बंदन पाठक में 'आवहुं' के स्थान पर पाठ 'आवहिं' है। कामनावाची रूप ग्रंथ भर में 'हु' अत्य है, यथा :

देखहुँ कपि जननी की नहीं। ६-१०८-१२

इसलिए 'आवहुं' ही शुद्ध पाठ है, 'आवहिं' 'नहीं'।

*(२) २-४२ : 'चलइ जोंक जल बक्र गति जद्यपि सलिलु समान।' बंदन पाठक में 'जल' के स्थान पर पाठ 'जिमि' है।

'सलिलु' बाद में आता है इसलिए 'जल' पाठ में पुनरुक्ति है। 'जिमि' अलंकार का वाचक होने के कारण संगत ही है।

*(३) २-५१ ': नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान। छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान।' बंदन पाठक में 'रघुबीर मनु' के स्थान पर पाठ 'रघुबंसमनि' है। 'मन' का समानार्थी 'उर' दोहे के चौथे चरण में आता है, पहले पाठ में इसलिए पुनरुक्ति होती है, जिससे दूसरा पाठ मुक्त है। अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है।

×(४) २-३७-५ : 'पूंछे मातु मलिन मन देखी। लषन कही सब कथा बिसेषी।' बंदन पाठक में 'पूंछे' के स्थान पर पाठ 'पूंछेउ' है। इस क्रिया का कर्म लुप्त है। यह लुप्त कर्म 'कारण' या इसका कोई समानर्थी होना चाहिए, प्रसंग से यह प्रकट है। यह 'कारण' बहुवचन भी हो सकता है, और एकवचन भी। इसलिए दोनों पाठ शुद्ध हो सकते हैं।

×(५) २-७५ : 'तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयेसु दीन्ह पुनि आसिष दई। रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई।' बंदन पाठक में 'प्रभुहि' के स्थान पर पाठ 'सुतहि' है। सुमित्रा ने लक्ष्मण को बिदा देते समय रामभक्ति का जो उपदेश किया है, यहाँ उसी का उल्लेख है। 'सुतहि' का अर्थ 'लक्ष्मण को' होगा, यह स्पष्ट ही है। 'तुलसी-प्रभुहि' से भी लक्ष्मण का अर्थ लिया जा सकता है, यथा :

सकल तनय चिरजीवहु तुलसी दास के इस। १-१९६

इसलिए दोनों पाठ यहाँ लग सकते हैं।

(६) २-७८-२ : 'लखी राम रुख रहत न जाने।' बंदन पाठक में 'लखी' के स्थान पर 'लखा' है। ग्रंथ भर में 'रुख' स्त्रीलिंग की भाँति प्रयुक्त हुआ है, यथा :

जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की। २-१२६

सब कर हित रुख राउरि राखें। २-२५८-१

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है।

*(७) २-१३१-६ : 'सब तजि तुम्हहि रहहिं लउ लाई।' बंदन पाठक में 'लउ' के स्थान पर पाठ 'लै' है। प्रसंग से यह प्रकट है कि आशय 'तन्मयतापूर्वक ध्यान' का है। इस अर्थ में ग्रंथ भर में 'लय' शब्द का ही प्रयोग हुआ है, 'लौ' या 'लउ' का नहीं, यथा :

राम काज लय लीन मन बिसरा तन कर छोह। ४-२२
ते नर धन्य जे ध्यान येहि रहत सदा लय लीन। ६-११
ब्रह्मानंद सदा लय लीना। ७-३२-४
केवल राम चरन लय लागी। ७-११०-६

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत है।

(८) २-१३१-७ : 'बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा। जह तहं तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर भल ठाउं देखाउब।' बंदन पाठक में 'जह तहं' के स्थान पर पाठ 'तहं तहं' है। 'तहं तहं' पाठ 'जहं जहं' की अपेक्षा करता है, जो यहाँ पर नहीं है। 'जहं तहं' स्वतः पूर्ण और स्वतंत्र है, इसलिए वही यहाँ पर संगत है।

(९) २-१४८-६ : 'सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर। असनु अमिय सम कंद मूल फर।' बंदन पाठक में 'फर' के स्थान पर पाठ 'फल' है। यद्यपि साधारणतः 'फल' ही प्रयुक्त हुआ है, किंतु तुक के आग्रह से यहाँ तद्भव 'फर' पाठ ही संभव है।

(१०) २-२०५-१ : 'जानहुं राम कुटिल करि मोही। लोगु कहउ गुर साहिब द्रोही। सीताराम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें।' बंदन पाठक में 'जानहुं' के स्थान पर पाठ 'जानहिं' है। 'कहउ' के अनुरूप 'जानहुं'='भले ही जाने' पाठ ही प्रयोगसम्मत और प्रसंगसम्मत है, 'जानहिं' ='जानें' नहीं।

×(११) २-२२६ : 'छत्रजाति रघुकुल जनम राम अनुग जगु जान।' बंदन पाठक में 'छत्र जाति' के स्थान पर पाठ है 'छत्रि जाति'। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं, यथा:

तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष। ६-२३
छत्र बंधु तैं बिप्र बोलाई। १-१७४-१

बिस्व बिदित छत्रिय कुल द्रोही। १-२७२-६
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। १-१६०-६

(१२) २-६८१-५ : 'सील सनेहु सकल दुहुं ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा।' बंदन पाठक में 'सकल' के स्थान पर 'सरस' है। 'सनेहु' के विशेषण के रूप में 'सरस' अर्थहीन लगता है। 'सकल' संगत है, वह 'सील' और 'सनेह' दोनों का विशेषण है,—अर्थ है 'सम्पूर्ण रूप से'।

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२, छक्कनलाल, रघुनाथदास तथा बंदन पाठक के अनेक अस्वीकृत पाठ कोदवराम में हैं, और उसके अतिरिक्त कुछ पाठ और भी हैं जो उसी श्रेणी के हैं। इन पर नीचे हम विचार करेंगे।

(१) २-१-७ : 'मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोक मनोरथ वेली।' कोदवराम में 'फलित' के स्थान पर पाठ 'फुलित' है। 'फुलित' ग्रंथ भर में कहीं प्रयुक्त नहीं है, और 'मनोरथों' का 'सुफल' और 'निफल' ही होना कहा भी गया है :

भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराज कुमारि। १-७४
सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। १-२३७-४
निफल होहिं रावन सर कैसें। खल के सकल मनोरथ जैसे। ६-६१-६

इसलिए 'फलित' ही प्रयोगसम्मत भी है।

(२) २-८-६ : कोदवराम में निम्नलिखित अर्द्धाली अधिक है :

बार बार गनपतिहि निहोरा। कीजे सफल मनोरथ मोरा।

इसके पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

पूजीं ग्रामदेवि सुर नागा। कहेउ बहोर देद बलि मागा।
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू।

यहाँ पर प्रसंग पूजन का है। यदि गनपति की भी पूजा का उल्लेख कर इसी प्रकार प्रार्थना करने का उल्लेख किया गया होता तो वह संगत होता। केवल 'निहोरने' की यह अपूर्ण उल्लेख असंगत लगता है।

(३) २-२७-५ : 'औसिउ पीर बिहंसि तेहिं गाई। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई।' कोदवराम में 'तेहिं' के स्थान पर पाठ 'तब' है। राजा ने कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए अनजान में उससे कह दिया :

भामिनि भएउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनंद बधावा।
रामहि देउं कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू।

इस पर कैकेयी की प्रतिक्रिया क्या होती है, इसी का वर्णन किया जा रहा है। यहाँ पर 'तब' असंगत और 'तेहिं'= 'उसने ही' प्रसंग से सिद्ध है।

(४) २-५८-६ : 'बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी।' कोदवराम में 'जानी' के स्थान पर पाठ 'मानी' है। 'मानी' = 'विश्वास या कल्पना करके' की अपेक्षा 'जानी' = 'जान करके' अधिक प्रसंगसम्मत ज्ञात होता है, क्योंकि न कोई अन्य व्यक्ति कौशल्या को यह विश्वास दिला रहा है कि वह अभागिनी हैं, और न वह स्वतः यह कल्पना कर रही हैं; इस प्रकार का अनुभव वह अवश्य कर रही हैं।

(५) २-६४-७ : कोदवराम में निम्नलिखित अर्द्धाली भी अधिक है :

अस कहि सिय रघुपति पद लागी। बोली बचन प्रेम रस पागी।

तुलनीय प्रयोग निम्नलिखित हैं :

दूत बचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप बीर रस पागी। १-२९३-४
दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे। १-१४६-७
भरत बचन सब कहं प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे। २-१८४-१

इनसे यह प्रकट है कि 'बचन' पुल्लिग है। उसके विशेषण के रूप में इसलिए स्त्रीलिंग 'पागी' प्रयोगसम्मत नहीं है। यदि यह कहा जावे कि 'प्रेम रस पागी' सीता के लिए आया है, तो यह प्रसंगविरुद्ध है, कारण यह है कि प्रस्तुत संवाद इस स्थल से सात दोहे पूर्व प्रारंभ हुआ है, और 'प्रेमरस' में 'पगने' का उल्लेख वहीं हो सकता

था, किंतु वहाँ कवि ने उसके एक विरोधी भाव 'आकुलता' का उल्लेख करके ही प्रकरण का आरंभ किया है :

समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाय ।

इसलिए विवेचनीय अर्द्धाली प्रामाणिक नहीं लगती ।

(६) २-६५-३ : 'जहं लगि नाथ नेह अरु नाते । पिअ बिनु तिअहिं तरनिहुं ते ताते ।' कोदवराम में 'तिअहिं' के स्थान पर पाठ 'तिअ' है । दूसरे पाठ में यद्यपि छंद की गति सुधरी है, किंतु व्याकरण-विरोध है; 'तिअहि' = 'स्त्री के लिए', या 'स्त्री को', पाठ ही व्याकरण-सम्मत है, केवल 'तिअ' = 'स्त्री' नहीं ।

×(७) २-७३-५ : 'पूंछे मातु मलिन मन देखी । लषन कही सब कथा बिसेषी ।' कोदवराम में 'पूंछे' के स्थान पाठ 'पूंछा' है । 'पूंछे' की समीचीनता ऊपर हम देख चुके हैं[1], 'पूंछा' भी प्रयोग-सम्मत लगता है, यथा :

जदपि सती पूंछा बहु भाँती । १-५७-८

(८) २-६४-७ : 'कहत रामगुन भा भिनुसारा । जागे जग मंगल-दातारा ।' कोदवराम में 'दातारा' के स्थान पर पाठ 'सुखदारा' है । 'सुखदारा' ग्रंथ में अन्यत्र नहीं आया है, और अर्थहीन है । 'दारा' का प्रयोग केवल 'स्त्री' के अर्थ में मिलता है । 'दातारा' का प्रयोग 'देने वाला' के अर्थ में कुछ अन्य समासों में भी मिलता है, यथा:

राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार । २-३

राम के लिए 'जग मंगलदातारा' आया हुआ है, जो सर्वथा संगत है ।

(९) २-१०४-८ : पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हे । करि परितोषु बिदा सब कीन्हे । 'कोदवराम में 'सब' के स्थान पर पाठ 'तब' है । 'पुनि' पूर्ववर्त्ती चरण में आ चुका है, इसलिए उसके समानार्थी 'तब' पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होता है । 'सब' भी पूर्ववर्त्ती चरण में आ चुका है, किंतु उसके प्रयोग में पुनरुक्ति इस कारण नहीं प्रतीत होती है कि गुह ने जिस प्रकार अपनी जाति के समस्त

१—देखिए बंदन पाठक का अस्वीकृत पाठ, यही स्थल ।

सदस्यों को बुलाया होगा, उसी प्रकार उसने उनको बिदा भी दी होगी।

(१०) ११२-२-५१ 'मारग चलहु पयादेहि पाएं। जोतिषु झूठ हमारे भाएं।' कोदवराम में 'हमारे' के स्थान पर 'हमारेहिं' पाठ है। 'हिं' न केवल अनावश्यक है, वरन् असंगत भी है, क्योंकि कथन-करनेवालों को 'हिं' लगा कर औरों से अपने को अलग करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

×(११) २-१२८ : 'जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु। मुकताहल गुनगन चुनइ राम बसहु मन तासु।' कोदवराम में 'मन' के स्थान पर पाठ 'हिय' है। ग्रंथ में दोनों प्रायः पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, यथा :

तिन्हके हिय तुम्ह कहं गृह रूरे। २-१२८-५
राम बसहु तिन्हके मन माहीं। २-१२६-५
तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया। २-१३०-२
राम बसहु तिन्हके मन माहीं। २-१३०-५

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं।

(१२) २-१५२-५ : 'ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई।' कोदवराम में 'ओर' के स्थान पर पाठ 'और' है। 'ओर निबाहना' मुहावरा है—अर्थ है 'अंत तक अथवा चरम सीमा तक निबाहना', और इसका प्रयोग ग्रंथ में अन्यत्र भी मिलता है, यथा :

सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात येहु ओर निबाहू। २-२३-६
प्रनतपाल पालिहिं सब काहू। देउ दुहू दिसि ओर निबाहू। २-३१३-४

प्रस्तुत प्रसंग में भी वह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, और नितांत संगत है। 'और' या 'अउर' = 'अन्य' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है।

(१३) २-१६६-२ : 'बिधु बिष बमइ स्रवइ हिम आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी।' कोदवराम में 'बमइ' के स्थान पर 'चुवइ' पाठ है। 'चुवइ' रूप कहीं ग्रंथ भर में नहीं आया है, उसके स्थान 'चवइ' रूप मिलता है, यथा :

चंद चवइ बरु अनलकन सुधा होइ बिष तूल । २-४८

लता बिटप मांगे मधु चवहीं । ७-२३-५

इसलिए 'चुवइ' प्रयोगसम्मत नहीं है। 'बमइ' और 'चवइ' की तुलनात्मक समीचीनता पर ऊपर विचार किया जा चुका है।[1]

(१४) २-१७३-७ : कोदवराम में यह अर्द्धाली अधिक है : 'तीनि काल त्रिभुवन जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं।' किंतु इसके पूर्व ही यह कहा जा चुका है :

भएः न अहइ न अब होनिहारा। भूपु भरत जस पिता तुम्हारा।

और बाद में यह कहा गया है :

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी।

इन अर्द्धालियों के रहते हुए कोदवराम की विवेचनीय अर्द्धाली में अनावश्यक पुनरुक्ति है, इसलिए वह प्रामाणिक नहीं प्रतीत होती।

(१५) २-१७७-२ : 'मोहिं उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव संमत सब ही का। मातु उचित धरि आयेसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा।' कोदवराम में 'धरि' के स्थान पर पाठ 'पुनि' है। धरि' की प्रासंगिकता प्रकट है—'उचित धरि' का अर्थ है 'उचित समझ कर के'—'उचित निर्धारित करके'। 'पुनि' प्रसंग विरुद्ध है। 'पुनि' में ध्वनि यह है कि माता की यह आज्ञा गुरु के उपदेश और प्रजा-सचिव की सम्मति से भिन्न है, जो कि वास्तविकता नहीं है। माता की आयसु भी उसी के लिए है जिस के लिए दूसरों की सम्मति है। दूसरे चरण में भी 'धरि' आता है, किंतु उसका अर्थ भिन्न है, 'शीश धरि' का अर्थ है 'सिर पर धारण करके'।

(१६) २-१८२-५ : 'डरु न मोहिं जगु कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिंन सोचू। एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय राम दुखारी।' कोदवराम में 'कहहि' के स्थान पर 'कहिहि' पाठ है। 'कि'='चाहे' से यह प्रकट है कि 'कहहि'='कहे' पाठ ही संगत है : 'चाहे संसार मुझे नीच ही कहे।' 'कहिहि'='कहेगा' इस प्रसंग में नहीं खपता।

१—देखिए छक्कनलाल का अस्वीकृत पाठ, यही स्थल।

(१७) २-१८५-७ :कोदवराम ने निम्नलिखित अर्द्धाली भी अधिक है : 'केहि न भाव सिय लछिमन रामू। सब कहँ प्रिय हिय सदा सकामू।' 'सिय लछिमन रामू' बहुवचन कर्म के साथ क्रिया एक-वचन नहीं हो सकती, और 'भाव' एकवचन है, इसलिए 'भाव' अशुद्ध है। और 'हिय सदा सकामू' तो नितांत असंगत लगता है। 'सकामू' तो वे कहीं भी नहीं कहे गए हैं। इसलिए यह अर्द्धाली प्रामाणिक नहीं लगती।

(१८) २ १९६-७ : 'भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू।' 'रामभद्र' के स्थान पर कोदवराम में 'रामचंद्र'पाठ है। यद्यपि अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है, किंतु पहले में 'भद्र' निस्संदेह अधिक सार्थक है, और उसमें 'भ' के अनुप्रास की सुंदरता भी है जो दूसरे में नहीं है।

(१९) २-२०१-८ : 'राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिं। एह निरजोसु दोसु बिधि बामहिं।' कोदवराम में 'निरजोसु' के स्थान पर पाठ 'निरदोस' है। 'निरजोसु' का अर्थ है 'निश्चित' या 'निश्चय', और प्रस्तुत प्रसंग में इसकी समीचीनता प्रकट है । 'निरदोष' पाठ में कठिनाई यह है कि उसे भरत का विशेषण ही माना जा सकता, था किंतु उसके पूर्व का 'एह' सर्वनाम उसका निराकरण कर देता है,

*(२०) २-२०२-६ : कोदवराम में निम्नलिखित अर्द्धाली नहीं है : 'निंदहिं आपु सराहि निषादहि। को कहि सकइ बिमोह बिषादहिं। यद्यपि इस अर्द्धाली के बिना भी काम चल सकता है, किंतु इस अर्द्धाली से वर्णन में और पूर्णता आती है। पूर्व की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

एह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी।
परदछिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा।
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहिं दूषन देहीं।
एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेहु नेहू।

ऊपर की पहली अर्द्धाली में कहा गया है 'चले बिलोकन आरत भारी।' इसलिए 'को कहि सकइ बिमोह बिषादहिं' कहने से प्रसंग की परिसमाप्ति जितने ठीक ढंग पर होती है, उतनी अन्यथा नहीं

होती ; 'निंदहिं आपु सराहि निषादहिं' भी प्रसंग की मुख्य भावना के अनुकूल प्रतीत होता है।

*(२१) २-२१४-४ : 'अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना।' कोदवराम में 'रचेउ' के स्थान पर पाठ 'रचे' है । 'गृह' 'नाना' होने से बहुबचन है, इसलिए 'रचे' बहुवचन रूप ही समीचीन है।

(२२) २-२२७-८ : 'आपनि समुझि कहइ अनुगामी।' कोदव-राम में 'कहइ' के स्थान पर पाठ 'कहौं' है। कर्त्ता 'अनुगामी' है, इसलिए उसके लिए क्रिया अन्य पुरुष की 'कहइ' जितनी उपयुक्त है प्रथम पुरुष की 'कहौं' उतनी नहीं।

×(२३) २-२३२-३ : 'मसक फूंकि मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृप मदु भरतहि भाई।' कोदवराम में 'मदु' के स्थान पर पाठ है 'बरु'। असंभावनों को अपेक्षाकृत संभाव्य कल्पित करते हुए किसी विषय की निरापद असंभावना का प्रतिपादन करने में 'मकु' का प्रयोग तो हुआ ही है, 'बरु' का भी प्रयोग हुआ है, यथा :

तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहि मिलई।२-२३२

चंदु चवइ बरु अनल कन सुधा होइ बिष तूल। २-४८

गोपद जल बूड़हिं घटजोनी । सहज छमा बरु छांड़इ छोनी। २-२३२-२

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(२४) २-२४१ : 'मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि केवटु भेंटेउ राम। भूरि भायं भेंटे भरत लछिमन करन प्रनाम।' कोदवराम में 'भायं' के स्थान पर पाठ 'भाग' से। कर्त्ता राम हैं; वही 'सप्रेम' रिपुसूदन से मिले हैं, और अब 'भूरि भायं'='अत्यंत प्रेम-पूर्वक' भरत को भेंट रहे हैं। ।उनके लिए यह कहना कि 'उन्होंने भरत से भेंट किया-- यह उनका भूहि भाग्य था'—जोकि 'भाग' पाठ से अर्थ होगा— नितांत अयुक्तियुक्त है।

(२५) २-२८२-४ : 'कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुखु सुखु छति लाहू। कठिन करमगति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फलदाता।' कोदवराम में उपर्युक्त दूसरी अर्द्धाली के 'जो' के स्थान पर पाठ 'सो' है । प्रसंग यहाँ पर 'कर्म-गति' का है, इसलिए

'विधाता की शुभाशुभ फलदायकता' को यहाँ स्वतंत्र रूप से वर्ण्य मान लेना ठीक नहीं है; बल्कि 'कर्म-गति ज्ञान' की कठिनता का बोध कराने के लिए उसका ज्ञाता के रूप में लाया जाना ही ठीक लगता है।

(२६) २-३०५-६ : 'नतरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू।' कोदवराम में 'पुरजन' के स्थान पर पाठ 'परिजन' है। 'परिवारू' आता ही है, इसलिए 'परिजन' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। 'पुरजन' पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और वह प्रसंग सम्मत भी है।

(२७) २-२१३-७ : 'मोहिं लगि सबहि सहेउ संतापू। बहुत भांति दुखु पावा आपू।' कोदवराम में 'सबहिं सहेउ' के स्थान पर पाठ 'सहेउ सकल' पाठ है। 'आपु दुख पावा' दूसरे चरण में आता ही है, इसलिए 'सबहि' का अर्थ होगा 'सब लोगों ने'। 'सहेउ सकल संतापू' में कर्त्ता लुप्त होने के कारण 'आपू' को उसका कर्त्ता मानना होगा, किंतु इस अर्थ में पुनरुक्ति है—क्योंकि दूसरे चरण में यही तो कहा गया है। इसलिए पहला पाठ ही संगत और समीचीन ज्ञात होता है।

१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

१७०४ की प्रति में कुछ अस्वीकृत पाठ तो १७६२, छक्कनलाल, रघुनाथदास, बंदन पाठक, तथा कोदवराम के हैं, और कुछ अन्य हैं। नीचे इन पर विचार किया जाएगा।

(१) २-२६५ : निम्नलिखित अर्द्धाली १७०४ की प्रति में नहीं है: 'गएउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा।' कैकेयी ने दो वर राजा के सामने रक्खे हैं। उसकी वर-याचना का उत्तर राजा ने दिया या नहीं, इसका उल्लेख आवश्यक है; इसलिए यह अर्द्धाली प्रसंगसम्मत है, और इसके अभाव में प्रसंग अपूर्ण रह जाता है।

(२) २-५७-६ : निम्नलिखित अर्द्धाली भी १७०४ की प्रति में

नहीं है : 'बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी।' आगे ही आता है :

राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदुबचन बहुरि समुझाई।
यदि माता चरणों से लिपटी न होती, तो उसे उठाकर हृदय से लगाने का कोई कारण न होता। इसलिए उक्त अर्द्धाली प्रसंग के लिए आवश्यक है, और उसके बिना प्रसंग अधूरा रह जाता है।

(३) २-६१-७ : 'रामचंदु पति सो वैदेही। सोवति महि बिधि बाम न केही।' 'सोवति' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सोवत'। कर्त्ता 'वैदेही' स्त्रीलिंग है, इसलिए उसकी अकर्मक क्रिया 'सोवति' भी स्त्रीलिंग ही समीचीन है, 'सोवत' पुल्लिग नहीं।

(४) २-१२६-७ : 'फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना। सुरतरु सरिस सुभायं सुहाए। मनहु बिबुध बन परिहरि आए।' ऊपर की दूसरी अर्द्धाली के 'बिबुध' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'बिबिध' है। 'सुरतरु' के प्रसंग में 'बिबुध' ही प्रासंगिक पाठ है। 'बिबिध' बनों से आने पर भी बिटपों के लिए 'स्वभावतः सुहावना होना—'सुभायं सुहाए' होना—आवश्यक नहीं था इसलिए दूसरा पाठ युक्तिसंगत नहीं है।

(५) २-१५५-५ : 'मरम तुम्हार रामकर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि।' १७०४ में 'मरम' के स्थान पर पाठ 'परम' है। 'परम' यहाँ पर अर्थहीन है। 'मरम' पाठ ही समीचीन है। यह प्रसंग से प्रकट है।

(६) २-१६१-४ : 'सुमिरि रामपद पंकज पनही। भाथी बांधि चढ़ाइन्हि धनुही।' १७०४ की प्रति में 'धनुही' के स्थान पर पाठ 'धनही' है। यद्यपि 'धनही' पाठ से तुक अच्छा बैठता है, किंतु वह यहाँ अर्थहीन है ; पाठ 'धनुही' ही होना चाहिए, प्रसंग से यह प्रकट है।

(७) २-१६६-५ : 'श्रीहत सीय बिरह दुतिहीना। जथा अवध नर नारि मलीना।' १७०४ में 'मलीना' के स्थान पर पाठ 'बिलीना' है [illegible] कर अपना स्वतंत्र अस्तित्व खोए हुए' का यहाँ

कोई प्रसंग नहीं है। भरत ने सीता के आभूषणों से गिरे हुए दो-चार कनकबिंदु जो देखे हैं, वे कैसे 'श्री हत' और 'दुतिहीन' हो रहे हैं यहाँ तो प्रसंग इसका है। फलतः 'मलीना' पाठ ही समीचीन है।

(८ , २-२२९ : 'छत्रजाति रघुकुल जनमु राम अनुज जगु जान। लातहु मारे चढ़ति सिर नीच को धूरि समान।' १७०४ में 'अनुज' के स्थान पर पाठ 'अनुग' है। प्रसंग में दोनो खप सकते हैं, किंतु 'अनुज' अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है, क्योंकि प्रसंग यहाँ पर धूल की 'नीचता'='महत्वहीनता' और अपने व्यक्तित्व की विशेषता—जातिकुल-संबंध आदि की महत्ता—की तुलना का है।

(९) २-२५२ : 'निसि न नींद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुठि सोच। नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल संकोच।' १७०४ में 'सुठि' के स्थान पर पाठ 'सुचि' है। 'सुचि' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है। 'सुठि'='अधिक या विशेष' ही प्रासंगिक है।

(१०) २-२७६ : 'अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।' १७०४ में 'सोक' के स्थान पर पाठ 'सोच' है। प्रसंग तो 'सोक' का है ही, पूर्ववर्ती अर्द्धाली के द्वितीय चरण में, जिससे शब्द लेकर ग्रंथ भर में बाद में आने वाली हरिगीतिका की प्रारंभिक शब्दावली देने की प्रवृत्ति है, 'सोक' ही आता है :

सोक बिकल दोउ राजसमाजा। रहा न ज्ञानु न धीरजु लाजा।
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही।

इसलिए 'सोक' पाठ ही युक्तियुक्त है।

(११) २-२८९-६ : 'भरत अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीवं समता की।' १७०४ की प्रति में 'सीवं' के स्थान पर पाठ 'सीय' है। 'सीय' का कोई प्रसंग नहीं है, 'अवधि' का सामानर्थी 'सीवं' ही यहाँ होना चाहिए, यह प्रकट है।

×(१२) २-३१६-५ : 'चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।' १७०४ में 'जामिक' के स्थान पर पाठ 'जामनि' है। तुलनीय प्रयोग ग्रंथ भर में नहीं हैं।

अरण्य कांड

१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

१७०४ में केवल एक स्थान पर ऐसा पाठ है जो अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर ज्ञात होता है, और जो यद्यपि विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलता, कुछ अन्य प्रतियों में—यथा सं० १८४१ में—मिल जाता है। इस पर नीचे विचार किया जाता है।

×(१) ३-१३ : 'गीधराज से भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ। गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ।' १७०४ में 'बढ़ाइ' के स्थान पर पाठ 'दृढ़ाइ' है। 'प्रीति' कर्म के साथ 'बढ़ाना' तथा 'दृढ़ाना' दोनों के रूप मिलते हैं, यथा :

कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोलीं बिहंसि नयन मुंह मोरी। २-२७-८

यह बिचारि नहिं करहु हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ। २-५६

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखउं प्रान जानकिहिं लाई। २ ५९-२

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।

पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाई। ४-५

प्रसंग में भी दोनों पाठ खप सकते हैं।

कोदवराम के स्वीकृत पाठभेद

कोदवराम में भी एक स्थान पर इस प्रकार का पाठ है जो यद्यपि १७०५ तथा कुछ अन्य प्रतियों—यथा सं० १८४१—में मिलता है, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलता, किंतु जो अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होता है। इस पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) 'धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि देत सुख मंदा।' कोदवराम में 'सुख' के स्थान पर पाठ 'दुख' है। प्रसंग नारी का है। 'धीमा' के अतिरिक्त 'मंदा' शब्द का प्रयोग केवल नीच' या 'निंदनीय आचरण वाला' के अर्थ में हुआ है, यथा :

उपरोहिती करम अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा। ७-४८-६
मातु मंद में साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली। २-२६१-३
एक मंद मैं मोहबस कुटिल हृदय अज्ञान। ४-३
तिन्हहिं ज्ञान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ भावन। ६-७८-१

यहाँ भी वह 'नारी' के विशेषण के रूप में 'निंदनीया' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'सुख' पाठ की संगति इसलिए अप्रस्तुत की ध्वनि की सहायता से 'दुःख' का आशय ग्रहण करने पर ही लग सकती है। 'सुखमंदा' को समस्त पद मान कर 'सुख की हानि' आशय लेने का कोई कारण नहीं ज्ञात होता है। 'दुःख' पाठ में यह कठिनाई नहीं है, अर्थ होगा 'मंदा नारी धर्म-कमल-कुल को दुःख देती है।'

बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में भी एक ही स्थल पर ऐसा पाठ है जो यद्यपि कोदवराम तथा १७०४ में मिलता है, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलता, किंतु अन्य पाठ की अपेक्षा उत्कृष्टतर प्रतीत होता है। इस पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) ३-१७-११ : अन्य पाठ 'कुंआर' है, उसके स्थान पर बंदन पाठक' में पाठ 'कुमार' है। यद्यपि दोनों रूप ग्रंथ में मिलते हैं, किंतु जिस उक्ति के उत्तर में राम ने इस शब्द का प्रयोग किया है, उसमें 'कुमारी' आया हुआ है :

तातें अब लगि रहिउं कुमारी।

इसलिए 'कुमारी' की तुलना में 'कुमार' पाठ अधिक समीचीन है।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास की प्रति में भी एक ही स्थल पर ऐसा पाठ है जो बंदन पाठक, कोदवराम तथा १७०४ में मिलता है, किंतु विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलता, और जो उक्त अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होता है। नीचे इस पर विचार किया जाता है।

(१) ३-४०-६ : 'पाटल पटल पनास रसाला।' रघुनाथदास में 'पनास' के स्थान पर पाठ 'परास' है। 'पनस' के होते हुए 'पनास'

अर्थहीन लगात है। 'परास'='पलाश' की सार्थकता प्रकट है।

छक्कनलाल के स्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल में चार स्थलों पर इस प्रकार के पाठ हैं जो रघुनाथदास, बंदन पाठक, कोदवराम तथा १७०४ मिलते हैं, और १७२१ तथा १७६२ में नहीं मिलते, किंतु उक्त अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। नीचे हम इनके संबंध में विचार करेंगे।

(१) ३-१२-१ : 'एवमस्तु करि रमानिवासा।' छक्कनलाल में 'करि' के स्थान पर पाठ 'कहि' है। अन्यत्र ग्रंथ भर में 'एवमस्तु' के साथ 'कहना' या उस का कोई समानार्थी ही आया है, यथाः

एवमस्तु मुनिसन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ। ३-४२
एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ। १-१५१-७
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। ५-४६-८
एवमस्तु कहि रघुकुल नायक। ७-८५-१

इसलिए 'कहि' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(२) ३-१६-७ : 'येहि कर फल मन विषय बिरागा।' 'मन' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'पुनि' है। इस प्रकार के प्रसंग में 'मन' अनावश्यक था, यथाः

जानिअ तबहि जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा।

उसके स्थान पर 'तदनंतर' वाची 'पुनि' कुछ संगत लगता है, क्योंकि पूर्व की अर्द्धाली में आए हुए कथन में 'प्रथमहि' आया है:

प्रथमहि बिप्रचरन अति प्रीती। निज निज करम निरत स्रुति रीती।

और बाद के चरण वाले कथन में 'तब' आया है :

तब मम धर्म उपज अनुरागा।

(३) ३-२७-११ : 'निगम नेति सिव ध्यान न पावा। माया मृग पाछे सोइ धावा।' 'सोइ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'सो' है। '-इ'='ही' अनावश्यक और अप्रासंगिक है, क्योंकि मृग के पीछे दौड़ने के कार्य का कोई निकट संबंध राम के अवतार से बताना प्रसंग में अभीष्ट नहीं लगता है। अभीष्ट तो यह ध्वनि लगती है कि 'जिसका ध्यान भी अग्राह्य है, वह मृग के पीछे पड़ा हुआ है (यद्यपि

यह वस्तुतः केवल-उसकी अवतारी लीला का एक दृश्य है, यह हमें भूलना न चाहिये)।' यहाँ पर अतः 'सो' ही पर्याप्त और प्रासंगिक जान पड़ता है।

(४) ३-३०-३ : 'जनक सुता परिहरेउ अकेली। आएउ तात बचन मम पेली। निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम सीता आस्रम महुं नाहीं।' अंतिम चरण का पाठ छक्कनलाल में है : 'मम मन सीता आस्रम नाहीं।' पहले पाठ में यह ध्वनि नहीं है कि सीता के वहाँ न होने की बात अनुमान-सिद्ध है—जो कि कथन से निकलनी चाहिए थी—क्योंकि राम मानवीय लीला कर रहे हैं। दूसरे पाठ से यह ध्वनि निकलती है, इसलिए वह अधिक युक्तियुक्त लगता है।

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

१७२१ में उपर्युक्त ढंग का पाठ-सुधार केवल दो स्थलों पर दिखाई पड़ता है। इन पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) ३-१०-१ : 'अगस्त्य' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'अगस्ति'। 'अगस्त्य' रूप अन्यत्र नहीं मिलता, सर्वत्र 'अगस्ति' ही मिलता है, यथा :

बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सन संग। ७-६५
सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। ३-१२-६

इसलिए 'अगस्ति' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(२) ३-१८-२ : 'खरदूषन पहं गइ बिलषाता। धिग धिग तव बल पौरुष भ्राता।' १७२१ में 'बिलषाता' के स्थान पर पाठ है 'बिलपाता'। 'बिलषाता' अन्यत्र नहीं प्रयुक्त हुआ है, 'बिलपाता' ही प्रयुक्त हुआ है, यथा :

गगन पंथ देषी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता। ४-६-४

और शूर्पणखा के इस क्रंदन को भी बिलाप ही कहा गया है :

अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन। ३-२८

इसलिए 'बिलपाता' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत और समीचीन है।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ के अस्वीकृत पाठों पर विचार नीचे किया जाता है।

(१) ३-५-१६ : 'पति प्रतिकूल जन्म जहं जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई।' १७६२ में 'जन्म' के स्थान पर पाठ 'जन्मि' है। 'जन्म' = 'जन्म लेती है' सामान्य वर्तमान का रूप है, और 'जन्मि'- 'जन्म लेकर' पूर्वकालिक क्रिया का। 'बिधवा होइ' सामान्य वर्त्तमान के साथ 'जन्म' सामान्य वर्त्तमान की समीचीनता प्रकट है। 'जन्मि' और 'आई' दो पूर्वकालिक क्रियाओं का होना, और किसी भी मुख्य क्रिया का न होना ठीक नहीं लगता है।

(२) ३-१०-१७ : 'मुनिहि राम बहु भांति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा।' १७६२ में 'जाग' के स्थान पर पाठ 'जान' है। 'जगावा' का कुछ न कुछ परिणाम होना चाहिए, 'न जाग' की संगति इसलिए प्रकट है। आगे की भी पंक्तियों में 'जगाने' का प्रयास है, सफल होता है :

भूप रूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप देखावा।
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीनमनि फनिबर जैसें।

'न जान' इसलिए यहाँ प्रसंगसम्मत नहीं है।

(३) ३-१६ : 'निःकाम' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'निष्काम' है। संधि में 'निः' का 'निर्' रूप ही मिलता है, अन्यथा वह ज्यों का त्यों रहने दिया गया है, यथा :

कपि तव दरस भइउं निःपापा। ६-५८-१
रामकृपा तसि नहिं करहिं जसि निःकेवल प्रेम। ६-११७

'निष्काम' इसलिए प्रयोगसम्मत नहीं लगता है।

×(४) ३-१७-६ : 'होइ बिकल सक मनहिं न रोकी। 'मनहिं न' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'मन नहिं' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत लगते हैं :

फेरत मनहिं मातुकृत खोरी। २-१३४-५
भए मगन मन सके न रोकी। ७-३२-२

(५) ३-१९-१२ : 'जौ न होइ बल घर फिरि जाहू ।' 'घर' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'खर'। किंतु यह वाक्य जिस संदेश के उत्तर में कहा गया है, उसे खर और दूषण ने सम्मिलित रूप से भेजा था :

सचिव बोलि बोले खर दूषन ।

और यह उत्तर दोनों को सुनाया गया है, जिससे दोनों क्षुब्ध भी हुए हैं :

सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ ।

इसलिए 'घर' पाठ की संगति और 'खर' पाठ की असंगति प्रकट है ।

(६) ३-२०-६ : 'आयुध अनेक प्रकार । सनमुख ते करहिं प्रहार ।' 'प्रहार' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'अपार' है । 'अपार' की पुनरुक्ति और निरर्थकता 'अनेक' की उपस्थिति में प्रकट है; और 'अनेक' के साथ 'प्रकार' की संगति भी प्रकट है ।

× (७) ३-२९-१ : 'हा जगदैक बीर रघुराया ।' १७६२ में 'जगदैक' के स्थान पर पाठ है 'जग एक'। प्रसंग से अर्थ होना चाहिए 'जगत के एक ही (निराले) बीर' और यह समासयुक्त पाठ 'जगदैक' से तो निकल ही सकता है, यथा :

मायातीतं सुरेशं खलबध निरतं ब्रह्म वृन्दैक देवं । ६-०-१ श्लो०

'जग एक' पाठ से भी 'एक' पर बल देने से निकल सकता है ।

× (८) ३-४२-१ : 'सुनहु उदार परम रघुनायक ।' 'परम' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सहज'। 'उदार' के विशेषण के रूप में 'परम' तथा 'सहज' दोनों 'संगत' लगते हैं, यद्यपि अन्यत्र 'उदार' अकेला ही आया है, और इसलिए तुलनीय प्रयोग का अभाव है ।

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

१७२१ में कुछ तो १७६२ के अस्वीकृत पाठ हैं, और उनके अतिरिक्त एक अन्य है, जिस पर नीचे विचार किया जाता है ।

(१) ३-१०-४ : 'हैं बिधि दीनबंधु रघुराया । मोसे सठ पर करिहहिं दाया । १७२१ में 'हैं' के स्थान पर पाठ 'हे' है । अभी तक

वक्ता को राम के दीनबंधुत्व पर दृढ़ भरोसा नहीं है, जैसा आगे की निम्नलिखित पंक्तियों से ध्वनित होता है :

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं । मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ।
मेरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं । भगति बिरति न ज्ञान मन माहीं ।

इसलिए दीनबंधुत्व में संदेह-वाचक 'हैं' पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ तथा १७२१ के कुछ अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त छक्कन लाल में कुछ अन्य अस्वीकृत पाठ भी हैं। नीचे इन पर विचार किया जाता है ।

×(१) ३-५-४ : 'कह रिषिबधू सरस मृदुबानी । नारि धरम कछु ब्याज बखानी ।' छक्कनलाल में 'सरस' के स्थान पर पाठ 'सरल' है । प्रसंग में दोनों खप सकते हैं और प्रयोगसम्मत भी दोनों प्रतीत होते हैं, यथा :

बार बार सब लागहि पाए । कहहिं बचन मृदु सरल सुभाए । २-११६-५
सुनी बहोरि मातु मृदुबानी । सील सनेह सरल रस सानी । २-१७६-८

* (२) ३-६ : 'निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन्ह । सकल मुनिन्ह के आस्रमहि जाइ जाइ सुख दीन्ह ।' छक्कनलाल में 'आस्रमहि' के स्थान पर पाठ 'आस्रमन्हि' है । 'मुनिन्ह के' के साथ बहुवचन रूप 'आस्रमन्हि' अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है ।

(३) ३-१७-१४ : 'प्रभु समरथ कोसलपुर राजा ।' छक्कनलाल में 'समरथ' के स्थान पर पाठ 'समथ' है । शब्द दोनों एक ही हैं, अंतर उनमें तद्भव और तत्सम का है । अन्यत्र ग्रंथ में शब्द का 'तत्सम' रूप कहीं नहीं आया है, तद्भव ही प्रयुक्त हुआ है, यथा:

नाम सुमति समरथ हनुमानू । १-१७-८

इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत है ।

(४) ३-२०-१३ : 'सृगाल' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'सृकाल' है । 'सृकाल' अन्यत्र नहीं आया है, 'सृगाल' ही अन्यत्र भी आया है, यथा :

रोवहिं बहु सृगाल खर स्वाना । ६-१०-२७
नहिं गजारि जस बधे सृगाला । ६-३०-३

इसलिए 'सृगाल' ही प्रयोगसम्मत लगता है।

(५) ३-२० : 'कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं।' छक्कनलाल में 'खर्पर' के स्थान पर पाठ 'खप्पर' है। प्रसंग से यह प्रकट है कि अर्थ 'खोपड़ी' निकलना चाहिये। दोनों का प्रयोग इस अर्थ हुआ में है, यथा:

जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी। ५-३५ छं०
खप्परन्हि खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट सुरपुर जावहीं। ६-८८ छं०

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं।

(६) ३-२८-१६ : 'सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुं चरन बंदि सुख माना।' छक्कनलाल में 'रिसाना' के स्थान पर पाठ 'लजाना' है। यहाँ पर प्रसंग लज्जा का नहीं है। लज्जा का नाट्य भी संगत नहीं है। सीता ने रावण से यही तो कहा है :

आइ गएउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा।

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा।
इसमें लज्जित करने की कोई बात नहीं था, भयभीत करने की बात थी। इस कथन पर रावण ने भी क्रोध का ही नाट्य किया है, यद्यपि वह भयभीत है :

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगन पथ आतुर भय रथ हांकि न जाइ॥ ३-२८

फलतः 'रिसाना' ही संगत लगता है, 'लजाना' नहीं।

(७) ३-४० : 'फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निय-राइ। पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ।' छक्कनलाल में 'भारन नमि' के स्थान पर पाठ 'भरनम्र' है। 'फल भर' अर्थ-हीन है, और भाषा के प्रयोगों की दृष्टि से भी शुद्ध नहीं है। 'भारन नमि' पाठ ही शुद्ध और सार्थक लगता है।

(८) ३-४४-५ : 'धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि देति सुख मंदा।' छक्कनलाल में 'देति' के स्थान पर पाठ

'दहै' है। प्रसंग नारी का है। आशय प्रकट है : 'समस्त धर्म कमलों के समान हैं, जिन्हें यह मंदा हेमंत ऋतु होकर सुख-विहीन कर देती है।' 'मंदा' शब्द, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, निंदनीया' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, और नारी के लिये आया है। 'देति' क्रिया के साथ 'तिन्हहिं' तथा 'सुख' दो कर्म आ सकते हैं, किंतु 'दहै' के साथ 'सुख' मात्र आ सकता है, 'तिन्हहिं' बेकार हो जाता है। 'देति सुख' पाठ की संगति पर ऊपर विचार हो चुका है।[1]

×(६) ३-४६-२ : 'दीपसिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।' छक्कनलाल में 'जुवति तन' के स्थान पर पाठ 'जुवती' है। अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है।

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२, १७२१ तथा छक्कनलाल के कुछ अस्वीकृत पाठ तो रघुनाथदास में हैं ही, कुछ अन्य अस्वीकृत पाठ भी हैं। इन पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) ३-६-६ : 'केहि विधि कहौं जाहु अब स्वामी।' रघुनाथदास में पाठ 'अब' के स्थान पर 'बन' है। राम अन्य बन में जाने के लिये अत्रि से अनुमति चाहते हैं :

आयेसु होइ जाउं बन आना।

ये शब्द उसीके उत्तर में हैं। बन में तो राम थे ही, इसलिए 'बन' पाठ अर्थहीन है। 'अब' पाठ की प्रासंगिकता प्रकट है : 'अब आप चले जावें, यह मैं कैसे कहूँ ?'

(२) ३-१०-१२ : 'कबहुंक फिरि पाछें पुनि जाई।' रघुनाथदास में 'पुनि' के स्थान पर पाठ 'चलि' है। सुतीक्ष्ण की 'निर्भर प्रेम मग्नता' का वर्णन किया जा रहा है, पूर्व की पंक्ति है :

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउं कहाँ नहिं बूझा।

पहले पाठ में 'फिरि' और 'पुनि' में जो पुनरुक्ति प्रतीत होती है, वह वस्तुतः पुनरुक्तिवदाभास ही है; क्योंकि 'फिरि' का अर्थ 'घूम

१—देखिए कोदवराम के स्वीकृत पाठ, यही स्थल।

कर' है। दूसरे में 'चलेउं' और 'चलि' में पुनरुक्ति प्रकट है। फिर, आगे चल कर पीछे लौटने के प्रसंग में 'पुनि' = 'पुनः' का प्रयोग 'जाई' के रहते हुए 'चलि' की अपेक्षा अधिक उपयुक्त भी प्रतीत होता है। इसलिए 'पुनि' पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(३) ३-११-१८ : 'तदपि अनुज श्री सहित खरारी। वसतु मनसि मम काननचारी।' रघुनाथदास में 'बसतु' के स्थान पर पाठ 'बसहु' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं। किंतु 'वसतु' तत्सम रूप है। ऊपर की चौदह पंक्तियों में तत्सम शब्दावली ही प्रयुक्त हुई है, और इस अर्द्धाली में भी 'मनसि' तत्सम रूप है, इसलिए 'वसतु' पाठ यहाँ अधिक समीचीन लगता है।

(४) ३-१४ : 'ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ।' रघुनाथदास में 'जीव' के स्थान पर पाठ 'जीवहि' है। 'ईश्वर-जीव-भेद' की समीचीनता प्रकट है। किंतु 'जीवहि' द्वितीया का रूप है—अर्थ होगा 'जीव को' जो अर्थहीन है। उससे षष्ठी 'जीव का' अर्थ नहीं लिया जा सकता।

(५) ३-१७-६ : 'भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी। होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबि मनि द्रव रबिहि बिलोकी।' रघुनाथदास में 'सक' के स्थान पर पाठ 'सकि' है। अर्थ 'सकता है' सामान्य वर्त्तमान का निकलना चाहिए, प्रसंग से यह प्रकट है। फलतः सामान्य भूत का रूप 'सकि' = 'सकी' अथवा पूर्वकालिक रूप का 'सकि' = 'सक कर के' यहाँ ठीक नहीं हैं। 'सक' से ही 'सकती है' सामान्य वर्त्तमान का अर्थ निकलता है, यथा;
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ। १-२४२-६
राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भांति उर दारुन दाहू। २-५५-१

(६) ३-१८ : 'कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बांधत सोह क्यों। मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटिसों जुग भुजग ज्यों।' रघुनाथदास में 'लरत' के स्थान पर पाठ 'लसत' है।' 'सों' विभक्ति से प्रकट है कि पहला ही पाठ संभव है। यदि 'लसत' होता तो 'सग' होना चाहिए था। उक्ति चमत्कार के ध्यान से भी 'करोड़ों' दामिनियों

के साथ 'दो भुजंगों' का 'लड़ना' जितना अद्भुत लगता है, उतना उनके साथ 'शोभा देना' नहीं, और जटाजूट को दोनों हाथों से बाँधने की क्रिया भी उसके 'लसने' की अपेक्षा 'लरने' से अधिक व्यक्त होती है।

(७) ३-२८-५ : 'मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।' रघुनाथदास में 'बोला, डोला' के स्थान पर पाठ 'बोली, डोली' है। 'बोली, डोली' स्त्रीलिंग क्रियाएँ 'बचन' और 'मन' जैसे पुल्लिंग कर्मों के लिए ठीक नहीं हैं; इनके लिए 'बोला, डोला' पुल्लिंग क्रियाएँ ही ठीक हैं।

(८) ३-२९-१ : 'हा जगदैक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेउ दाया।' रघुनाथदास में 'जगदैक' के स्थान पर पाठ 'जगदीस' है। 'जगदीस' को बीर कहना असंगत ही है, 'बीर' के साथ 'जगदैक'—अर्थात् जगत् के एक ही (निराले) वीर—ही ठीक होगा।

(९) ३-२९-११ : रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होई। निर्भय चलसि न जानेहि मोही।' रघुनाथदास में 'जानेहि' के स्थान पर पाठ 'जानेसि' है। 'जानता है' मध्यम पुरुष वर्त्तमान के अर्थ में 'जानेहि' ही प्रयोग-सम्मत है, यथा :

जानेहि नहीं मरम सठ मोरा। मोर अहार जहां लगि चोरा। ५-३-३
रे कपिपोत न बोलु संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी। ६-२०-१

'जानेसि' का प्रयोग अन्यपुरुष भूत के लिए हुआ है :

बिरह बिकल बलहीन मोहिं जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल।। ३-३७

फलतः 'जानेहि' पाठ ही शुद्ध लगता है, 'जानेसि' नहीं।

×(१०) ३-२९ : 'हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ। तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ।' रघुनाथदास में 'राखिसि' के स्थान पर पाठ 'राखेसि' है। 'राखिसि' रूप में कर्त्ता की हीनता है जो भावना है; वह 'खल' कर्त्ता के उपयुक्त ही है। 'राखेसि' में वैसी हीनता की भावना कदाचित् नहीं है। अन्यथा दोनों पाठ एक से हैं।

(११) ३-३८-३ : 'अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महुं मैं अति मंद अघारी।' रघुनाथदास में 'अति मंद' के स्थान पर पाठ 'मतिमंद' है। 'मतिमंद' का अर्थ होता है 'मंदबुद्धि', और यह भाव ऊपर की अर्द्धाली में आए हुए 'जड़मति' में अन्तर्भुक्त है :

अधम जाति मैं जड़मति भारी।

इसलिए 'मतिमंद' पाठ में पुनरुक्ति है। 'अति मंद='अत्यन्त निंदनीय' में यह त्रुटि नहीं है। 'मंद' का यह प्रयोग साधारण है, यथा :

मातु मंद मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली। २-२६१-३

तिन्हहि ज्ञान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ भावन। ६-७८-१

(१२) ३-३६-४ : रघुनाथदास में 'सत्य' के स्थान पर पाठ 'सत्त' है। 'सत्य' ही ग्रंथ भर में प्रयुक्त मिलता है, 'सत्त' नहीं। इसलिए 'सत्य' ही प्रयोगसम्मत है।

वंदन पाठक के अस्वीकृत पाठभेद

वंदन पाठक में कुछ अस्वीकृत पाठ १७२१, छक्कनलाल, तथा रघुनाथदास के हैं, और कुछ उनके अतिरिक्त हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जायगा।

(१) ३-२-८ : 'सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता।' वंदन पाठक में 'ताहि' के स्थान पर पाठ 'तेहि' है। यद्यपि 'ताहि' और 'तेहि' दोनों रूप ग्रंथ में मिलते हैं, किंतु ऊपर 'ताहि' का प्रयोग पूर्ववर्ती अर्द्धाली में हुआ है :

मित्र करै सतरिपु कै करनी। ता कहुं बिबुध नदी बैतरनी।

इसलिए 'ताहि' रूप अधिक समीचीन लगता है।

× (२) ३-७-२ : 'आगे रामु अनुज पुनि पाछे। मुनिवर बेष बने अति काछे।' 'काछे' के स्थान पर वंदन पाठक में पाठ 'आछे' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं। 'काछे' का अर्थ होगा 'वस्त्रादि से सुसज्जित', और 'आछे' का होगा 'अच्छे'।

(३) २-६-७ : 'जानत हूं पूंछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी।' वंदन पाठक में 'सबदरसी' के स्थान पर पाठ है

'समदरसी'। 'समदर्शन' का कोई प्रसंग नहीं है, प्रसंग 'सर्वदर्शन' या 'सर्वज्ञता' का ही है, जो प्रसंग से प्रकट है।

(४) ३-२५-७ : 'भइ मम कीट भृंग की नाईं। जहं तहं मैं देखउं दोउ भाई।' बंदन पाठक में 'मम' के स्थान पर पाठ 'मति' है। 'मति' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है। मारीच का एक बार राम से जो पाला पड़ा था, उसको स्मरण कर उसकी क्या दशा हो रही है, वह इसका वर्णन कर रहा है। पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

मुनि मख राखन गएउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा।
सत जोजन आएउं छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किएं भल नाहीं।

इस प्रसंग में 'भय' पाठ की समीचीनता प्रकट है, अर्थ होगा 'मेरी तो कीट भृंग की नाईं हुई है ...।'

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

कोदवराम में कुछ अस्वीकृत पाठ १७६२, १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास तथा वंदन पाठक के हैं, और कुछ उनके अतिरिक्त भी हैं। इन पर नीचे क्रमशः विचार किया जावेगा।

×(१) ३-१-१ : 'पुरनर भरत प्रीति मैं गाई।' कोदवराम में 'पुरनर' के स्थान पर 'पुरजन' है। प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं।

×(२) ३-३-१ : 'भाजि' के स्थान पर कोदवराम में 'भागि' है। दोनों रूप प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

भागि भवन पैठीं अति त्रासा। १-९६-५
चले भागि भय मारुत ग्रसे। ६-३२-४
रनतें निलज भाजि गृह आवा। ६-८५-७
जो रन भूप भाजि नहि जाहीं। ६-६०-७

(३) ३-२-८ : 'सब जगु ताहि अनलहु ते ताता।' कोदवराम में 'अनलहु' के स्थान पर पाठ 'अनल' है। 'अनलहु' पाठ में 'हु' के कारण बल अधिक है, जो प्रसंग में अपेक्षित लगता है, यद्यपि 'अनल' पाठ में छंद की गति कुछ सुधरी हुई है।

(४) ३-५-२ : 'रिषि पतनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई। दिव्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए।' कोदवराम में 'देइ' के स्थान पर पाठ 'दीन्ह' है। पहले चरण में जो 'सुख अधिकाई' है, उसकी अभिव्यक्ति 'आशिष' देने मात्र से नहीं हो सकती : आशिष देना और निकट बैठाना भी सामान्य शिष्टाचार की बातें हैं। उसकी अभिव्यक्ति की गई है 'दिव्य बसन भूषन' पहना कर, इसलिए 'आसिष' केलिए प्रधान क्रिया के रूप में 'दीन्ह' की अपेक्षा पूर्वकालिक क्रिया का रूप 'देइ' अधिक प्रसंग-सम्मत लगता है।

(५) ३-५-५ : 'मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी। अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।' कोदवराम में 'मितप्रद सब' के स्थान पर पाठ है 'मित सुख-प्रद'। अगली अर्द्धाली में भर्ता को 'अमित दानि' कहा गया है, 'अमित सुख दानि' नहीं, इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(६) ३-५-१४ : 'धर्म बिचार समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई। बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।' कोदवराम में दूसरे चरण के 'सो' के स्थान पर पाठ 'ते' है। तीसरे और चौथे चरणों में 'जोई, सोई' आए हैं, इसलिए 'सो' पाठ ही संगत लगता है, 'ते' नहीं।

(७) ३-६-२ : 'तब मुनिसन कह कृपानिधाना। आयेसु होइ जाउं बन आना।' कोदवराम में 'होइ' के स्थान पर पाठ 'होउ' है। 'होउ' शुभाशुभ कामना या संभावना का ही वाचक हो कर ग्रंथ में प्रयुक्त हुआ है, इसलिए यहाँ वह प्रयोग विरुद्ध है। यहाँ 'होइ' = 'हो' या 'मिले' ही प्रयोगसम्मत लगता है।

×(८) ३-७-३ : 'आगें रामु अनुज पुनि पाछें।' कोदवराम में 'अनुज' के स्थान पर पाठ 'लषन' है। दोनों पाठ प्रसंग में प्रयुक्त हो सकते हैं।

×(९) ३-७-३ : 'उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।' कोदवराम में 'सोहइ' के स्थान पर पाठ 'सोहति'

है। दोनों अर्थ में एक से हैं, और प्रायः एक ही प्रकार से ग्रंथ में प्रयुक्त भी हैं।

×(१०) ३-७-४ : 'सरिता वन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा।' कोदवराम में 'बर' के स्थान पर पाठ 'सब' है। प्रसंग में दोनों रूप सकते हैं।

(११) १-१-७ : 'जानत हूं पूंछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी।' कोदवराम में पाठ 'तुम्ह' के स्थान पर 'उर' है। 'उर-अंतरजामी' पाठ ग्रंथ में उन्हीं स्थलों पर है, जहाँ पर राम को संबोधित कर उनसे किसी वर की याचना की गई है, अथवा अपनी किसी कामना का निवेदन किया गया है, यथा :

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी।...
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी। ५-४९-५,७
मन भावत वर मांगउं स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी। ७-८४-८

विवेचनीय स्थल पर 'हृदय' का या 'भावना' कोई प्रसंग नहीं है, इसलिए केवल 'अंतरजामी'='प्रत्येक दृश्य पदार्थ के आंतरिक तथ्य के ज्ञाता' यथेष्ट है।

×(१२) २-१ : 'सकल मुनिन्ह के आस्रमहि जाइ जाइ सुख दीन्ह।' कोदवराम में 'आस्रमहि' के स्थान पर पाठ 'आस्रन' है। 'जाना' क्रिया के साथ दोनों रूपों का प्रयोग ग्रंथ में मिलता है, यथा:

तेहि आस्रमहि मदन जब गएऊ। निज माया बसंत निरमएऊ। १-१२६-१
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आस्रम गए। २-२२६ छं०
अत्रि के आस्रम जब प्रभु गएऊ। सुनत महामुनि हरषित भएऊ। ३-३-४

इसलिए दोनों रूप प्रयोगसम्मत हैं।

(१३) ३-१३-३ : 'अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही।' कोदवराम में 'मुनिद्रोही' के स्थान पर पाठ 'सुरद्रोही' है। ऊपर अस्थि-समूह देखकर राम ने उसके संबंध में प्रश्न किया है, तो उन्हें उत्तर मिला है :

निसिचर निकर सकल मुनि खाए।

फलतः यहाँ भी रावण-वध का उपाय पूछने के प्रसंग में 'मुनिद्रोही' पाठ 'सुरद्रोही' की अपेक्षा अधिक प्रसंगसम्मत लगता है।

(१४) ३-११-६ : 'ऊमरि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'डूमरि' है। तुलनीय प्रयोगों का अभाव है। बोलचाल की अवधी में साधारणतः 'ऊमरि' ही आता है, इसलिए वह अधिक समीचीन लगता है।

(१५) ३-१३-८ : कोदवराम में निम्नलिखित अर्द्धाली नहीं है :

ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला।

इस अर्द्धाली के बिना नीचे आने वाली अर्द्धाली की संगति नहीं लगती :

ते तुम्ह सकल लोकपति साईं। पूंछहु मोहि मनुज की नाईं।

इसलिए वह प्रसंग में आवश्यक है।

(१६) ३-१३-१० : 'यह वर मांगौं कृपानिकेता। बसहु हृदयं श्री अनुज समेता।' कोदवराम में 'श्री' के स्थान पर पाठ 'सिय' है। 'कृपानिकेता' (राम के लिए) और 'अनुज' (लक्ष्मण के लिए) के साथ में 'श्री' (सीता के लिए) जितना युक्तियुक्त लगता है, सीता का नामयुक्त उल्लेख उतना नहीं।

×(१७) ३-१६-६ : 'प्रथमहिं बिप्रचरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती।' कोदवराम में 'कर्म' के स्थान पर पाठ 'चरन' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

×(१८) ३-१६-७ : 'येहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा।' कोदवराम में 'धर्म' के स्थान पर पाठ चरन है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

(१९) ३-१७-८ : 'तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। येह संजोग बिधि रचा बिचारी।' कोदवराम में 'येह' के स्थान पर पाठ 'अस' है। यह राम से शूर्पणखा का पहला वाक्य है। इसमें 'अस' बिना किसी 'कस' के स्थानापन्न के आए युक्तियुक्त नहीं लगता। 'येह' ही युक्तियुक्त लगता है।

×(२०) ३-१७-१० : कोदवराम में 'कुमारी' के स्थान पर पाठ

'कुआंरी' है। दोनों रूप ग्रंथ में मिलते हैं, इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(२१) ३-१८ : 'आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट। जथा बिलोकि अकेल बालरबिहि घेरत दनुज।' कोदवराम में 'धावत' के स्थान पर पाठ 'धावहु' है। तीसरे और चौथे चरणों में एक अप्रस्तुतोक्ति आई है, उसमें मुख्य क्रिया 'घेरत' है, इसलिए उसके अनुरूप होने के कारण 'धावत' पाठ की समीचीनता प्रकट है; 'धावहु' उतना समीचीन नहीं लगता।

(२२) ३-१६ छं० : 'उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा। सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा।' कोदवराम में 'धाए' के स्थान पर पाठ 'धावहु' है। यदि पाठ 'धावहु' मान लिया जावे, तो 'धावहु' की उस आज्ञा का कोई पालन हुआ नहीं दिखाई पड़ता है। पहले पाठ में 'धरहु' का आदेश और उसके अनंतर अविलंब उसके पालन का प्रयास दोनों दिखाए गए हैं। इसलिए 'धाए' पाठ ही संगत लगता है।

(२३) ३-१६ छं० : 'भयावहा' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'भयामहा' है। 'भयामहा' की अशुद्धि तथा 'भयावहा' का शुद्ध होना प्रकट है।

*(२४) ३-२२-६ : 'रूप रासि बिधि नारि संवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी।' कोदवराम में 'नारि' के स्थान पर पाठ 'रची' है। 'नारि' ऊपर वाली अर्द्धाली में ही आया है :

तिन्ह के संग नारि एक स्यामा।

इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है। प्रसंग में वह रूप आता है, और प्रयोगसम्मत भी है, यथा :

बिबिध भांति मंगल कलस गृह गृह रचे संवारि। १ ३४५

जेहि बिरंचि रचि सीय संवारी। तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी। १-२२३-७

(२५) ३-२२-१० : 'तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं उपहासा।' कोदवराम में 'करहिं' के स्थान पर पाठ

'करी' है। 'करी' का अर्थ 'किया' होना चाहिए, किन्तु तुलनीय प्रयोग का अभाव है। एक स्थान पर 'करी' जो आता है, वह 'करि' पूर्वकालिक का विकृत रूप है :

प्रभु देखि हरष बिषाद सुर उर बदत जय जय जय करी। ६-१०१ छं०

इसलिए 'करहिं' पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है, 'करी' नहीं।

(२६) ३-२३ : 'लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद। जनकसुता सन बोले बिहँसि कृपा सुख बृंद।' कोदवराम में 'मूल' के स्थान पर पाठ 'फूल' है। 'फल और कंद' के साथ स्पष्ट ही 'मूल' अधिक प्रसंगोचित लगता है।

×(२७) ३-२७-१४ : 'तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा।' कोदवराम के 'परेउ' के स्थान पर पाठ 'परा' है। प्रसंग में दोनों रूप खप सकते हैं।

(२८) ३-२८-१० : 'इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा।' कोदवराम में 'बल लेसा' के स्थान पर पाठ 'लवलेसा' है। प्रसंग यहाँ 'डर' का है :

जाके डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं।
सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं।

यहाँ 'बल लेसा' जैसा संगत लगता है, वैसा 'लवलेसा' नहीं।

(२९) ३-२८-११ : 'नाना बिधि कहि कथा सुनाई। राजनीति भय प्रीति देखाई।' कोदवराम में 'सुहाई' के स्थान पर पाठ 'सुनाई' है। इस प्रसंग में प्रमुख कार्य है 'राजनीति भय प्रीति' का प्रदर्शन; उसके लिए ही कथाओं की सहायता लेना संगत होगा। मुख्य कार्य के रूप में 'कथाओं का कह सुनाना' प्रसंग से सिद्ध नहीं है। इसलिए 'सुहाई' पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है।

(३०) ३-२८-१२ : 'कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं।' कोदवराम में 'बोलेहु' के स्थान पर पाठ 'बोलहु' है। रावण की बातें सुनकर सीता ने इतना ही कहा है, और इसके बाद की अर्द्धाली निम्नलिखित है :

तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा।

इसलिए पूर्ण वर्त्तमान 'बोलेहु' सामान्य वर्त्तमान 'बोलहु' की अपेक्षा अधिक प्रसंगोचित है।

(३१) ३-२६-१ : 'हा जगदैक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया।' कोदवराम में 'जगदैक' के स्थान पर पाठ 'जगदेव' है। 'जगदेव' = 'संसार के देवता' के साथ 'बीर' होने की भावना असंगत है, 'जगदैक बीर' = 'जगत के एक मात्र वीर' ही संगत लगता है।

(३२) ३-२६ : 'हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति दिखाइ। तब असोक पादप तर राखिसि जतनु कराइ।' कोदवराम में 'राखिसि' के स्थान पर पाठ 'राखे' है। 'राखे' = 'रखने पर' या 'रखने से' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है, और बहुवचन कर्त्ता या कर्म की क्रिया के रूप में भी बहुवचन होकर उसके प्रयुक्त होने का कोई अवसर नहीं है; इसलिए वह अशुद्ध है। 'राखिसि' = 'उसने रक्खा' की शुद्धता प्रकट है।

(३३) ३-३२ छं० : 'जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जनमन रंजनं।' कोदवराम में 'जे' के स्थान पर पाठ 'जो' है। 'जपंत' बहुवचन क्रिया से 'जे' बहुवचन रूप ही सिद्ध है, 'जो' एकवचन रूप नहीं।

(३४) ३-३२ छं० : 'जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।' कोदवराम में 'निरंजन' के स्थान पर पाठ 'निरंतर' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, किंतु 'व्यापक, बिरज, अज' ब्रह्म के साथ 'निरंजन' अधिक संगत लगता है।

*(३५) ३-३२ छं० : 'पश्यंति जं जोगी जतनु करि करत मन गो बस सदा।' कोदवराम में 'सदा' के स्थान पर पाठ 'जदा' है। संगति दोनों पाठों से लग जाती है, किंतु ऊपर के चरण में भी तुक में 'सदा' है :

जो सुगम अगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।

इसलिए 'जदा' पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(३६) ३-३५-६ : 'भगतिहीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल

बारिद देखिअ जैसा।' कोदवराम में पाठ 'कैसा, जैसा' के स्थान पर 'कैसे, जैसे' है। 'सोइ' एकवचन रूप के साथ 'कैसा, जैसा' एक वचन रूप ही समीचीन है, 'कैसे, जैसे' बहुवचन रूप नहीं।

(३७) ३-३७-१ : 'बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल। सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल।' कोदवराम में 'खग' के स्थान पर पाठ 'खगन' है। 'मधुकर' एकवचन के साथ 'खग' एकवचन पाठ ही समीचीन लगता है, 'खगन' बहुवचन नहीं।

(३८) ३-३७ : 'देखि गएउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात। डेरा कीन्हेउ मनहुं तब कटक हटकि मनजात।' कोदवराम में 'कीन्हेउ' के स्थान पर पाठ 'दीन्हेउ' है। 'डेरा' के साथ सर्वत्र 'करना' ही है, 'देना' नहीं, यथा:

राम करहु तेहि के उर डेरा। २-१३०-८
जहं तहं लोगन्ह डेरा कीन्हा। २-१६७-१

इसलिए 'कीन्हेउ' पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है, 'दीन्हेउ' नहीं।

(३६) ३-३६-२ : 'कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई।' कोदवराम में 'कै' के स्थान पर पाठ 'कहं' है। 'कहं' का अर्थ है 'को' और 'कै' का है 'की'। 'कामियों को दीनता दिखाने' का प्रभाव 'धीरों' में 'विरति दृढ़-कारक' कैसे हो सकता था ? 'कामियों की दीनता' दिखाने से अवश्य धीरों के मन में विरति को दृढ़ता प्राप्त हो सकती थी—क्योंकि काम या नारी-विषयक आसक्ति-जनित इस दुरवस्था के दृश्य से उनमें नारी-त्याग की भावना को बल प्राप्त हो सकता था। इसलिए 'कै' पाठ ही युक्तियुक्त है, 'कहं' नहीं ;

(४०) ३-४५-६ : 'सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊं। जिन्हतें मैं उनके बस रहऊं।' कोदवराम में 'जिन्हतें' के स्थान पर पाठ है 'जेहिते'। 'गुन' बहुवचन है, जो 'के' विभक्ति से प्रकट है। इसलिए उसके लिए बहुवचन पाठ 'जिन्ह' ही समीचीन है, 'जेहि' एकवचन नहीं।

(४१) ३-४५ : 'गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।

तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्हकहुँ देह न गेह।' कोदवराम में 'दुख' के स्थान पर पाठ है 'सुख'। किंतु संसार को सर्वत्र दुःखमय कहा गया है, यथा:

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर। ६-८०

ते संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः। ७ १११

इसलिए 'सुख' पाठ समीचान नहीं लगता, दुख' पाठ ही समीचीन लगता है।

(४२) ३-४६ : कोदवराम में निम्नलिखित दोहा नहीं है:

दीपसिखा सम जुबति तनु मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग।

यह दोहा यद्यपि किसी प्रसंग का नहीं है, और फलश्रुति के भी बाद में आया है, किंतु इसकी शब्दावली या इसके वाक्य-विन्यास में कोई बात कवि के प्रयोगों के विरुद्ध नहीं पाई जाती है। और जो इस कांड की कथा का संदेश है, वही इसमें आया है, इसलिए यह प्रसंगविरुद्ध भी नहीं है।

१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

१७०४ में कुछ अस्वीकृत पाठ १६६२, १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास वंदन पाठक तथा कोदवराम के हैं, और कुछ अन्य हैं। इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

(१) ३-३-१ : 'रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना।' १७०४ में 'श्रुति' के स्थान पर पाठ 'अति' है। ग्रंथ में 'अति' परिमाण बोधक विशेषण या क्रिया-विशेषण के रूप में ही आया है, और उसका विशेष्य या तो कोई भाववाचक या गुण-वाचक संज्ञा होती है, या तो कोई गुणवाचक या परिमाण वाचक विशेषण होता है। इसलिए 'सुधा' जातिवाचक संज्ञा के साथ 'अति' पाठ यहाँ प्रयोगसम्मत नहीं है। 'श्रुति' की समीचीनता प्रकट है: 'राम ने कानों को अमृत के समान सुखदायक नाना चरित्र किए।'

*(२) ३-११-८ : 'हर हृदि मानस बाल मरालं।' १७०४ में

'बाल' के स्थान पर पाठ 'राज' है। 'बाल मराल' का प्रयोग प्रायः सुकुमारता की व्यंजना के अवसर पर हुआ है, यथा :

सो धनु राजकुंअर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं। १-२५६-४

ये दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल मरालन्ह के कल जोटा। १-२२१-३

'राजमराला' का प्रयोग अन्यत्र भी एक स्थल पर इसी प्रकार के प्रसंग में हुआ है :

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राज मराला। ३-७-१

इसलिए 'राजमराला' अपेक्षाकृत अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(३) ३-११-२४ : 'मुनि कह मैं बर कबहुं न जांचा। समुझि न परै झूठ का सांचा।' १७०४ में 'झूठ' के स्थान पर पाठ 'रूढ़' है। 'सांचा' के विपक्ष में 'झूठ' की समीचीनता प्रकट है। 'रूढ़' यहाँ अर्थहीन है।

(४) ३-१२ : 'मुनि समूह महं बैठे सनमुख सब की ओर।' १७०४ में 'महं' के स्थान पर पाठ 'मों' है। 'मों' का प्रयोग 'में' के अर्थ में केवल एक स्थान पर अन्यत्र मिलता है :

तन पोषक नारि नरा सगरे। पर निंदक ते जगमों बगरे। ७-१०२ छं०

सामान्यतः ग्रंथ में 'महुं' ही प्रयुक्त हुआ है, यथा :

छन महुं मिटे सकल श्रुतिसेतू। १-८४-६

छन महुं सकल कटकु उन्ह मारा। ३-२३-११

इसलिए 'महुं' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(५) ३-१५-४ : 'बिद्या अपर अबिद्या दोऊ।' १७०४ में 'अपर' के स्थान पर पाठ 'अपार' है। 'अपार' की अशुद्धि, और 'अपर' की समीचीनता प्रकट है।

(६) ३-१७-१६ : 'लोभी जस चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी।' १७०४ में 'गुमानी' के स्थान पर पाठ 'गुनानी' है। 'गुनानी' अर्थहीन लगता है। 'लोभी' के समानधर्मी 'गुमानी' की प्रासंगिकता प्रकट है।

(७) ३-१८-४ : 'धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ

कज्जल गिरि जूथा।' 'निकर बरूथा' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'बरन बरूथा' है। 'निकर' की प्रासंगिकता प्रकट है, और वह प्रयोग-सम्मत भी है, यथा :

रामप्रताप प्रबल कपिजूथा। मर्दहिं निसिचर निकर बरूथा।६-४२-१

'बरन बरूथा' अप्रासंगिक है, और अन्यत्र भी कहीं नहीं आया है।

× (८) ३-१६-३ : 'नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते।' १७०४ में 'हते' के स्थान पर पाठ 'हने' है। दोनों पाठ प्रसंगसम्मत हैं, यथा :

जगमहुं सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइं निमिष महं तेते।५-४४-७
कहां राम रन हतौं पचारी।६-१०३-४

जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतौं रघुबीर दोहाई। २-७५-१४

×(९) ३-१९-१२ : 'जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतौं न काहू।' १७०४ में 'घर' के स्थान पर पाठ 'गृह' है। दोनों रूप ग्रंथ में प्रयुक्त मिलते हैं।

(१०) ३-२०-१ : 'तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल।' १७०४ में 'बहु' के स्थान पर पाठ 'निज' है। 'निज'= 'अपने' का कोई प्रसंग नहीं है। 'निजु'='ही' अवश्य कुछ संगत हो सकता था। 'बहु' की प्रासंगिकता प्रकट है। 'चले' बहुवचन क्रिया से कर्त्ता 'बान' का बहुवचन होना सिद्ध है, इसलिए उनके लिए 'बहु।ब्याल' तो संभव है ही, ब्यालों के अनेक होने के कारण उनकी सम्मिलित फुंकार में जो भयानकता हो सकती है, 'बहु' पाठ से उसकी ध्वनि भी निकलती है।

(११) ३-२४-५ : 'लछिमन हूं येह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।' १७०४ में 'रचा' के स्थान पर पाठ 'रचेउ' है। यद्यपि प्रयोगसम्मत दोनों है, किंतु प्रस्तुत प्रसंग में राम के लिए 'कहा' आ चुका है :

जबहिं राम सबु कहा बखानी।

इसलिए 'कहा' के अनुरूप होने के कारण 'रचा' अधिक समीचीन लगता है।

×(१२) ३-२६-४ : 'तब मारीच हृदयं अनुमाना। नवहिं बिरोधे नहिं कल्याना। सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि मानस गुनी।' १७०४ में 'मानस' के स्थान पर पाठ 'भानस' है। 'भानस गुनी' अर्थहीन है। दो-एक टोकाकारों ने 'भानस' का अर्थ मिथिला के किसी प्रयोग के अनुसार 'रसोई' करके 'भानस गुनी' का अर्थ 'रसोइया' किया है' किंतु अर्थ लगाने की यह प्रणाली ठीक नहीं लगती है। 'मानस गुनी' का अर्थ 'ज्योतिषी' लिया जा सकता है, और वह प्रासंगिक भी होगा, यद्यपि अन्यत्र इस अर्थ में वह भी प्रयुक्त नहीं हुआ है।

(१३) ३-२८-१ : 'जाहु बेगि संकट अति भ्राता।' १७०४ में 'संकट' के स्थान पर पाठ 'कष्ट' है। उत्तर में लक्ष्मण ने कहा है :

भृकुटि बिलास जासु लय होई। सपनेहु 'संकट' परै कि सोई।

इससे 'संकट' पाठ की समीचीनता प्रकट है। 'कष्ट' पाठ से 'कठिनाई' या 'विपत्ति' का वह आशय भी नहीं निकलता जो प्रसंग में अपेक्षित है, और छंद की गति भी बिगड़ जाती है।

(१४) ३-२८-१२ : 'कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं।' १७०४ में 'बोलेहु' के स्थान पर पाठ 'बोले' है। रावण की बातों के उत्तर में जानकी का यह वाक्य है। इसलिए पूर्ण वर्त्तमान की क्रिया 'बोलेहु' = 'कहा है' सामान्य भूत की क्रिया 'बोले' = 'कहा' या 'कहे' से अधिक समीचीन लगती है।

(१५) ३-३०-५ : 'अनुज समेत गए प्रभु तहवां। गोदावरि तट आस्रम जहवां।' १७०४ में 'तहवां, जहवां' के स्थान पर 'तहां, जहां' पाठ है। यद्यपि ग्रंथ में दोनो रूप प्रयुक्त हैं, किंतु किसी पूर्वोल्लिखित स्थान का निर्देश 'जहां-तहां' की अपेक्षा 'जहवां-तहवां' कदाचित् अधिक सफलतापूर्वक करता है, यथा:

बहुरि मातु तहवां चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई। १-२०१-४
चला अकेल जान चढ़ि तहवां। बस मारीच सिंधु तट जहवां। ३-१३-७

करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवां। बन असोक सीता रह जहवां। ५-८-३
इसलिए यह अधिक प्रसंगसम्मत है।

(१६) ३-३८-१० : 'चतुरंगिनी सेन संग लीन्हे।' १७०४ में 'सेन' के स्थान पर पाठ 'सेना' है। 'सेना' पाठ से अकारण ही छंद की गति विकृत हो जाती है। इसलिए 'सेन' पाठ ही उपयुक्त है।

(१७) ३-३९ : 'पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म। मायाछन्न न देखिऐ जैसे निर्गुन ब्रह्म।' १७०४ में 'देखिऐ' के स्थान पर पाठ 'देखिअ' है। 'देखिऐ'='देखियइ' का अर्थ होता है 'देखा जाता है', और 'देखिअ' का प्रयोग होता है 'देखते हैं', 'देखिए' या 'देखा जाए' के अर्थों में। प्रसंग से प्रकट है कि 'देखा जाता है' अर्थ ही होना चाहिए। इसलिए 'देखिऐ' पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(१८) ३-४५-६ : 'सुनु मुनि संतन के गुन कहऊं। जिन्हतें मैं उनके बस रहऊं।' १७०४ में 'जिन्हतें' के स्थान पर पाठ 'जाते' है। 'के' विभक्ति से यह प्रकट है कि 'गुन' बहुवचन के रूप में यहाँ प्रयुक्त हुआ है। उसका संबंध वाचक सर्वनाम भी फलतः बहुवचन 'जिन्हतें' समीचीन होगा, एकवचन 'जाते' नहीं।

×(१९) ३-४५-९ : 'सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना।' १७०४ में 'धर्म गति' के स्थान पर पाठ 'भगति पथ' है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

४

किष्किंधा कांड

१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

१७०४ की प्रति में केवल चार स्थलों पर ऐसे पाठ हैं जो विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं पाए जाते, और जो अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं, यद्यपि यह अभी तक किसी अन्य पाचीन प्रति में नहीं मिले हैं, और इसलिए इनके प्रामाणिक पाठ-सुधार होने में संदेह संभव है। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

×(१) ४-८-१३ : 'देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती।' १७०४ में 'बालि बधब इन्ह' के स्थान पर पाठ है 'बाली बध की'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, और प्रयोगसम्मत हैं। 'बधब' सामान्य भविष्य का रूप है, यथा :

सीय बिआहबि राम गर्ब दूरि करि नृपन्ह को। १-२४५

इसी प्रकार 'की' विभक्ति संबंध कारक में प्रयुक्त हुई है, यथा :

तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुबर की। १-६-६

×(२) ४-२६ : 'सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि।' १७०४ में 'सब' के स्थान पर पाठ 'सुख' है। मोक्ष चार प्रकार के माने गए हैं, किंतु प्रत्येक साधक को चारों प्रकार की मुक्तियाँ न मिलकर उसकी साधना के अनुरूप किसी एक प्रकार की मुक्ति सुलभ होती है। इसलिए 'सब' पाठ में अतिव्याप्ति प्रतीत होती है। 'सुख' पाठ में यह त्रुटि नहीं है। वह अन्यत्र प्रयुक्त भी हुआ है, यथा :

तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। ७-११६-१

×(३) ४-२६-५ : 'अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ।' 'गरुड़' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'उमा' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं। कथा के श्रोता दोनों ही हैं।

(४) ४-३०-३ : 'कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना।' पहले चरण का पाठ १७०४ में है : 'कहइ रिछेस सुनहु हनुमाना।' दोनों के अर्थों में कोई अंतर नहीं है। यह अवश्य है कि 'सुनु' में श्रोता के प्रति एक हीनता की भावना है, जो अगले चरण में आए हुए 'रहेउ' के अनुरूप नहीं है। 'रहेहु' के साथ 'सुनहु' की समीचीनता प्रकट है।

कोदवराम के स्वीकृत पाठभेद

कोदवराम की प्रति में केवल दो स्थलों पर ऐसे पाठ हैं जो विवेचनीय शेष प्रतियों में से केवल १७०४ में मिलते हैं, और जो अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जायगा।

(१) ४-२७-२ : 'बाहेर होइ देखि बहु कीसा। मोहि अहार दीन्ह जगदीसा।' कोदवराम में 'देखि' के स्थान पर पाठ 'देखे' हैं। 'देखि' = 'देखकर' से वाक्य अपूर्ण रह जाता है। 'देखे' पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(२) ४-२६-६ : 'निज निज बल सब काहू भाषा। पार जाइ कै संसय राखा।' कोदवराम में 'कै' के स्थान पर पाठ 'कर' है। 'कै' (कइ) = 'की' स्त्रीलिंग विभक्ति के रूप में ही ग्रंथ भर में व्यवहृत है। किंतु 'संसय' सर्वत्र पुल्लिग है। इसलिए उसके लिए 'कर' = 'का' पुल्लिग विभक्ति ही समीचीन है।

बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में उपर्युक्त ढंग का कोई पाठ भेद नहीं है।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास में भी उपर्युक्त ढंग का कोई पाठ-भेद नहीं है।

छक्कनलाल के स्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल में निम्नलिखित केवल एक स्थल ऐसा है जहाँ पर उसका पाठ यद्यपि रघुनाथदास, बंदन पाठक, कोदवराम तथा

१७०४ में मिलता है, १७२१ तथा १७६२ में नहीं मिलता, और जो अन्य पाठ की अपेक्षा उत्कृष्टतर प्रतीत होता है :

(१) ४-५-१४ : 'मुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला।' छक्कनलाल में 'द्वै' के स्थान पर पाठ 'दोउ' है। 'द्वै' अन्यत्र प्रयुक्त नहीं हुआ है, और 'दोउ' ग्रंथ भर में प्रयुक्त हुआ है, यथा :

अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ। १-३
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ। १-२०

इसके अतिरिक्त, 'द्वै भुजा' निरर्थक सा लगता है—भुजाएँ तो दो होती ही हैं, 'दोउ भुजा' = 'दोनों भुजाएँ' ही सार्थक है।

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

१७२१ में उपर्युक्त ढंग के पाठ-भेद कोई नहीं हैं।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ में निम्नलिखित स्थलों का पाठ अस्वीकृत है :

(१) ४-७ : 'कहै बालि सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ। जौ कदापि मोहिं मारहिं तौ पुनि होउं सनाथ।' 'मारहिं' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'मारिहहिं'। मुख्य वाक्य में क्रिया 'होउं' वर्त्तमान काल की है, इसलिए उसके आश्रित उपवाक्य में भी उसके अनुरूप वर्त्तमान काल की क्रिया 'मारहिं' समाधान लगती है, भविष्य की 'मारिहिं' नहीं।

अस्वीकृति के निम्नलिखित दो स्थलों पर १७२१ का पाठ भी वही है जो १७६२ का है :

(२) ४-७-१२ : 'दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए।' १७६२/१७२१ में 'ढहाए' के स्थान पर पाठ 'दहाए' है। 'दहाए' प्रसंग में असंभव है, 'ढहाए' पाठ ही दुंदुभि

की अस्थियों को फेंकने और सप्ततालवेध के लिए उपयुक्त हो सकता है।*

(३) ४-२३-७ : 'सोइ गुनज्ञ सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी।' १७६२/१७२१ में 'गुनज्ञ' के स्थान पर पाठ 'गुनज्ञान' है। 'गुनज्ञान' प्रसंग में अर्थ और संगति हीन है। वस्तुतः 'बड़भागी' के समान ही इसके स्थान पर भी कोई विशेषण होना चाहिए, यह प्रकट है। इसलिए प्रसंग में 'गुनज्ञ' = 'गुणों का ज्ञाता' ही उपयुक्त लगता है।

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

ऊपर १७६२ के अस्वीकृत पाठों के साथ गिनाए गए अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त १७२१ में दो स्थलों पर और अस्वीकृत पाठ हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जायगा।

×(१) ४-७ : 'कहै बालि सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।' १७२१ में 'कहै बालि' के स्थान पर पाठ 'कह बाली' है। दोनों पाठ अर्थ में एक और प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

पतिहि एकांत पाइ कह मैना। १७-१-२
सुनत बचन कह बिहंसि भवानी। १-८०-४
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। ४-५-१
ब्रह्मांडनिकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै। १-१९२ छं०
जरठ भइउं अब कहइ रिछेसा। ४-२९-७
अंगद कहइ जाउं मैं पारा। ४-३०-१

(२) ४-१५ : 'कबहुं प्रबल चल मारुत जहं तहं मेघ बिलाहिं।' १७२१ में 'चल' के स्थान पर पाठ 'बह' है। 'बहना' क्रिया का

---

* कथा के इस भाग में 'अध्यात्म रामायण' का ही आधार ग्रहण किया गया है, और उसीकी कथा को संक्षेप में दिया है। 'अध्यात्म रामायण' के अनुसार राम ने दुंदुभि की पर्वताकार हड्डियों को पैर के अँगूठे से फेंक दिया, और सात तालों को एक ही बाण से बेध दिया।

प्रयोग ग्रंथ में केवल मंद और पहले से बहती हुई वायु के लिए हुआ है, यथा :

सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। १-१९१-३

सीतल सुरभि पवन बह मंदा। ७-२१-४

वायु के चल पड़ने के प्रसंग में 'चलना' का ही प्रयोग मिलता है, यथा :

चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। १-१२६-३

परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। ६-११६-७

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास। ५-२५

यहाँ पर प्रसंग वायु के 'चल पड़ने' का ही है, क्योंकि अन्यथा वह मेघ एकत्र ही नहीं हो सकते थे जो मारुत से छिन्न-छिन्न हो जाते हैं। इसलिए पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत है।

छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल में १७६२ के अस्वीकृत पाठ एक भी नहीं हैं, १७२१ के अस्वीकृत पाठ दोनों ही हैं, और इनके अतिरिक्त तीन और अस्वीकृत पाठ भी हैं : इन पर नीचे क्रमशः विचार किया जाएगा।

×(१) ४-१३-४ : 'कै' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'की' है। 'कै' और 'की' दोनों षष्ठी की स्त्रीलिंग विभक्ति के रूप में प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

सोभा दसरथ भवन कै को कवि बरनै पार। १-२९-७

खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं। ४-१४-२

मारेहु मोहि ब्याधा की नाईं। ४-९-५

पिय हिय की सिय जाननि हारी। २-१०२-१

(२) ४-१४-५ : 'छुद्र नदी भरि चली तोराई।' छक्कनलाल में "तोराई के स्थान पर पाठ 'तुराई' है। 'तुराई' ग्रंथ में 'गद्दा' के ही अर्थ में आया है, यथा :

नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। २-१४-६

बिबिध बसन उपधान तुराई। २-९१-१

और गढ़े का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, इसलिए 'तोराई' पाठ ही समीचीन है।

(३) ४-२७-२ : 'बाहेर' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'बाहिर' है। ग्रंथ में 'बाहेर' रूप ही मिलता है, 'बाहर' नहीं, यथा :

गए जहां बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ। २-८२
पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। ७-५०-३
बदन पैठि पुनि बाहेर आवा। ५-२-११
बिहंसत ही मुख बाहेर आएउं सुनु मति धीर। ७-८२

इसलिए 'बाहेर' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास में १७६२ के अस्वीकृत पाठों में से एक भी नहीं है, १७२१ के दोनों हैं, और छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठों में से कोई नहीं है। इनके अतिरिक्त कुछ अस्वीकृत पाठभेद और हैं, नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जायगा।

(१) ४-४ : 'तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ। पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।' रघुनाथदास में 'की' के स्थान पर पाठ 'कहि' है। 'कहि' पाठ में 'कथा' असंबद्ध हो जाती है—'किसकी कथा' और 'कौन सी कथा' यह नहीं ज्ञात होते। 'की' विभक्ति 'कथा' का संबंध 'उभय दिसि' के साथ बताने के लिए आवश्यक है, इसलिए 'की' पाठ ही ठीक लगता है।

(२) ४७ : 'जौं कदापि मोहिं मारहिं तौ पुनि होउं सनाथ।' रघुनाथदास में 'मारहिं' के स्थान पर पाठ 'मारिहि' है। 'होउं' वर्त्तमान के रूप के साथ 'मारहिं' वर्तमान का रूप ही समीचीन लगता है, 'मारिहिं' भविष्य का रूप नहीं।

(३) ४-१४ : 'जिमि पाखडवाद तें गुप्त होहिं सद ग्रंथ।' रघुनाथदास में 'पाखंडवाद' के स्थान पर पाठ 'पाखंडीबाद' है। 'पाखंडबाद' की समीचीनता 'मायावाद', 'विवर्त्तवाद' आदि की भाँति प्रकट है। 'पाखंडीवाद' अशुद्ध है।

(४) ४-२१-१ : 'बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा।' रघुनाथदास में 'करन चह' के स्थान पर पाठ 'किय चह' है। 'किय' तो अनेक बार आया है, किंतु 'किय चह' एक बार भी नहीं। 'करन' के साथ 'चाहना' धातु की क्रियाएँ अवश्य आई हैं, यथा :

करन चहौं रघुपति गुन गाहा। १-८५

चाहिय करन सो सब करि बीते। ६-७२

इसलिए 'करन चह' ही प्रयोगसम्मत लगता है, 'किय चह' नहीं।

(५) ४-२८ : 'मैं देखउं तुम्ह नाहीं गीर्धहि दृष्टि अपार।' रघुनाथदास में 'नाहीं' के स्थान पर पाठ 'नाहिं' है। छंद की गति दोनों रूपों के झगड़े का अंत कर देती है, 'नाहीं' ही छंद को ठीक गति प्रदान करता है।

(६) ४-३० : 'भव भेषज रघुनाथ जस सुनहिं जे नर अरु नारि। तिन्हकर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि।' रघुनाथदास में 'त्रिसिरारि'='राम' के स्थान पर पाठ 'त्रिपुरारि'='शिव' है। किंतु फलश्रुतियों में सर्वत्र राम की कृपा से ही सुखादि पाने का कथन है, यथा :

बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुख पावहीं। १-३६१ छं०

समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।

बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान। ६-१२१

कहीं भी ऐसे अवसरों पर शिव की कृपा का उल्लेख नहीं किया गया है। इसलिए 'त्रिसिरारि' पाठ ही समीचीन लगता है, 'त्रिपुरारि' नहीं।

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में १७६२ के अस्वीकृत पाठ नहीं हैं, १७०१ के दोनों हैं, छक्कनलाल के एक भी नहीं हैं, और रघुनाथदास के भी अस्वीकृत पाठ नहीं हैं। किंतु दो अस्वीकृत पाठ इसमें उपर्युक्त के अतिरिक्त भी हैं; नीचे हम इन पर क्रमशः विचार किया जायगा।

(१) ४-१७-२ : 'फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन

भएं जैसा।' बंदन पाठक में 'कैसा, जैसा' के स्थान पर पाठ क्रमशः 'कैसे, जैसे' हैं। 'सर' और 'ब्रह्म' दोनों एकवचन संज्ञाएँ हैं, इसलिए उनके साथ एकवचन रूप 'कैसा, जैसा' ही समीचीन लगता है, बहुवचन रूप 'कैसे, जैसे' नहीं।

(२) ५-२६ : 'निज इच्छा अवतरइ प्रभु महि गो द्विज हित लागि।' बंदन पाठक में 'अवतरइ' के स्थान पर पाठ 'अवतरहिं' है। दोनों पाठ अर्थ की दृष्टि से अभिन्न हैं, किंतु प्रयोग की दृष्टि से प्रथम अधिक समीचीन लगता है, क्योंकि 'प्रभु' प्रसंग में ब्रह्म के लिए आया है, और ब्रह्म के लिए एकवचन प्रयोग ही आया है, यथा :

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें। १-११६-२

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

कोदवराम में १७६२ के अस्वीकृत पाठ नहीं हैं, किंतु १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास, और बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठों में से कई हैं। उनके अतिरिक्त भी कुछ हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

(१) ४-१-५ : 'अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना। पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला।' कोदवराम में 'पठए' के स्थान पर पाठ 'पठवा' है। किंतु इस क्रिया का कर्म 'जुगल पुरुष' है, जो बहुवचन है। इसलिए 'पठए' बहुवचन रूप ही समीचीन है, 'पठवा' एकवचन रूप नहीं।

(२) ४-२ : 'एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अज्ञान। पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान।' कोदवराम में 'कुटिल' के स्थान पर पाठ 'कीस' है। पहले दो चरणों का प्रारंभ 'एकु' से होता है, और दूसरे दो का 'पुनि' से, जिससे प्रकट है कि एक बात पहले दो चरणों को मिलाकर कही गई है, और दूसरी दूसरे दो चरणों को। 'मंद', 'मोहबस' और 'हृदय अज्ञान' के बीच 'कुटिल' की

संगति अतः प्रकट है। 'कीस' वहाँ उनके बीच में विदेशीय ज्ञात होता है।

(३) ४-६-१४ : 'फरकि उठीं दोउ भुजा बिसाला।' कोदवराम में 'उठीं' के स्थान पर पाठ 'उठे' है। 'भुजा' सर्वत्र स्त्रीलिंग है, यथा :

सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई। १-१६५-५
कहेउ भरत सन भुजा उठाई। २-२३७-१
रघुकुल तिलक भुजा सोइ काटी। ६-७०-६
प्रभु सो भुजा काटी महि पारी। ६-७०-१०

इसलिए 'भुजा' स्त्रीलिंग कर्त्ता के साथ 'उठीं' स्त्रीलिंग क्रिया ही समीचीन है।

(४), (५) ४-६ : 'सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहि एकहि बान। ब्रह्मरुद्र सरनागत गए न उबरिहि प्रान।' कोदवराम में 'मारिहौं' के स्थान पर पाठ 'मैं मारिहौं' है, और 'सरनागत' के स्थान पर 'सरनागतहु' है। 'मारिहौं' कभी-कभी बिना प्रकट कर्त्ता के भी आया है, यथा :

तब मारिहौं कि छाँड़िहौं भली भाँति अपनाइ। १-१८१

इसलिए मैं आवश्यक नहीं है। इसी प्रकार 'हु' अनावश्यक है; यदि उसे बल देने के लिए लाया गया था, तो 'सरनागत' के साथ न रख कर उसे 'गए' के साथ लगना चाहिए था। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

× (६) ४-७ : 'कहै बालि सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।' कोदवराम में 'कहै' के स्थान पर पाठ 'कहा' है।' प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं।

(७) ४-१२-४ : 'बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंता जर छाती। सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ।' कोदवराम में 'सोइ' के स्थान पर पाठ 'सो' है। किंतु सुग्रीव की जिस हीन दशा कहते हुए उसको कपिराज बनाने की बात कही गई है, उसकी व्यंजना 'सो' मात्र से नहीं हो सकती, 'सोइ' से ही होगी।

(८) ४-२०-७ : 'नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनिमन छोभ करै छन माहीं।' कोदवराम में पाठ 'मोह' के स्थान पर 'छोभ' है। 'मद'='मदिरा' का परिणाम 'मोह'='विवेक शून्यता' ही स्वाभाविक है, 'छोभ'='दुःख' या 'विकलता' नहीं। इसलिए 'मोह' पाठ ही संगत है।

(९) ४-२२-१ : 'बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा।' कोदवराम में 'करन चह' के स्थान पर पाठ 'करि चहै' है। 'करन' के साथ='चाहना' क्रिया के प्रयोग अन्यत्र भी मिलते हैं, यथा :

करन चहौं रघुपति गुन गाहा। १-८-५
चाहिय करन सो सब करि बीते। ६-७-२

किंतु 'करि चहै' अन्यत्र नहीं मिलता।

(१०) ४-२३-३ : 'मन क्रम बचन सो जतनु बिचारेहु। रामचंद्र कर काजु संवारेहु।' कोदवराम में 'सो' क स्थान पर पाठ 'सु' है। 'सु' निरर्थक है, और 'सो' की प्रासंगिकता प्रकट है।

(११) ४-२४-३ : 'लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलै न जल घन गहन भुलाने।' कोदवराम में 'घन' के स्थान पर पाठ 'बन' है। 'गहन घन' तो अन्यत्र भी आया है, 'बन गहन' नहीं, यथा :

गएउ दूरि घन गहन बराहू। १-१५७-५
दनुज गहन घन दहन कृसानुं। ७-३०-७

इसलिए 'घन' पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है।

×(१२) ४-२४ : 'दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु-कंज।' कोदवराम में 'बर' के स्थान पर पाठ 'सुभग' है। दोनों पाठ प्रसंग और प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग दस दिसा बिभागा। १-८६-७
बरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाय बर बारी। २-१७-८

*(१३) ४-२६-२ : 'इहा बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं। सब मिलि करहिं परसपर बाता। बिनु सुधि लिए करब का भ्राता। कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुं

प्रकार भइ मृत्यु हमारी।' कोदवराम में बीच की अर्द्धाली नहीं है। यहाँ पर समस्या सुधि लेने' की नहीं, 'सुधि पाने' की है, इसलिए विवेचनीय अर्द्धाली असंगत सी लगती है।

(१४) ४-२६-६ १ : 'पिता बधे पर मारत मोहीं। राखा राम निहोर न ओहीं। पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भएउ कछु संसय नाहीं। अंगद बचन सुनत कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा। छन एक सोच मगन होइ रहे। पनि अस बचन कहत सब भए। हम सीता कै सोध बिहीना। नहिं जैहहिं जुबराज प्रबीना। अस कहि लवन सिन्धु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई।' कोदवराम में बीच की चार अर्द्धालियाँ नहीं हैं। ऊपर उद्धृत अंतिम अर्द्धाली में 'अस कहि' का कर्त्ता 'कपि सब' है--'अंगद' नहीं। किंतु यदि उपर्युक्त में से तीसरी, चौथी और पांचवीं अर्द्धालियाँ निकाल दी जाती हैं, तो 'अस कहि' के कर्म 'कपि सब' का कोई कथन ही नहीं रह जाता, और फिर वह पद असंगत हो जाता है। इसलिए यह अर्द्धालियाँ प्रसंग में आवश्यक हैं। प्रयोग की दृष्टि से भी इनमें कोई त्रुटि नहीं दिखाई पड़ती।

(१५) ४-२७-१ : 'एहि बिधि कथा कहहिं बहु भांती। गिरि कंदरा सुनी संपाती।' कोदवराम में 'सुनी' के स्थान पर पाठ है 'सुना'। इस क्रिया का कर्म है 'कथा', जो स्त्रीलिंग है। फलतः 'सुनी' स्त्रीलिंग ही प्रयोगसम्मत है, 'सुना' पुल्लिंग नहीं।

×(१६) ४-२७-३-४ : 'बाहेर होइ देखे बहु कीसा। मोहिं अहार दीन्ह जगदीसा। आजु सबन्ह कहुं भच्छन करऊं। बहु दिन चले अहार बिनु मरऊं। कबहुं न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा। डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना।' कोदवराम में बीच की दो अर्द्धालियाँ नहीं हैं। यह पंक्तियाँ यद्यपि प्रसंग में नितांत आवश्यक नहीं लगती हैं, किन्तु यह प्रसंगविरुद्ध नहीं हैं, और न प्रयोगकी दृष्टि से इनमें त्रुटि है।

(१७) ४-२७-६ 'डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन

सत्य हम जाना ।-कपि सब उठे गीध कहँ देखी । जामवंत मन सोच बिसेषी । कह अंगद बिचारि मन माहीं । धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ।' कोदवराम में बीच की अर्द्धाली नहीं है । 'डरपे' क्रिया तथा 'अब भा मरन सत्य हम जाना' का वक्ता 'कपि' है, जो इसी अर्द्धाली में आता है । इसलिए यह अर्द्धाली वाक्य-संगठन की दृष्टि से आवश्यक है । इसके अतिरिक्त 'पहले' आ चुका है :

अस कहि सबन सिंधु तट जाई । बैठे कपि सब दभ डहाई ।
भय की एक अनिवार्य प्रतिक्रिया होती है आत्मरक्षा के लिए भय के कारण से दूर भागने की, और उसके लिए तैयारी उठकर ही की जा सकती थी, इसलिए यह अर्द्धाली प्रसंगसम्मत भी है ।

(१८) ४-२८-५ : 'मुनि एक नाम चंद्रमा ओही । लागी दया देखि करि मोही ।' कोदवराम में 'करि के स्थान पर पाठ 'अति' है । यद्यपि 'देखि' = 'देखकर' मात्र पर्याप्त है, और उसके साथ 'करि' अनावश्यक है, किन्तु वह प्रयोगसम्मत है, यथा :

नाचि कूदि करि लोग रिझाई । ६-२४-२
सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा । ६-७४-४

क्रिया-विशेषण युक्त पाठ 'अति' में दूरान्वय दोष आ जाता है ।

(१९) ४-२८-६ : 'जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता । तिन्हहि देखाइ दिहेसु तैं सीता ।' 'चिंता' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'चीता' है । 'चीता' अन्यत्र कहीं नहीं आया है । यदि यह कहा जावे कि 'सीता' से तुक मिलाने के लिए यह पाठ आवश्यक था, तो वह भी ठीक नहीं है । 'चिंता' के साथ 'सीता' और वैसे ही अन्य तुक अन्यत्र भी आए हैं, यथा :

मुख मलीन उपजी तन चिंता । त्रिजटा सन बोली तब सीता । ६-९९-३
मंदोदरी हृदय कर चिंता । भएउ कंत पर बिधि बिपरीता । ५-३७-६

इसलिए 'चिंता' पाठ ही सार्थक और प्रयोगसम्मत है ।

(२०) ४-२८ : 'मैं देखौं तुम्ह नाहीं गीधहिं दृष्टि अपार ।' कोदवराम में 'नाहीं' के स्थान पर पाठ 'नाहिंन' है । 'नाहिंन' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'कदापि नहीं' या 'निश्चित रूप से नहीं' के

आशय में ही हुआ है, अन्यथा 'नाहीं' रूप प्रयुक्त हुआ है। 'नाहिंन' की कोई आवश्यकता प्रसंग में नहीं दिखाई पड़ती 'नाहीं' ही पर्याप्त है।

(२१) ४-२६ : 'बलि बांधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ। उभय घरी महं दीन्ही सात प्रदच्छिन जाइ।' कोदवराम में 'दीन्ही' के स्थान पर पाठ है 'दीन्हि मैं'। अर्थ और प्रयोग के ध्यान से दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है। किंतु छंद-योजना की दृष्टि से निर्दोष पहला ही पाठ है, दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में मात्राएँ समान नहीं हैं।

१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

१७०४ में १७६२, १७२१, तथा छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठ नहीं हैं, और न बंदन पाठक का कोई अस्वीकृत पाठ है। रघुनाथ-दास तथा कोदवराम के कुछ अस्वीकृत पाठ इसमें अवश्य हैं। और इनके अतिरिक्त कुछ और हैं : नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

(१) ४-५-४ : 'गगनपंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता।' १७०४ में 'बिलपाता' के स्थान पर पाठ 'बिलखाता' है। 'बिलखाना' अन्यत्र नहीं आया है 'बिलपना' क्रिया का ही प्रयोग मिलता है, यथा :

एहि बिधि रोवत बिलपत स्वामी। ३-३०-१४

और सीता के इस रुदन को 'बिलाप' कहा भी गया है :

सीता कै बिलाप सुनि भारा। ३ २९-६

बिबिध बिलाप करति बैदेही। ३-२६-४

इसलिए 'बिलपाता' पाठ ही समीचीन लगता है।

(२) ४-६-१४ : 'दोउ' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'दौ' है। संभवतः लिपि-प्रमाद से 'दौ' पाठ हो गया है, अन्यथा 'दोउ' होता।

(३) ४-७-२१ : 'येहि' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'वेहि' है। 'वेहि' ग्रन्थ में अन्यत्र नहीं आया है, और अर्थहीन है। 'येहि' की सार्थकता और प्रयोग-समीचीनता प्रकट है।

सत्य हम जाना।-कपि सब उठे गीध कहँ देखी। जामवंत मन सोच बिसेषी। कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं।' कोदवराम में बीच की अर्द्धाली नहीं है। 'डरपे' क्रिया तथा 'अब भा मरन सत्य हम जाना' का वक्ता 'कपि' है, जो इसी अर्द्धाली में आता है। इसलिए यह अर्द्धाली वाक्य-संगठन की दृष्टि से आवश्यक है। इसके अतिरिक्त 'पहले' आ चुका है :

अस कहि सबन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई।
भय की एक अनिवार्य प्रतिक्रिया होती है आत्मरक्षा के लिए भय के कारण से दूर भागने की, और उसके लिए तैयारी उठकर ही की जा सकती थी, इसलिए यह अर्द्धाली प्रसंगसम्मत भी है।

(१८) ४-२८-४ : 'मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही।' कोदवराम में 'करि के स्थान पर पाठ 'अति' है। यद्यपि 'देखि'='देखकर' मात्र पर्याप्त है, और उसके साथ 'करि' अनावश्यक है, किन्तु वह प्रयोगसम्मत है, यथा :

नाचि कूदि करि लोग रिझाई। ६-२४-२
सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा। ६-७४-४

क्रिया-विशेषण युक्त पाठ 'अति' में दूरा-न्वय दोष आ जाता है।

(१९) ४-२८-६ : 'जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ दिहेसु तैं सीता।' 'चिंता' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'चीता' है। 'चीता' अन्यत्र कहीं नहीं आया है। यदि यह कहा जावे कि 'सीता' से तुक मिलाने के लिए यह पाठ आवश्यक था, तो वह भी ठीक नहीं है। 'चिंता' के साथ 'सीता' और वैसे ही अन्य तुक अन्यत्र भी आए हैं, यथा :

मुख मलीन उपजी तन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता। ६-९९-३
मंदोदरी हृदय कर चिंता। भएउ कंत पर बिधि बिपरीता। ५-३७-६

इसलिए 'चिंता' पाठ ही सार्थक और प्रयोगसम्मत है।

(२०) ४-२८ : 'मैं देखौं तुम्ह नाहीं गीधहिं दृष्टि अपार। कोदवराम में 'नाहीं' के स्थान पर पाठ 'नाहिंन' है। 'नाहिंन' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'कदापि नहीं' या 'निश्चित रूप से नहीं' के

आशय में ही हुआ है, अन्यथा 'नाहीं' रूप प्रयुक्त हुआ है। 'नाहिन' की कोई आवश्यकता प्रसंग में नहीं दिखाई पड़ती 'नाहीं' ही पर्याप्त है।

(२१) ४-२६ : 'बलि बांधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ। उभय घरी महं दीन्ही सात प्रदच्छिन जाइ।' कोदवराम में 'दीन्ही' के स्थान पर पाठ है 'दीन्हि मैं'। अर्थ और प्रयोग के ध्यान से दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है। किंतु छंद-योजना की दृष्टि से निर्दोष पहला ही पाठ है, दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में मात्राएँ समान नहीं हैं।

१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

१७०४ में १७६२, १७२१, तथा छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठ नहीं हैं, और न बंदन पाठक का कोई अस्वीकृत पाठ है। रघुनाथदास तथा कोदवराम के कुछ अस्वीकृत पाठ इसमें अवश्य हैं। और इनके अतिरिक्त कुछ और हैं : नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

(१) ४-५-४ : 'गगनपंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता।' १७०४ में 'बिलपाता' के स्थान पर पाठ 'बिलखाता' है। 'बिलखाना' अन्यत्र नहीं आया है 'बिलपना' क्रिया का ही प्रयोग मिलता है, यथा :

एहि बिधि रोवत बिलपत स्वामी। ३-३०-१४

और सीता के इस रुदन को 'बिलाप' कहा भी गया है :

सीता कै बिलाप सुनि भारी। ३-२८-६

बिबिध बिलाप करति बैदेही। ३-२६-४

इसलिए 'बिलपाता' पाठ ही समीचीन लगता है।

(२) ४-६-१४ : 'दोउ' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'दौ' है। संभवतः लिपि-प्रमाद से 'दौ' पाठ हो गया है, अन्यथा 'दोउ' होता।

(३) ४-७-२१ : 'येहि' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'वेहि' है। 'वेहि' ग्रन्थ में अन्यत्र नहीं आया है, और अर्थहीन है। 'येहि' की सार्थकता और प्रयोग-समीचीनता प्रकट है।

(४) ४-७:१७०४ में 'कहै बालि' के स्थान पर पाठ 'कह बालि' है। 'कह बालि' पाठ में प्रथम चरण में छंद बिगड़ जाता है, अन्यथा अर्थ में दोनो एक हैं।

(५) ४-१२-२ : 'सुरनर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।' १७०४ में 'करहिं' के स्थान पर पाठ 'करति'। 'करति' = 'करती है' स्त्रीलिंग कर्त्ता की ही क्रिया हो सकती है। किंतु यहाँ 'सब सुरनर मुनि'—में से एक भी स्त्रीलिंग का नहीं है, इसलिए 'करहिं' पाठ की समीचीनता और 'करति' की अशुद्धि प्रकट है।

(६) ४-१५-४ : 'खोजत कतहुं मिलइ नहिं धूरी।' १७०४ में 'मिलइ नहिं' के स्थान पर पाठ है 'मिलइहि'। 'मिलइहि' = 'मिला देगा' प्रसंग में अर्थहीन है। 'मिलइ नहिं, की सार्थकता प्रकट है—वर्षा का वर्णन है—और वह प्रयोगसम्मत भी है, यथा :

मिलइ न जल घन गहन भुलाने। ४-२४-३

(७) ४-२५-१० : 'जिमि हरि जन हिय उपज न कामा।' १७०४ में 'हिय' के स्थान पर पाठ 'धिय' है। 'धिय' अर्थहीन है। सभवतः यह पाठ भेद लिपि-प्रमाद से हुआ है।

(८) ४-१६-२ : 'फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई।' १७०४ में 'कृत' के स्थान पर पाठ 'ऋतु' है। 'ऋतु' पाठ से दूसरे चरण का उपवाक्य क्रियाहीन हो जाता है, इसलिए 'कृत' = 'किया' पाठ ही ठीक है।

(९) ४ १६-१० : 'कहुं कहुं बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी।' १७०४ में 'जिमि' के स्थान पर पाठ 'जसि' है। 'जसि' = 'जैसी' यहाँ अप्रासंगिक है। 'जिमि' = 'जिस प्रकार' की समीचीनता प्रकट है।

×(१०) ४-२४ : 'दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज।' १७०४ में 'बर सर बिगसित बहु कंज' के स्थान पर पाठ है 'सर बिगसित तहँ बहु कंज'। दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है, और दोनों प्रयोग की दृष्टि से त्रुटि हीन हैं।

सुंदर कांड

१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

१७०४ की प्रति में कुछ पाठ ऐसे हैं जो विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते, यद्यपि कुछ अन्य प्रतियों में--यथा सं० १८६४ की प्रति में--मिलते हैं। यह पाठ उक्त अन्य पाठों की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। नीचे यथाक्रम इन पर विचार किया जायगा।

(१) ५.१ श्लो० : 'शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं गीर्वाण शांतिप्रदं। ब्रह्मा शंभु फणीन्द्र सेव्यमनिशं वेदान्त वेद्यं विभुं।' १७०४ में 'गीर्वाण' के स्थान पर पाठ है 'निर्वाण' है। 'गीर्वाण शान्तिप्रद' का अर्थ है : 'देवताओं को शान्ति देने वाले'। 'शान्ति देने' की भावना यद्यपि असंगत नहीं है, किन्तु अन्यत्र अप्रयुक्त है। 'निर्वाण' देने की भावना संगत तो है ही, अन्यत्र भी आई है : यथा,

सो एक राम अकाम हित निरबानप्रद सम आन को। ७.१३० छं०
रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निरबान। ७-७८
राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निरबान। ३-२०
निरबानदायक क्रोध जाकर भगति अबसहि बस करी। ३-२६

इसलिए 'निर्वाण' पाठ 'गीर्वाण' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(२) ५-१७-८ : 'सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी।' १७०४ में 'भारी' के स्थान पर पाठ है 'धारी'। 'परम सुभट' शब्द आए ही हैं, इसलिए भट' के लिए क्रिया-विशेषण के रूप में, या 'रजनीचर' के लिए विशेषण के रूप में 'भारी' पाठ में एक प्रकार से पुनरुक्ति दोष है। 'धारी' = 'सेना' पाठ में वह दोष नहीं है : अर्थ होगा, 'बड़े बड़े वीर राक्षसों की सेनाएँ, हे हनुमान, बन की रक्षा करती हैं।' यह प्रसंगसम्मत तो है ही, प्रयोगसम्मत भी है, यथा :

इति ●न मांझ निसाचर धारी। ६-६६-१
नाना बरन भालु कपि धारी। ३-१६-१
चलि रघुबीर सिलीमुख धारी। ६-६२-७

कोद्वराम के स्वीकृत पाठभेद

कोद्वराम की प्रति में, इसी प्रकार, कुछ पाठभेद ऐसे हैं जो १७०४ की प्रति में मिलते हैं, यद्यपि विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। यह पाठ भी अन्य पाठ की तुलना में साधारणतः उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जायगा।

(१) ५-२८-५ : 'मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी।' कोद्वराम में जिमि' के स्थान पर पाठ 'जनु' है। यद्यपि दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, किन्तु जो प्रसंगोचित बल 'जनु'='मानो' युक्त उत्प्रेक्षा के पाठ में है--यह कहने में है कि 'मानो तड़पती हुई मछली को पानी मिल गया हो', 'जिमि'='जैसे' युक्त उदाहरण के पाठ में नहीं है--यह कहने में नहीं है कि 'जैसे तड़पती हुई मछली पानी पाने पर सुखी होती है' क्योंकि पूर्व की एक अर्द्धाली में कहा गया है :

हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जनम कपिन्ह तब जाना।

× (२) ५-२६-३ : 'आइ सबन्ह नावा पद सीसा। मिले सबन्हि अति प्रीति कपीसा।' कोद्वराम में 'प्रीति' के स्थान पर पाठ 'प्रेम' है। 'प्रीति' और प्रेम' दोना समानार्थी के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(३) ५-२८-५ : 'दुबिद मयन्द नील नल अंगद गद बिकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवन्त बलरासि। कोद्वराम में 'निसठ सठ' के स्थान पर पाठ है 'कुमुद गव'। 'शठता' का भावना रामपक्ष के सेनापतियों के लिए कम ठीक जँचती है, 'कुमुद गव' पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

× (४) ४-५-६७ : 'सचिव सभीत बिभीषनु जाके। बिजय बिभूति कहाँ जग ताके।' कोद्वराम में 'जग' के स्थान पर पाठ है

'लगि। अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है, और दोनों में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई पड़ता।

बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक की प्रति में भी, इसी प्रकार, एक पाठ ऐसा है जो कोदवराम, १७०४ तथा १८६४ में मिलता है, यद्यपि विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलता। यह पाठ भी अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होता है :

(१) ५-२३-६ : 'सरित मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गए पुनि तबहिं सुखाहीं।' बंदन पाठक में 'सरित' के स्थान पर पाठ है 'सजल'। 'सरितन्ह' के कारण 'सरित' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। 'सजल' पाठ में यह दोष नहीं है, और 'जलसम्पन्न मूल' 'सरित मूल' की अपेक्षा अधिक सार्थक भी प्रतीत होता है।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास की प्रति में इस प्रकार के कोई पाठ-सुधार के स्थल नहीं दिखाई पड़ते।

छक्कनलाल के स्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल की प्रति में अवश्य कुछ पाठ ऐसे दिखाई देते हैं जो रघुनाथदास, बंदन पाठक, कोदवराम और १७०४ में मिलते हैं, यद्यपि विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। यह पाठ भी अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। इन पर क्रमशः नीचे विचार किया जाएगा।

(१) ५-८-३ : 'सुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनक सुता तहं रही।' 'सुनि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'पुनि'। 'सुनि' पाठ में 'सब कथा' या तो 'सुनि' का कर्म हो सकता है, और या तो 'कही' का, क्योंकि दोनों सकर्मक क्रियाएँ हैं। किन्तु इस 'सब कथा' को 'कही' के कर्म के रूप में 'जेहि बिधि जनकसुता तहं रही'

द्वारा आगे स्पष्ट भी किया गया है। इसलिए 'सुनि' क्रिया कर्महीन हो जाती है। 'पुनि' पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(२) ५-१०-४ : 'सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान मन मोरा।' छक्कनलाल में 'मन' के स्थान पर पाठ 'पन' है। 'प्रवान' विशेषण का प्रयोग ग्रंथ भर में 'स्राप', 'बागीसा', 'बचन', 'कथन' तथा 'सपथ' संज्ञाओं के साथ ही मिलता है :

तासु साप हरि कीन्ह प्रवाना। १-१२४-१ जानेहु तब प्रवान बगीसा। १-७४-८
करि पितु बचन प्रमान। २-५३ कीजिअ बचन प्रमानु। २-२५६

करहु तात पितु बचन प्रवाना। १-१७४-५
कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई। १-१४६-७
अति सरोष माषे लखन लखि सुनि सपथ प्रवान। २-२३०

'पन' पाठ ही इन प्रयोगों के निकट है—विशेष रूप से 'सपथ प्रवान' के—'मन' नहीं। इसलिए 'पन' पाठ 'मन' पाठ की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है, यद्यपि प्रसंग में अर्थ दोनों से लग जाता है।

(३) ५-५३-३ : 'बिहँसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न कस आपनि कुसलाता।' छक्कनलाल में 'कस' के स्थान पर पाठ 'सुक' है। पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा।
कहत राम जसु लंका आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए।।

प्रकट है कि दूत एक से अधिक थे। किन्तु रावण के प्रश्नों में विधि-सूचक क्रियाएँ सभी एकवचन की हैं; 'कहसि' ऊपर आ ही चुका है, आगे की अर्द्धाली में 'कहु' आता है :

पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी।

इसलिए यह भी प्रकट है कि रावण ने संबोधन किसी एक दूत को किया है। वह दूत कौन था, यह प्रसंग में आना आवश्यक प्रतीत होता है, इसलिए 'सुक' पाठ 'कस' की अपेक्षा अधिक प्रसंगोचित लगता है।

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

१७२१ में कोई भी पाठ ऐसा नहीं है जो वस्तुतः १७६२ की तुलना में उत्कृष्टतर हो। यह अवश्य है कि कुछ स्थलों पर १७६२ में लिपि-प्रमाद या पाठ-प्रमाद से अशुद्धियाँ हो गई हों, और १७२१ उन स्थलों पर शुद्ध पाठ देती हो।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ का एक अस्वीकृत पाठभेद निम्नलिखित है :

(१) ५-१६ : 'सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल। प्रभु प्रताप ते गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल।' 'साखा मृग' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'साखामृगन'। पहले पाठ का अर्थ है—"हे माता! सुनो। मैं शाखा-मृग हूँ, मुझे विशेष बल अथवा बुद्धि नहीं प्राप्त है...।" दूसरे पाठ का अर्थ होगा—"हे माता! सुनो। शाखा-मृगों को विशेष बल अथवा बुद्धि नहीं होती।" किन्तु इस दूसरे पाठ के लिए शुद्ध रूप होना चाहिए था द्वितीया बहुवचन का 'साखा-मृगन्हि।' 'साखामृगन' अशुद्ध है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त दो स्थलों पर १७६२ में अस्वीकृत पाठ ऐसा है जो १७२१ में भी मिलता है। इन पर नीचे यथाक्रम विचार किया जाएगा।

(२) ५-२७-६ : 'मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहिं जियत नहिं पावा।' १७२१-१७६२ में 'आवा', 'पावा' के स्थान पर क्रमशः 'आवैं, 'पावैं' पाठ है। दोनों काल व्याकरणसम्मत हैं। यथा :

होत प्रात मुनि बेष धरि जौ न राम बन जाहिं। २-३१

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। २-८२-१

जौं हरिहर कोपहिं मन मांहीं। १-१६६-४

अब साधेउं रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा। १-१७१-३

बड़भागी बन अवध अभागी। जौं रघुबंस तिलक तुम्ह त्यागी। २-५६-५

किन्तु बहुवचन सामान्य वर्तमान-काल के लिए '—ऐं' रूप प्रयोग-सम्मत नहीं है : सर्वत्र '—अहिं' रूप मिलता है।

(३) ५-५८-४ : 'ऊसर बीज बए फल जथा ।' 'बए' के स्थान पर १७२१-१७६२ में पाठ 'बोए' है। ग्रंथ भर में 'बए' तथा उसी के रूप मिलते हैं, 'बोए' के नहीं, यथा :

तुम्ह कहं बिपति बीज बिधि बएऊ। १-२०-६

बवा सो लुनिय लहिअ जो दीन्हा। २ १६-५

देव न बरसहिं धरनि पर बए न जामहिं धान। ७-१०

अतः 'बए' पाठ ही प्रयोगसम्मत है, 'बोए' नहीं।

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

१७२१ में दो अस्वीकृत पाठ भेद हैं। पर हम नीचे यथाक्रम विचार किया जाएगा।

(१) ५-५४ : ' दुबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि।' १७२१ में 'बिकटासि' के स्थान पर पाठ है 'बिकटास्य'। 'बलरासि' के तुक में 'बिकटासि' अधिक जँचता है। अवधी भाषा की प्रवृत्तियों के अनुसार भी 'बिकटासि' पाठ ही ठीक लगता है।

(२) ५-५६-८ : 'सुनि खल बचन दूतहि रिसि बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी।' १७२१ में 'दूतहि' के स्थान पर पाठ 'दूत' है। इस प्रकार के स्थलों पर अन्यत्र विभक्तियुक्त रूप ही मिलता है, यथा :

भइ लरिकहि रिस बीर बिचारी। १-२८२-१

मातु कपिन्ह रिस भई घनेरी। ६-६८-१

इसलिए पहला पाठ प्रयोगसम्मत है। वह प्रसंगसम्मत भी है, अर्थ है, "दूत को क्रोध हो गया"। 'दूतरिस' समस्त शब्द माना जा सकता था, किन्तु उसमें ध्वनि होती कि दूत के रिस पहले ही से थी। प्रसंग में उक्त आशय का कोई उल्लेख नहीं है, इस कारण दूसरा पाठ प्रसंगसम्मत नहीं है।

छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल में १७६२ के अस्वीकृत पाठभेद कोई नहीं हैं, १७२१ के

दोनों हैं, और उनके अतिरिक्त भी कुछ हैं। इन पर नीचे क्रमशः विचार किया जाएगा।

(१) ५-१२-११ : 'नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि तन करहि निदाना।' छक्कनलाल में 'तन' के स्थान पर पाठ 'जनि' है। 'निदान' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'कारण' के अतिरिक्त 'अंत' और 'प्राणांत' के ही अर्थ में हुआ है :

जहां कुमति तंह बिपति निदाना। ५-४०-३
परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदान। २-३७

सीता प्रस्तुत प्रसंग में अपना प्राणांत ही चाहती हैं—अपनी प्राणरक्षा नहीं। इसलिए 'तन करसि निदाना' ही प्रसंगसम्मत है। 'जनि करसि निदाना' या तो प्रसंगविरुद्ध अर्थ देता है, और या तो अर्थहीन है।

(२) ५-१३-७ : 'श्रवनामृत जेहिं कथा सुनाई। कही सो प्रगट होति किन भाई।' छक्कनलाल में 'कही' के स्थान पर पाठ है 'कहि'। 'कहि' पाठ से पहला उपवाक्य क्रियाविहीन हो जाता है, क्योंकि 'कहि' केवल एक पूर्वकालिक क्रिया का रूप है। 'कही' ही उस उपवाक्य की क्रिया है, और वह प्रसंग चित भी है, यह प्रगट है।

(३) ५-१४-७ : 'बचनु न आव नयन भरे बारी।' छक्कनलाल में 'भरे' के स्थान पर पाठ है 'भरि'। 'भरि' पाठ से 'बारी' क्रियाहीन हो जाता है। 'भरे' ही 'बारी' की क्रिया है, और वह प्रसंगसम्मत भी है, यह प्रकट है।

(४) ५-१५-४ : 'जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वांस सम त्रिबिधि समीरा।' 'जे हित रहे' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'जेहि तरु रहे'। 'जेहि तरु' प्रसंग में अर्थहीन है। 'पीड़ा' कारक की तुलना में 'हित'='सुख कारक' का ही उल्लेख प्रासंगिक और अर्थपूर्ण है। दिए हुए उदाहरण से भी इसी की पुष्टि होती है।

*(५) ५-२१-२ : 'कीधौं श्रवन सुने नहिं मोहीं। देखउं अति असंक सठ तोहीं।' छक्कनलाल में 'सुने' के स्थान पर पाठ है 'सुनेहि'। 'सुनेहि' का ही प्रयोग ग्रंथ में मिलता है, यथा :

सोइ रावन जग बिदित प्रतापी सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी। ६-२-८
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि। ६-२७
रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा। १-२७२-४

इसलिए 'सुनेहि' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

×(६) ५-४७-१ : 'लोभ मोह मच्छर मद माना।' छक्कनलाल में 'मच्छर' के स्थान पर पाठ 'मत्सर' है। दोनों रूप ग्रंथ में प्रयुक्त हैं, यथा

मच्छर काहि कलंक न लावा। ७-७१-३
काम क्रोध मद मत्सर भेका। ३-४४-३
मत्सर मान मोह मद चोरा। ७-११-६
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। ७-१२१-३७

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(७) ५-४९ : 'रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड। जरत बिभीषन राखेउ दीन्हेउ राज अखंड।' छक्कनलाल में 'राखेउ' के स्थान पर पाठ है 'राखा'। 'राम' कर्त्ता के लिए दोहे के अगले चरण में 'दीन्हेउ' क्रिया आई है; 'राखेउ' रूप ही सके अनुरूप है 'राखा' नहीं।

*(८) ५-५८-८ : 'कनक थार भरि मनिगन नाना। बिप्ररूप आए तजि माना।' छक्कनलाल में 'आए' के स्थान पर पाठ 'आएउ' है। इस क्रिया का कर्त्ता है 'जलनिधि', जो ऊपर वाली अर्द्धाली में आया है : 'जलनिधि' एकवचन है, और इसके लिए एकवचन की क्रियाएँ ही प्रसंग में प्रयुक्त हुई हैं :

हरषि पयोनिधि भएउ सुखारी। ५-६०-७
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। ५-६०-८
चरन बंदि पाथोधि सिधावा। ५-६०-८
निज भवन गवनेउ सिंधु। ५-६०

इसलिए 'आएउ' एकवचन रूप 'आए' बहुवचन रूप की अपेक्षा अधिक समीचीन लगता है।

×(९) ५-५८ : 'डाटेहि पै नव नीच।' छक्कनलाल में 'नव' के स्थान पर पाठ है 'नवै'। तुलनीय प्रयोग केवल निम्नलिखित है :

पुनि न नवइ जिमि उकठ कुकाठू २-१९-४

इसलिए 'नवै'-'नवइ' पाठ प्रयोग की दृष्टि से शुद्ध प्रतीत होता है। किन्तु 'नव' पाठ भी अशुद्ध नहीं प्रतीत होता, क्योंकि अन्य क्रियाओं का इस प्रकार का रूप मिलता है, यथा :

पति प्रतिकूल जनम जहं जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई। ३-८-१६

(१०) ५- ५९-४ : 'प्रभु आयेसु जेहि कहं जस अहई। सो तेहि भांति रहे सुख लहई।' छक्कनलाल में 'जस' के स्थान पर पाठ 'जसि' है। पहला पुल्लिग रूप है, दूसरा स्त्रीलिंग रूप। 'आयेसु' ग्रंथ भर में पुल्लिग रूप में प्रयुक्त हुआ है, यथा :

प्रथमहिं जिन्ह कहं आयेसु दीन्हा। १-१८३-२

जो कछु आयेसु ब्रह्मा दीन्हा। १-१८८-१

सतानंद तब आयेसु दीन्हा। १-२६१-८

समय जानि गुरु आयेसु दीन्हा। १-३४७-७

इसलिए 'जस' पाठ ही प्रयोगसम्मत है 'जसि' नहीं।

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास में १७६२ के अस्वीकृत पाठभेद नहीं हैं, १७२१ तथा छक्कनलाल के अवश्य कुछ हैं, और उनके अतिरिक्त भी कुछ हैं। इन पर नीचे क्रमश : विचार किया जाएगा।

(१) ५-१-३ : 'जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काज मोहिं हरष बिसेषी।' रघुनाथदास में अंतिम चरण के 'होइहि' के स्थान पर पाठ है 'होइ'।' 'होइ काजु'='कार्य हो' की संगति 'मोहिं हरष बिसेषी'='मुझे विशेष हर्ष है' के साथ नहीं बैठती। संगति तो 'होइहि काजु'='कार्य होगा' क्योंकि 'मोहिं हरष बिसेषी'='मुझे विशेष हर्ष है', इस प्रकार लगती है। दोनों उपवाक्यों में परस्पर कोई संबंध है, यह पहले ही पाठ में दिखाई पड़ता है, दूसरे में नहीं।

(२) ५-८-४ : 'तब हनुमंत कहा सुन भ्राता। देखी चहौं जानकी

माता।' रघुनाथदास में 'देखी' के स्थान पर पाठ है 'देखा'। इस क्रिया का कर्म 'जानकी माता' है, जो स्त्रीलिंग है। इसलिए क्रिया का स्त्रीलिंग रूप 'देखी' ही समीचीन है, 'देखा' पुल्लिग रूप नहीं।

(३) ५-२४-४ : 'उलटा होइहि कह हनुमाना। मति भ्रम तोहिं प्रगट मैं जाना।' रघुनाथदास में 'तोहिं' के स्थान पर पाठ 'तोरि' है। किन्तु 'मतिभ्रम' के प्रयोग ग्रंथभर में पुल्लिग रूप में ही मिलते हैं :

हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी। १-१०८४
मति भ्रम मोर कि आन बिसेषा। १-२०१-७

इसलिए 'तोहिं' पाठ ही प्रयोगसम्मत ज्ञात होता है, 'तोरि' नहीं।

(४) ५-२७ : रघुनाथदास में 'बिरिदु' के स्थान पर पाठ 'बिरद' है। ग्रंथ भर में रूप 'बिरिदु' या 'बिरिद' ही आया है :

लोक बेद बर बिरिद बिराजे। १-२५-२ बिरिद बदहि मति धोर। १-२६२
प्रनतारति हर बिरिद सभारा। ६-६४-१ असरन सरन बिरिदु संभारी। ७-१८-१

इसलिए वही प्रयोगसम्मत है, 'बिरद' नहीं।

×(५) ५-३३: 'ता कहुं प्रभु कछु अगम नहिं जापर तुम्ह अनुकूल। तव प्रताप बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल।' रघुनाथदास में 'प्रभाव' के स्थान पर पाठ 'प्रताप' है। अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है, इसलिए दोनों पाठ संगत प्रतीत होते हैं।

(६) ५-५४ : 'दुबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि।' रघुनाथदास में 'अंगद गद' के स्थान पर 'अंगदादि' पाठ है। इसके बाद भी नाम बराबर गिनाए गए हैं, इसलिए 'आदि' युक्त पाठ ठीक नहीं जान पड़ता है।

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में १७६२ के अस्वीकृत पाठ नहीं हैं, किन्तु १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास के कुछ अस्वीकृत पाठ अवश्य हैं, और इनके अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ हैं। नीचे क्रमशः इन पर विचार किया जाएगा।

*(१) ५-१-८ : 'जिमि अमोघ रघुपति के बाना । एही भांति चला हनुमाना ।' बंदन पाठक में 'एही' के स्थान पर पाठ 'तेही' है। तुलनीय प्रयोग के स्थल निम्नलिखित हैं ;

बिप्र बिबेकी बेद बिद संमत साधु सुजाति ।
जिमि धोखे मदपान कर सचिव सोच तेहि भांति ॥ २-१४४
जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाति ।
जिमि चातकि चातक तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति ॥ २-५२

अवधपुरी सोहइ एहि भाँती । प्रभुहि मिलन आई जनु राती । १-१९४-३
कैकेई हरषित एहि भाँती । मनहु मुदित दव लाइ किराती । २-१५९-५

ऊपर जिमि' के पूर्व 'एहि' और 'जिमि' के अनंतर 'तेहि' ही आए हैं। अतः 'तेहि' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

×(२) ५-२-६: बंदन पाठक में 'दून' के स्थान पर पाठ 'दुगुन' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

तें प्रिय मन लछिमन तें दूना । ४-३-७ तुम्ह तें प्रेम राम के दूना । ५-१४-१०
कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा । ५ २-७

(३) ५-६-८ : 'सुन दसमुख खद्योत प्रकासा । कबहुं कि नलिनी करइ विकासा । अस मन समुझु कहति जानकी । खल सुधि नहि रघुबीर बान की।' बंदन पाठक में 'समुझु' के स्थान पर पाठ 'समुझि' है। इस प्रकार के स्थलों पर ग्रंथ में पुरुषों के लिए 'समुझु' ही मिलता है; और रावण के लिए भी यही प्रयुक्त हुआ है, 'समुझि' नहीं। 'समुझि' तो स्त्रियों के लिए मिलता है:

सोइ प्रभु प्रगट समुझु जिअं रावन । ५-३६-८
खाहिं निसाचर दिवस निसि मूढ समुझु तजि टेक । ६-३१
कह रघुबीर समुझु जिअं भ्राता । ६-८४-६
समुझि धौं जिअं भामिनी । २-५०

इसलिए 'समुझु' पाठ ही समीचीन है, 'समुझि' नहीं।

×(४) ५-३१ : 'राति दिनु' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'दिवस 'निसि' मिलता है। दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है।

(६) ५-३५ : 'सहि सक न भार उदार अहिपति वारबारहिं

मोहई।' बंदन पाठक में 'मोहई' के स्थान पर पाठ 'बिमोहई' है। क्रिया के रूप में 'मोह' के ही प्रयोग मिलते हैं, यथा:

नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहइ। १-६८-३
सिव बिरंचि कहं मोहइ को हइ बपुरा आन। ७-६२
सो प्रगट करुनाकंद सोभाबृंद अग जग मोहई। ३-३२-छं०
नव अंबु धर बर गात अंबर चीर मुनि मन मोहई। ७-१२- छं०

इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

कोदवराम में १७६२, १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास, तथा बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठ अनेक हैं, और उनके अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ हैं, जिन पर नीचे विचार किया जाएगा।

(१) ५-१-७ : 'जेहि गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंगा।' कोदवराम में 'जेहि' के स्थान पर पाठ है 'जे'। 'जेहि' एकवचन कर्म का रूप है, और 'जे' बहुबचन कर्त्ता का रूप है। उसी के लिए अगले चरण में संकेतवाची सर्वनाम 'सो' प्रयुक्त हुआ है, जो एकवचन का है। इसलिए यह प्रकट है कि पहले चरण में भी सर्वनाम का एकवचन रूप ही होना चाहिए।

(२) ५-१-७ : ऊपर की ही अर्द्धाली में कोदवराम में 'देइ' के स्थान पर पाठ 'दीन्ह' है। 'देइ'='देकर' और 'दीन्ह'='दिया' में संदेह नहीं हो सकता है, क्योंकि उसका संबंध 'चलेउ' के साथ उसकी पूर्वकालिक क्रिया के रूप में है—'जेहि गिरि चरन देइ हनुमंता चलेउ, सो पाताल तुरंता गा।' अन्यथा 'चलेउ' असंगत और अर्थहीन हो जाता है।

(३) ५-३-४ : 'सोइ छल हनूमान कहं कीन्हा।' कोदवराम में 'कहं' के स्थान पर पाठ 'तें' है। तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में नहीं है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(४) ५-३-छं० : 'कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना। चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना।' कोदवराम में 'सुंदरा-

यतना' के स्थान पर पाठ 'सुन्दरायत अति' है। 'सुंदर' और 'आय-तन' से 'सुंदरायतना'='सुंदर घरोंवाला' (पुर) की सार्थकता और प्रासंगकिता प्रकट है। 'सुंदर' और 'आयत' से बना हुआ 'सुंदरा-यत'='सुन्दर' और 'चौड़ा' भी प्रसंग में खप सकता है।

(५) ५-३-छं० : अन्य पाठ 'माल' है; उसके स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मल्ल'। अर्थों में दोनों के कोई अंतर नहीं है, अंतर दोनों में तद्भव और तत्सम का है। किन्तु 'माल' पाठ में आकार के आने के कारण 'देह बिसाल' के साथ एक दीर्घाकार की व्यञ्जना है, जो 'मल्ल' पाठ में नहीं आ पाती। इसलिए 'माल' अधिक समीचीन लगता है।

(६) ५-४-७ : 'बिकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे।' कोदवराम में 'तैं' के स्थान पर पाठ 'जब' है। जब' ऊपर की ही अर्द्धाली में आ चुका है : 'जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोंहि चीन्हा।' दूसरे पाठ में इसलिए पुनरुक्ति होती है। 'तैं' से संगति तो लग ही जाती है, उसमें पुनरुक्ति भी नहीं है।

(७) ५-५-३ : 'गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही। कोदवराम में 'गरुड़' के स्थान पर पाठ है 'गरुअ'। 'रेनु' अपनी छोटाई के लिए प्रसिद्ध है, हलकेपन के लिए नहीं, इसलिए उसकी तुलना में 'सुमेरु' को 'गरुअ' कहना अर्थहीन है। 'गरुड़' पाठ युक्तियुक्त है, क्योंकि वह काग-गरुड़ संवाद के ढाँचे में संबोधन के रूप में है।

(८) ५-५-३ : ऊपर की ही अर्द्धाली में कोदवराम में 'चितवा' के स्थान पर पाठ 'चितवहिं' है। दोनों में 'चितवा' ही अधिक युक्ति-युक्त प्रतीत होता है, क्योंकि राम के किसी को कृपापूर्वक सदैव देखते रहने पर, जैसा 'चितवहिं' से ध्वनित होता है. यदि इतना हुआ तो उसमें कोई विशेषता नहीं; उनकी एक बार भी कृपा-दृष्टि हो गई तो वह क्या कम है? और 'चितवा' में यही ध्वनि है।

(९) ५-५ : 'रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ। नव तुलसिका बृंद तहं देखि हरष कपिराय।' कोदवराम में 'तुलसिका' के

स्थान या पाठ है 'तुलसी के'। 'बृंद' ग्रंथ भर में अनेकानेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है, किन्तु कहीं भी 'कर' या 'के' के साथ नहीं। सर्वत्र वह समस्त रूप में ही व्यवहृत है। इसलिए प्रथम पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा यहीं।

(१०) ५ ६ ३ : 'साम दान भय भेद दिखावा।' कोदवराम में 'दान' के स्थान पर पाठ 'दाम' है। चतुर्विधा राजनीति में 'दान' ही आता है, इसलिए यहाँ वही समीचीन है, 'दाम' नहीं।

(११) ५-१०-६ : 'सीतल निसि तव असि बर धारा। कह सीता हर मम दुख भारा।' कोदवराम में 'सीतल निसि तव असि' के स्थान पर पाठ है 'सीतल निसित बहसि'। रात्रि का प्रसंग है। इसलिए 'सीतल निसि'; और प्राणोत्सर्ग के लिए 'असि' की 'धारा' से प्रयोजन है, इसलिए उसको संबोधन करते हुए 'असि तव बर धारा'। 'निसित बहसि' पाठ में युक्तियुक्तता नहीं है। धार को 'सीतल' कहना बेमेल ही प्रतीत होता है, और 'बर' रहते हुए 'निसित'= 'तीक्ष्ण' में अनावश्यक पुनरुक्ति भी है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

× (१२) ५-११-६ : 'तब प्रभु सीता बोलि पठाई। अंतिम चरण में 'सीता' के स्थान पर कोदवराम में 'सीतहि' पाठ है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

> कामहि बोलि कीन्ह सनमाना। १-१२५-५
> कपि कुंजरहि बोलि लै आए। ६-१६ १
> तदपि उचित जन बोलि सप्रीती। २-६-१
> हरषे बोलि लिए दोउ भाई। १-२२६-१०

× (१३) ५-१५ : 'जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वांस सम त्रिविध समीरा।' कोदवराम में 'जे हित रहे' के स्थान पर पाठ है 'जेहि तर रहे'। किन्तु 'जेहि तर रहे'='जिसके नीचे रहे हैं' यहाँ अर्थहीन है। 'जे हित रहे'='जो सुख पहुँचाने वाले थे' अब 'तेइ पीरा करत' ='वे ही पीड़ा पहुँचा रहे हैं' की संगति और

सार्थकता प्रकट है, और प्रसंग में दिए हुए उदाहरणों से भी इसी की पुष्टि होती है।

×(१४) ५-१६: 'सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।' कोदवराम में 'साखामृग' के स्थान पर पाठ है 'साखामृगन्ह'। प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं। पहले पाठ में दोहे के प्रथम तथा द्वितीय चरणों को स्वतंत्र उपवाक्यों के रूप में लेना होगा; अर्थ होगा, "माता सुनो मैं शाखामृग हूँ मुझे कोई विशेष बल-बुद्धि नहीं प्राप्त है।" दूसरे पाठ में अर्थ होगा, "माता! सुनो, शाखामृग को कोई विशेष बल या बुद्धि नहीं प्राप्त होती?"

(१५) ५-१७-४: 'करहुं कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।' कोदवराम में 'मगन' के स्थान पर पाठ है 'हरष'। दूसरे पाठ में 'निर्भर प्रेम' शेष वाक्य से असंबद्ध हो जाता है। पहले पाठ में यह दोष नहीं है, अर्थ है—"हनुमान पूर्ण प्रेम में निमग्न हो गए।"

(१६) ५-२१-३ : 'मारे निसिचर केहि अपराधा।' कोदवराम में 'मारे' के स्थान पर पाठ है 'मारेहि'। 'मारे' मध्यम पुरुष बहुवचन है; और हनुमान ने कुछ एक ही नहीं, कई निशाचरों को मारा था, इसलिए उसके अनुरूप है। 'मारेहि' मध्यम पुरुष एकवचन है, और प्रसंगविरुद्ध है।

×(१७) ५-२४-४ : 'मति भ्रम तोहिं प्रगट मैं जाना। कोदवराम में 'तोहिं' के स्थान पर पाठ है 'तोर'। दोनों प्रकार के प्रयोग ग्रंथ में मिलते हैं :

हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी। १-१०८-४
मति भ्रम मोर कि आन बिसेषा। १-२०१-७
पियहि काल बस मति भ्रम भयऊ। ६-१६-८
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा। ७-७३-४

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं। दोनों ही प्रसंग में भी खप सकते हैं, यह प्रकट है।

*(१८) ५-२४ : 'कपि कें ममता पूंछ पर सबहि कहउं समुझाइ।'

कोदवराम में 'कह्यो' के स्थान पर पाठ 'कहा' है। कर्त्ता 'दसकंधर' है, जो ऊपर वाली अर्द्धाली में आ चुका है। 'कह्यो' ग्रंथ भर में इने-गिने स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है, अन्यथा 'कहा' ही मिलता है। अंतर दोनों में भाषा का भी है—पहला ब्रज का रूप है और दूसरा अवधी का ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण भी दूसरा अधिक समीचीन लगता है।

(१९) ५-२५-१ : 'पूंछहीन बानर तहं जाइहि। तब सठ निज नाथहिं लइ आइहि।' कोदवराम में 'तहं' के स्थान पर पाठ 'जब' है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं। किन्तु 'तहं' अधिक समीचीन लगता है, क्योंकि बिना अपने स्वामी की सेवा में पहुँचे उनको 'कपि' किस प्रकार ला सकता था ?

(२०) ५-२६-२ : 'जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला।' कोदवराम में 'झपट' के स्थान पर पाठ 'दपट' है। 'झपट'='झपटती हैं' न रहने से 'लपट' कत्त: क्रियाविहीन हो जाता है, और 'दपट' अर्थहीन भी है, इसलिए पहला ही पाठ संगत है।

(२१) ५-२८-१ : 'चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी।' कोदवराम में 'सुनि निसिचर' के स्थान पर पाठ है 'रजनीचर'। 'गर्भ स्रवहिं' कोई स्वतंत्र घटना नहीं है, वह तो महाध्वनिपूर्ण गर्जना को सुनने का ही परिणाम है। इसलिए 'सुनि' पूर्वकालिक क्रियायुक्त पाठ प्रसंगसम्मत है, दूसरा नहीं।

× (२२) ५-३१ : 'निमिष निमिष करुना निधि जाहिं कलप सम बीति।' कोदवराम में 'करुनानिधि' के स्थान पर पाठ है 'करुनायतन'। अर्थ की दृष्टि से दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं, और प्रयोग भी ग्रंथ में दोनों का हुआ है, इसलिए दोनों ही पाठ प्रसंगसम्मत और प्रयोग सम्मत हैं।

(२३) ५-३३-६ : 'सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।' 'कछू' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कछुक'। ग्रंथ भर में 'कछुक' का प्रयोग 'न' या उसके किसी समानार्थी के साथ

नहीं हुआ है : कारण यह है कि 'कछुक' = 'कछु' + 'एक' है। 'न' या 'नाहीं' 'कछु' के साथ ही मिलते हैं :

तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा। १-२७६-४
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर न कछू बसाई। १-१८४ छं०
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। १-५३-२

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(२४) ५-३४-५ : 'सुनि प्रभु बचन कहहिं कपि बृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा।' कोदवराम में 'प्रभु' के स्थान पर 'कपि' पाठ है। हनुमान ने राम से भक्ति का वरदान माँगा है, जिसके उत्तर में भगवान ने 'एवमस्तु' कहा है, और इसी पर उनकी जय जयकार की जा रही है। 'कपि' पाठ यहाँ पर नितांत असंगत और 'प्रभु' ही संगत है, यह प्रकट है।

× (२५) ५-३५-५ : 'जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन येह नीती।' कोदवराम में 'कीती' के स्थान पर पाठ है 'रीती'। 'राम की 'रीती' = 'राम की कार्य-प्रणाली' का मंगलमय होना उनकी 'कीर्ति' = उनके 'कार्यों' के मंगलमय होने की अपेक्षा कम युक्तियुक्त लगता है। 'कीती' रूप अन्यत्र अवश्य नहीं मिलता।

(२६) ५-३५- छं० : 'सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।' कोदवराम में 'उदार' के स्थान पर पाठ 'अपार' है। 'उदार' 'अहिपति' का विशेषण है, और उनके लिए सार्थक ही है। 'अपार 'भार' का विशेषण होगा। किन्तु 'भार' 'पार' करने की वस्तु नहीं है, इसलिए 'अपार' विशेषण उसके लिए युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता, और न ग्रंथ भर में 'भार' के साथ कहीं भी उसका प्रयोग हुआ है। इसलिए पहला ही पाठ ठीक प्रतीत होता है।

(२७) ५-३७-६ : 'मंदोदरी हृदय कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता।' कोदवराम में 'चिंता' ची स्थान पर पाठ है 'चीता'। 'चीता' अर्थहीन है, और ग्रंथ भर में कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ है। 'चिंता' के साथ इस प्रकार के तुक अन्यत्र भी आए हैं, यथा :

चितवति चकित चहु ं दिसि सीता । कहं गए नृपकिसोर मन चिंता । १-२३२-१
जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता । तिन्हहिं देखाइ दिहेसु त सीता । ४-२८-६
मुख मलीन उपजी मन चिंता । त्रिजटा सन बोली तब सीता । ६-६६-३

(२८) ५-४० : 'तात चरन गहि मांगौं राखहु मोर दुलार । सीता देहु राम कहुं अहित न होइ तुम्हार ।' कोदवराम में 'देहु' के स्थान पर पाठ है 'देव'। अर्थ है 'दे दो', यह प्रकट है, किन्तु ग्रंथ भर में इस अर्थ में 'देव' प्रयुक्त नहीं हुआ है, 'देहु' ही प्रयुक्त हुआ है, और वह दोहे के दूसरे चरण में आए हुए 'राखहु' के अनुरूप भी है।

×(२६) ५-४४-२ : 'सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं ।' कोदवराम में 'नासहिं' के स्थान पर पाठ है 'नासौं'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं। 'नासहिं' क्रिया होगी 'अघ' कर्त्ता की; 'नासौं' क्रिया होगी 'मैं' लुप्त कर्त्ता की, और तब 'अघ' कर्म होगा 'नासहिं' सकर्मक क्रिया का।

(३०) ५-४४-७ : 'जग महं सखा निसाचर जेते । लछिमन हनइं निमिप महं तेते ।' 'हनइं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'हतहिं' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा:

कहां राम रन हतौं पचारी । ६-१०-३-४
मुष्टि प्रहार हनत सब भागे । ५-२८-८

(३१) ५-४८ : 'सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम । ते नर प्रान समान मम जिन्हकें द्विज पद प्रेम ।' कोदवराम में 'पर-हित' के स्थान पर पाठ है, 'परम हित'। यहाँ पर भक्त के लक्षण कहे गए हैं। 'परम हित' यहाँ पर अर्थहीन लगता है, और ग्रंथ में भी कहीं नहीं आया है। 'परहित' तो ग्रंथ में भक्तों के लक्षणों में प्रायः सर्वत्र आया है, और यहाँ पर प्रसंगसम्मत भी है।

(३२) ५-४६ : 'रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड । जरत बिभीपन राखेउ दीन्हेउ राज अखंड ।' कोदवराम में 'राखेउ' के स्थान पर पाठ 'राखे' है। 'राखेउ' और 'दीन्हेउ' के कर्त्ता 'राम' हैं, जो ऊपर की अर्द्धाली में आए हैं। 'राखेउ' तथा 'राखे' दोनों 'राम' कर्त्ता के लिए प्रयुक्त हो सकते थे। किन्तु बाद में 'दीन्हेउ' क्रिया

आई है, और 'राखेउ' ही उसके अनुरूप है, इस कारण 'राखेउ' पाठ ही समीचीन लगता है।

(३३) ५-५०-६ : 'अति अगाध दुस्तर सब भांती।' कोदवराम में 'सब' के स्थान पर पाठ है 'बहु'। 'सब भांती' = 'सभी प्रकार से' 'दुस्तर' = 'कठिनाई से पार करने योग्य' की समीचीनता सागर के लिए प्रकट है, किन्तु 'बहु भांती' = 'बहुत प्रकार से' 'दुस्तर' = 'कठिनाई से पार करने योग्य' की युक्तियुक्तता में संदेह होता है।

(३४) ५-५२-२ : 'रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बांधि कपीस पहं आने।' कोदवराम में 'सकल बांधि कपीस' के स्थान पर पाठ है 'ताहि बांधि कपिपति'। 'रिपु के दूत' से ही प्रकट है कि दूत एक से अधिक थे, और यही बात प्रसंग से भी प्रकट होती है। इसलिए उनके संबंध में 'ताहि' का प्रयोग नितान्त असम्मत है। उनके संबंध में 'सकल' = 'सबों को' का प्रयोग ही सम्मत लगता है।

×(३५) ५-५२-३ : 'कह सुग्रीव सुनहु सब बानर।' कोदवराम में 'बानर' के स्थान पर पाठ है 'बनचर'। 'बनचर' एकाध बार 'बानर' के पर्याय के रूप में आया है :

बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप जिन्ह पाहीं। १-१८८-३

इसलिए दोनों पाठ प्रायः एक से हैं।

(३६) ५-५२-७ : 'सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हंसि तुरत छोड़ाए।' 'सब' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'तब' है। 'सुनि' के रहते हुए 'तब' एक तो अनावश्यक है, और दूसरे 'तब' पाठ से 'बोलाए' और 'छोड़ाए' सकर्मक क्रियायें कर्महीन हो जाती हैं, और यह नहीं ज्ञात होता है कि लक्ष्मण ने किसको बुलाया और किसको छुड़ाया। इसलिए 'सब' पाठ ही युक्तियुक्त है, 'तब' नहीं।

(३७) ५-५३-४ : 'पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी।' कोदवराम में 'खबरि' के स्थान पर पाठ है 'कुसल'। यह प्रश्न है रावण का। रावण को विभीषण के कुशल की जैसी चिंता हो सकती थी, वह 'जाहि मृत्यु आई अति नेरी' कथन से

प्रकट है। प्रसंग में 'खबरि'='समाचार' इसलिए अधिक संगत प्रतीत होता है।

(३८) ५-५३-४ : ऊपर की अर्द्धाली में 'जाहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'जासु' है। प्रसंग में वर्ण्य 'विभीषण' है, उसकी 'मृत्यु' नहीं; इसलिए 'जाहि' पाठ 'जासु' की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त लगता है।

(३९) ५-५३-५ : 'करत राजु लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी।' कोदवराम में 'त्यागी' और 'अभागी' के स्थान पर पाठ क्रमशः 'त्यागा' और 'अभागा' है। 'लंका' कर्म स्त्रीलिंग है, इसलिए उसके लिए सकर्मक क्रिया भी स्त्रीलिंग की होनी चाहिये। ऐसी दशा में 'त्यागा' के विरुद्ध 'त्यागी' पाठ की समीचीनता प्रकट है। पुनः, 'त्यागी'='त्याग करके' अर्थ में पूर्वकालिक क्रिया के समान भी यहाँ प्रयुक्त माना जा सकता है और 'अभागी' का प्रयोग 'अभागा' के अर्थ में ग्रंथ भर में मिलता है, यथा:

अज्ञ अकोबिद अंध अभागी। १-११५-१
बड़भागी बन अवध अभागी। २-९६-५
को त्रिभुवन मोहिं सरिस अभागी। २-१६४-६
मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। २-२०१-५

× (४०) ५-५४-८: 'अमित नाम भट कठिन कराला।' कोदवराम में 'कठिन' के स्थान पर पाठ है 'विकट'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं। किन्तु प्रयोगसम्मत दूसरा ही प्रतीत होता है : 'कठिन भट' ग्रंथ में अन्यत्र नहीं मिलता, 'विकट भट' ही अन्यत्र भी मिलता है, यथा:

देखि बिकट भट अति कटकाई। १-१७३-४
देखि बिकट भट अति हरषाहीं। ३-१८-८

(४१) ५-५५ : 'सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम। रावन काल कोटि कहुं जीति सकहिं संग्राम।' कोदवराम में 'काल' के स्थान पर पाठ 'काला' है। 'कोटिहु काल' तो संभव है, किन्तु 'कालहु कोटि' और 'कालौं कोटि' असंभव है; क्योंकि 'काल' का

विशेषण 'कोटि' जब वहां पर है, तो बल-निदर्शन उसी में 'हु'='भी' लगाकर किया जाएगा, 'काल' में नहीं।

(४२) ५-५६: 'की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग। होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है : 'होहि राम सर अनल जनि'। पहले दो चरणों में 'की'='या तो' आया हुआ है, इसलिए दूसरे दो चरणों के लिए 'की' या 'कि' युक्त पाठ वाक्यसंगठन की दृष्टि से अनिवार्य लगता है।

× (४३) ५-६० : 'मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिहीं। उर अपराध न एकौ धरिहीं।' कोदवराम में 'करिहीं' 'धरिहीं' के स्थान पर क्रमशः 'करिहहिं' 'धरिहहिं' पाठ है। दोनों पाठ एक से प्रयोगसम्मत हैं :

सुनत सुजन मन पावन करिहीं। १-४५

पैहहिं सुख मुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास। १-८

त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिहीं। ४-१८-७

धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ। १-२३९-३

(४४) ५-५९ : 'सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ। जेहि बिधि उतरइ कपिकटकु तात सो कहहु उपाइ।' कोदवराम में 'सुनत बिनीत बचन अति' के स्थान पर पाठ है 'सुनतहि बचन बिनीत अति'। 'हि'='ही' युक्त पाठ स्पष्ट ही अनावश्यक है, पहला ही यथेष्ट लगता है।

(४५) ५-६०: 'सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना। तजि सकल आस भरोस गावहिं सुनहि संतत सठ मना।' कोदवराम में 'सठ' के स्थान पर पाठ 'सुचि' है। यदि मन 'सुचि' ही है, तो उसे 'सकल आस भरोस' तजने के लिए कैसे कहा जा सकता है? अतः 'सठ'= 'दुराग्रही' या 'कुमार्गगामी' युक्त पहला ही पाठ प्रसंग-सम्मत लगता है।

१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

१७०४ में १७६२ के अस्वीकृत पाठ नहीं हैं, और न १७२१ के ही हैं उसमें छक्कनलाल, रघुनाथदास, वंदन पाठक तथा कोदवराम के

कुछ अस्वीकृत पाठ अवश्य हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ इसमें हैं, जिन पर यथाक्रम नीचे विचार किया जाएगा।

(१) ५-१-८: 'जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। येही भांति चला हनुमाना।' १७०४ में 'येही' के स्थान पर पाठ 'यो ही'। 'यो ही' ग्रंथ भर में कही प्रयुक्त नहीं है, और अर्थहीन है। 'येही' की संगति प्रकट है।

(२) ५-३-४ : 'सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा।' १७०४ में 'सोइ' के स्थान पर पाठ है 'सो'। ऊपर की एक पंक्ति है : 'निसिचर एक सिंधु महं रहई। करि माया नभ के खग गहई।' ऊपर जिस 'माया' का उल्लेख जीव-जंतुओं की छाया ग्रहण करके उनको पकड़ लेने में हुआ है, उसी की ओर 'सोइ छल' संकेत करता है; 'सो' पाठ से अभिप्रेत संकेत नहीं निकलता, यह प्रकट है।

(३) ५-४-४ : 'मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी।' १७०४ में 'बमत' के स्थान पर पाठ 'वमन' है। दूसरे पाठ में त्रुटि यह है कि 'रुधिर वमन' शेष वाक्य से असंबद्ध हो जाता है। 'बमत' पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और वह संगत भी है।

×(४) ५-८ : 'निज पद नयन दिएं मन राम चरन महुं लीन। परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन।' १७०४ में 'रामचरन महुं लीन' के स्थान पर पाठ 'राम कमल पद लीन' है। दोनों पाठ प्रसंग-सम्मत और प्रयोगसम्मत हैं। यद्यपि ग्रंथ भर में सामान्यत: 'पद कमल' ही आया है, कहीं कहीं 'कमल पद' भी आया है। यथा:

जाइ कमल पद नाएसि माथा। ४-२१-७

रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ। ६-१

(५) ५-२२ : 'गएं सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि।' १७०४ में 'राखिहैं' के स्थान पर पाठ है 'राखिहिं'। 'राखिहैं'= 'रक्खेंगे' की समीचीनता प्रकट है। 'राखिहि'='रक्खेगा' 'प्रभु' के लिए समीचीन नहीं लगता है।

(६) ५-२४: 'कपि कें ममता पूंछ पर सबहिं कह्यो समुझाइ। तेल बोरि पट बांधि पुनि पावक देहु लगाइ।' १७०४ में 'कह्यो' के स्थान पर 'कहौं' है। कोई कितना भी 'समझा कर' क्यों

न कहे, फिर भी वह ऐसा नहीं कहेगा कि 'वह समझा कर कह रहा है'। इसलिए 'कहौं' पाठ नितान्त अयुक्तियुक्त लगता है। 'कह्यो समुझाइ' की—जिसका कर्त्ता 'दसकंधर' है—समीचीनता प्रकट है।

(७) ५-२७-४ : 'बिरिदु' के स्थान पर १७०४ में 'बिरुद' पाठ है। ग्रंथ भर में शब्द का 'बिरुद' रूप कहीं नहीं मिलता, सर्वत्र 'बिरिद' रूप ही मिलता है[1] इसलिए 'बिरिद' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(८) ५-४१-३ : 'जियसि सदा सठ मोर जियावा।' १७०४ में 'सठ' के स्थान पर पाठ 'सब' है। यह वाक्य दशानन का विभीषण के प्रति है। अतः 'सठ' संबोधन की समीचीनता प्रकट है। 'सब' का कोई प्रसंग नहीं है, और न यह वास्तविकता थी।

(९) ५-४५-५ : 'आनन अमित मदनु मन मोहा।' १७०४ में 'मन' के स्थान पर पाठ 'छबि' है। 'छबि' को 'मोहने'='मुग्ध करने' की बात सर्वथा अयुक्तियुक्त है, 'मुग्ध' तो 'मन' या 'मनुष्य' ही होता है।

(१०) ५-५४-३ : 'रावन दूत हमहिं सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना।' १७०४ में 'दीन्हे' के स्थान पर पाठ है 'दीन्हेउ'। अंतर दोनों में वचन का है : पहला बहुवचन का रूप है, और दूसरा एकवचन का रूप है। नाना दुख' बहुवचन कर्म के साथ सकर्मक क्रिया का बहुवचन रूप 'दीन्हें' ही समीचीन है, 'दीन्हेउ' नहीं।

१—देखिए इसी स्थल पर का रघुनाथदास का अस्वीकृत पाठ।

लंका कांड

१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

१७०४ की प्रति में निम्नलिखित पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते, कुछ अन्य प्रतियों—जैसे १८०२ तथा १८९७ की प्रतियों—में मिलते हैं, और अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। नीचे इन पर यथाक्रम विचार किया जाएगा।

(१) ६-४-६ : 'चला कटक प्रभु आयेसु पाई।' १७०४ में पाठ है 'चला कटक कछु बरनि न जाई।' ऊपर आ चुका है : 'चली सेन कछु बरनि न जाई।' इसलिए द्वितीय पाठ में पुनरुक्ति ज्ञात होती है। किन्तु सेना का प्रस्थान कह कर, और उसके आगे के कुछ और भी विस्तार देने के अनतर यह कहना ठीक नहीं लगता कि 'कटक प्रभु की आयसु पाकर चला'। यह कहने का उपयुक्त स्थान तो ऊपर ही था। इसलिए प्रथम पाठ उतना प्रासंगिक नहीं है जितना दूसरा।

(२) ६-१० : 'परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोचत त्रास।' १७०४ में 'तद्यपि सोच न त्रास' के स्थान पर पाठ है 'तदपि न मन कछु त्रास'। 'तद्यपि' ग्रंथ भर में कहीं नहीं मिलता है, सर्वत्र 'तदपि' मिलता है। इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत है

×(३) ६-११-१ : 'एहि बिधि कृपारूप गुन धाम राम आसीन। धन्य ते नर एहि ध्यान जे रहत सदा लवलीन।' १७०४ में 'कृपा रूप' के स्थान पर पाठ 'करुनासील' है। प्रसंग से इस पाठभेद पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। प्रयोगसम्मत दोनों हैं, यथा :

भावबस्य भगवान सुखनिधान करुना भवन। ७-९२
चारिउ रूप सील गुन धामा। १-१९८-६

(४) ६-१२/२ : १७०४ में 'दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु' के स्थान पर पाठ है 'दच्छिन दिसा बिलोकि पुनि'। 'दिसा' के साथ अन्यत्र 'बिलोकि' ही मिलता है :

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक। ६-११
सो सिसि तेहि न बिलोकी भूली। १-१३५-१

दूसरे, 'प्रभु' पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति है : 'कृपानिधान' बाद में ही आता है; इसलिए 'प्रभु' की कोई आवश्यकता नहीं है। 'पुनि' पाठ प्रसंग में खप जाता है, और उसमें वह पुनरुक्ति भी नहीं है।

×(५) ६-१६-६ : 'जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई। येहि विधि कहहु मोरि प्रभुताई।' १७०४ में 'बिधि' के स्थान पर 'मिसि' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं। 'मिसि' रूप अवश्य कहीं नहीं मिलता, लिपि-प्रमाद के 'मिस' का 'मिसि' होना संभव है।[1]

(६) ६-२३-८ : 'रावन नगरु अलप कपि दहई। सुनि अस वचन सत्य को कहई।' १७०४ में ऊपर की अर्द्धाली के दूसरे चरण के स्थान पर पाठ है : 'को अस झूठ सुनै को कहई।' दोनों पाठ प्रसंग-सम्मत हैं। अंतर दोनों में केवल अत्युक्ति की मात्रा का—दूसरे में वह पहले की अपेक्षा अधिक है। और इस प्रसंग में जैसी लम्बी-चौड़ी बातें अंगद ने कही हैं, यथा:—

सत्य नगर कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गएउ सुग्रीव पहिं तेहि भय रहा लुकाइ॥ ६-२३

उनके साथ यह आधिक्य ही ठीक लगता है।

(७) ६-२८-२ : 'नांघहिं खग अनेक वारीसा। सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा।' १७०४ में 'सब' के स्थान पर पाठ 'जड़' है। 'सब न होहिं' से यह ध्वनि ली जा सकती है कि उनमें से कुछ खग शूर होते हैं, जो प्रसंग में अपेक्षित नहीं है। 'जड़' पाठ में यह त्रुटि नहीं है। संवाद भर में 'जड़' तथा मिलते-जुलते अनेक विशेषण व्यवहृत हुए हैं, इसलिए वह प्रसंगसम्मत भी है।

(८) ६-३१-७ : 'रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे वदन बात बड़ि कहसी।' १७०४ में अधम के स्थान पर पाठ है 'पोत'। 'छोटे

---

[1]—१८०२ तथा १८१७ की प्रतियों में पाठ 'मिसु' है।

मुँह बड़ी बात' के साथ 'कपि अधम' की अपेक्षा 'कपि पोत'='बंदर का बच्चा' अधिक समीचीन लगता है।

(९) ६-३३-४ : 'म ; गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि विहरति नहिं छाती।' १७०४ में 'बिहरति' के स्थान पर पाठ 'बिहरी' है। 'बल विलोकि' भूतकालिक रूप के साथ 'बिहरी' भूतकालिक रूप अधिक उपयुक्त लगता है। 'बल बिलोकि' में संकेत बल के उस प्रदर्शन की ओर हो सकता है जो अंगद ने इसके पूर्व उस समय किया था जब उसने अपनी भुजाएँ पृथ्वी पर इतने जोर से पटकी थीं कि एक भूचाल-सा आ गया था और रावण गिरते-गिरते बचा था।

(१०) ६-३४-१ : १७०४ में निम्नलिखित दोहा नहीं है :—

'कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ।
झपटइं टरइ न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाइ॥'

इसके पूर्व दो वार मेघनादादि राक्षसों के असफल प्रयास का उल्लेख इस प्रकार हो चुका है :—

इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहं तहं भट नाना।
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरै बैठहि सिरु नाई।
पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरै न कीस चरन येहि भांती।
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी।

विवेचनीय दोहे की पूरी शब्दावली और उसका पूरा भाव तो ऊपर की प्रथम दो अर्द्धालियों में आ चुका है, इसलिए उक्त दोहे में पुनरुक्ति प्रकट है। इतना ही नहीं, दूसरे प्रयत्न में भी राक्षस सुभट असफल ही रहे हैं। ऐसी दशा में 'सुभट उठे हरषाइ' कहना समीचीन भी नहीं प्रतीत होता।

(११) ६-३५-२ : 'साँझ जानि दसकंधर भवन गएउ बिलखाइ। मंदोदरी रावनहिं बहुरि कहा समुझाइ।' १७०४ में 'दसकंधर' के स्थान पर पाठ 'दसमौलि तव' तथा 'रावनहिं' के स्थान पर पाठ 'निसाचरहिं' है। दोनों पाठान्तर प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

सि बोलेउ दसमौलि तब कपिकर गुन बड़ एक। ६-३८
छन महुं जरे निसाचर तीरा। ६-६१-२

दोनों पाठ प्रसंगसम्मत भी हैं—'तव' से कोई अंतर वस्तुतः नहीं पड़ता। किन्तु पहले पाठ में तीसरा चरण गति के ध्यान से ठीक नहीं है, एक मात्रा कम लगती है; दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है।

×(१२) ६-३६-३ : 'प्रिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर येह कामा।' १७०४ में 'येह' के स्थान पर पाठ 'अस' है। दोनों पाठों के अर्थों में विशेष अंतर नहीं है, और प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

×(१३) ६-३६-६ : 'जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहां रहा बल गर्ब तुम्हारा।' १७०४ में 'सकल पुर' के स्थान पर पाठ है 'नगरु सव'। पहले पाठ में 'सकल पुर' ही 'जारि' और 'छारि कीन्हेसि' का कर्म है। दूसरे पाठ में 'छार कीन्हेसि' का कर्म 'सव' हो जाता है और 'जारि' का कर्म 'नगर' हो जाता है। दोनों पाठ प्रसंगसम्मत हैं।

×(१४) ६-३६-१० : 'जनक सभा अगनित भूपाला। रहे तुम्हौ बल अतुल विसाला।' १७०४ में 'भूपाला' के स्थान पर पाठ 'महिपाला' है। दोनों में अर्थ-संबंधी कोई अंतर नहीं है, और न प्रयोग-संबंधी कोई अतर है, यथा :

पिता जनक भूपाल मनि। २-५८
तात राम नहिं नर भूपाला। ५-३६-१
आए तहँ अगनित महिपाला। १-१३०-६
एक प्रताप भानु महिपाला। १-१५

'महिपाला' और 'बिसाला' का तुक अवश्य 'भूपाला' की अपेक्षा कुछ अच्छा बनता है।

×(१५) ६-४२-१ : 'राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा।' १७०४ में पाठ 'सुभट' के स्थान पर 'निकर' है। 'बरूथा' के प्रयोग अन्यत्र इस प्रकार आए हैं :

धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा। ३-१८-४
धावहु मर्कट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा। ६-४-६

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत लगते हैं।

(१६) ६-४२-७ : 'जो रन बिमुख फिरा मैं जाना। सो मैं हतब कराल कृपाना।' १७०४ में 'सो मैं हतब' के स्थान पर पाठ है 'तेहि मारिहौं'। तृतीय पुरुष सर्वनाम का 'हतना' के कर्म के रूप में प्रयोग अन्यत्र निम्नलिखित स्थलों पर मिलता है :

पुनि रावन तेहि हतेउ प्रचारी। ६-६५-४ प्रभु तातें उर हतइ न तेही। ६-१०७-११

अतः विकृत द्वतीया का रूप ही प्रयोग सम्मत लगता है, मूल प्रथमा का रूप 'सो' नहीं; दूसरे पाठ में विशेषता यह भी है कि 'मैं' की पुनरावृत्ति नहीं है।

(१७) ६-४२-८ : 'उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने।' १७०४ में 'चले' के स्थान पर 'फिरे' और 'सुभट' के स्थान पर पाठ 'बीर' है। 'चले' पाठ में दिशा का अनिश्चय है— अर्थात् यह नहीं प्रकट होता कि युद्ध-भूमि की ओर चले या उससे विमुख दिशा में। प्रसंग की सहायता से ठीक अर्थ का ऊहापोह करना पड़ता है। 'फिरे'='वापस हुए' में यह अनिश्चय नहीं रह जाता। 'सुभट' और 'बीर' में लज्जित होना 'बीर' के लिए अधिक युक्तियुक्त लगता है 'सुभट'='कुशल योद्धा' के लिए उतना नहीं : युद्ध की कुशलता एक बात है और चारित्रिक वीरता उससे एक भिन्न बात।

(१८) ६-४२ : 'बहु आयुधधर सुभट सब भिरहिं प्रचारि प्रचारि। कीन्हे ब्याकुल भालुकपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि।' १७०४ में 'त्रिसूलन्हि' के स्थान पर पाठ 'प्रचंडन्हि' है। 'त्रिसूल' का प्रयोग इस युद्ध में अन्यत्र केवल मेघनाद तथा रावण के द्वारा कराया गया है :

अस कहि तीब्र त्रिसूल चलावा। जामवंत सो कर गहि धावा। ६-७४-६
लेइ त्रिसूल धावा कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे। ६-७६-४
कोपि मरुत सुत अंगद धाए। हति त्रिसूल उर धरनि गिराए। ६-७६-६
कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारइ। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ। ६-६१-५

पहले पाठ में जो उसका प्रयोग अन्य राक्षसों द्वारा भी कराया गया है, इसलिए उतना ठीक नहीं लगता। 'प्रचंडन्हि' पाठ में उसका कारक-रूप

अवश्य चिन्त्य है : संभवतः 'परिघ' और 'प्रचंड' का समास मान कर ही ऐसा कर दिया गया है।

(१६) ६-४४ : 'क एक सों मर्दहिं तोरि चलावहिं मुंड। रावन आगें परहिं ते जनु फूटहिं दधिकुंड।' 'सों मर्दहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सन मर्दि करि'। 'सों' और 'सन' दोनों एक ही प्रकार से ग्रंथ भर में प्रयुक्त हैं, यथा :

तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू। २-१६-३
बिदा मातु सन आवौं मांगी । २-४६-४
सो माया प्रभु सों भय मानै। १-२००-४
गीधराज सों भेंट भइ । ३-१३

'मर्दहिं' और 'मर्दि करि' से भी अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता। दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो प्रथम पाठ में है।

×(२०) ६-५०-४ : अन्य पाठ 'क्रोध' है, उसके स्थान पर १७०४ में 'कोप' है। दोनों शब्दों का प्रयोग ग्रंथ भर में पर्याय के रूप में हुआ है। दोनों शब्द इसलिए एक-से प्रयोग और प्रसंग-सम्मत हैं।

×(२१) ६-५२ : 'आयेसु मांगि राम पहं अंगदादि कपि साथ। लछिमन चले क्रुद्ध होइ बानमरासन हाथ।' १७०४ में 'मांगि' के स्थान पर पाठ 'मांगेउ' है। दोनों में अर्थ-विषयक कोई अंतर नहीं है।

(२२) ६-५८ : 'बिनु फर सायक मारेउ चाप स्रवन लगि तानि।' १७०४ में 'सायक' के स्थान पर 'सर तकि' पाठ है। आगे की अर्द्धाली में 'सायक' पुनः इस प्रकार आता है :

परेउ मरुछि भट लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक।

दूसरे पाठ में यह पुनरुक्ति नहीं है। अर्थों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं है।

(२३) ६-५९-२ : 'सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए।' १७०४ में 'तब' के स्थान पर पाठ 'उठि' है। 'तब' प्रसंग में 'सुनि प्रिय बचन' के होते हुए एक निरर्थक क्रिया-

विशेषण लगता है। 'उठि' उसकी अपेक्षा कहीं अधिक सार्थक है, और प्रसंगसम्मत भी है।

(२४) ६-६२ : 'भरत बाहुबल सील गुन प्रभुपद प्रीति अपार। मनमहुं जात सराहत पुनि पुनि पवन कुमार।' १७०४ में तीसरे चरण के स्थान पर पाठ है 'जात सराहत मनहिं मन'। अर्थ की दृष्टि से दोनों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं है, और दोनों पाठ प्रयोगसम्मत भी प्रतीत होते हैं। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है

(२५ २६) ६-६४-३ : 'कुंभकरन दुर्मद रनरंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा। देखि बिभीषनु आगें आएउ। परेउ चरन निज नाम सुनाएउ।' १७०४ में 'आएउ' के स्थान पर 'गएऊ' और 'परेउ चरन निज नाम सुनाएउ' के स्थान पर 'पद गहि नाम कहत निज भएऊ' पाठ है। प्रसंग में आगे चलकर कहा गया है : 'बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आएउ जहं त्रैलोक बिभूषन।' इसलिए कुंभकरण के सामने जाने के संबंध में 'आना' की अपेक्षा 'जाना' क्रिया युक्त पाठ अधिक युक्तियुक्त लगता है। दूसरा पाठांतर पहिले के कारण ही है।

(२७) ६-६५-६ : १७०४ में 'टारयो', 'मारयो' के स्थान पर क्रमशः 'टारा', 'मारा' है। अंतर दोनों में केवल रूप का है : एक ब्रज भाषा का रूप है दूसरा अवधी का। ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण दूसरा रूप अधिक उपयुक्त लगता है।

(२८) ६-६६-६ : 'नाक कान काटे जियं जानी। फिरा क्रोध करि भै मन ग्लानी।' १७०४ में 'जियं' के स्थान पर पाठ 'सोइ' है। नाक-कान काटने की बात जी में जानने की नहीं हो सकती। जी में तो ऐसी बातें जानी जाती हैं जिनके संबंध में अनुमान का आश्रय लेना पड़ता है। 'सोइ' प्रसंग में खप जाता है, और उसमें प्रथम पाठ की वह त्रुटि नहीं है।

(२९) ६-६९-२ : 'भा अति क्रुद्ध महाबल बीरा।' १७०४ में पाठ है 'भएउ क्रुद्ध दारुन बलबीरा।' 'अति और 'महा' प्रायः समानार्थी हैं, इसलिए प्रथम पाठ में पुनरुक्ति सी प्रतीत होती है।

'दारुन' पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और यह प्रसंग में खप भी जाता है।

(३०) ६-६९-८ : 'बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहंसा जबहिं निकट कपि आए। १७०४ में दूसरे चरण के 'कपि' के स्थान पर 'भट' है।' 'कपि' प्रथम चरण में भी आ चुका है, इसलिए प्रथम पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। दूसरे पाठ में वह नहीं है, और 'भट' प्रसंग में खप भी जाता है।

(३१, ३२) ६-७१-६ : 'सुर दुदुंभी बजावहिं हरपहिं। असतुति करहिं सुमन बहु बरपहिं।' १७०४ में प्रथम चरण के 'सुर' के स्थान पर पाठ 'नभ' और दूसरे चरण के स्थान पर पाठ है 'जय जय करि प्रसून सुर बरपहिं।' देवताओं ने ग्रंथ भर में आकाश में ही दुदुंभी बजाई है, युद्ध-स्थल में आकर नहीं। पहले पाठ में इस दूसरे भ्रम की संभावना है, इसलिए 'नभ' पाठ अधिक युक्तियुक्त है। स्तुति करने का भी कोई अवसर नहीं है; अवसर तो है कुंभकर्ण का वध करने पर राम को वधाई देने का। इसलिए 'जय जय करि' पाठ अधिक प्रसंगोचित भी लगता है।

(३३) ६-७२ : 'मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गएउ अकास। गर्जेउ प्रलय पयोद जिमि भइ कपि कटकन्हि त्रास।' १७०४ में 'मायामय' के स्थान पर पाठ 'माया रचित' है। 'मायामय' तथा 'मायारचित' दोनों प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

> मायामय तेहिं कीन्ह रसोई। १-१७३-२
> माया तें असि रची न जाई। ५-१३-३

केवल, दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों में मात्रा-विषयक वह विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

×(३४) ६-७३ : 'गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भवपास। सो कि बंध तर आवइ व्यापक बिस्व निवास।' १७०४ में 'गिरिजा' के स्थान पर संबोधन 'खगपति' को है। दोनों संबोधन सम्मत हैं—इस प्रसंग में ही दोनों श्रोता संबोधित हैं :

बरनि न जाइ समर खगकेतू। ६-७१-११
चरित राम के सगुन भवानी। ६-७४-१

(३५) ६-७४-६ : 'अस कहि तरल त्रिसूल चलायो।' १७०४ में 'तरल' के स्थान पर पाठ 'तीव्र' है। तुलनीय प्रयोग निम्नलिखित हैं :

अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि-चढ़ि गए। ६-४१
प्रभु-बल पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए। ६-६७-४
तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा। धर तें भिन्न तासु सिर कीन्हा। ६-७१-४
छाँड़ेसि तीव्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि पठाई। ६-९१-४

'तीक्ष्ण' के अर्थ में अस्त्रों के विशेषण के रूप में 'तीव्र' का ही प्रयोग हुआ है। 'तरल' का प्रयोग 'चंचल' के अर्थ में हुआ है। इसलिए 'तीव्र' ही प्रयोगसम्मत लगता है, 'तरल' नहीं।

×(३६) ६-७४-७ : 'परा भूमि घुर्मित सुरघाती।' १७०४ में 'भूमि' के स्थान पर पाठ है 'धरनि'। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत लगते हैं, यथा :

परे भूमि कपि बीर ६-५०; परेउ भूमि जयराम पुकारेसि। ६ ९१-७
परिहहिं धरनि रामसर लागे। ६-२७-४
परेउ धरनि व्याकुल सिर धुनेऊ। ६ ६५-७

(३६) ६-७५-६ : 'जामवंत सुग्रीव बिभीषन। सेन समेत रहेउ चारिउ जन।' १७०४ में 'सुग्रीव' के स्थान पर पाठ है 'कपिराज'। जिस समय से रामकी आज्ञा से सुग्रीव का राज्याभिषेक किया गया है, उसी समय से राम ने या तो सुग्रीव को 'कपिराज' 'कपीस' आदि प्रभुत्वसूचक विशेषण-मात्र से अभिहित किया है, और या त उसका नाम लेते हुए 'सखा' या 'हरीश' विशेषणों के साथ उसे संबोधित किया है :

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउं दस चारि बरीसा। ४-१२-७
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव। ४-१८

केवल एक बार क्रुद्ध होकर उसका नाममात्र लिया है :

सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोष पुर नारी।
जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतउं मूढ़ कहुं काली। ४-१८-४ ५

इसलिए 'कपिराज' पाठ 'सुग्रीव' की तुलना में अधिक समीचीन लगता है।

(३८) ६-७५ : 'रघुपति चरन नाइ सिर चलेउ तुरंत अनंत। अगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत।' दोहे के प्रथम चरण का पाठ १७०४ में है 'बंदि राम पद कमल जुग'। दोनों में अर्थ-विषयक कोई अंतर नहीं है। 'वंदि' का भी प्रयोग 'नाइ सिर' की ही भाँति किया गया है, यथा :

बंदत चरन करत प्रभु सेवा। विविध रूप देखे सब देवा। १-५४-८

अंतर केवल 'चरन' और 'पदकमल' का है। राम के चरणों के लिए केवल 'चरन' कहने की अपेक्षा 'पद कमल' कहना अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(३९) ६-७६-३ : 'कीन्ह कपिन्ह तव जज्ञ बिधंसा।' १७०४ में 'तव कीसन्ह कृत जज्ञ बिधंसा' पाठ है। दोनों में अर्थ का कोई अंतर नहीं है—'कृत' का प्रयोग 'किया' के अर्थ में अन्यत्र भी हुआ है, यथा :

ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना। १-१३-४

अंतर केवल 'कपिन्ह' और 'कीसन्ह' का है। 'कपिन्ह' ऊपर वाली अर्द्धाली में आ चुका है : 'जाइ कपिन्ह देखा सो वैसा।' इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है, जो दूसरे पाठ में नहीं है।

(४०) ६-८० : 'सुनत बिभीषन प्रभु बचन हरपि गहेउ पदकंज। येहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज।' १७०४ में 'उपदेसेहु' के स्थान पर पाठ है 'उपदेस दिअ'। राम के चरणों में पड़कर विभीषण का इतना ही कहना कि "इस बहाने मुझे आपने उपदेश दिया" युक्तियुक्त नहीं लगता। "राम ने इस बहाने मुझे उपदेश दिया [उन्हें मेरे हित का कितना ध्यान रहता है ।]" इस भावना से राम के चरण पकड़ना मात्र पघड़ना अधिक

युक्तियुक्त लगता है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में छंद के प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता भी नहीं है जो पहले पाठ में है। यद्यपि 'दिअ' रूप ग्रंथ में कहीं नहीं आया है, किन्तु 'किअ' ग्रंथ में अनेक स्थलों पर मिलता है, यथा :

गवन निठुरता निकट किअ जनु धरि देह सनेहु। २-२४
रामु रामु रटि भोर किअ कहइ न मरमु महीसु। २-३८
तमसा तीर निवास किअ प्रथम दिवस रघुनाथ। १-८४

(४१) ६-८० : 'उत प्रचार दसकंधर इत अंगद हनुमान। भिरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन।' १७०४ में 'दसकंधर' के स्थान पर पाठ है 'दसकंठ भट'। दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह विषमता नहीं है जो प्रथम पाठ में है। अन्यथा दोनों पाठ समान हैं।

(४२) ६-८१ : 'निजदल बिचलत देखिसि बीस भुजा दस चाप। रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप।' १७०४ में 'बिचलत देखिसि' के स्थान पर पाठ है 'बिचल बिलोकि तेहिं'। 'बिचलत' और 'बिचल' दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

निज दल बिचल सुना हनुमाना। ६-४३-१
अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्हि इन माया। ६-४६-१

किन्तु एक में विचलने की क्रिया पूर्ण नहीं हुई है, और दूसरे में वह पूर्ण है। 'फिरहु फिरहु' के ध्यान से दूसरा पाठ इसलिए कुछ अधिक संगत प्रतीत होता है।

(४३) ६-८२ : 'निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ। लछिमन चले सरोष तब नाइ रामपद माथ।' १७०४ में प्रथम दो चरणों का पाठ है 'बिचलत देखि अनीक निज कटि निषंग धनु हाथ।' छंद-रचना की दृष्टि से ही दूसरा पाठ पहले से उत्कृष्टतर है—इसमें प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह विषमता नहीं है जो पहले में है। अन्यथा दोनों पाठ एक से हैं।

(४४) ६-८४-८ : 'पुनि कोदंड बान धरि धाए। रिपु सनमुख अति आतुर आए।' १७०४ में इस अर्द्धाली का पाठ है :

धरि सर चाप चलत पुनि भए। रिपु समीप अति आतुर गए।

दानो की शब्दावली में अंतर मुख्यतः यह है कि 'धाए' के स्थान पर 'चलत भए' और 'सन्मुख' के स्थान पर 'समीप' है। लक्ष्मण मूर्छा से अभी-अभी उठे हैं : पूर्व की अर्द्धाली है : 'सुनत बचन उठ बैठ कृपाला। गगन गई सो सक्ति कराला।' ऐसी दशा में उनका एकबारगी दौड़ पड़ना—जो 'धाए' पाठ से आता है—और दौड़ करके रावण के समीप पहुँच जाना उतना युक्तियुक्त नहीं लगता है जितना दूसरा लगता है।

(४५) ६-८४ : 'उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कुछ जग्य। राम विरोध बिजय चह सठ हठवस अति अज्ञ।' १७०४ में दोहे के तीसरे चरण का पाठ है 'जय चाहत रघुपति बिमुख'। राम से विमुख होना ही जय से हाथ धोना है, उनसे विरोध करना तो और बड़ी बात है। अतः 'विमुख' पाठ 'विरोध' की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता नहीं है, जो पहले पाठ में है।

(४६) ६-८५ : 'जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास। चलेउ लंकपति क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस।' १७०४ में पहले चरण के स्थान पर पाठ है 'मख विधंसि कपि कुसल सब', अर्थ में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(४७) ६-८६-५ : 'इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही। दारुन बिपति हमहिं येहिं दीन्ही। अब जनि राम खेलावहु येही। अतिसय दुखित होति बैदेही।' १७०४ में 'अस्तुति' के स्थान पर पाठ है 'बिनती'। जो कुछ देवताओं ने यहाँ कहा है, वह 'अस्तुति' = 'गुणगान' नहीं हैं; वह तो बिनती' ही है। इसलिए दूसरा पाठ ही समीचीन है।

×(४८) ६-८६-५ : 'खरदूषन बिराध तुम्ह मारा।' १७०४ में 'बिराध' के स्थान पर पाठ 'कबंध' है। राम ने दोनों का बध किया

था, इसलिए दोनों पाठ एक से लगते हैं। अन्यत्र ये एक ही प्रकार से दोनों का उल्लेख हुआ है, यथा :

बधि बिराध खरदूखनहिं लीला हतेउ कबंध। ६-३६

खरदूषन बिराध बध पंडित। ७-५१-५

(४६) ६-६० : 'राम बचन सुनि बिहंसा मोहि सिखावत ज्ञान। बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान।' १७०४ में 'बिहंसा' के स्थान पर पाठ है 'बिहंसि कह'। 'बिहंसा' के अनन्तर आने वाली शब्दावली रावण ने अपने मन में कही या राम को संबोधित करके, पहले पाठ से यह प्रकट नहीं होता। किंतु आगे की अर्द्धाली में यह बात स्पष्ट आई है कि यह शब्दावली राम को संबोधित है :

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाँड़ै सर॥

इसलिए दूसरे पाठ का 'कह' आवश्यक और प्रासंगिक है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(५०) ६-६४ : 'उमा बिभीषनु रावनहिं सनमुख चितव कि काउ। सो अब भिरत काल ज्यों श्री रघुबीर प्रभाउ।' १७०४ में तृतीय चरण के स्थान पर पाठ है 'भिरत सो काल समान अब'। दोनों में विशेष अंतर नहीं है—केवल 'ज्यों' और 'समान' का शाब्दिक अंतर है, और दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा विषयक वह पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले में है।

(५१) ६-६७ : 'तब रघुपति लंकेस के सीस भुजा सर चाप। काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप।' १७०४ में तीसरे तथा चौथे चरणों का पाठ है 'काटे भए बहोरि जिमि कर्म मूढ़कर पाप।' यह कहना ठीक नहीं है कि रावण के सिर या बाहु काटने पर बहुत बढ़ जाते थे, इसलिए पहला पाठ युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। 'काटे भए बहोरि' = 'काटने पर भी फिर-फिर हो जाते थे' यही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। उपमाओं में जो अंतर है वह प्रस्तुतों में इसी अंतर के अनुरूप है। दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता भी नहीं है जो पहले में है।

×(५२) ६-६५-३ : 'बालितनय मारुति नीलनला। वानर राज दुबिद बलसीला।' १७०४ में दूसरे चरण का पाठ है 'दुबिद कपीस पनस बलसीला'। दोनों पाठों में अंतर केवल 'पनस' का है : पहले पाठ में वह नहीं है, दूसरे में वही अधिक है। अन्यत्र 'पनस' का कोई उल्लेख हुआ नहीं है, इसलिए उसके बढ़ने से भी कोई विशेषता आती हुई नहीं प्रतीत होती—केवल योद्धा-बंदरों की संख्या एक और बढ़ जाती है।

(५३) ६-१०२-७ : 'असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृगाल बहु स्वाना।' १७०४ में 'असुभ होन लागे' के स्थान पर पाठ है 'असगुन होन लगे'। प्रसंग यहाँ अपशकुनों का ही है, यह प्रकट है। अपशकुनों के अर्थ में 'असुभ' शब्द का प्रयोग ग्रंथ भर में केवल एक स्थान पर और दिखाई पड़ता है :

चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाहिं सिरन पर। ६-८६-१

नहीं तो ग्रंथ भर में सर्वत्र 'असगुन' शब्द ही 'अपशकुन' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, यथा :

असगुन अमित होहिं तेहिं काला। ६-७८-६
असगुन होहिं न जाहिं बखानी। ६-४८-७
असगुन भएउ भयंकर भारी। ६-१४-२
मुकुट खसे कस असगुन ताही। ६-१४-४

इसलिए यद्यपि प्रयोगसम्मत दोनों हैं, 'असगुन' 'असुभ' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

×(५४) ६-१०४-३ : 'पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष संभारा।' १७०४ में दूसरे चरण का पाठ है 'छुटे चिकुर न सरीर संभारा'। 'चिकुर' ग्रंथ में अन्यत्र नहीं आया है और न खुले हुए बालों का प्रसंग ही इस प्रकार कहीं आया है, किन्तु अन्यथा खुले हुए बालों के लिए 'चिकुर' 'कच' की अपेक्षा कदाचित् अधिक

समीचीन प्रयोग है। 'बपुष' तथा 'सरीर' का अंतर तो शाब्दिक मात्र है, यथा :

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी। ६-६८-५
छूटे तीर सरीर समाने। ६-७०-७

(५५) ६-१०४ : अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु को आन। जोगिबृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान।' १७०४ में दोहे के तीसरे चरण का पाठ है 'मुनि दुर्लभ जो परमगति।' दोनो का प्रयोग ग्रंथ में मिलता है, यथा :

अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना। ३-२७-१७
जो गबृंद दुलभ गति जोई। तोकहुं आजु सुलभ भलि सोई। ३-३६-८

दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है।

× (५६) ६-१०५-५ : 'तब प्रभु अनुजहि आयेसु दीन्हा।' १७०४ में इस चरण का पाठ है 'राम अनुज कहुं आयेसु दीन्हा।' 'अनुजहि' और 'अनुज कहुं' दोनों प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

प्रथमहिं जिन्हकहुं आयेसु दीन्हा। १-१८३-२
जौ महेसु मोहि आयेसु देहीं। १-६१-६

शेष अंतर केवल शाब्दिक और महत्वहीन लगता है।

(५७) ६-१०६-६ : 'तिलक सारि अस्तुति अनुसारी।' १७०४ में 'सारि' के स्थान पर पाठ 'कीन्ह' है, 'सारि' तथा 'अनुसारी' में पुनरुक्ति सी प्रतीत होती है, जो 'कीन्ह' में नहीं है; अन्यथा 'सारि' और 'कीन्ह' में कोई अंतर नहीं है : ग्रंथ में दोनों का प्रयोग 'तिलक' कर्म के लिए सकर्मक क्रिया के रूप में हुआ है :

सारेउ तिलक कहेउ रघुनाथा। ६-१०६-३
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। ५-४६-१०
महाराज कहुं तिलक करीजइ। ७-१०-८
प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। ७-१२-५
कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सयल प्रबरषन बास। ७-६६

(५८) ६-१०८-६ : 'बेगि बिभीषन तिन्हहिं सिखायो। तिन्ह बहुबिधि मज्जनु करवायो।' १७०४ में 'सिखायो' के स्थान पर पाठ 'सिखाया' और 'मज्जन करवायो' के स्थान पर 'सीतहिं अन्हवावा' है। अंतर दोनों में एक तो रूप-संबंधी है : एक ब्रजभाषा का रूप है, दूसरा अवधी का। ग्रंथ की भाषा अवधी होने के कारण अपेक्षाकृत दूसरा अधिक समीचीन लगता है। दूसरा अंतर यह है कि पहले पाठ में 'मज्जन करवायो' का कर्म नहीं है, दूसरे पाठ में कर्म 'सीतहि' आया हुआ है। इसलिए वाक्यसंगठन की दृष्टि से भी वह अधिक समीचीन लगता है।

(५९) ६-१०८-७ : 'बहु प्रकार भूषन पहिराए।' १७०४ में 'बहु प्रकार' के स्थान पर पाठ है 'दिव्य बसन'। मज्जन कराने के अनंतर वस्त्र पहनाना आभूषणों से अधिक आवश्यक होता है, इसलिए दूसरा पाठ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

(६०) ६-१०९-१० : 'देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए। पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदयं हरष नहिं भय कछु तेही।' १७०४ में प्रथम अर्द्धाली के दूसरे चरण के 'पावक प्रगटि' के स्थान पर पाठ है प्रगटि कृसानु'। 'पावक' पाठ में पुनरुक्ति है, क्योंकि वह इसी अर्द्धाली के प्रथम चरण में आता है, और वह भी प्रारंभ में ही। दूसरा पाठ इस दृष्टि से त्रुटिहीन है।

(६१,६२) ६-११०-६ : 'येह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही। अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरे मन बिसमय आवा।' १७०४ में प्रथम अर्द्धाली के 'येह खल मलिन' के स्थान पर पाठ 'रावन पापमूल' है, और दूसरी अर्द्धाली के प्रथम चरण के स्थान पर पाठ है : 'सोउ कृपाल तव धाम सिधावा।' 'येह खल' के स्थान पर 'रावनु' का आना आवश्यक है, क्योंकि ऊपर की पंक्तियों में एक किंचित भिन्न प्रसंग है :

मनि कमठ सूकर नरहरी। वामन परसुराम वपु धरी
जब जब नाथ सुरन्ह दुख पावा। नाना तनु धरि तुम्हहि नसावा।

'मलिन' और 'पापमूल' में 'पापमूल' अधिक युक्तियुक्त है; क्योंकि यहाँ पर उसके आचरणों में और उसकी अंतिम गति में कितना बड़ा अंतर है, यह दिखाना अभीष्ट है। तीसरे चरण के जो पाठांतर हैं उनमें मुख्य अंतर 'अधम सिरोमनि' और 'सोउ कृपाल' का है। 'सोउ' आवश्यक-सा है, क्योंकि अन्यथा रावण के वर्णित आचरणों और उसकी अंतिम गति में कोई वैषम्य है, यह बहुत स्पष्ट नहीं होता। 'कृपाल' की संगति प्रकट है, क्योंकि केवल भगवत्कृपा के कारण ही उसे यह गति प्राप्त हुई है। 'अधम सिरोमनि' भी ऊपर की पंक्ति में आए हुए विशेषणों के होते हुए आवश्यक-सा है।

(६३) ६-११०-११ : 'हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी। भव प्रबाह संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे।' १७०४ में प्रथम अर्द्धाली के 'प्रभु' के स्थान पर पाठ 'तव' है। 'प्रभु' पुनः दूसरी अर्द्धाली में आता है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। इसके अतिरिक्त वह 'भक्ति किसकी है, यह भी पहले पाठ में नहीं है। दूसरे पाठ में यह त्रुटियाँ नहीं हैं।

(६४) ६-११४-७ : 'सुधाबृष्टि भै दुहुं दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर। रामाकार भए तिन्हके मन। मुक्त भए छूटे भवबंधन।' १७०४ में चौथे चरण का पाठ है 'गए ब्रह्मपद तजि सरीर रन'। मुक्ति तो जीवन में भी साध्य है :

जीवन मुकुति हेतु जनु कासी। १-३१.११
जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान। १-७-४२
जीवन मुकुत महामुनि जेऊ। ७-५३-२
जीवन मुकुत ब्रह्म पर प्रानी। ७-५४-६

इसलिए प्रथम पाठ से यह ध्वनि स्पष्ट नहीं है कि उन्हें मरणांतर मुक्ति मिली थी या जीवन ही में। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(६५) ६-११४ : 'सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान। देखि सुअवसर प्रभु पहिं आए संभु सुजान।' १७०४ में 'प्रभु' के स्थान पर पाठ है 'राम'। दोनों पाठ संगत हैं। दूसरे पाठ में

प्रथम तथा तृतीय चरणों में मात्राविषयक वह पारस्परिक वैषम्य अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है।

(६६) ६-११५ : 'नाथ जबहिं कोसलपुरी होइहि तिलक तुम्हार। कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार।' १७०४ में दोहे के तीसरे चरण का पाठ है 'तब मैं आउब सुनहु प्रभु'। दोनों पाठ संगत हैं। दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में मात्रा-विषयक वह पारस्परिक वैषम्य अवश्य नहीं है जो पहले में है।

(६७) ६-११८-५ : 'सुमिरेहु मोहिं डरपेहु जनि काहू।' १७०४ में 'डरपेहु' के स्थान पर पाठ 'डरहु' है। 'डरपेहु' में कदाचित् सामान्य से कुछ अधिक भय की व्यंजना हुई है यथा :

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। १-२१६-६
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल। २-२१६

यहाँ विशेष भयभीत होने का ही नहीं, सामान्य भय करने का भी निषेध करना प्रसंगसम्मत है। इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

× (६८) ६-११८-६ : 'मसक कहूं खगपति हित करहीं।' १७०४ में 'कहूं' के स्थान पर पाठ 'कवहूं' है। प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं, क्योंकि अर्थ में दोनों पाठ एक-दूसरे से प्राय: अभिन्न हैं।

(६९) ६-११९-१ : इहाँ सेतु बाँधेउं अरु थापेउं सिव सुखधाम। सीतासहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम।' १७०४ में दोहे के प्रथम चरण का पाठ है 'येह देखु सुंदर सेतु जहं'। पहले पाठ में यह भ्रम हो सकता है कि यह कथन करते समय सेतु नहीं रह गया था। दूसरे में इस प्रकार के भ्रम की संभावना नहीं है। अन्यथा प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं।

कोदवराम के स्वीकृत पाठभेद

कोदवराम में भी कुछ स्थलों पर इस प्रकार के पाठांतर हैं जो यद्यपि १७०४ तथा कुछ अन्य प्रतियों—यथा १८०२ तथा १८९७—में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते, और उक्त अन्य

पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर जान पड़ते हैं। नीचे यथाक्रम इन पर विचार किया जाएगा।

×(१) ६-१-७ : 'सकल सुनहु बिनती कछु मोरी।' कोदवराम में 'कछु' के स्थान पर पाठ 'एक' है। दोनों विशेषणों का प्रयोग इस प्रकार के प्रसंगों में मिलता है :

अवर एक बिनती प्रभु मोरी। १-१५१-४

नाथ सुनहु बिनती कछु मोरी। ७-४८-३

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं। प्रसंग में भी दोनों खप सकते हैं।

×(२) ६-१ : 'अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।' कोदवराम में 'गिरि पादप' के स्थान पर पाठ 'तरु सैलगन' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

सैल बिसाल आनि कपि देहीं। ६-१-१

बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। १-१६१-४०

और प्रसंग में भी दोनों खप सकते हैं।

×(३) ६-३-७ : 'बाँधा सेतु नील नल नागर।' कोदवराम में 'बाँधा' के स्थान पर पाठ 'बाँधेउ' है। दोनों प्रयोगसम्मत लगते हैं :

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। ३-२७-७

बांधा सिंधु इहइ प्रभुताई ६-२८-१

तेहि पर बांधेउ तनय तुम्हारे। ५-२२-५

खब निसाचर बांधेउ नागपास सोइ राम। ७-५८

और अर्थ में भी दोनों में कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(४) ६-६-१ : 'निज बिकलता बिचारि बहोरी। बिहंसि चला गृह करि भय भोरी।' कोदवराम में 'निज बिकलता बिचारि' के स्थान पर पाठ है 'ब्याकुलता निज समुझि'। पूर्व की पंक्तियाँ यह हैं :

सुनत स्रवन बारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना।

बांधेउ बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।

सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥

'बिचार' करने के लिए कुछ अवकाश चाहिए, वह तत्काल नहीं हो सकता, और 'समझना' तत्काल भी संभव है। इस प्रसंग में 'समुझि'

इसलिए अधिक युक्तियुक्त लगता है। शेष अंतर शाब्दिक मात्र प्रतीत होता है।

×(५) ६-७ : 'अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात।' 'नयन नीर भरि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'लोचन बारि भरि'। अर्थ-विषयक कोई अंतर दोनों में नहीं है, और प्रयोगसम्मत भी दोनों ही हैं :

येहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर। २-१८१
सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन। २-१५६
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर। ५-७
अस कहि कपि गदगद भएउ भरे बिलोचन नीर। ५-१४

×(६) ६-७ : 'नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात।' 'रघुनाथहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'रघुनाथ पद'। अर्थ-विषयक अंतर दोनों में कोई नहीं है, और प्रयोगसम्मत भी दोनों ही हैं :

भजहु राम पदपंकज अस सिद्धांत बिचारि। ७-११६
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ। ६-१५
सुत कहं राजु समर्पि बन जाइ भजिय रघुनाथ। ६-६

(७) ६-८-६ : 'मंदोदरी हृदय अस जाना। कालबस्य उपजा अभिमाना।' कोदवराम में 'कालबस्य' के स्थान पर पाठ है 'कालबिबस'। 'बस्य' के प्रयोग मिलते हैं :

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। ४-२१-३
मायाबस्य जीव अभिमानी। ७-७८-६
मायाबस्य जीव सचराचर। ७-७८-४
भावबस्य भगवान सुखनिधान करुनाभवन। ७-१४२

किंतु 'कालबस्य' के नहीं। 'कालबिबस' के उदाहरण अवश्य मिलते हैं :

कालबिबस कहं भेषज जैसे। ६-१०५
कालबिबस बस उपज न बोधा। ६-३७-६

धर्महीन प्रभुपद बिमुख कालबिबस दससीस। ६-३८
कालबिबस पति कहा न माना। ६-१०४ १३

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है। प्रसंगसम्मत भी दूसरा अधिक प्रतीत होता है : 'वश्यता' में ध्वनि सामान्य रूप से वश में होने की होती है, 'विवशता' में ध्वनि पाराकाष्टा की वश्यता की होती है। प्रसंग में दूसरी ही ध्वनि अपेक्षित प्रतीत होती है।

(८) ६-११-२ : 'सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेखी।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है, 'सैल शृंग एक सुंदर देखी।' और दूसरे चरण का पाठ है, 'अति उतंग सम सुभ्र बिसेखी'। प्रयोगसम्मत दोनों पाठ हैं :

मेरु सिषर बट छाया मुनि लोमस आसीन। ७-११०
मेरु सृंग जनु घन दामिनी। ६-११६-५
परमरम्य गिरिबर कैलासू। १-१०५-८
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनिआकर बहु भांति। १-६५

किंतु पहले पाठ में छंद की गति ठीक नहीं है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

×(९) ६-११-४ : 'तापर रुचिर मृदुल मृगछाला।' कोदवराम में तापर' के स्थान पर पाठ है 'तेहि पर'। यह 'तापर' किसलय और सुमन के उस बिछौने के लिए प्रयुक्त है जिसका उल्लेख ऊपर की पंक्ति में हुआ है :

तहं तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए।

'ता' और 'तेहि' दोनों उसके लिए प्रयुक्त हो सकते हैं, और प्रयोग में दोनों में कोई अंतर प्रतीत नहीं होता है :

देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा। १-८७-१
तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। १-१०६-३ तापर हरषि चढ़ी बैदेही। ६-१०६
सैल बिसाल देखि एक आगे। तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे। ५-३-८

(१०) ६-१२ : 'कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास। तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास।' कोदवराम में 'हनुमंत' के स्थान पर पाठ 'मारुतसुत' है। दोनों में कोई उल्लेखनीय

अंतर नहीं प्रतीत होता है; केवल पहले पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में जो मात्राओं की विषमता है वह दूसरे पाठ में नहीं है।

×(११) ६-१४-४ : 'मुकुट परे कस असगुन ताही।' कोदवराम में 'परे' के स्थान पर पाठ है 'खसे'। 'परे' का प्रयोग 'गिर पड़े' या 'गिर पड़ने पर' के अर्थ में जिस प्रकार हुआ है, उसी प्रकार 'खसे' का भी हुआ है :

सब के देखत महि परे मरम न कोऊ जान। ६-१३
बबतें खबनपूर महि खसेऊ। ६-१५-६
डोलत धरनि सभासद खसे। ६-३२-४
मुरछित बिकल धरनि खसि परी। ६-१०४

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत और प्रसंगसम्मत जान पड़ते हैं।

(१२) ६-१६ : 'येहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध। सहज असंक लंकपति सभा गएउ दमअंध। कोदमराम में प्रथम दो चरणों का पाठ है : 'बहु विधि जल्पेसि सकल निसि प्रात भए दसकंध।' यह शयन का समय था। रावण ने स्वतः सब को इसी लिए जाने का आदेश दिया था :

सयन करहु निज निज गृह जाई। ६-१४-५

इसलिए 'सकल निसि' का आना प्रसंगसम्मत है। और ऊपर की ही पंक्ति में रावण के मतिभ्रम होने का कथन किया गया है :

मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहिं काल-बस मतिभ्रम भयऊ।

इसलिए उसकी ऊपर आई हुई बातों को 'विनोद' के स्थान पर 'जल्पना' कहना भी युक्तिसंगत है। रहा 'प्रात प्रगट' और 'प्रात भए' में से; 'प्रात' होने के उल्लेख तो बराबर मिलते हैं :

होत प्रात बटछीर मंगावा। २ १५१-२
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। ६ ८५-४
होत प्रात मुनिभेष धरि जौं न राम बन जाहिं। २-३३

किंतु 'प्रात प्रगट' अन्यत्र नहीं मिलता, और 'प्रगट' से 'प्रकट हुआ' का आशय लिया भी नहीं जा सकता। इसलिए दूसरा पाठ

प्रसंग और प्रयोग दोनों दृष्टियों से पहले की अपेक्षा उत्कृष्टतर प्रतीत होता है।

(१३ ६-१७-३ : 'सुनु सर्बज्ञ सकल उर बासी। बुधिबल तेज धर्म गुनरासी।' कोदवराम में पाठ है : 'सुनु सर्बज्ञ सकल गुनरासी। सत्यसंध प्रभु सब उरबासी।' अंतर 'गुनरासी' और 'सकल गुनरासी' तथा 'बुधि बल तेज धर्म रासी' और 'सत्यसंध प्रभु' का है। तीन अर्द्धाली बाद ही अंगद को 'बुधि बल गुन धाम' कहा गया है : 'बालि तनय बुधि बल गुन धामा।' इसलिए 'गुनरासी' मात्र कहने की अपेक्षा—जो 'गुनधाम' से अभिन्न है—'सकल गुनरासी' कहना राम के लिए अधिक युक्तयुक्त है। इसी प्रकार 'बुधिबल रासी' मात्र कहने की अपेक्षा—जो 'बुधि बल धामा' का पर्याय मात्र है—'सत्यसंध प्रभु' अधिक युक्तियुक्त है।

(१४) ६-२०-४ : 'बर पाएहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा।' दूसरे चरण के 'सब' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'सुर' है। 'सब' पहले चरण में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरे में यह नहीं है। और 'जीतेहु सुरराजा' कहना असंगत भी नहीं है। इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा उत्कृष्टतर ज्ञात होता है।

(१५) ६-२३-६ : 'सुनत बचन कह बालि कुमारा।' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सुनि हंसि बोलेउ बालिकुमारा।' रावण ने राम-पक्ष के समस्त योद्धाओं को हीन बताते हुए कहा है :

है कपि एक महा बलसीला।...आवा प्रथम नगर जेहि जारा।

इसीका उत्तर अंगद ने प्रायः इस प्रकार दिया है :

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। सांचेहु कीस कीन्ह पुरदाहा।

रावनु नगरु अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई।

आगे की पंक्तियों में इसी उक्ति का और विस्तार किया गया है। अतः यह कथन केवल सामान्य ढंग से होने की अपेक्षा एक व्यजंना पूर्ण हँसी के साथ होना अधिक प्रसंगसम्मत प्रतीत होता है।

(१६) ६-२३-१ : 'सत्य नगरु कपि जारेऊ बिनु प्रभु आयेसु पाइ। फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहि भय रहा लुकाइ।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'अब जानेउं पुर दहेउ कपि' और तीसरे चरण का पाठ है 'फिरि न गएउ निज नाथ पांहं।' तीसरे चरण के पाठों में केवल नाम का अंतर है : हाँ अंगद के मुख से 'सुग्रीव' की अपेक्षा 'निज नाथ' के प्रयोग में शिष्टता अवश्य अधिक है। मुख्य अंतर प्रथम चरण सम्बन्धी है। यह उक्ति इसी दोहे तक समाप्त कर दी गई है. आगे दूसरी उक्ति है, और इसका प्रारंभ चार पंक्ति ऊपर प्राय: इन्हीं शब्दों में किया गया है :

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। सांचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा।

इसलिए समाप्ति में व्यंगात्मक संदेह की अपेक्षा प्रतिपक्षी के कथन में व्यंगात्मक विश्वास अधिक समीचीन लगता है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों में मात्रा-विषयक वह विषमता भी नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१७) ६-२७-५ : 'ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना।' कोदवराम में 'सम' के स्थान पर पाठ है 'इव'। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

नर मरकट इव सबहिं नचावत। ४-७-२४

बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा। ४-१६-६

कुंद इंदु सम देह। १-०-४

कोन माने सम निरगुन अनुसरहीं। १-३-१०

उदय केतुसम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके। १-४-६

(१८) ६-२८ : 'सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि सीस। हुते अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस।' कोदवराम में तीसरे-चौथे चरण का पाठ है 'हुने अनल में बार बहु हरपित साखि गिरीस।' अंतर 'अनल' और 'अनल महं', 'अति हरष' 'और' 'हरषित' तथा 'गौरीस' और 'गिरीस' का है। 'गौरीस' और 'गिरीस' दोनों शिव के पर्याय हैं :

गनपति गौरि गिरीस मनाई । २-७१-२
तुम्हहि प्रानसम प्रिय गौरीसा । १.१-४-४
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा । ५-३३-२
कोटिन्ह चतुरातन गौरीसा । ७-८०-५

'हरषित' और 'अति हरष' भी इस प्रसंग में एक से लगते हैं। 'अनल' अवश्य अधिकरण कारक में है, इसलिए 'अनल महुं' पाठ केवल 'अनल' की अपेक्षा—जैसा वह पहले में है—अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

× (१६) ६-२६-१० : 'इंद्रजालि कहुं कहिअ न बीरा । कटै निज कर सकल सरीरा ।' कोदवराम में 'इंद्रजालि' के स्थान पर पाठ है 'बाजीगर'। 'इंद्रजाल' का प्रयोग एक स्थान पर और मिलता है:—

सो नर इंद्रजाल नहिं भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला । ३-३८-३

'इंद्रजालि' या इंद्रजाली' का प्रयोग अवश्य नहीं मिलता है। 'इंद्रजालि' छंद की आवश्यकता के कारण 'इंद्रजाली' का विकृत रूप मात्र है। 'बाजीगर' ग्रंथ में प्रयुक्त नहीं है, किंतु लोकभाषा में प्रचलित है और अविकृत रूप में आया है। दोनों के अर्थों में अंतर नहीं प्रतीत होता है।

× (२०) ६-२६ : जरहिं पतंग मोहबस भार बहहिं खरबृंद। ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद।' कोदवराम में 'मोह' के स्थान पर पाठ है 'बिमोह'। दोनों पाठों में वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है।

× (२१) ६-२६ : ऊपर के ही दोहे में 'कहावहिं' के स्थान पर कोदवराम में 'सराहिअहिं' पाठ है। प्रसंग में दोनों पाठ खप जाते हैं—'शूर नहीं कहलाते' और 'शूर के रूप में (लोग) उनकी सराहना नहीं करते हैं'।

(२२) ६-३०-३ : 'दसमुख मैं न बसीठी आएउं। अस बिचारि रघुबीर पठाएउं। बारबार अस कहइ कृपाला। नहिं गजारि जसु बधें सृकाला।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली के 'अस' के स्थान पर

'इमि' है 'अस' पहली अर्द्धाली में भी आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है, जो दूसरे में नहीं है।

(२३) ६-३० : 'तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउं। तब जुवतिन्ह समेत सठ जनकसुतहिं लै जाउं।' कोदवराम में 'तव जुवतिन्ह' के स्थान पर पाठ है 'मंदोदरी'। 'युवती' का सामान्य अर्थ 'तरुणी' मात्र है, और साधारणतः वह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है :

जग अस जुवति कहां कमनीया। १-१४७-४
जहं तहं जुवतिन्ह मंगल गाए । १-२६३-२
जुवत भवन झरोखन्हि लागीं । १-२२०-४

यद्यपि पत्नी अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग कभी-कभी हुआ है :

सो दुख अए जुवती बिरह पुनि निसि न मम श्रास। ६-११
जुवति बृंद रोवत उठि धाईं । पतिगति देखि ते करहिं पुकारा। ६-१०-४३

दूसरे, मंदोदरी रावण की पट्टरानी थी, उसे छोड़ कर रावण की अन्य स्त्रियों को ले जाने के लिए कहने में वह बात नहीं है जो उसी को ले जाने के लिए कहने में है, विशेषकर के जब कि प्रसंग में तुलना सीता से है।

(२४) ६-३२-६ : 'गिरत संभारि उठा दसकंधर। भूतल परेउ मुकुट अति सुंदर।' कोदवराम में पाठ इस प्रकार है : 'गिरत दसानन उठा संभारी। भूतल परेउ मुकुट षटचारी।' अंतर दोनों में 'अति सुंदर' और 'षटचारी' का है। 'षटचारी' = 'दस' 'अति सुंदर' की तुलना में अधिक सार्थक और प्रासंगिक लगता है।

(२५) ६-३२ : 'तरकि पवनसुत कर गहेउ आनि धरेउ प्रभु पास।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है : 'कूदि गहे कर पवन-सुत'। अंतर 'तरकि' और 'कूदि' तथा 'गहेउ' और 'गहे' का है। 'कूदना' और 'तरकना' दोनों ग्रंथ में प्राय एक ही प्रकार से प्रयुक्त हुए हैं :

कूदि लंकगढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद पहिं धावा। ६-४३-१

अंगद सुनेउ कि पवनसुत गढ़ गए गएउ अकेल।
समर बांकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपिखेल॥ ६-४३
सिंधुतीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर। ५-१-५
बार बार रघुबीर संभारी। तरकेउ पवन तनय बलभारी। ५-१-६

'गहेउ' अपेक्षा 'गहे' अवश्य अधिक समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि अगले चरण की क्रिया 'धरे' के अनुरूप वही है।

(२६) ६-३२ : 'उहां सरोष दसानन सब सन कहत रिसाइ। धरहु कपिहिं धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ।' कोदवराम में इसके स्थान पर पाठ है : 'उहां कहत दसकंध रिसाई। धरि मारहु कपि भागि न जाई।' अंतर दोनों में यह है कि कोदवराम में कुछ शब्द कम हो गए ; किंतु उन्हीं शब्दों के कारण अन्य पाठ में पुनरुक्ति सी होती थी। 'रिसाइ' तो आया ही था, 'सकोप' भी आता था, 'धरि मारहु' तो आया ही था 'धरहु कपिहिं' भी आता था।

(२७) ६-३४-८ : 'समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा मांझ पन करि पद रोपा।' कोदवराम में 'समुझि राम प्रताप' के स्थान पर पाठ है 'राम प्रताप सुमिरि'। बल-प्रदर्शन के अवसरों पर राम प्रताप का स्मरण ही किया गया है :

राम प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं। ६-१-६
जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध दोउ बानर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर। ६-४४-१
सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा। ६-७१-८

ऐसे एक भी अवसर पर अन्यत्र 'राम प्रताप' के 'समझने' का उल्लेख नहीं हुआ है। दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता भी नहीं है जो पहले पाठ में है।

(२८) ६-३५-१ : 'रिपुबल धरषि हरषि कपि बालि तनय बलपुंज पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज। कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है : 'सजल सुलोचनु पुलक तनु'। 'सजल सुलोचन' और 'नयन जल' दोनों प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं :

तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नयन। १-२२८

सजल बिलोचन पुलक सरीरा। २-११५-४
बारि बिलोचन बांचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती।१-२९०-४

(२९) ६-३६-१० : 'जनक सभा अगनित भूपाला। रहे तुम्हौ बल अतुल बिसाला।' कोदवराम में 'अतुल' के स्थान पर पाठ 'बिपुल' है। जब 'अतुल' है, तब 'बिसाला' की क्या आवश्यकता है? 'बिपुल बिसाला' अवश्य युक्ति-युक्त है।

(३०) ६-३८ : 'धर्महीन प्रभुपद बिमुख काल बिबस दससीस। तेहि परिहरि गुन आए सुनहु कोसलाधीस।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है 'आए गुन तजि रावनहिं'। दोनों में अंतर केवल शाब्दिक प्रतीत होता है। किंतु दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(३१,३२) ६-३९ : 'जयति राम जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव। गर्जहिं सिंहनाद कपि भालु महाबल सींव।' कोदवराम में 'जय लछिमन' की जगह पाठ है 'भ्राता सहित', और 'सिंहनाद' के स्थान पर है 'केहरिनाद'। यह अंतर भी शाब्दिक ही प्रतीत होते हैं। किंतु दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(३३) ६-४०-३ : 'आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे।' कोदवराम में 'सब निसिचर' के स्थान पर पाठ 'रजनीचर' है। ऊपर की पंक्ति में 'निसाचर' आया है : 'बिहंसि निसाचर सेन बोलाई।' इसलिए 'निसिचर' पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है, जो 'रजनीचर' पाठ में नहीं है।

(३४) ६-४१ : 'एक एक निसिचर गहि पुनि कपि चले पराइ। ऊपर आपुनु हेठ भट गिरहिं धरनि पर आइ।' कोदवराम में 'निसिचर गहि' के स्थान पर पाठ है 'गहि रजनिचर'। दोनो में अर्थ या प्रयोग-विषयक कोई अंतर नहीं है। किंतु दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

×(३५) ६-४२-४ : 'हाहाकार भयेउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी।' कोदवराम में 'बालक आतुर नारी' के स्थान पर पाठ है 'आरत बालक नारी।' दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं। वे प्रयोगसम्मत भी हैं, यथा :

जपहिं राम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी। १-२१-५

गीधराज सुनि आरत बानी। ३-२६-६

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयालु रघुराई। ३-२-११

भय आतुर कपि भागन लागे। ६-४३ १

(३६) ६-४२-६ : 'निज दल बिचल सुनी तेहिं काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना।' कोदवराम में 'तेहिं' के स्थान पर पाठ 'जब' है। प्रसंग से यह प्रकट है कि अर्द्धाली के दोनों चरण कारण-कार्य के रूप में संबद्ध हैं। दूसरे पाठ से यह संबंध अधिक स्पष्टता से प्रकट होता है। कर्ता 'तेहिं' के निकल जाने से कोई क्षति नहीं पहुँचती, क्योंकि अगले और मुख्य उपवाक्य में कर्ता 'लंकेस' आ गया है।

(३७) ६-४४-२ : 'जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर। रावन भवन चढ़े द्वौ धाई। करहिं कोसलाधीस दोहाई।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली के 'द्वौ' के स्थान पर पाठ है 'तब'। पहली अर्द्धाली में 'द्वौ' आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति ज्ञात होती है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और 'तब' प्रसंग में खप भी जाता है।

(३८) ६-४४-७ : 'गर्जि परे रिपु कटक मझारी। लागे मर्दै भुज बल भारी।' कोदवराम में 'गर्जि परे' के स्थान पर पाठ है 'कूदि परे'। 'गर्जि परे' का आशय यहाँ 'गर्जना करके कूद पड़े' ज्ञात होता है, किंतु अन्यत्र कहीं भी इस प्रकार का प्रयोग नहीं हुआ है। इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(३९) ६-४५ : 'भुजबल रिपु दल दलमलि देखि दिवस कर अंत। कूदे जुगल बिगत स्रम आए जहं भगवंत।' कोदवराम में 'बिगत स्रम' के स्थान पर पाठ है 'प्रयास बिनु'। 'बिगत स्रम' 'कूदे'

के क्रिया-विशेषण के रूप में आता है, किन्तु उस की कोई संगति नहीं लगती, क्योंकि 'बिगत स्रम' का अर्थ 'बिना श्रम' नहीं है, 'श्रम या थकावट मिट जाने पर' है; और वे दोनों हो 'बिगत स्रम' बाद में हुए हैं :

राम कृपा करि जुगल निहारे । भए बिगत स्रम परम सुखारे । ६-४८-२

'प्रयास बिनु' अवश्य संगत है, क्योंकि कूदने में प्रयास की आवश्यकता होती ही है।

(४०) ६-४६-७ : 'महावीर निसिचर सब कारे । नाना बरन बलीमुख भारे ।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'बीर तमीचर सब अति कारे'। अंतर केवल 'महावीर' और 'बीर' तथा 'कारे' और 'अति कारे' का है। यहाँ पर प्रसंग वर्ण का है, वीरता का नहीं। इसलिए 'कारे' के साथ 'अति' का होना और 'बीर' के साथ 'महा' का न होना दोनों युक्तयुक्त प्रतीत होते हैं।

(४१) ६-४७-१ : 'सकल मरम रघुनायक जाना ।' कोदवराम में पाठ है : 'येह सब परम राम बिभु जाना'। 'मरमु' में संकेत है ऊपर की पंक्तियों में वर्णित 'भएउ निमिष महुं अति अधियारा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा।' की ओर है। 'सकल मरमु' की अपेक्षा इसलिए 'येह सब मरमु' अधिक प्रासंगिक है। 'बिभु'-'सर्व व्यापी' भी सार्थक है।

×(४२) ६-४७ : 'कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चले पराइ। गर्जहिं भालु बलीमुख रिपुदल बल बिचलाइ।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'कछु घायल कछु रन परे', और तीसरे चरण का पाठ है 'गर्जहिं मर्कट भालु भट'। यह अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है, अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता। प्रयोगसम्मत दोनों पाठ हैं।

(४३) ६-४८-८ : 'बेद पुरान जासु जस गायो। राम बिमुख काहुं न सुख पायो।' कोदवराम में 'गायो' और 'पायो' के स्थान पर क्रमशः 'गावा' और 'पावा' है। अंतर दोनों में भाषा के अतिरिक्त कदाचित् दूसरा नहीं है। दूसरा रूप अवधी का है, जो पहले की अपेक्षा—जो ब्रज का है—अधिक समीचीन लगता है, क्योंकि ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी है।

(४४) ६-४८-२ : 'काल रूप खल बन दहन गुनागार घन बोध। सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तेहि सन कवन बिरोध।' कोदवराम में 'सिव बिरंचि जेहि सेवहिं' के स्थान पर पाठ है 'जेहिं सेवहिं सिव कमलभव'। दोनों पाठों में अंतर केवल शाब्दिक प्रतीत होता है, क्योंकि 'बिरचि' और 'कमलभव' पर्याय ही हैं। यह अवश्य है कि दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(४५) ६-४६ : 'मेघनाद सुनि स्रवन अस गढ़ पुनि छेका जाइ। उतर्‌यो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है : 'उतरि बीरवर दुर्ग तें'। दोनों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है, 'बर' होने से कोई उल्लेखनीय विपेशता दूसरे पाठ में नहीं आ गई है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक विषमता नहीं है जो पहले में है।

× (४६) ६-५०-३ : 'कहां बिभीपनु भ्राताद्रोही। आजु सबहिं हठि मारों ओही।' कोदवराम के 'सबहिं' के स्थान पर पाठ है 'सठहिं'। 'हठि' का अर्थ है 'हठ करके' या 'हठपूर्वक', और ग्रंथ में सर्वत्र यह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, यथा :

सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध। १-६१

किन्नर सिद्ध मनुज सुर नाना। हठि सबहीं के पंथहि लागा। १-१८२-११

अतः पहले पाठ में अर्थ होगा, 'आज सभी को (राम-लक्ष्मण नल-नीलादि को) और हठपूर्वक उसको मारूँगा।' दूसरे पाठ में अर्थ होगा, 'आज उस शठ को हठपूर्वक (अवश्य ही) मारूँगा।' दोनों अर्थ संगत हैं।

(४७) ६-५०-७ : 'जहं तहं परत देखिअहिं बानर। सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर। जहं तहं भागि चले कपि रिच्छा। बिसरी सबहिं जुद्ध कै इच्छा।' दूसरी अर्द्धाली के 'जहं तहं भागि चले' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है : 'भागे भय ब्याकुल'। पहली अर्द्धाली में भी 'जहं तहं' आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति भाव होती है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(४८) ६-५० : 'दस दस सर तब मारेसि परे भूमि कपि बीर। सिंघनाद करि गर्जा मेघनाद बलधीर।' कोदवराम में पाठ है : 'मारेसि दस दस बिसिख सब परे भूमि कपि बीर। सिंघनाद गर्जत भएउ मेघनाद रनधीर।' प्रथम और तृतीय चरणों में जो पाठांतर हैं वह शाब्दिक ही प्रतीत होता है। मुख्य अंतर 'बलधीर' और 'रनधीर' में है। 'बलधीर'='बल में धीर' की अपेक्षा 'रनधीर'='रण में धीर' अधिक अर्थयुक्त लगता है। फिर 'बलधीर' कहीं अन्यत्र आया भी नहीं है और रनधीर' कई बार आया है, यथा :

कोट कंगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रनधीर। ६-४०
बचन करम मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर। ६-६४
रघुबीर महा रनधीर भजे। ७-१४-१७

(४९) ६-५१-२ : 'देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत धाएउ जनु काला।' महासैल एक तुरत उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा। तीसरे चरण के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'महा महीधर तमकि उपारा'। 'सैल' और 'महीधर' यद्यपि पर्याय हैं, किन्तु प्रसंग यहाँ 'उपारने' के द्वारा बल-प्रदर्शन का है, इसलिए 'महीधर'='पृथ्वी को धारण करने वाला' अधिक सार्थक लगता है। 'तुरत'='अविलंब' और 'तमकि'='उत्तेजित होकर' में भी दूसरा अधिक प्रासंगिक है; पूर्व में आया हुआ 'क्रोधवंत' और बाद में आने वाला 'अति रिस' इसी का समर्थन करते हैं।

× (५०) ६-५१-५ : 'रघुपति निकट गएउ घननादा। नाना भांति कहेसि दुर्बादा। कोदवराम में 'रघुपति निकट' के स्थान पर पाठ है 'राम समीप'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है, यथा :

इहां देवरिषि गरुड़ पठावा। राम समीप सपदि सो आवा। ६-७४-५
धरि सरचाप चलत पुनि भए। रिपु समीप अति आतुर गए। ६-८४-८
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। त्रिहंसा जबहिं निकट कपि आए। ६-६९-८
रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए। ६-३६-१

×(५१) ६-५२: 'आयेसु मांगि राम पहिं अंगदादि कपि साथ। लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ।', कोदवराम में 'क्रुद्ध होइ' के स्थान पर पाठ है 'सकोप अति'। प्रसंग में दोनों खप जाते हैं। 'अति' यद्यपि प्रसंगविरुद्ध नहीं है, किन्तु वह प्रसंग में अनिवार्य भी नहीं है।

(५२) ६-५४: 'मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ। जगदाधार सेष किमि उठइ चले खिसिआइ।' कोदवराम में 'सेष' के स्थान पर पाठ 'अनंत' है। दोनों लक्ष्मण के पर्याय हैं। 'शेष' की अपेक्षा 'अनंत' का उठा सकना कुछ अधिक अर्थयुक्त अवश्य लगता है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(५३) ६-५५: 'राम पदारबिंद सिरु नाएउ आइ सुषेन। कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन।' कोदवराम में 'राम पदारबिंद' के स्थान पर पाठ है 'रघुपति चरन सरोज'। यह अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है। दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है।

(५४) ६-५६-७: 'मैं तैं तोर मूढ़ता त्यागू। महा मोह निसि सूतत जागू।' कोदवराम में पहले चरण का पाठ है 'अहंकार ममता मद त्यागू', और 'सूतत' के स्थान पर पाठ है 'सोवत'। 'मैं तैं तोर' और 'अहंकार ममता' में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है। दूसरे पाठ में 'मद' अधिक है, और यह आवश्यक भी लगता है, क्योंकि रावण को 'महा अभिमानी' कहा गया है:

बोला बिहसि महा अभिमानी। ५-२४-२
अति अभिमान त्रास सब भूली। ६-३८-२
कथा कही सब तेहि अभिमानी। ६-६२-६
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। ६-६३-३

'सूतत' और 'सोवत' दोनों प्रयोगसम्मत हैं:

देखा बाल तहां पुनि सूता। १-२०१-५

उठे लखन प्रभु सोवत जानी। २-९०-१

अब सुख सोवत सोच नहिं भीख मांगि भव खाहिं। १-७९

(५५) ६-५८-२ : 'मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानेहु सत्य बचन कपि मोरा। अस कहि गई अपछरा जबहीं। निसिचर निकट गएउ कपि तबहीं।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली के 'कपि' के स्थान पर पाठ 'सो' है। 'कपि' पहली अर्द्धाली में भी आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति ज्ञात होती है। दूसरा पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

(५६) ६-६०-१ : 'तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहों नाथ तुरंत। अस कहि आयेसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत।' कोदवराम में इस दोहे के स्थान पर निम्नलिखित दो अर्द्धालियाँ है :

तव प्रताप उर राखि गोसाईं। जैहौं राम बान की नाईं।
भरत हरषि तब आयेसु दएऊ। पद सिर नाइ चलत कपि भएऊ।

जो चमत्कार 'राम बान की नाईं', में है वह 'जैहौं नाथ तुरंत' में नहीं है; 'तुरंत' में तीव्र गति का भाव भी नहीं आता, उसमें केवल 'बिना और समय लगाए का ही भाव सामान्यतः आता है। इसके अतिरिक्त पहले पाठ में 'प्रभु' तथा 'नाथ' दो समानार्थी संबोधन एक साथ आए हैं; दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है।

(५७) ६-६१ : 'प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।' कोदवराम में 'प्रलाप' के स्थान में पाठ है 'विलाप'। 'प्रलाप' का अर्थ सामान्यतः होता है 'असंगत बातें', और कभी-कभी शोकोद्वेग में कही गई इस प्रकार की बातें भी 'प्रलाप' ही कही गई हैं :

बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहिं प्रलापु। १-२७४

जौं पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा। तौ कस मरन न मांगे दीन्हा।

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आये अवध भरे परितापा। २-८६-७

किन्तु राम के वाक्यों को 'प्रलाप' कहना बहुत समीचीन नहीं लगता। उनके लिये 'बिलाप' शब्द ही ठीक प्रतीत होता है, क्योंकि 'बिलाप' में वह अवांछनीय ध्वनि नहीं होती। शुद्ध प्रलाप की बहुत सी बातें

सीताहरण के अनंतर राम ने कही हैं, किन्तु उन्हें भी 'बिलाप' ही कहा गया है :

येहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहु महा बिरही अति कामी। ३-३०-१६

(५८) ६-६२-६ : 'व्याकुल कुंभकरन पहं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा।' कोदवराम में 'आवा' के स्थान पर पाठ है 'गएऊ', और दूसरे चरण का पाठ है 'करि बहु जतन जागवत भएऊ'। अंतर दोनों में वस्तुतः 'आवा' और 'गएऊ' का है। कवि यहाँ पर युद्धस्थल में स्थित रामपक्ष से लिख रहा है :

बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आएउ जहं त्रैलोक बिभूषन।

नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रन धीरा। ६-६५-२

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

×(५९) ६-६३-६ 'नारद मुनि मोहि ज्ञान जो कहा। कहतेउं तोहि समय निर्बहा।' कोदवराम में 'कहा' और 'निर्बहा' के स्थान पर 'कहेऊ' और 'निर्बहेऊ' पाठ है। दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(६०) ६-६३ : 'रामरूप गुन सुमिरत मगन भयेउ छन एक। रावन मांगेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक।' कोदवराम में 'सुमिरत' के स्थान पर पाठ है 'सुमिरि मन'। दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है। केवल दूसरे में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(६१) ६-६५-४ : 'लिए उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर।' कोदवराम में 'उठाइ' के स्थान पर पाठ है 'उपारि'। 'बिटपों' को बिना उखाड़े उठाया नहीं जा सकता, और यही बात कुछ न कुछ पर्वतों के सबंध में भी कही जा सकती है, इसलिए 'उपारि' पाठ 'उठाइ' की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त लगता है।

(६२) ६-६५-६ : 'मुरयौ न मन तन टरयौ न टारयो। जिमि गज अर्क फलनि को मारयो।' कोदवराम में 'मुरयौ' तथा 'टारयो' के स्थान पर 'मुरै' तथा 'टरै' है। प्रसंग में दोनों खप जाते हैं, क्योंकि अर्थ में

दोनों प्रायः समान हैं। अंतर भाषा-संबंधी अवश्य है, और पहले व्रज-भाषा रूप की तुलना में दूसरा अवधी रूप अधिक समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी है।

(६३) ६-६५ : 'अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव। काँखि दाबि कपिराज कहुं चला अमित बलसींव।' कोदवराम में 'मुरुछित' के स्थान पर पाठ है 'घाय बस'। दोनों पाठ प्रसंग में खप जाते हैं। दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है।

(६४) ६-६६-५ : 'मुरुछा गइ मारुत सुत जागा। सुग्रीवहिं तब खोजन लागा। सुग्रीवहु कै मुरुछा बीती। निबुकि गएउ तेहि मृतक प्रतीती।' दूसरी अर्द्धाली के 'सुग्रीवहु कै' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कपिराजहु कै'। 'सुग्रीवहिं' पहली अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरा पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

(६५) ६-६६-७ : 'गहेउ चरन गहि भूमि पछारा।' कोदवराम में पाठ है 'गहेसि चरन धरि धरनि पछारा'। ऊपर की अर्द्धाली निम्नलिखित है :

काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउ तेहि जाना।

'गहेसि' इस अर्द्धाली के 'काटेसि' के अनुरूप ही है, और 'गहेउ' की अपेक्षा अधिक समीचीन भी लगता है। 'भूमि' और 'धरनि' में अवश्य अंतर शाब्दिक ही लगता है, क्योंकि दोनों का प्रयोग ग्रंथ भर में प्रायः एक ही प्रकार से हुआ है।

(६६) ६-६६ : 'जय जय जय रघुबंस मनि धाए कपि दै हूह। एकहि बार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह।' कोदवराम में 'तासु' के स्थान पर 'जो तासु' है। दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है। दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है।

(६७) ६-६७ : 'सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज सँभारहु सैन। मैं देखौं खल दल बलहि बोले राजिव नैन।' कोदवराम में पहले दो चरणों

का पाठ है 'सुनु सौमित्र कपीस तुम्ह सकल संभारहु सैन'। 'अनुज' यद्यपि एक बहु-प्रयुक्त शब्द है, किन्तु ग्रंथ भर में कहीं भी संबोधन में नहीं आया है। अकेला 'सुग्रीव' नाम भी—जिस समय से राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने सुग्रीव का राज्याभिषेक किया है उस समय से—राम के द्वारा संबोधन में प्रयुक्त नहीं हुआ है; तबसे राम ने उसे या तो 'कपिराज', 'कपीस' आदि प्रभुत्वसूचक विशेषणों से संबोधित किया है, या कम से कम सख्य या प्रभुत्वसूचक विशेषणों के साथ उसका नाम लिया है। केवल एक स्थान पर इसका अपवाद मिलता है, जब राम सुग्रीव की उपेक्षा के कारण उस पर क्रुद्ध होकर कहते हैं :

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी।

जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतौं मूढ़ कहुँ काली। ४-१८-४,५

इसलिए यहाँ भी 'सुग्रीव' की अपेक्षा 'कपीस' संबोधन अधिक युक्त-युक्त लगता है। दूसरे पाठ में 'विभीषण' नहीं है, नए आने वाले 'सकल' से कदाचित् उसकी व्यंजना हो जाती है। साथ ही दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(६८) ६-६८-१ : 'कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा।' कोदवराम में 'साजि' के स्थान पर पाठ 'विसिख' और 'अरि दल दलन' के स्थान पर 'मृगपति ठवनि' है। शत्रु पर प्रहार करने के लिए अग्रसर होते समय विशिख उतना ही आवश्यक होता है जितना धनुष; और 'साजि' के विना भी संगति लग जाती है; इसलिए इस विषय में दूसरा पाठ अधिक युक्तियुक्त लगता है। बाद की ही अर्द्धाली में 'रिपु दल' आने के कारण पहले पाठ में पुनरुक्ति भी ज्ञात होती है। 'मृगपति ठवनि' पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और वह प्रसंग में खप भी जाता है।

(६९) ६-६८-४ : 'जहं तहं चले विपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा।' कोदवराम में पहले चरण का पाठ है 'अति जब चले निसित नाराचा'। प्रसंग से यह स्पष्ट है कि अर्द्धाली के दोनों चरणों के कथन परस्पर कारण-कार्य भाव से संबद्ध हैं। पहले पाठ

में दोनों का संबंध प्रकट नहीं होता, और दूसरे पाठ में 'जब' आने के कारण वह प्रकट हो जाता है। पुनः, 'कटन लगे' परिणाम के ध्यान से 'विपुल नाराचा' की अपेक्षा 'अति निसित नाराचा'='अत्यंत तीक्ष्ण बाण' अधिक युक्तियुक्त लगता है।

(७०) ६-६८ : 'पुनि रघुबीर निषंग महुं प्रबिसे सब नाराच।' कोदवराम में पाठ है 'पुनि रघुपति के त्रोन महुं प्रबिसे सब नाराच'। अर्थ दोनों का एक ही है, केवल दूसरे में अनावश्यक समास के स्थान पर विभक्ति आ गई है।

(७१) ६-६६-१ : 'कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन मांझ निसाचर धारी।' दूसरे चरण के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'हती निमिष महं निसिचर धारी।' प्रसंग से प्रकट है 'हति' 'हती' का विकृत रूप है, किन्तु इकारांत रूप प्रयोग ग्रंथ भर में पूर्वकालिक क्रिया के ही रूप में हुआ है; सामान्य भूतकाल की क्रिया के रूप में नहीं। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है, यद्यपि अर्थ पूर्णरूप से वही है जो प्रथम का है।

(७२) ६-६६ : महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस। महि पटकै गजराज इव सपथ करै दससीस।' कोदवराम में प्रथम चरण के स्थान पर पाठ है 'गरजत धाउ बेग अति'। बंदरों को पकड़ने के लिए उसे दौड़ना पड़ा ही होगा, क्योंकि यदि कोई सामना नहीं कर सकता तो कम से कम जान बचाने के लिए भाग तो सकता ही है। इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त लगता है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता भी नहीं है जो पहले पाठ में है।

(७३) ६-७१ : संग्रामभूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी। स्रम बिन्दु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी।' कोदवराम में 'अरुन' के स्थान पर पाठ 'रुचिर' है। 'सोनित कनी' तो 'अरुन' होती ही है, उसे 'अरुन' कहना व्यर्थ-सा ही है, साथ ही 'रुचिर' प्रसंग में खप भी जाता है।

(७४) ६-७१ : 'निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम। गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम।' कोदवराम में 'मलाकर' के स्थान पर पाठ है 'मलायतन'। दोनों में वस्तुतः कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है, केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

×(७५) ६-७२३ : 'छीजहिं निसिचर दिन अरु राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भांती।' कोदवराम में 'सुकृत' के स्थान पर पाठ है 'धर्म'। दोनों प्रयोग में एक-से प्रतीत होते हैं, यथा:

दानि मुकुति धन धरम धाम के। १-३२-२

सुकृत जाइ जौ पन परिहरहूं। १-२५२-५

(७६) ६-७२ : 'मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गएउ अकास। गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास।' कोदवराम में 'अट्टहास करि' के स्थान पर पाठ है 'प्रलय पयोद जिमि'। प्रयोगसम्मत दोनों हैं :

अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लागि अकास। ५-२५

अस कहि अट्टहास सब कीन्हा। गृह बैठे अहार बिधि दीन्हा। ६-४०-४

प्रलय समय के घन जनु गाजहिं। ६-७६-८

किन्तु वर्णित प्रभाव के लिए दूसरा अधिक समर्थ लगता है।

(७७) ६-७३-३ : 'दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुं मघा मेघ झरि लाई।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'रहे दसहु दिसि सायक छाई।' 'दस दिसि' और 'नभ' का एक साथ आना ठीक नहीं लगता है, क्योंकि नभ' तो वस्तुतः दस दिशाओं में आ ही जाता है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(७८) ६-७३-४ : 'धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारै तेहि कोउ न जाना। गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं। देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं।' 'सुनिअ धुनि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सुनहिं कपि'। पुरुषहीन 'सुनिअ' की अपेक्षा पुरुषवाची 'सुनहिं कपि' पाठ कुछ अधिक प्रसंगसंबद्ध लगता है।

(७६) ६-७३-१३ : 'रन सोभा लगि प्रभुहिं बंधायो। नागपास देवन्ह भय पायो।' कोदवराम में 'बंधायो' और 'पायो' के स्थान पर क्रमशः 'बंधावा' और 'पावा', और 'नागपास' के स्थान पर 'देखि दसा' पाठ हैं। पहले पाठांतर में प्रश्न भाषा का ही है; पहला ब्रज रूप है, दूसरा अवधी; किंतु अवधी रूप अधिक समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि ग्रंथ की सामान्य भाषा वही है। दूसरे पाठांतर में 'नागपास' बिना विभक्ति के होने के कारण 'नागपास से' का अर्थ नहीं दे रहा है, और इसीलिए वह ठीक नहीं लगता है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि भी नहीं है। प्रसंग में दोनों पाठ एक-से हैं।

×(८०) ६-७३ : 'गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास। सो कि बंधतर आवहि व्यापक बिस्व निवास।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है 'सो प्रभु आव कि बंधतर'। दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(८१) ६-७४ : 'खगपति सब धरि खाए माया नाग बरूथ। माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ।' कोदवराम में पाठ है : 'पन्नगारि खाए सकल छन महं ब्याल बरूथ। भए बिगत माया तुरत हरषे बानर जूथ।' पहले पाठ में 'माया' शब्द दो बार आता है, इसलिए पुनरुक्ति है; दूसरे में यह त्रुटि नहीं है। शेष अंतर साधारण है।

(८२) ६-७५-३ : 'इहां बिभीषन मंत्र विचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा। मेघनाद मख करै अपावन। खल मायावी देव सतावन।' कोदवराम में ऊपर की पहली अर्द्धाली का पाठ है : 'सो सुधि पाइ बिभीषन कहई। सुनु प्रभु समाचार अस अहई।' पहले पाठ में एक तो यह नहीं कहा गया है कि विभीषण को यह समाचार मिला, तब उसने 'मंत्र बिचारा'। दूसरे, उसमें बिना यह कहे कि उसने राम को संबोधन किया, आता है : 'सुनहु नाथ बल अतुल उदारा'—जैसे वह अपने मन में इन्हीं शब्दों में विचार कर रहा हो। यह वस्तुतः ठीक नहीं है। दूसरे में यह त्रुटि नहीं है। वह प्रसंगोचित और युक्तियुक्त भी है।

(८३) ६-७५-५ : 'जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि।' कोदवराम में 'पुनि' के स्थान पर पाठ 'रिपु' है। 'पुनि' की तुलना में 'रिपु' की सार्थकता प्रकट है।

(८४) ६-७५-८ : 'तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही। मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई। जेहि छीजै निसिचर सुनु भाई।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली नहीं है। पहली अर्द्धाली में 'रन मारेहु'='रन में मारना' तो कहा ही जा चुका है, उसके अनंतर दूसरी अर्द्धाली का कथन अनावश्यक लगता है। 'मारेहु' और 'मारेहु' में पुनरुक्ति भी है, और 'मारना' के अंतर्गत 'छीजना'='छय होना' भी आ ही जाता है। दूसरे पाठ में यह त्रुटियाँ भी नहीं हैं।

×(८५) ६-७७ : 'तव दसकंठ बिबिध विधि समुझाई सब नारि। नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदय बिचारि।' कोदवराम में 'बिबिध' के स्थान पर 'अनेक' और 'जगत' के स्थान पर पाठ 'प्रपंच' है। दोनों पाठ एक-से संगत हैं, और अंतर दोनों में शाब्दिक मात्र प्रतीत होता है।

(८६) ६-७६ : 'दुहुँ दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि। फिरे बीर इत राम हित उत रावनहि बखानि।' कोदवराम में 'राम हित' के स्थान पर पाठ है 'रघुपतिहि'। 'इत' और 'उत' संबंधी कथनों में जिस प्रकार का तुलनात्मक साम्य अपेक्षित होता है, उसके अनुसार दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक समीचीन समझ पड़ता है।

×(८७) ६-८० : 'सुनि प्रभु वचन बिभीषनु हरषि गहे पद कंज। येहि मिस मांहिं उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'सुनत विभीषन प्रभु बचन'। दोनों में अंतर केवल शाब्दिक लगता है।

(८८) ७-८१ : 'निज दल विचलित देखेसि बीस भुजा दस चाप। रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप।' कोदवराम 'रथ चढ़ि मेंचलेउ दसानन' के स्थान पर पाठ है 'चलेउ दसानन

कोपि तब'। 'रथ चढ़ि' की अपेक्षा 'कोपि' में कुछ अधिक प्रासंगिकता है, यह प्रकट है।

×(८६) ६-८२ : 'निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ। लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद माथ।' कोदवराम में 'क्रुद्ध होइ' के स्थान पर पाठ 'सरोप तब' है। दोनों पाठों में अंतर केवल शाब्दिक प्रतीत होता है।

×(९०) ६-८३-७ : 'सत सत सर मारा उर माहीं। परेउ धरनि तन सुधि कछु नाहीं।' कोदवराम में 'धरनि' के स्थान पर पाठ है 'अवनि'। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

मुरछित अवनि परा झइं आई। २-१६४-१
परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेहिं। ६-१२१-११
परेउ धरनि उर दारुन दाहू। २-१५३-५
परेउ धरनि ब्याकुल सिर धुनेऊ। ६-६५-७

(९१) ६-८३ : 'देखि पवनसुत धाएउ बोलत बचन कठोर। आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'देखत धाएउ पवनसुत', और तीसरे चरण का पाठ है 'आवत तेहिं उर महं हतेउ'। 'देखि' और 'देखत' में अंतर साधारण है; 'हनेउ' और 'हतेउ' का अंतर भी शाब्दिक ही प्रतीत होता है :

दामिनि हनेउ मनहुं तरु तालू। २-२६-६
पुनि रावन तेहि हतेउ प्रचारी। ६-६१-४
तब मारुतसुत मुठिका हनेऊ। ६ ६५-७

दूसरे पाठ में 'उर महं' अधिक है, और वह कथन को कुछ अधिक विशिष्ट बनाने के कारण महत्त्वपूर्ण भी लगता है।

(९२) ६-८५-३ : 'नाथ करइ रावनु एक जागा। सिद्ध भएं नहिं मरिहि अभागा। पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली के 'नाथ' के स्थान पर पाठ है 'देव'। 'नाथ' पहली अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है।

(६३) ६-८५ छं० : 'नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं।' कोदवराम में 'करि कोप कपि' के स्थान पर पाठ है 'कपि कोपि तब'। 'करि कोप' और 'कोपि' में कोई अंतर नहीं है; दूसरे पाठ का 'तब' अवश्य 'जब' का पूरक है।

×(६४) ६-८५ : 'चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ।' कोदवराम में 'निसाचर' के स्थान पर 'लंकपति' पाठ है। दोनों के अर्थों में कोई अंतर नहीं है, और दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

सहज असंक लंकपति सभा गएउ मद अंध। ६-२३

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़िसि परम कराल कृपाना। ३-२९-११

(६५) ६-८६ : 'सोभा देखि हरपि सुर बरसहिं सुमन अपार। जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है : 'हरपे देव बिलोकि छबि' और तीसरे और चौथे चरणों का पाठ है 'जय जय प्रभु गुन ज्ञान बल धाम हरन महि भार'। 'प्रभु' और 'करुनानिधि' तथा 'छबि' और 'ज्ञान' का अंतर प्रसंग से कोई संबंध रखता नहीं दिखाई देता। 'हरन महि भार' अवश्य प्रासंगिक है। रावण को मारने के लिए राम के सन्नद्ध होने का प्रसंग है; 'जैसे आपने दुष्टों का बध करके पहले पृथ्वी का भार उतारा है, उसी प्रकार इस बार भी आप पृथ्वी का भार उतारने के लिए—रावण का बध करने के लिए—अग्रसर हो रहे हैं, इसलिए आपकी जय हो' ध्वनि यह है। शेष पाठांतर इसी शब्दावली को स्थान देने के लिए किया गया प्रतीत होता है।

(६६) ६-८७-४ : 'गरजहिं मनहुं बलाहक घोरा।' कोदवराम में 'गरजहिं' के स्थान पर पाठ 'गरजत' है। बादलों के लिए 'गरजते हैं' के अर्थ में अन्यत्र 'गरजत' का ही प्रयोग हुआ है :

घहरात जिमि पबिपात गरजत जनु प्रलय के बादले। ६-४६

घन घमंड नभ गरजत घोरा। ४-१४-१

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(६७) ६-८७ छं० : 'कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम

भयावनी।' कोदवराम में 'चली' के स्थान पर पाठ 'बढ़ी' है। 'चली' में ध्वनि है 'निकल पड़ी', और 'बढ़ी' में ध्वनि है 'पहले से थी, किन्तु अब बाढ़ में आ गई'। दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक संगत लगता है, क्योंकि रक्तपात तो बहुत पहले से हो रहा था।

(६८) ६-८७ : 'बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन। कादर देखि डरहिं तहं सुभटन्ह के मन चैन।' कोदवराम में तृतीय चरण का पाठ है 'कादर देखत डरहिं तेहि'। 'देखि' और 'देखत' का अंतर साधारण लगता है। 'तेहि' और 'तहं' दोनों प्रसंग में खप जाते हैं : 'तहं' पाठ का अर्थ होगा 'कादर देख कर जब कि डर जाते हैं, योद्धाओं के मन को सुख मिलता है' और 'तेहि' पाठ का अर्थ होगा 'कादर उसे देखकर डर जाते हैं, और योद्धाओं के मन को उसे देखकर सुख प्राप्त होता है।' केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(६९) ६-८८ छं० : 'बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए।' कोदवराम में पाठ है 'निसिचर बरूथ, बिमर्दि गर्जहिं भालु कपि दर्पित भए।' दूसरे पाठ में पहले पाठ का 'राम बल' नहीं है, और दूसरी ओर 'गर्जहिं' बढ़ा हुआ है, और बंदरों के साथ 'भालु' भी है। 'गर्जहिं' पाठ में विशेषता यह है कि राक्षसों का मर्दन बंदर उत्साह-पूर्वक कर रहे हैं, यह ध्वनि उसमें है, और यह ध्वनि प्रासंगिक है। बंदरों के साथ भालुओं का होना भी प्रासंगिक है। 'राम बल' न होने से दूसरे पाठ को कोई क्षति पहुंचती नहीं दिखाई देती, क्योंकि वह प्रसंग का कोई अंग नहीं है।

(१००) ६-८८ : 'रावन हृदयं बिचारा भा निसिचर संघार। मैं अकेल कपि भालु बहु माया करउं अपार।' कोदवराम में पहले चरण का पाठ है 'हृदय बिचारेउ दसवदन'। दोनों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१०१) ६-८९-३ : 'तेजपुंज रथ दिब्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा।' कोदवराम में 'हरषि' के स्थान पर पाठ 'बिहंसि' है।

'हरषि' ऊपर की अर्द्धाली में ही आ चुका है : 'हरष सहित मातलि लै आवा'। इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरा पाठ इस त्रुटि से मुक्त है। प्रसंग में दोनों खप जाते हैं।

(१०२) ६-८६-७ : 'सो माया रघुबीरहि बांची। लछिमन कपिन्ह सो मानी सांची।' कोदवराम में दूसरे चरण का पाठ है : 'सब काहूं मानी करि सांची।' पहले पाठ में 'रघुबीरहि बांची' आया हुआ है, इसलिए 'सब काहूं' पाठ ही समीचीन लगता है, नाम आना ठीक नहीं लगता।

(१०३) ६-८६ छं० : 'बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।' कोदवराम में पाठ है : 'बहु बालिसुत लछिमन कपीस बिलोकि मर्कट अपडरे।' प्रसंग यहां पर रावण की माया-सेना के विस्तार का है : 'तब रावन माया बिस्तारी।' पहले और दूसरे पाठ में अंतर यह है कि दूसरे में 'राम' नहीं है, और 'बालिसुत' और 'सुग्रीव' बढ़े हुए हैं। मायानिर्मित राम भी संभव हैं, यह भावना ठीक नहीं प्रतीत होती, इस दृष्टि से दूसरा पाठ अधिक युक्तियुक्त है। अंगद और सुग्रीव का भी लक्ष्मण की भाँति मायाद्वारा निर्मित होना अयुक्तियुक्त नहीं है।

(१०४) ६-८६ छं० : 'माया हरी हरि निमिष महुं हरषी सकल मर्कट अनी।' कोदवराम में 'मर्कट' के स्थान पर पाठ 'बानर' है। 'मर्कट' छंद के प्रथम चरण में आ चुका है, जैसा हम अभी देख चुके हैं; इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरे में यह त्रुटि नहीं है।

(१०५) ६-९०-६ : 'सुनि दुर्बचन काल बस जाना। बिहंसि बचन कह कृपानिधाना।' कोदवराम में 'बचन कह' के स्थान पर पाठ है 'कहेउ तब'। 'कहना' के साथ 'बचन' अनावश्यक और इसलिए पुनरुक्तिपूर्ण लगता है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(१०६) ६-९१-३ : 'पावक सर छांड़ेउ रघुबीरा।' कोदवराम में 'पावक सर' के स्थान पर पाठ है 'अनल बान'। 'सर' दो पंक्ति ऊपर आचुका है :

कुलिस समान लाग छांड़ै सर। ६-९१-१

इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है, जो दूसरे में नहीं है।

(१०७) ३-६१ : 'तानेउ चाप स्रवन लगि छांड़े बिसिख कराल। राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल।' प्रथम चरण का पाठ कोदवराम में है 'तानि सरासन स्रवन लगि'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१०८) ६-६६-८ : 'कहं लछिमन सुग्रीव कपीसा।' कोदवराम में 'सुग्रीव' के स्थान पर पाठ है 'हनुमान'। 'सुग्रीव' तथा 'कपीसा' का प्रयोग पर्याय की भांति प्रायः होने के कारण दोनों में से एक भी पर्याप्त है, दूसरी ओर 'हनुमान' के बढ़ जाने से रामपक्ष का एक और योद्धा भी उस चुनौती में आ जाता है।

(१०९) ६-९३ : 'पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छांड़ी सक्ति प्रचंड।' कोदवराम में प्रथम चरण के स्थान पर 'पुनि रावन अति कोप करि', और 'छांड़ी' के स्थान पर 'छांड़िसि' पाठ है। पहला अंतर साधारण है। रावण तथा रावण-पक्ष के लिए 'छांड़िसि' ही आया है 'छांड़ी' नहीं :

बीर घातिनी छांड़िसि सांगी। ६-५४-७

छांड़िसि ब्रह्म दीन्हि जो सांगी। ६-८३-८

इसलिए 'छांड़िसि' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(११०) ६-९४-१ : 'आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा। तुरत बिभीषन पाछें मेला। सनमुख राम सहेउ सोइ सेला।' कोदवराम में प्रथम अर्द्धाली का पाठ है 'आवत देखि सक्ति खर धारा। प्रनतारति हर बिरिदु संभारा।' प्रथम अर्द्धाली में मुख्य क्रिया का अभाव होने से पाठ पूर्वापर से असंबद्ध लगता है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(१११) ६-९४ छं० : 'रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ताकहुं गने। कोदवराम में 'दर्पित' के स्थान पर पाठ 'गर्बित' है।' 'बल' के साथ 'गर्ब' का ही प्रयोग प्रायः हुआ है, यथा :

गरबित भरत मातु बल पी के। २-१८-६
कहां रहा बल गरब तुम्हारा। ६-३६-६
जिन्हकें बल कर गरब तोहिं ऐसे मनुज अनेक। ६-३१

'बल' के साथ 'दर्प' का प्रयोग ग्रंथ में दो ही बार हुआ है :

रन मद मत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा। ६-६७-५
बानर निसाचर निकर मर्दहिं रामबल दर्पित भए। ६-८८

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(११२) ६-६५-४ : 'पुनि रावन कपि हनेउ प्रचारी। चला गगन कपि पूंछि पसारी।' कोदवराम में प्रथम चरण के 'कपि' के स्थान पर पाठ 'तेहि' है। दूसरे चरण में भी 'कपि' आता है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरा पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

×(११३) ६-६५ : 'तब रघुबीर प्रचारे धाए कीस प्रचंड। कपि दल प्रबल देखि तेहि कीन्ह प्रगट पाखंड।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'राम प्रचारे बीर तब', और 'देखि' के स्थान पर पाठ है 'बिलोकि'। यह दोनों अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होते हैं।

(११४) ६-६६-३ : 'देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहं तहं भजे भालु अरु कीसा।' कोदवराम में दूसरे चरण का पाठ है 'भागे भालु बिकट भट कीसा।' पहले पाठ से कुछ यह ध्वनि निकलती है कि भालु और बंदर भगोड़े थे। दूसरे पाठ में 'भट' शब्द से इस ध्वनि का निराकरण हो जाता है, और 'बिकल' शब्द उनके भागने का कारण भी प्रस्तुत करता है।

(११५) ६-६६-४ : 'भागे बानर धरहिं न धीरा।' कोदवराम में 'भागे बानर' के स्थान पर पाठ है 'चले बलीमुख'। 'भागे' पूर्व की अर्द्धाली में भी आया है : 'भागे भालु बिकट भट कीसा।' इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(११६) ६-६६ : 'सुर बानर देखे बिकल हंस्यो कोसलाधीस। सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस।' कोदवराम में 'सारंग' के स्थान पर पाठ 'बिसिखासन' है। दोनों में अंतर शाब्दिक ही लगता

है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(११७) ६-६७-५ : 'अस्तुति करत देवतन्ह देखे।' कोदवराम में पाठ है 'करत प्रसंसा सुर तेहिं देखे'। प्रसंग यहाँ 'अस्तुति'= 'गुणगान' का नहीं है, 'प्रशंसा'= किसी सत्कार्य के करने के कारण 'सराहना' का है; संकेत यहाँ ऊपर आई हुई इन पंक्तियों की ओर है :

रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहं तहं प्रगट दसानन तेते। ६-६६ १

सुर बानर देखे बिकल हंस्यो कोसलाधीस।
सजि त्रिसिखासन एक सर हते सकल दससीस॥ ६-६६

रावन एक देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे। ६-६७-२

×(११८) ६-६७ : 'तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप। काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप।' 'रावन' के स्थान पर कोदवराम में 'लंकेस' पाठ है। अंतर दोनों पाठों में शाब्दिक ही ज्ञात होता है।

(११६) ६-६८-७ : 'रुधिर देखि बिषाद उर भारी। तिन्हहिं धरन कहुं भुजा पसारी।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'रुधिर बिलोकि सकोप सुरारी'। रावण अभी सक्रिय रूप से लड़ रहा है। ऊपर ही उसके संबंध में कहा गया है :

तब रघुपति लंकेस के सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथकर पाप॥ ६-६७

उसी रावण की लिलार से रुधिर निकलता हुआ देखकर 'भारी बिषाद' हो, यह युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। दूसरा पाठ इस प्रसंग में अधिक युक्तियुक्त लगता है। छंद की गति भी दूसरे पाठ में पहले की अपेक्षा अच्छी है।

×(१२०) ६-६८ : 'मुरछा विगत भालु कपि सब आए प्रभु पास।' कोदवराम में 'मुरछा बिगत' के स्थान पर पाठ है 'गै मुरछा तब'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही ज्ञात होता है।

(१२१) ६-१०१ : 'ताके गुनगन कछु कहे जड़मति तुलसीदास। जिमि निज बल अनुरूप तें माछी उड़ै अकास।' कोदवराम में प्रथम

चरण का पाठ है 'कहे तासु गुनगन कछुक' और तीसरे तथा चौथे चरणों का है : 'निज पौरुष अनुसार जिमि मसक उड़ाहिं अकास'। तुलनीय प्रयोग केवल निम्नलिखित हैं :

सो नयन गोचर तासु गुनगन नेति कहि स्रुति गावहीं। ४-१०-छं०
रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत अग जग नाथ जो। ७ ७-छं०

'जासु' के समान होने के कारण इसलिए 'तासु' अधिक प्रयोगसम्मत लगता है। 'निज बल अनुरूप तें' का 'तें' अशुद्ध लगता है। कहीं भी 'अनुरूप' के साथ 'तें' नहीं आया है, कारण यह है कि 'अनुरूप' स्वतः 'तें' की भाँति विभक्ति का कार्य करता है, यथा:

मति अनुरूप कथा मैं भाषी। ७-१२-१
मति अनुरूप रामगुन गावौं। १-१२-६
मति अनुरूप कहौं हित ताता। ५-१८-४
रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं। १-३३५-५

इसी प्रकार, 'मसक' 'माछी' से भी छोटा और 'बल' में हीन होता है और, इसी ध्वनि के साथ उसका प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है :

मसक फूंकि बरु मेरु उड़ाई। २-२३१-३
मसक कतहुं खगपति हित करहीं। ६-११-८
तुमहिं आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता। ६-६१-५

'माछी' का प्रयोग अन्यत्र केवल 'कार्य बिगाड़ने वाली' वस्तु की ध्वनि के साथ हुआ है :

परहित घृत जिन्हके मन माखी। १-४-४
भामिनि भइउ दूध कै माखी। २-१६-७

अतः दूसरा पाठ अधिक संगत और प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(१२२) ६-१०२-५ : 'नाभिकुंड पियूष बस याकें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें।' कोदवराम में 'नाभि' के स्थान पर पाठ 'नाभी' और 'पियूष' के स्थान पर पाठ 'सुधा' है। अंतर दोनों में शाब्दिक ही प्रतीत होता है। दूसरे पाठ में छंद की गति अवश्य पहले की अपेक्षा अधिक ठीक लगती है।

(१२३) ६-१०२ छं०: 'प्रतिमा रुदहिं पवि पात नभ अति बात बह डोलति मही।' कोदवराम में 'रुदहिं' के स्थान पर पाठ 'स्रवहिं' है। 'रुदहिं' ग्रंथ भर में अन्यत्र कहीं प्रयुक्त नहीं है, जबकि 'स्रवहिं' अनेक स्थलों पर मिलता है। 'स्रवहिं' छंद के पूर्व की चौपाई के अंतिम चरण में भी आया है, और सामान्यतः ग्रंथ भर में छंद के पूर्व की चौपाई के अंतिम चरण की शब्दावली ही छंद के प्रारंभिक शब्दों के रूप में प्रयुक्त हुई है, इसलिए भी 'स्रवहिं' पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(१२४) ६-१०२ छं० : 'उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जये।' कोदवराम में 'नभ' के स्थान पर पाठ 'मुनि' है। पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

प्रतिमा स्रवहिं पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही।

उत्पात पृथ्वीतल पर और आकाश में, दोनों स्थलों पर हो रहे थे, इसलिए मुनियों को भी दर्शकों की श्रेणी में रखना अधिक युक्तयुक्ति प्रतीत होता है।

(१२५) ६-१०३-६ : 'धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई। चापि भालु मरकट समुदाई।' कोदवराम में 'धरनि परेउ' के स्थान पर 'परेउ बीर' पाठ है। पूर्व की एक पंक्ति है : 'गर्जेउ मरत घोर रवभारी। कहां राम रन हतौं पचारी।' मरते समय भी जिसकी चेष्टा इस प्रकार की थी, उसे 'वीर' कहना प्रासंगिक ही है। 'धरनि' न होने पर भी अकेले 'परेउ' से वही अर्थ निकल आता है।

(१२६) ६-१०३ छं० : 'सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल।' कोदवराम में पाठ है : 'सुर सिद्ध मुनि गंधर्ब हरषे'। सिद्धों और मुनियों को भी देवताओं के साथ हर्षोत्साह में सम्मिलित करना अधिक युक्तियुक्त लगता है। 'सुमन बरषहिं' न रहने से कोई विशेष क्षति नहीं ज्ञात होती है।

(१२७) ६-१०३ : 'कृपा दृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद। भालु कीस सब हरषे जय सुखधाम मुकुंद।' कोदवराम में

तृतीय चरण का पाठ है 'हरषे बानर भालु सब'। 'कीस' और 'बानर' का अंतर शाब्दिक ही है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले में है।

×(१२८) ६-१०४ : 'अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन। जोगिबृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान।' कोदवराम में 'नहिं आन' के स्थान पर पाठ है 'को आन'। दोनों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

(१२९) ६-१०५-४ : 'रुदन करत देखीं सब नारी। गयउ बिभीषन मन दुखु भारी।' कोदवराम में 'देखीं' के स्थान पर पाठ है 'बिलोकि'। दूसरे पाठ में दूसरे चरण की घटना पहले चरण की घटना के साथ कार्य-कारण भाव से स्पष्ट रूप से संबद्ध हो गई है, जो अधिक संगत है; पहले पाठ में यह नहीं है।

×(१३०) ६-१०५-५ : 'बंधु दसा बिलोकि दुख कीन्हा।' कोदवराम में 'बिलोकि' के स्थान पर पाठ है 'देखत'। यह अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

(१३१) ६-१०५-६ : 'लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो। कोदवराम में 'तेहि बहु बिधि के स्थान पर पाठ है 'जाइ ताहि', और 'समुझायो' तथा 'आयो' के स्थान पर पाठ क्रमशः हैं 'समुझाएउ' और 'आएउ'। ऊपर आ चुका है : 'रुदन करत देखीं सब नारी। गयउ बिभीषनु मन दुखु भारी।' 'गयउ' से यह ध्वनि स्पष्ट है कि जहाँ पर राम, लक्ष्मण तथा विभीषण थे, वहाँ से कुछ हटकर स्त्रियाँ रावण के शव के पास विलाप कर रही थीं, और विभीषण उनके पास गया। फलतः लक्ष्मण के लिये भी वहाँ 'जाइ ताहि समुझाएउ' ही कहना युक्तिसंगत है।—'यो' के स्थान पर—'एउ' रूप व्रज और अवधी का अंतर प्रस्तुत करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण 'एउ' रूप अधिक समीचीन है।

(१३२) ६-१०५ : 'मंदोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि। भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहिं।' कोदवराम में 'मंदोदरी आदि सब' के स्थान पर पाठ है 'मयतनयादिक नारि सब' और 'रघुपति' के स्थान पर पाठ है 'रघुबीर'। 'नारि' शब्द के आ जाने से दूसरे पाठ में 'सब' की ध्वनि और स्पष्ट हो गई है, जो पहले में नहीं हुई है। शेष अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

(१३३) ६-१०६ : 'प्रभु के बचन स्रवन सुनि नहिं अघाहिं कपि पंज। बार बार सिर नावहिं गहहिं सकल पद कंज।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है : 'सुनत राम के बचन मृदु' और तीसरे चरण का पाठ है : 'बारहिं बार बिलोकि मुख'। 'सुनि नहिं अघाहिं' तथा 'सुनत नहिं अघाहिं' दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊं। ७-८८-१
रामचरित जे सुनत अघाहीं। ७-५३-१

और प्रसंग में दोनों खप जाते हैं। किंतु 'गहहिं सकल पद कंज' के होते हुए 'बार बार सिर नावहिं' अनावश्यक है; उसकी अपेक्षा 'बरहिं बार बिलोकि मुख' अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

(१३४) ६-१०७ : 'सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदय बसहुं हनुमंत। सानुकूल कोसलपति रहहुं समेत अनंत।' कोदवराम में 'कोसलपति' के स्थान पर पाठ है 'रघुबंसमनि'। यह अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१३५) ६-१०८-३ : 'सुनि संदेस भानुकुल भूषन।' कोदवराम में पाठ है 'सुनि बानी पतंग कुलभूषन'। कोई संदेश जानकी ने हनुमान से नहीं भेजा था; उन्होंने इतना ही कहा था : 'अब सोइ जतनु करहु तुम्ह ताता। देखउ नयन स्याम मृदु गाता।' और हनुमान ने जो कुछ कहा है उसका उल्लेख इन शब्दों में किया गया है : 'तब हनुमान राम पहं जाई। जनकसुता कै कुसल सुनाई।' इसलिए 'बानी' शब्द 'संदेश' की अपेक्षा यहाँ अधिक प्रसंगोचित प्रतीत होता है।

(१३६) ६-१०८-३ : 'बेगि बिभीषनु तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो।' कोदवराम में 'तिन्ह बहु बिधि' के स्थान पर पाठ है 'सादर तिन्ह'। मज्जन के प्रसंग में 'बहु बिधि' की अपेक्षा 'सादर' अधिक प्रसंगोचित प्रतीत होता है। सीता के संबंध में एक स्थान पर अन्यत्र भी आया है:

साधुन्ह सादर जानकिहिं मज्जन तुरत कराइ। ७-११-१

'बहु बिधि' क्रियाविशेषण 'मज्जन करवाना' या 'अन्हवाना' के साथ अन्यत्र कहीं भी प्रयुक्त नहीं है। इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोग-सम्मत भी प्रतीत होता है।

(१३७) ६-१०८-१२ : 'देखहुं कपि जननी की नाईं। बिहंसि कहा रघुबीर गोसाईं।' कोदवराम में 'देखहुं' के स्थान पाठ है 'देखहिं'। अन्यपुरुष के साथ 'देखहुं' रूप विधिवाचक है और इच्छा या कामना की अभिव्यक्ति करता है। यह कहना ठीक न होगा कि राम की यह आकांक्षा थी कि बंदर सीता को माता की भाँति देखें। इसलिए सामान्य रूप 'देखहिं' ही अधिक संगत प्रतीत होता है।

×(१३८) ६-१०८ : 'तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद। सुनत जातुधानी सब लागीं करै विषाद।' कोदवराम में 'करुनानिधि' के स्थान पर पाठ 'करुनायतन' और 'सब' के स्थान पर पाठ सकल' है। अंतर दोनों पाठों में शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

(१३९) ६-१०९-६ : 'देखि रामरुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए। पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष नहिं भय कछु तेही।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली के 'पावक प्रबल' के स्थान पर पाठ है 'प्रबल अनल'। 'पावक' पहली अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरा पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

(१४०) ६-१०९-छं० : 'धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य स्रुति जग बिदित जो।' कोदवराम में पाठ है : ''तब अनल भूसुर रूप कर गहि सत्य श्री स्रुति बिदित जो।' अंतर दोनों में एक तो यह है कि दूसरे में 'रूप' का स्पष्टीकरण है—'भूसुर रूप', और दूसरे

'जग' नहीं आया है। पहले अंतर के कारण दूसरा पाठ निस्संदेह अधिक संगत है, और दूसरे अंतर से उसको कोई विशेष क्षति पहुंचती नहीं ज्ञात होती है।

(१४१) ६-१०६ : 'बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान। गावहिं किन्नर सुरबधू नाचहिं चढ़ीं बिमान।' कोदवराम में पहले चरण का पाठ है : 'हरषि सुमन बरषहिं बिबुध' और तीसरे चरण में 'सुरवधू' के स्थान पर पाठ है 'अपछरा'। पहला अंतर 'सुर' और 'बिबुध' मात्र का है, और शाब्दिक ही प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'सुरबधू' और 'अपछरा' का अंतर भी है। दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं :

देवबधू नाचहिं करगाना। १-२६१.४
नाचहिं अपछरा बृंद। ७-१२ छं०
बिबुध बधू नाचहिं मुदित। १-३४७
करि गान नाचहिं अपछरा। १-८६ छं०

केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

×(१४२) ६-१०६ : 'जनक सुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार। देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुखसार।' कोदवराम में पहले चरण का पाठ है 'श्री जानकी समेत प्रभु', और तीसरे चरण का पाठ है, 'देखत हरषे भालु कपि'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही ज्ञात होता है।

(१४३) ६-११० : 'अति सप्रेम तनु पुलक बिधि अस्तुति करत बहोरि।' कोदवराम में 'अति सप्रेम तनु पुलक बिधि' के स्थान पर पाठ है, अतिसय प्रेम सरोजभव'। स्तुति की समाप्ति पर कहा गया है :

बिनय कीन्ह चतुरानन प्रेम पुलक अति गात ६-१११

पहले पाठ में 'तनु पुलक' और 'प्रेम पुलक अति गात' में जैसी पुनरुक्ति है, दूसरे पाठ में नहीं है। 'अति सप्रेम' और 'अतिसय प्रेम' दोनों प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

अति सप्रेम सिय पायं परि बहु बिधि देहिं असीस। २-११७

अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ। ५-५२-१
अतिसय क्रोध स्रवन लगि ताने। ६-५०-४

×(१४४) ६-१११-१४ : 'मदमार मुधा ममता समनं।' कोदवराम में मुधा के स्थान पर पाठ है 'महा'। प्रसंग से दोनों खप जाते हैं।

×(१४५) ६-१११ : 'बिनय कीन्ह चतुरानन प्रेम पुलक अति गात। सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'बिनय कीन्हि बिधि भांति बहु' और तीसरे चरण का पाठ है 'बदन बिलोकत राम कर'। दोनों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

×(१४६) ६-११२-२ : 'अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिता तब दीन्हा।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है 'सहित अनुज प्रनाम प्रभु कीन्हा'। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा:

सीय बोलाइ प्रनाम करावा। १-२६६-४
करि प्रनाम भेंटी सब सासू। २-३२०-२
फिरे बंदि पग आसिष पाई। २ २१६-५

(१४७) ६-११२ : 'अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसलाधीस। सोभा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुर ईस।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है 'छबि बिलोकि मन हरष अति'। दूसरे पाठ में वस्तुतः 'अति' अधिक है, और प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१४८) ६-११४-३ : 'सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी।' कोदवराम में 'खगेस' के स्थान पर पाठ है 'खगपति'। पूर्व वाली अर्द्धाली में 'सुरेस' आया हुआ है : 'सकल जिआउ सुरेस सुजाना।' इस 'सुरेस' और 'खगेस' में अतंर केवल तीन शब्दों का है, और '-ईस' की पुनरुक्ति खटकती है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(१४६) ६-११६ : 'तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु तात। भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कलप सम जात।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है 'दसा भरत कै सुमिरि मोहिं।' अतंर दोनों में शाब्दिक

ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१५०) ६-११६ : 'तापस वेप गात कृस जपत निरंतर मोहि। देखौं बेगि सो जतन करु सखा निहोरौं तोहि।' कोदवराम में 'गात' के स्थान पर पाठ है 'सरीर'। अंतर दोनों में शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विपमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

× (१५१) ६-११६ : 'सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु।' कोदवराम में पाठ है, 'प्रीति भरत कै समुझि प्रभु।' अंतर दोनों पाठों में शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

(१५२) ६-११६ : 'करेउ कलप भरि राज तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं। पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं।' कोदवराम में 'पाइहहु' के स्थान पर पाठ है 'सिधाइहहु'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में वह मात्रा-विपयक पारस्परिक विपमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१५३) ६-११७ : 'मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह वेद। कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद।' कोदवराम में 'मुनि जेहि ध्यान न पावहिं' के स्थान पर पाठ है 'ध्यान न पावहिं जाहि मुनि।' यह अंतर भी शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं, जो पहले पाठ में है।

(१५४) ६-११८ : 'हरष बिषाद सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाखि।' कोदवराम में पाठ है 'हरप विपाद समेत तब चले बिनय बहु भाखि।' 'सहित' बाद वाले दोहे में ही पुनः आता है : 'सहित बिभीषन जे अपर जूथप कपि बलवान।' इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति सी प्रतीत होती है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(१५५) ६-११८ : 'कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान।' कोदवराम में पाठ है : 'जामवंत कपिराज नल अंगदादि हनुमान।'

अंतर दोनों में 'अंगद नील' और 'अंगदादि' का है। यह अतर साधारण ही प्रतीत होता है, क्योंकि 'नील' के होने अथवा न होने से प्रसंग में कोई अंतर नहीं पड़ता। दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों कि वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१५६) ६-११६ : 'इहां सेतु बांधेउ अरु थापेउं सिवसुखधाम। सीतासहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम।' कोदवराम में 'कृपानिधि' के स्थान पर पाठ है 'कृपायतन'। यह अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

× (१५७) ६-१२०-१ : 'तुरत बिमान तहां चलि आवा। दंडकबन जहं परम सुहावा।' कोदवराम में 'तुरत' के स्थान पर पाठ 'सपदि' है। अर्थ अथवा प्रयोग की दृष्टि से दोनों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं दिखाई पड़ता, यथा :

सठ स्वपच्छ तव हृदयं बिसाला। सपदि होउ पच्छी चंडाला। ७-१८८-१५

तुरत भएउ मैं काग तव पुनि पुनि पद सिरु नाइ। ७ १८८

(१५८) ६-१२०-७ : 'तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जनम कोटि अघ भागा।' कोदवराम में 'निरखत' के स्थान पर पाठ है 'देखत'। 'निरखना' = 'निरीक्षण करना' में 'देखना' की अपेक्षा कुछ अधिक सतर्कता अपेक्षित होती है; फलतः तीर्थपति की महत्ता प्रतिपादन के लिए 'निरखत' से 'देखत' पाठ अधिक समर्थ होना चाहिए।

× (१५६) ६-१२० : 'सीता सहित अवध कहुं कीन्ह कृपाल प्रनामु। सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित रामु।' कोदवराम में पाठ है : 'तब रघुनायक श्री सहित अवधहि कीन्ह प्रनामु। सजल बिलोचन पुलक तनु पुनि पुनि हरषित रामु।' दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही ज्ञात होता है।

(१६०) ६-१२१ : 'समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान। बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान। कोदवराम में प्रथम दो चरणों का पाठ है : 'समर बिजय रघुपति चरित सुनहिं

जे सदा सुजान।' दूसरे पाठ में 'सदा' बढ़ गया है, शेष अंतर शाब्दिक ही है। तीसरे-चौथे चरणों में आया है : 'तिन्हहिं भगवान विजय, विवेक, विभूति नित देहिं'। इसलिए 'सदा'-युक्त पाठ अधिक युक्तिसम्मत प्रतीत होता है।

(१६१) ६-१२१ : 'श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिंन आन अधार।' कोदवराम में 'रघुनाथ' के स्थान पर रघुनायक' तथा 'नाहिंन' के स्थान पर पाठ 'नहिं कछु' है। 'नाहिंन' में नितांत अभाव की व्यंजना मिलती है, यथा :

सत्य कहहौं भूपति सुनु तोहीं। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोहीं। १-१६८-२
तौ जानिकिहि मिलिहि बरयेहू। नाहिंन आलि इहां संदेहू। १-२२२-६
भयउ कौसिलहिं बिधिअति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिंन। २ १४-३
नाहिंन राम राज के भूखे। २-५०-३
कोउ कह दूषन रानिहि नाहिंन। २-२२३-५

किन्तु यहाँ पर कलिकाल में कम से कम एक आधार—रामनाम—तो है। इसलिए दूसरा पाठ 'नहिं कछु' पहले पाठ 'नाहिंन' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक की प्रति में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि कोदवराम, १७०४ तथा कुछ अन्य प्रतियों में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। यह पाठ भी उक्त अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। नीचे क्रमशः इन पर विचार किया जाएगा।

(१) ६-१९-४ : 'अंगद दीख दसानन बैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे।' बंदन पाठक में 'बैसे' के स्थान पर पाठ 'बैसा' और 'जैसे' के स्थान पर 'जैसा' है। अंगद का जैसा बर्ताव रावण के साथ इस प्रसंग में रहा है, उसके अनुसार 'बैसे' की अपेक्षा अनादरात्मक 'बैसा', और फिर 'जैसे' के स्थान पर अनादरात्मक 'जैसा' अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(२) ६-७८ : 'गोमाय गृद्ध कराार खर रव स्वान बोलहिं अति घने। जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने।' बंदन पाठक में प्रथम 'बोलहिं' के स्थान पर पाठ है 'रोवहिं'। 'बोलहिं' बाद वाले चरण में भी आया है, इसलिये पहले पाठ में पुनिरुक्ति लगती है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी कुत्तों का रोना ही अमंगल-सूचक माना गया है, उनका बोलना नहीं :

असगुन होन लगे तब नाना। रोवहिं बहु सृगाल खर स्वाना। ६-१०१-७

(३) ६-९०-२ : 'तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सन्मुख धावा। जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं।' बंदन पाठक में 'धावा' के स्थान पर पाठ है 'आवा'। दूसरी अर्द्धाली से प्रकट है कि रावण दौड़कर राम की ओर—राम के सन्मुख—आया है। ऐसी दशा में रामपक्ष से देखने वाले के लिए 'आवा' द्वारा वर्णन करना जितना समीचीन और युक्तियुक्त होगा, 'धावा' द्वारा उतना नहीं।

(४) ६-१०३-८ : 'मंदोदरि आगे भुज सीसा। धरि सर चले जहां जगदीसा। प्रबिसे सब निषंग महुं जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई।' 'जाई' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'आई' है। रामपक्ष से घटनाओं को देखने वाले के लिए 'आई' कहना 'जाई' की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त लगता है।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास की प्रति में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि बंदन पाठक, कोदवराम, १७०४ तथा कुछ अन्य प्रतियों में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। यह पाठ भी अन्य पाठ की तुलना में साधारणतः उत्कृष्टतर है। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

×(१) ६-१६-२ : 'नारि सुभाव सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं।' रघुनाथदास में 'सब' के स्थान पर पाठ 'कबि' है। दोनों पाठ प्रायः एक से संगत हैं।

(२) ६-१८-३ : पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा होइ गै भेंटा।' रघुनाथदास में 'रहा' तथा 'होइ' के बीच में 'सो' और है। पहले पाठ में 'खेलत रहा' और 'होइगै भेंटा' एक दूसरे से असबंद्ध और उखड़े-उखड़े से लगते हैं। दूसरे पाठ में 'सो' के द्वारा दोनों जुड़े हुए हैं, इसलिए त्रुटि नहीं प्रतीत होती।

(३) ६-४२ : 'बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि। व्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्ह मारि।' रघुनाथदास में 'किए' के स्थान पर पाठ 'कीन्हे' है। दोनों रूप ग्रंथ भर में प्रयुक्त हुए हैं, और उनमें वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है, यथा:

सरन्ह मारि कपि घायल कीन्हे। ६-६८-१०

कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे। ६-१०६-८

किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारे रिपु हयो। ६ १०६

किए बस्य सुर गंधर्ब। ६-११० छं०

केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(४) ६-५६-५ : 'तासु पंथ को रोकन पारा।' रघुनाथदास में 'रोकन पारा' के स्थान पर पाठ है 'रोकनिहारा'। 'रोकन पारा' प्रयोग-सम्मत नहीं है, क्योंकि 'पारा' जहाँ-कहीं भी प्रयुक्त है उसके साथ क्रिया का 'इ' अंत्य रूप ही प्रयुक्त हुआ है, यथा :

तुम्हहि अछत को बरनै पारा। १-२७४ ५

प्रेम प्रमोदु कहइ को पारा। १-३४६-१

चला कटकु को बरनइ पारा। ५-३५-८

प्रबल अमित को बरनइ पारा। ७-७१-७

दूसरी ओर, 'रोकनिहारा' प्रयोगसम्मत है, क्योंकि 'हारा' के साथ क्रिया का 'नि' अंत्य रूप ही ग्रंथ भर में प्रयुक्त हुआ है, यथा :

नाथ संभु धनु भंजनिहारा। १-२७१-१

सहसबाहु भुज छेदनिहारा। १-२७२-८

भानु कमल कुल पोषनिहारा। २-१७-७

मोह निसा सब सोवनिहारा। २-९३-२

प्रसंग में दोनों खप जाते हैं।

(५) ६-१०२-३ 'धरनि धसै धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु सर हति कृत दुइ खंडा।' 'दुइ' के स्थान पर रघुनाथदास में 'जुग' पाठ है। नीचे ही 'द्वौ' आया है :

धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई।

इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है। दूसरा पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

(६) ६-१११-१५ : 'अनबद्य अखंड अगोचर गो। सब रूप सदा सब होइ न गो।' रघुनाथदास में दूसरे चरण के 'गो' के स्थान पर पाठ है 'सो'। पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। दूसरा पाठ इससे मुक्त है। प्रसंग में दोनों खप जाते हैं।

छक्कनलाल के स्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि रघुनाथदास, बंदन पाठक, कोदवराम, १७०४ तथा कुछ अन्य प्रतियों में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। यह पाठ भी अन्य पाठ की अपेक्षा उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। नीचे इन पर यथाक्रम विचार किया जाएगा।

(१) ६-६२-१३ : 'पुनि पुनि प्रभु काटत भुज बीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा।' छक्कनलाल में 'बीसा' के स्थान पर पाठ 'सीसा' है। ऊपर और नीचे 'बाहु' तथा 'सिर' दोनों का उल्लेख हुआ है :

तीस तीर रघुबीर पबारे। भुजन्ह समेत सीस महि पारे।
काटत ही पुनि भए नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने।
काटत झटिति पुनि नूतन भए। प्रभु बहु बार बाहु सिर हए। ६-६२-१२
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहु अमित केतु अरु राहू। ६-६२-१४

इसलिए 'सीसा' ही प्रसंगसम्मत लगता है, 'बीसा' नहीं।

(२) ६-१०८-३ : 'सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम निति सानी।' छक्कनलाल में 'निति' के स्थान पर पाठ 'नुति' है। 'निति' का प्रयोग अन्यत्र भी दो स्थलों पर हुआ है, किंतु दोनों स्थलों पर अर्थ उसका 'निमित्त' है :

मोहि निति पिता तजेउ भगवाना। १-२०६-४
मान जियन निति बरि उर्लाचा २-१६१-८

यदि यह 'नीति' का विकृत रूप होकर आया है तो समीचीन नहीं है। 'नुति' का अर्थ होता है 'वंदना' या 'विनती', जो प्रसंगसम्मत भी है।

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

१७२१ की प्रति में केवल एक पाठ है जो अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर है, और जो छक्कनलाल, रघुनाथदास, बंदन पाठक कोदवराम तथा १७०४ में भी पाया जाता है। इस पर नीचे विचार किया जाएगा।

(१) ६-२५ : 'तेहि रावन कहं लघु कहसि नर कर करसि बखान। रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव जान।' १७२१ में 'जान' के स्थान पर पाठ 'ज्ञान' है। 'जान' कहीं पर 'संज्ञा' नहीं है, इसलिए वह 'जाना' सकर्मक क्रिया का कर्म नहीं हो सकता। 'ज्ञान' पाठ की समीचीनता प्रकट है।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ के अस्वीकृत पाठ दो प्रकार के हैं: एक वे जिनके स्थान पर १७२१ में स्वीकृत पाठ है, और दूसरे वे जिनके स्थान पर १७२१ में भी वही पाठ है। पहले प्रकार के पाठों पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) ६-१६-७ : 'तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भयमोचनि।' १७६२ में 'मोचनि' के स्थान पर पाठ 'सोचनि' है। 'गूढ़' और 'सुखद' पाठ के साथ 'भयमोचनि' पाठ ही संगत है। 'भयसोचनि' की असंगति प्रकट है।

(२) ६-१६ : 'फूलै फरै न बेत जदपि सुधा बरसहिं जलद। मूरुख हृदय न चेत जौ गुरु मिलहिं बिरंचि सत।' 'सत' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सम'। 'सत' में जो असंभावना है, वह 'सम' में नहीं है; और प्रसंग में असंभावना की दृढ़ता ही वांछनीय है, यह प्रकट है।

दूसरे प्रकार के पाठों पर नीचे यथाक्रम विचार किया जाएगा।

×(३) ६-१४-८ : 'जानि मनुज हठ मन जनि धरहू।' 'मन' के स्थान पर १७२१/१७६२ में पाठ 'उर' है। दोनों प्रयोगसम्मत लगते हैं, यथा:

मनु हठ परा न सुनै सिखावा। १-७८-५
जौं तुम्हरें हठ हृदयं बिसेखी। १ ८१-३

और अर्थों में भी दोनों के वास्तविक अंतर नहीं है।

(४) ६-२१-४ : 'हां बाली बानर मैं जाना।' 'हां बाली' के स्थान पर १७२१/१७६१ में पाठ है 'रहा बालि'। आगे ही रावण पूछता है :

अब कहु कुसल बालि कह अहई। ६-२१-७

इसलिए 'रहा'='था' का प्रयोग समीचीन नहीं हो सकता। यदि रावण बालि की मृत्यु का हाल जानता होता, तो भले ही वह समीचीन होता।

(५) ६-२२-८ : 'पावा दरस महूं बड़ भागी।' 'महूं' के स्थान पर १७२१/१७६२ में पाठ है 'हमहुं'। दोनों प्रयोगसम्मत हैं। 'हमहुं' तो बराबर मिलता ही है, कहीं-कहीं 'महूं' भी आया है :

महूं सनेह सकोच बस सनमुख कहे न बैन। २-२६०

किन्तु अंतर दोनों में यह है कि एकवचन 'महूं' में आत्मावमानना की एक व्यंजना होती है, जो बहुवचन 'हमहुं' में नहीं होती। यहाँ पर 'बड़भागी' और 'दरस पावा' से भी उसी की व्यंजना हुई है, इसलिए 'हमहुं' की अपेक्षा 'महूं' अधिक संगत लगता है।

(६) ६-२८-२ : 'नांघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु सठ कीसा।' 'सठ' के स्थान पर १७६२/१७२१ में पाठ है 'सब'। 'सब' की प्रसंग में कोई आवश्यकता नहीं है—अर्थात् यह नहीं है कि समस्या यह हो कि उनमें से सब को शूर कहा जा सकता है, या कुछ ही को। शूर तो उनमें से कोई नहीं होते। प्रसंगोचित 'सठ' ही है, जो इस संवाद में संबोधन या विशेषण के रूप में बराबर आया है।

(७) ६-३५-१ : 'कपि बल देखि सकल हिय हारे। उठा आपु जुवराज प्रचारे।' 'जुवराज प्रचारे' के स्थान पर १७२१/१७६२ में पाठ है 'कपि के परचारे'। 'कपि' पहले चरण में आ चुका है, इसलिए दूसरे चरण में भी उसके आने पर पुनरुक्ति हो जाती है।

(८) ६-४३-३ : 'निज दल बिचल सुना हनुमाना।' १७२१/१७६२ में 'बिचल' के स्थान पर पाठ है 'बिकल'। संकेत यहाँ पर ऊपर की पंक्तियों की ओर है :

भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे।
इस प्रसंग में 'बिचल' = 'विचलित' = 'भागते हुए' ही ठीक लगता है, 'बिकल' = 'व्याकुल' नहीं। 'बिचल' का प्रयोग और भी इसी प्रकार हुआ है :

चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे। ६-१२१

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

१७२१ में १७६२ के ऊपर कहे गए अस्वीकृत पाठभेद तो हैं ही, एक और भी है जो निम्नलिखित है :

× (१) ६-१६ : 'मूरुख हृदयं न चेत जौं गुरु मिलहिं बिरंचि सत।' १७२१ में 'सत' के स्थान पर पाठ 'सिव' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, और प्रसंग में खप सकते हैं।

छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ तथा १७२१ के कुछ अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त छक्कनलाल में जो अस्वीकृत पाठ हैं, उन पर नीचे यथाक्रम विचार किया जाएगा।

(१°) ६-२२-६ : 'गर्भ न गएउ ब्यर्थ तुम जाएहु। निज मुख तापस दूत कहाएहु।' छक्कनलाल में 'गएउ' के स्थान पर पाठ 'गएहु' है। 'गएहु' का प्रयोग 'जाने पर भी' के ही अर्थ में हुआ है, यथा :

गएहु न मज्जन पाव अभागा। १-३६-२

किंतु यहाँ पर अभीष्ट अर्थ है 'नष्ट नहीं हो गया'। उसके लिए

'गएउ' पाठ ही समीचीन है। 'गर्भ का जाना' एक बहु-प्रचलित प्रयोग है।

×(२) ६-३०-६ : 'जानेउँ तव बलु अधम सुरारी। सूने हरि आनिहि पर नारी।' छक्कनलाल में 'आनिहि' के स्थान पर पाठ है 'आनेहि'। अंतर दोनों में काल और पुरुष का है। 'आनेहि' भूतकाल और द्वितीय पुरुष का रूप है, और 'आनिहि' भविष्यत् और तृतीय पुरुष का। प्रसंग में 'आनिहि' का असंगति और 'आनेहि' की संगति प्रकट है। 'आनेहि' के प्रयोग अन्यत्र भी मिलते हैं :

सठ सूने हरि आनेहि मोही। ५-८६

(३) ६-३७ : 'दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुं पूर पिय देहु। कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु।' छक्कनलाल में 'मरे' के स्थान पर पाठ 'मारेउ' है। यह कथन है मंदोदरी का रावण के प्रति। इसके पूर्व उसके दो लड़के मारे जा चुके थे : एक अक्षय कुमार, जिसे हनुमान ने मारा था, तथा एक अन्य, जिसे अंगद ने मारा था। अतः 'दुइ सुत मरे' की युक्तियुक्तता प्रकट है। 'मारेउ' क्रिया का कर्त्ता एकवचन ही हो सकता है, क्योंकि वह एकवचन रूप है; और मारने वाले हनुमान और अंगद दो व्यक्ति थे, इसलिए 'मारेउ' पाठ समीचीन नहीं माना जा सकता।

×(४) ६-४२-७ : 'जो रन बिमुख फिरा मैं जाना। सो मैं हतब कराल कृपाना।' छक्कनलाल में 'फिरा मैं जाना' के स्थान पर पाठ है 'सुना मैं काना।' ऊपर की ही पंक्ति में 'सुनी तेहिं काना' आ चुका है : 'निज दल बिचल सुनी तेहिं काना।' इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। किंतु यह पुनरुक्ति असंगत नहीं लगती है, क्योंकि एक बार सुनने के बाद रावण यह कह सकता है कि फिर रणविमुख होने का समाचार उसके कानों में न पड़े।

×(५) ६-४९-२ : 'मुंह' के स्थान पर छक्कनलाल में 'मुख' है। दोनों रूप ग्रंथ भर में आते हैं, इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं।

*(६) ६-६६ : 'एकहिं बार तासु पर छांड़ेन्हि गिरि तरु जूह।

'छांड़ेन्हि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'डारेन्हि'। 'गिरि तरु' डालने के प्रसंग में अन्यत्र 'डारना' का ही प्रयोग हुआ है, 'छांड़ना' का नहीं, यथा :

कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहं मर्कट भट भारी ६-५६-३
लिए उपारि बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर। ६-६५-४
धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं। ६ ६१ छं०

इसलिए 'डारेन्हि' पाठ 'छांडेन्हि' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(७) ६-७३-१३ : 'रन सोभा लगि प्रभुहिं बंधायो। नागपास देवन्ह भय पायो।' छक्कनलाल में 'भय' के स्थान पर पाठ 'दुख' है। 'दुख पाना' तो किसी को कष्ट में देखने पर सहानुभूति के कारण होता है। राम के संबंध में इस प्रकार की सहानुभूति ठीक नहीं लगती। उनके बंधन में पड़ने से देवताओं का भयभीत होना ही संगत लगता है।

×(८) ६-८१-७ : 'निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि देहिं बहु बालू।' छक्कनलाल में 'ढारि देहिं' के स्थान पर पाठ है 'डारि देहिं'। कोई तुलनीय प्रयोग नहीं मिलता है; किंतु दोनों पाठों में विशेष अंतर नहीं ज्ञात होता है।

(९) ६-८३ : 'ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी।' छक्कनलाल में 'भवन' के स्थान पर पाठ है 'भुवन'। 'ब्रह्मांड' और 'भुवन' लगभग समानार्थी के रूप में प्रयुक्त हुए हैं :

अंडकोस प्रति प्रतिनिज रूपा। देखेउं जिनिस अनेक अनूपा।
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी।
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखेउं बालबिनोद उदारा।
• भिन्न भिन्न मैं दीख सब। अति बिचित्र हरि जान।
अगनित भुवन फिरेउं प्रभु। राम न देखेउं आन।
सोइ सिसुपन सोइ सोभा। सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरेउं। प्रेरित मोह समीर॥ ७-८१

इसलिए 'भुवन' पाठ से प्रसंग में अनावश्यक पुनरुक्ति लगती है।

'भवन' पाठ में यह त्रुटि नहीं है यद्यपि जो रूपक वह प्रस्तुत करता है वह चमत्कारहीन लगता है।

*(१०) ६-८८-१० : 'कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु चल्लहिं। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं।' छक्कनलाल में 'चल्लहिं' के स्थान पर पाठ है 'डोल्लहिं'। दोनों के अर्थों में विशेष अंतर नहीं है, किन्तु 'डोल्लहिं' पाठ में विशेषता यह है कि 'बोल्लहिं' के साथ उसका तुक अच्छा है, और 'चल्लहिं' का नहीं है।

×(११) ६-६७-५ : 'अस्तुति करत देवतन्ह देखे। भएउँ एक मैं इन्हकें लेखे।' छक्कनलाल में 'देवतन्ह' के स्थान पर पाठ है 'देव तेहिं'। अंतर इतना ही है कि एक में 'तेहिं'='उसने' कर्ता प्रकट है, दूसरे में प्रच्छन्न है। इसलिए दोनों पाठ एक से प्रतीत होते हैं।

(१२) ६-६७-६ : 'सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। कहि अस कोपि गगन पर धायल।' छक्कनलाल में 'पर' के स्थान पर पाठ है 'पथ'। राम से युद्ध के अवसर पर देवताओं को राम की अस्तुति करता हुआ देखकर रावण का उनकी ओर आकाश में दौड़ पड़ना युक्तियुक्त है, इसलिए 'गगन पर धायल' पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है। 'गगन पथ'='आकाश मार्ग से' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है।

(१३) ६-६८ : 'उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ तें महि परा। गहे भालु बीसहुं कर मनहुं कमलन्हि बसे निसि मधुकरा।' छक्कनलाल में 'गहे' के स्थान पर पाठ है 'गहि'। 'गहि' पाठ में ध्वनि कुछ यह है कि व्याकुल होकर गिरते हुए उसने बीसों हाथों में 'भालु' पकड़े थे। 'गहे' में इस प्रकार की ध्वनि नहीं है, क्योंकि वह 'परा'='गिरा' से किसी प्रकार संबंधित नहीं है। प्रसंग से यह प्रकट है कि दोनों क्रियाओं में इस प्रकार का संबंध नहीं है, इसलिए पहला पाठ अधिक संगत लगता है।

(१४) ६-१००-३ : 'निसिहि ससिहि निंदति बहु भांती। जुग सम भई सिराति न राती।' छक्कनलाल में 'सिराति न राती' के स्थान पर पाठ है 'न राति सिराती'। अंतर दोनों पाठों में बल-संस्थान का है। पहले पाठ में 'सिराति' पर बल है, और वह प्रसंग-

सम्मत भी है; दूसरे में 'राति' पर बल है, जो प्रसंग में अपेक्षित नहीं प्रतीत होता।

*(१५) ६-१२१-७ : 'सुरसरि नाँघि जान तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयेसु पायो।' छक्कनलाल में 'तब' के स्थान पर पाठ है 'जब'। आगे की ही अर्द्धाली में 'तब' पुनः आता है : 'तब सीता पूजी सुरसरी।' इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति-सी है, जो दूसरे में नहीं है। प्रसंग में दोनों खप जाते हैं।

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास में १७६२ के अस्वीकृत पाठ कोई नहीं हैं, किन्तु १७२१ तथा छक्कनलाल के कुछ अस्वीकृत पाठ हैं। और इनके अतिरिक्त भी उसमें कुछ अस्वीकृत पाठ हैं। इन पर नीचे विचार किया जाएगा।

(१) ६-६-१ : 'कहहिं सचिव सठ ठकुर सोहाती। नाथ न पूर आव येहिं भाँती।' रघुनाथदास में 'सठ' के स्थान पर पाठ है 'सब'। संकेत इस पंक्ति में ऊपर की इन पंक्तियों की ओर है :

कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु पूछहु काहा।

कहहु कवन, भय करिअ विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा।

'सचिव' शब्द से जो इन दो पंक्तियों में आया है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि सभी सचिवों ने यही मत दिया होगा : आगे माल्यवंत नामक वृद्ध मंत्री ने रावण को इसके विपरीत सम्मति दी है। ऐसी दशा में 'सब' पाठ युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। विवेचनीय पंक्ति का कथन प्रहस्त का है, जो रावण का एक पुत्र था, और कुछ-कुछ राम-पक्ष का समर्थक था। राम-पक्ष का समर्थन करने वाले अनेक व्यक्तियों ने 'सठ' शब्द का प्रयोग रावण और रावण-पक्ष के लोगों के लिए किया है। ऐसी दशा में प्रहस्त का इन युद्ध की सम्मति देने वाले सचिवों को 'सठ' कहना असंगत नहीं है।

*(२) ६-२० : 'आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो ताहि।' रघुनाथदास में 'करैगो' के स्थान पर पाठ है 'करहिंगे'। 'करैगो' ग्रंथ

भर में अन्यत्र नहीं मिलता है। 'करहिंगे' एक स्थान पर मिलता है, इसलिए अधिक प्रयोगसम्मत लगता है :

राम कृपानिधि कछुक दिन बांस करहिंगे आइ। ४-१२

(३) ६-२१-१ : 'रे कपिपोत बोलु संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी।' रघुनाथदास में 'बोलु' के स्थान पर पाठ है 'न बोल'। दोनों का प्रयोग ग्रंथ में एक-एक स्थल पर और मिलता है :

सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु संभारि अधम अभिमानी। ६-६-१
तबहुं न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छांड़इ स्वांस कारि जनु सांपिनि। २-१३-८

ऊपर उद्धृत प्रथम स्थल पर 'बोलु' का प्रयोग विधि में ठीक उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार विवेचनीय स्थल पर हुआ है, और प्रसंग भी दोनों का एक ही है। उद्धृत दूसरे स्थल पर 'न बोल' का प्रयोग 'नहीं बोलती है' के अर्थ में सामान्य वर्त्तमान की क्रिया के रूप में हुआ है। तृतीय पुरुष के साथ 'न बोल' का प्रयोग ठीक ही है, किन्तु द्वितीय पुरुष के साथ वह ठीक नहीं लगता।

(४) ६-६५-५ : 'कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा।' रघुनाथदास में 'एक एक' के स्थान पर पाठ है 'एकहि'। 'एकहि' का प्रयोग ग्रंथ में जहाँ-कहीं भी हुआ है, 'केवल एक' के ही अर्थ में हुआ है। विवेचनीय स्थल पर 'केवल एक' अर्थ अपेक्षित नहीं है, यह 'करहिं' क्रिया के सामान्य वर्तमान रूप से प्रकट है। इसलिए 'एक एक' पाठ ही समीचीन लगता है।

(५) ६-८७-१० : 'स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी। सोनित सरि कादर भयकारी।' रघुनाथदास में 'भारी' के स्थान पर पाठ है 'बारी'। इससे मिलती-जुलती उक्तियाँ अन्यत्र भी प्रयुक्त हुई हैं, किन्तु 'शैल' से 'धारा' या 'पनारा' ही प्रस्रवित हुआ है, 'बारि' नहीं :

जनु स्रव सैलु गेरु कै धारा। १-१८-१

जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे। ६-६६-७

अतः विवेचनीय प्रसंग में 'निर्झर' का ही प्रस्रवित होना युक्तियुक्त लगता है, 'निर्झर के बारि' का नहीं—जैसा 'निर्झर बारी' के समास-युक्त पाठ का अर्थ होगा।

(६) ६-९९-११ : 'बहु बिधि कर बिलाप जानकी।' रघुनाथदास में 'कर' के स्थान पर पाठ 'करत' है। 'जानकी' स्त्रीलिंग कर्त्ता की क्रिया स्त्रीलिंग की होनी चाहिए। 'करत' पुल्लिंग है, इसलिए अशुद्ध है। 'कर' में यह दोष नहीं है, यथा :

नाना बिधि बिलाप कर तारा। ४-११-३

(७) ६-१०९-३ : 'सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम नुति सानी।' रघुनाथदास में 'नुति' के स्थान पर पाठ है 'जुति'। 'जुति' निरर्थक है ; 'नुति'='वंदना' या 'विनती' सार्थक ही है।

*(८) ६-११८-५ : 'निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनु काहू।' रघुनाथदास में 'डरपहु' के स्थान पर पाठ है 'डरेहु'। 'सुमिरेहु' (भविष्यत् काल) के साथ 'डरेहु' (भविष्यत् काल) अधिक संगत लगता है।

(९) ६-१२१-६ : 'इहां निषाद सुना प्रभु आए।' रघुनाथदास में 'सुना' के स्थान पर पाठ है 'सुन्यो'। 'सुन्यो' अन्यत्र प्रयुक्त नहीं दिखाई देता, 'सुना' ही सर्वत्र आया है। अंतर दोनों में भाषा का है ; 'सुना' अवधी है, और 'सुन्यो' व्रज। ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण 'सुना' अधिक समीचीन लगता है।

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में १७६२ के अस्वीकृत कोई पाठ नहीं है। १७२१, छक्कनलाल तथा रघुनाथदास के कुछ अस्वीकृत पाठ हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ हैं, जिन पर नीचे विचार किया जाएगा।

*(१) ६-०-१ श्लो० : 'काशीशं कलि कल्मषौघ शमनं कल्याणकैल्पद्रुमं। नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं श्रीशंकरं मन्मथारिं।' 'श्री शंकरं मन्मथारिं' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'कन्दर्पहं शंकरं'। दोनों पाठों में अर्थ या प्रयोग-विषयक कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ता। केवल छंद की दृष्टि से पहले पाठ में दोनों चरणों में मात्राएँ समान नहीं हैं, जो दूसरे पाठ में समान हैं।

(२) ६-२१-३ : 'अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुं भई ही भेंटा।' बंदन पाठक में 'ही' के स्थान पर पाठ 'रही' है। दोनों पाठों में अर्थ-विषयक कोई अंतर नहीं है। किंतु 'ही' पाठ में छंद की सामान्य गति सुरक्षित है, जो 'रही' में विकृत हो जाती है।

(३) ६-२३-४ : 'तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष।' बंदन पाठक में 'छत्र जाति' के स्थान पर पाठ है 'छत्रि जाति'। तुलनीय प्रयोग निम्नलिखित हैं :

छत्र जाति रघुकुल जनम राम अनुग जगु जान। २-२२६
छत्र बंधु तै बिप्र बोलाई। १-१७४-१
बिस्वबिदित छत्री कुल द्रोही। १-२७२-६
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। १-१६०-६

'जाति' शब्द के साथ 'छत्र' ही आया है, इसलिए वह निश्चित रूप से प्रयोगसम्मत है; दूसरे के संबंध में इतना निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

×(४) ६-३३-१ : 'उहां सकोप दसानन सब सन कहत रिसाइ। धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ। येहि बिधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहं जहं पावहु।' बंदन पाठक में अर्द्धाली के 'बधि' के स्थान पर पाठ है 'बिधि'। दोनों पाठ प्रसंग में जाते हैं, और प्रयोगसम्मत तो हैं ही।

(५) ६-३८-६ : 'साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा।' बंदन पाठक में 'दान' के स्थान पर पाठ है 'दाम'। अन्यत्र भी 'साम' आदि के साथ 'दान' आया है, 'दाम' नहीं :

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा। ५-८-३

'दाम' शब्द केवल 'माला' या 'धन' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(६) ६-७६ : 'दुहुं दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि। भिरे बीर इत रामहित उत रावनहि बखानि।' बंदन पाठक में 'हित' के स्थान पर पाठ है 'कहि'। 'दुहुं दिसि जय जयकार करि' ऊपर आ चुका है, इसलिए 'राम कहि' की कोई आवश्यकता नहीं

समझ पड़ती। 'राम हित' पाठ की प्रसंगिकता प्रकट है : अर्थ है 'इधर वीर राम की ओर से या राम के लिए भिड़े।'

(७) ६-६६-११ : 'बहु बिधि कर बिलाप जानकी।' बंदन पाठक में 'कर' के स्थान पर पाठ है 'करति'। 'कर'='करने लगती है' 'करति'='करती है' की अपेक्षा अधिक प्रसंगसम्मत प्रतीत होता है, क्योंकि यह प्रसंग यहीं पर छोड़ नहीं दिया जाता, वरन् त्रिजटा द्वारा सीता को उस शंका का समाधान भी कराया जाता है जिसके कारण वह विलाप करती है। तुलनीय स्थल निम्नलिखित हैं :

नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह संभारा। ४-११-२
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही। ३-२६-४
करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याधि बिबस जनु मृगी सभीता। २-२६-२४

*(८) ६-११८-५ : 'निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू।' 'डरपहु' के स्थान पर बंदक पाठक में 'डरपेहु' है। अंतर काल-विषयक है : पहला वर्त्तमान का रूप है, दूसरा भविष्य का। 'सुमिरेहु' (भविष्यतकाल) के साथ 'डरपेहु' (भविष्यत्काल) 'डरपहु' (वर्त्तमान काल) की अपेक्षा अधिक समीचीन लगता है।

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

कोदवराम में १७६२ के अस्वीकृत पाठ नहीं हैं। १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास तथा बंदन पाठक के कुछ अस्वीकृत पाठ हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ हैं। नीचे इन पर यथाक्रम विचार किया जाएगा।

(१) ६-१ : 'अति उतंग तरु सैलगन लीलहिं लेहिं उठाइ। आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ।' कोदवराम में 'नीलहि' के स्थान पर पाठ है 'नील कहं'। देहिं' के साथ सामान्यतः'—हि' विभक्ति आई है :

सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा। २-२५०-३
सब मिलि देहिं रावनहि गारी। ६-४२ ५
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान। ६-१२१

किन्तु कुछ स्थलों पर 'कहं' विभक्ति भी प्रयुक्त हुई है, यथा :

प्रथमहिं जिन्ह कहं आयेसु दीन्हा। १-१८३-२

तिन्ह कहुं राम भगति निज देहीं। ७-११२-७

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं।

(२) ६-२-४ : 'करिहौं इहां संभु थापना।' कोदवराम में 'थापना' के स्थान पर पाठ है 'अस्थपना'। 'अस्थपना' रूप ग्रंथ भर में नहीं आया है। 'अस्थापना' होता तो कुछ बात भी थी—किन्तु उससे छंद बिगड़ जाता। 'थापना' क्रिया-रूप कई स्थलों पर मिलता है :

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज स्रुति सेतु। १-१२१

थापिय जन सब लोग सिहाऊ। २-८७-७

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। ६-२-६

इहां सेतु बांधेउं अरु थापेउ सिव सुखधाम। ६-११६

इसलिए पहला पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं।

(३) ६-२-७ : 'सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुं मोहि न भावा।' कोदवराम में 'भगत' के स्थान पर पाठ 'दास' है। 'द्रोह' और 'भक्ति' में परस्पर विरोध की जो व्यंजना है, वह 'द्रोह' और 'दासत्व' में नहीं है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन और प्रसंगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं।

×(४) ६-३-५ : 'राम बचन सब के जियं भाए। कोदवराम में 'जियं' के स्थान पर पाठ है 'मन'। दोनों में 'मन' पाठ अधिक प्रयोग-सम्मत लगता है, क्योंकि 'मन भाए' अधिकतर प्रयुक्त हुआ है :

संभु बचन सुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए। १-१२८-२

एहि बिधि मुनिवर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए। २-१३२-१

भरत बचन मुनिबर मन भाए। २-२१३-४

सुनि मुनि बचन राम मन भाए।

बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए। ३-११-१२

और 'जियं भाए' एकाध ही प्रयुक्त बार मिलता है :

सबरी देखि रामु गृह आए। मुनि के बचन समुझि जियं भाए। ३-३४-६

×(५) ६-५-५: 'सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु

काल गति त्यागी।' कोदवराम में 'रितु अरु कुरितु' के स्थान पर पाठ है 'रितु अनरितुहुं'। संगति की दृष्टि से दूसरे पाठ का अर्थ होगा : 'ऋतु और अनऋतु में भी कालगति की उपेक्षा कर...' और पहले पाठ का अर्थ होगा : 'ऋतु और कुऋतु में कालगति की उपेक्षा कर ...'। दोनों पाठों में वस्तुत: इसलिए अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(६) ६-५ : 'बांध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस। सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस।' कोदवराम में 'बांध्यो' के स्थान पर पाठ है 'बांधे'। 'बांधे' का प्रयोग बहुवचन कर्म के साथ ही हुआ है :

बांधे घाट मनोहर चारी। २ ३६.७

बांधे घाट मनोहर स्वल्प पक नहिं नीर। ७-२८

इसी प्रकार 'बांध्यो' या 'बांधेउ' का प्रयोग केवल एकवचन कर्म के साथ हुआ है :

जिन्ह मोहिं मारा ते मैं मारे। तेहि पर बांधेउ तनय तुम्हारे। ५-२२-५

बांधेउ सेतु नील नल नागर। ६-३-७

खरब निसाचर बांधेउ नागपास सोइ राम। ७-५८

यहाँ पर केवल एक समुद्र को बांधने का प्रसंग है—'बननिधि' 'नीरनिधि' आदि तो उसी के विभिन्न नाम हैं। इसलिए 'बांध्यो' या 'बांधेउ' ही व्याकरण और प्रयोगसम्मत है, 'बांधे' नहीं।

(७) ६-६-६ : 'तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा।' 'दिनकरहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'दिवाकर'। 'रघुपतिहि' के अनुरूप होने के कारण अधिकरण का रूप 'दिनकरहि' जितना समीचीन लगता है, प्रथमा का रूप 'दिवाकर' उतना नहीं।

(८) ६-७ : 'अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात। नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात।' कोदवराम में 'अचल होइ अहिवात' के स्थान पर पाठ है 'मम अहिवात न जात'। 'भजहु' (वर्त्तमान) के साथ 'होइ' (वर्त्तमान) ही समीचीन है; 'भजत' (भूत) होता तो 'न जात' (भूत) समीचीन होता।

(९) ६-८-७ : 'आइ सभा मंत्रिन्ह तेहिं बूझा।' कोदवराम में 'तेहिं' के स्थान पर पाठ है 'सन'। 'बूझना' क्रिया के किसी रूप के साथ 'सन' नहीं प्रयुक्त हुआ है :

बूझौं स्वामी तोहिं। ७-९३ बूझौं तिन्हहिं रामगुन गाहा। ७-१८३-११

बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ५-३७-८

अब बिधि अस बूझिय नहि तोहीं। १-५९-४

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं।

(१०) ६-८-८ : 'बार बार प्रभु पूंछहु काहा।' कोदवराम में 'पूंछहु' के स्थान पर पाठ है 'बूझहु'। बूझना' और 'पूंछना' का प्रयोग ग्रंथ भर में प्रायः समानार्थियों के रूप में हुआ है। किंतु यहाँ पर 'बूझा' पूर्व वाली अर्द्धाली में आ चुका है : 'सभा आइ मंत्रिन्ह तेहिं बूझा।' इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है। पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

×(११) ६-१०-८ : 'बैठ जाइ तेहि मंदिर रावन। लागे किन्नर गुन गन गावन।' कोदवराम में 'गुन गन' के स्थान पर 'गंध्रव' है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

*(१२) ६-१० : 'परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास।' कोदवराम में 'तद्यपि सोच न त्रास' के स्थान पर पाठ है 'तदपि न तेहि कछु त्रास'। 'परम प्रबल रिपु' के होने पर 'सोच' का होना कम युक्तियुक्त जँचता है, 'त्रास' ही समीचीन लगता है। इसके अतिरिक्त 'तद्यपि' अन्यत्र कहीं नहीं आया है, सर्वत्र 'तदपि' ही मिलता है।

×(१३) ६-१३-७ : 'बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा।' 'मधुर' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सरिस'। 'सरिस' का कोई प्रसंग नहीं है। 'सरस' अवश्य हो सकता था, और अन्यत्र आया भी है :

सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं। १-४०-६

'मधुर' की संगति प्रकट है।

×(१४) ६-१६-६ : 'जानिउं प्रिया तोरि चतुराई। येहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई।' 'कहहु' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कहेउ'। दोनों पाठों में अंतर वर्तमानकाल और भूतकाल का है। किंतु संगत दोनों हैं।

*(१५) ६-२० : 'प्रनतपाल रघुबंस मनि त्राहि त्राहि अब मोहि। आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि।' 'आरत गिरा सुनत प्रभु' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सुनतहिं आरत गिरा प्रभु'। यद्यपि सामान्यतः ग्रंथ भर में 'सुनत' ही प्रयुक्त है, 'सुनतहिं' का प्रयोग भी मिलता है, यथा :

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। २-१५३-५
सुनतहिं लखन चले उठि साथा। २-१६६-२
सुनतहिं भएउ पर्बताकारा। ४-३०-६
सुनतहिं सीता कर दुख भागा। ५-१३-५

इसलिए प्रयोगसम्मत दोनों हैं। प्रसंग में भी दोनों खप सकते हैं। किंतु दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक विषमता नहीं है जो पहले में है।

(१६) ६-२१-३ : 'अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुं भई ही भेंटा।' 'ही' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'हौ' है। 'हौ' की कोई संगति नहीं है, वह अवधी का शब्द भी नहीं है। संभवतः 'ही' का ही लिपि-प्रमाद से 'हौ' हो गया है।

(१७) ६-२१-६ : 'गर्भ न गएउ ब्यर्थ तुम जाएहु। निज मुख तापस दूत कहाएहु।' 'ब्यर्थ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बृथा'। 'ब्यर्थ' का प्रयोग इस प्रकार हुआ है :

कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा। ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा। १-२७३-८
हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस बिधि हाथ॥
अस बिचारि केहि देइय दोसू। ब्यर्थ काहि पर कीजिअ रोसू। १-१७२-१

और 'बृथा' का प्रयोग इस प्रकार हुआ है :

सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना। ६-८-२

'ब्यर्थ' का आशय इन प्रयोगों में 'बेकार', और 'बृथा' का अकारण

जान पड़ता है; पहले में ध्यान 'परिणाम' या 'कार्य' की ओर, और दूसरे में ध्यान कारण की ओर अधिक दिखाई पड़ता है। विवेचनीय स्थल पर दृष्टि कारण की ओर नहीं, कार्य की ओर ही विशेष है, इसलिए 'व्यर्थ' अधिक समीचीन लगता है।

(१८) ६-२२-६: 'देखी नयन दूत रखवारी।' कोदवराम में 'देखी' के स्थान पर पाठ है 'देखे'। 'देखना' का प्रयोग सकर्मक क्रिया के रूप में ही यहाँ हुआ है: कर्म है 'रखवारी'। और यह कर्म स्त्रीलिंग है, इसलिए 'देखना' क्रिया का रूप भी स्त्रीलिंग ही समीचीन होगा। 'देखे' पुल्लिंग और बहुवचन है, इसलिए वह ठीक नहीं है। 'देखी' स्त्रीलिंग और एकवचन है, इसलिए वह ठीक है।

(१६) ६-२४-२: 'धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहं तहं नाचै परिहरि लाजा। नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करै धरम निपुनाई।' कोदवराम में 'करै' के स्थान पर पाठ है 'धरै'। 'करै' की संगति प्रकट है, अर्थ होगा: 'नाच कूद कर और लोगों को रिझा कर वह पति (स्वामी) का हित करता है, यह उसकी धर्म-निपुणता है।' 'धरै' पाठ का अर्थ होगा 'नाच कूद कर और लोगों को रिझा कर वह पति का हित रखता है—' जो संगत नहीं प्रतीत होता।

×(२०) ६-२४-१२: 'कहु रावन रावन जग केते। मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते।' 'जेते' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'तेते'। दोनों से संगति लग जाती है, और प्रयोग भी ग्रंथ में दोनों का हुआ है।

(२१) ६-२५-६: 'जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरा जाइ बरिआई। जिन्हकें दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे।' कोदवराम में 'जिन्हकें' के स्थान पर पाठ है 'तिन्हके'। प्रसंग में इस प्रकार की उक्तियों—गर्वोक्तियों—की एक माला है; उसमें इसके पूर्व तथा पश्चात् भी संबंधवाचक सर्वनाम के ही रूप आते हैं, यथा पूर्व की पंक्ति में:

भुजबिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूं जिन्हकें उर साला।

इसलिए 'तिन्हकें' की अपेक्षा 'जिन्हकें' अधिक समीचीन लगता है।

(२२) ६-२५ : 'तेहिं रावन कहं लघु कहसि नर कर करसि बखान। रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ज्ञान।' दोहे के अंतिम चरण का पाठ कोदवराम में 'तब न जान अब जान' है। अर्थ इस पाठ में कदाचित् यह लिया गया है कि 'तब तू नहीं जानता था तो अब जान ले।' किंतु 'जान' का प्रयोग अन्य पुरुष के लिए वर्तमान काल में ही हुआ है, यथा :

महिमा जासु जान गनराऊ । १-१९-४

जगु जान षन्मुख जनम करम प्रतापु पुरुषारथ महा । १-१०३

कहीं भी मध्यम पुरुष के लिए भूतकाल में नहीं हुआ है। इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है, दूसरा नहीं।

×(२३) ६-२६-४ : 'दससीस' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'दसकंठ' है। दोनों प्रयोगों में कोई अंतर नहीं है।

(२४) ६-२७ : 'कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि।' कोदवराम में 'अस' के स्थान पर पाठ 'सम' है। 'सम' में ध्वनि यह है कि भाई में कुंभकर्ण के गुण हैं—वह कुंभकर्ण का समानधर्मी है; 'अस' में यह ध्वनि नहीं है। उसमें ध्वनि यह है कि 'कुंभकर्ण कैसा असाधारण वीर है, और वह मेरा भाई है!' कहने की आवश्यकता नहीं कि दूसरी ही ध्वनि अपेक्षित है, पहली नहीं।

(२५) ६-२८-८ : 'हरगिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहिं सराहू।' 'निरखु' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'निरखि'। अगले चरण में आए हुए 'सराहु' रूप के अनुरूप होने के कारण 'निरखु' रूप की समीचीनता प्रकट है। और यदि 'निरखि' को विधि में माना जाय तो उससे रूपभिन्नता के कारण वह समीचीन नहीं माना जा सकता। 'निरखि' पूर्वकालिक क्रिया के रूप में अवश्य ठीक होता, किंतु दूसरे चरण में आने वाले 'पुनि' से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों चरणों में दो उपवाक्य हैं, और विवेचनीय शब्द को पहले उपवाक्य की मुख्य क्रिया ही होना चाहिए, क्योंकि अन्यथा वह उपवाक्य अधूरा रह जाएगा।

×(२६) ६-३३-६ : 'अन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि कालबस खल मनुजादा।' कोदवराम में 'खल' के स्थान पर पाठ है 'सठ'। दोनों ही प्रसंग में खप सकते हैं।

×(२७) ६-३५-२ : 'सांझ जानि दसकंधर भवन गएउ बिलखाइ। मंदोदरी रावनहिं बहुरि कहा समुझाइ।' 'रावनहिं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'तब रावनहिं'। दोनों पाठों की संगति लग जाती है।

(२८) ६-३६-७ : 'करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा। जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे। प्रभु प्रतापु कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंघनाद करि धाए हरषित रामचरन सिर नावहिं। गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं।' कोदवराम में उपर्युक्त में से अंतिम पंक्ति नहीं है। यूथप की यह नियुक्ति और अनीकों का निर्माण राम से कुछ दूर हुआ था, और यह राम के द्वारा ही उठाई हुई एक समस्या को ध्यान में रखते हुए किया गया था :

रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए।
लंका बांके चारि दुआरा। केहिं बिधि लगिअ करहु बिचारा। ६ ३८ २

इसलिए राम को उक्त निर्णय के कार्यान्वित होने की सूचना देनी संगत ही है। पंक्ति के न रहने पर प्रसंग में युक्तियुक्तता का अभाव हो जाता है—राम को कोई सूचना ही उनकी उठाई हुई समस्या के निर्णय की नहीं होती।

*(२९) ६-४२-६ : 'निज दल बिचल सुनी तेहिं काना।' कोदवराम में 'सुनी' के स्थान पर पाठ है 'सुना'। 'सुना' सकर्मक क्रिया का कर्म 'दल' पुल्लिंग ही है, यथा:

देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरे। ३-२०

इसलिए उसका पुल्लिंगरूप ही समीचीन है।

(३०) ६-४२-८ : 'समर भूमि भए बल्लभ प्राना।' 'बल्लभ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'दुर्लभ'। प्राणों का 'बल्लभ' = 'प्रिय'

होना ही संगत है, उनके 'दुर्लभ' होने में कोई संगति नहीं है, प्राण न 'सुलभ' हो सकते हैं न 'दुर्लभ'।

*(३१) ६-४३-८ : 'दूसरें सूत बिकल तेहिं जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना।' कोदवराम में 'दुसरें' के स्थान पर पाठ है 'दूसर'। तुलनीय स्थल केवल एक है :

सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लेइ गयो। ६-८४

इसलिए प्रयोग के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि दूसरा कदाचित् पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोग-सम्मत है।

(३२) ६-४४-७ : 'कूदि परे रिपु कटक मझारी। लागे मर्दै भुज बल भारी।' कोदवराम में 'परे' के स्थान पर पाठ है 'परेउ'। अंतर एकवचन-बहुवचन का है। 'परे' बहुवचन और 'परेउ' एकवचन है। कर्त्ता 'कपि' बहुवचन है—दो बंदर हैं।

जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। ६-४४-१

इसलिए 'परे' ही ठीक है। 'लागे' से यह और भी प्रकट है। अन्यथा 'लागेउ' होता।

(३३) ६-४६ : 'देखि निबिड़ तम दसहुं दिसि कपि दल भएउ खंभार। एकहिं एकु न देखइ जहं तहं करहि पुकार।' 'देखइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'देख तब' है। पहले पाठ में 'एकहिं एकु न देखइ' तथा 'जहं तहं करहिं पुकार' अलग अलग वाक्य हैं एक में कर्त्ता 'एकु' है और दूसरे में 'कपि' (बहुवचन) है जो लुप्त है। दूसरे पाठ में 'तब' के द्वारा दोनों वाक्य संबंद्ध होगए हैं, और उन्होंने मिश्रित वाक्य का रूप धारण कर लिया है, इसलिए आश्रित उपवाक्य का कर्त्ता 'एकु' मुख्य उपवाक्य की क्रिया 'करहिं' (बहुवचन) का भी कर्त्ता हो जाता है. जो ठीक नहीं है।

(३४*) ६-५२ : 'आयेसु मांगि राम पहिं अंगदादि कपि साथ। लछिमनु चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ।' 'मांगि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'मांगी' है। 'आयेसु' ग्रंथ भर में पुल्लिंग है, यथा:

प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयेसु दीन्हा। १-१८३-२

निसि प्रबेस मुनि आयेसु दीन्हा। १-२२६-१

अतः पहला पाठ ही समीचीन है, दूसरा व्याकरण और प्रयोग-विरुद्ध है।

(३५) ६-५६-५ : 'भजि रघुपति करु हित आपना। छांड़हु नाथ मृषा जल्पना।' 'मृषा' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'बृथा' है। 'बृथा' का प्रयोग 'अकारण' के अर्थ में किया गया है, यथा :

सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहिं समाना। ६-८-२

'मृषा' का प्रयोग 'असत्य' अथवा 'भ्रमपूर्ण' के अर्थ में हुआ है, यथा :

रजत सीप महुं भास जिमि जथा भानुकर बारि।
जदपि मृषा तिहुं काल सोइ भ्रम न सकै कोउ टारि॥ १-११७

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदय बिचारहु। ६-३६-७

रावण ने कालनेमि से जाकर हनुमान का मार्गावरोध करने के लिए कहा है, उसीके उत्तर में उसने रावण से ऊपर लिखा निवेदन किया है। यहाँ पर 'अकारण' का कोई प्रसंग नहीं है; प्रसंग 'भ्रमपूर्ण' और 'असत्य' का ही है, जो निम्नलिखित पंक्तियों से और भी स्पष्ट हो जाता है :

मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महा मोह निसि सूतत जागू।
काल व्याल कर भच्छक जोई। सपनेहु समर कि जीतिअ सोई। ६-५६ ८

इसलिए 'मृषा' ही प्रसंगसम्मत है, 'बृथा' नहीं।

* (३६) ६-६२-६ : 'मुरै न मन तन टरै न टार्‌यो। जिमि गज अर्क फलन्हि को मार्‌यो।' कोदवराम में 'टार्‌यो' तथा 'मार्‌यो' के स्थान पर पाठ है 'टारे मारे'। दोनों पाठों से अर्थ की संगति लग जाती है। किंतु पहला ब्रज रूप है, दूसरा अवधी। ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण दूसरा अधिक समीचीन लगता है।

× (३७) ६-६६-८ : जयति जयति जय कृपानिधाना।' 'कोदवराम में पाठ है : 'जय जय कारुनीक भगवाना'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं—वस्तुत दोनों के अर्थों में कोई विशेष अंतर नहीं है।

(३८) ६-६६-८ : 'बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहंसा जबहिं निकट कपि आए।' कोदवराम में 'कपि' के स्थान पर पाठ है 'चलि'

'धाए' पहले चरण में आ चुका है; 'चलि आए' पाठ से उसका विरोध होता है। 'कपि' पाठ में इस प्रकार का कोई वैषम्य भी नहीं है।

(३९) ६-७० : 'करि चिक्कार घोर अति धावा बदन पसारि। गगन सिद्ध सुर त्रासित हाहा हेति पुकारि।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'करि चिकार अति घोरतर'। 'घोर चिक्कार' करने के अनंतर ही 'घोरतर चिक्कार' = 'उससे अधिक घोर चिक्कार' का उल्लेख ठीक हो सकता था; किंतु इस प्रकार का कोई उल्लेख इसके पूर्व नहीं है, इसलिए पहला ही पाठ ठीक प्रतीत होता है।

(४०) ६-७१-६ : 'धरनि धसै धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह जुग खंडा। परे भूमि जिमि नभ तें भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली नहीं है। उन कटे हुए युग-खंडों का क्या हुआ, प्रसंग में यह बतलाना आवश्यक प्रतीत होता है—अन्यथा यह भी कल्पना की जा सकती थी कि वे खंड भी गिर पड़ने के स्थान पर लड़ने लगे। इसलिए पहला पाठ—अर्थात् दूसरी अर्द्धाली का रहना—प्रसंगसम्मत है ; दूसरा—अर्थात् उसका अभाव—नहीं।

(४१) ६-७१-९ : 'सुर दुंदुभी बजावहिं हरषहिं। अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं।' कोदवराम में दूसरे चरण का पाठ है 'जय जय करहिं सुमन सुर बरषहिं।' 'सुर' प्रथम चरण में आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

(४२) ६-७३-१३ : 'रन सोभा लगि प्रभुहिं बंधायो।' कोदवराम में 'प्रभुहिं' के स्थान पर पाठ 'आपु' है। 'ही' प्रसंग के लिए आवश्यक है—रण की शोभा के लिए प्रभु ने ही बंधा। कराया (अन्यथा उन्हें कौन बांध सकता है, ध्वनि यह है)। दूसरे पाठ में 'ही' के न होने से यह ध्वनि नहीं आती, इसलिए वह पहले पाठ की भाँति संगत नहीं है।

(४३) ६-७४-५ : 'जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा। बूढ़ जानि सठ छांड़ेउं तोहीं। लागेसि अधम प्रचारै मोहीं।' 'अधम' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'पतित'। 'पतित' शब्द का प्रयोग एक तो राम को पतितपावन कहने के प्रसंग में हुआ है

जासु पतितपावन बड़ बाना । ७-१३०-७

पाई न केहिं गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना । ७-१३०

और पतित कहे गए हैं गनिका, अजामिल, ब्याध, गीध, गजादि। जामवंत को इनकी श्रेणी में रखने का कोई कारण नहीं दिखाई देता, और सो भी कुंभकर्ण उसको किस पात्रता के कारण इस श्रेणी में रख सकता था ? 'अधम' शब्द का प्रयोग तो संवादों में कई बार हुआ है :

हतउं न तोहिं अधम अभिमानी । ६-२४-११
बोलु संभारि अधम अभिमानी । ६-२६-१
जानेउं तव बल अधम सुरारी । ६-३०-६
कटु जलपक निसिचर अधम । ६-३३

और वही यहाँ पर संगत प्रतीत होता है ।

(४४) ६-७५ : 'रघुपति चरन नाइ सिर ।' कोदवराम में 'चरन' के स्थान पर पाठ है 'चरनहिं'। 'चरनहिं' ग्रंथ भर में कहीं नहीं आया है । 'सिर नवाने' के प्रसंग में 'चरनन्हि' अवश्य आया है :

नयन मूदि चरनन्हि सिर नावा । १-२०२-५
लछिमन प्रभु चरनन्हि सिर नावा । ३-१७-१
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि । ३-४६
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा । ४-१६-२

और 'चरन' का प्रयोग भी इसी प्रकार हुआ है :

बार बार हरि चरन परी । १-२११
नाइ चरन सिर मुनि चले । १-८१
चरन सरोज सुभग सिर नाए । १-२३६-८
आइ चरन पंकज सिरु नावा । ६-३८-३

इसलिए 'चरनहिं' पाठ प्रयोगसम्मत नहीं प्रतीत होता, 'चरन' ही प्रयोगसम्मत लगता है ।

×(४५) ६-७६-१४ : 'लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा । येहि पापिहिं मैं बहुत खेलावा । सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा । सर संधान कीन्ह करि दापा ।' कोदवराम में पहली अर्द्धाली का पाठ है : 'येहि

पापिहिं मैं बहुत खेलावा। अब बध उचित कपिन्ह भय पावा।' दोनों पाठ प्रसंगोचित प्रतीत होते हैं।

×(४६) ६-७६ : 'रामानुज कहं रामु कहं अस कहि छांड़ेसि प्रान। धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान।' कोदवराम में दोहे के तीसरे चरण का पाठ है : 'धन्य सक्रजित मातु तव'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

×(४७) ६-७७-३ : 'बरषि सुमन दुंदुभी बजावहिं। श्री रघुबीर बिमल जस गावहिं।' कोदवराम में 'रघुबीर' के स्थान पर पाठ 'रघुनाथ' है। दोनों पाठ संगसम्मत हैं और अर्थ में भी परस्पर अभिन्न हैं।

(४८) ६-७७-८ : 'पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं।' 'प्रलय समय' के स्थान पर कोदवराम में 'महा प्रलय' पाठ है। 'महा प्रलय' 'प्रलय' और 'प्रलय काल' तीनों ही आए हैं :

उद्भव पालन प्रलय कहानी। १-१६३-६
उतपति पालन प्रलय समीहा। ६-१५-६
जनु प्रलय के बादले। ६-४९
प्रलयकाल के जनु घनघट्टा। ६-८७-१
महा प्रलयहु नास तव नाहीं। ७-९३-५

किंतु यहाँ 'प्रलय' अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है, क्योंकि बादलों के प्रसंग में उसी का प्रयोग हुआ है।

(४९) ६-८० : 'येहि मिस मोहिं उपदेसेहु राम कृपासुखपुंज।' कोदवराम में 'मिस' के स्थान पर 'बिधि' तथा 'उपदेसेहु' के स्थान पर पाठ 'उपदेसे' है। प्रसंग में संकेत धर्ममय रथ के संबंध में श्रीराम के कथन की ओर है। सीधा-सीधा उपदेश तो दिया नहीं गया है, बल्कि धर्ममय रथ का आदेश करते हुए उपदेश किया गया है, इसलिए 'बिधि' की अपेक्षा 'मिस' अधिक संगत प्रतीत होता है।

(५०) ६-८१ : 'निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजा दस चाप। रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप।' कोदवराम में प्रथम चरण के स्थान पर पाठ है 'निज दल बिकल बिलोकि तेहिं'। 'बिचलत' ='भागता हुआ' की प्रासंगिकता प्रकट है, क्योंकि इसी कारण रावण

को दापपूर्वक 'फिरहु फिरहु' कहना पड़ता है। केवल 'बिकल'= 'व्याकुल' के साथ 'फिरहु फिरहु' असंगत लगता है।

×(५१) ६-८२ : 'निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ। लछिमनु चले क्रुद्ध होइ नाइ रामपद माथ।' कोदवराम में पहले दो चरणों का पाठ है : 'निज दल बिकल बिलोकि तेहिं कटि निषंग धनु हाथ।' दोनों में अंतर 'देखि' और 'बिलोकि' मात्र का है। दोनो ही ग्रंथ भर में प्रयुक्त हुए हैं।

(५२) ६-८३-४ : 'कोटिन्ह आयुध रावन डारे।' 'डारे' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'मारे' है। 'डारना' के प्रयोग 'आयुध' कर्म के साथ अन्यत्र भी मिलते हैं :

सक्तिसूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना।
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करइ बहु बाना। ६-७३-३२
सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहिं बारहीं।
करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं॥ ३-२०
प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। ३-१६-१
अस्त्रसस्त्र सब आयुध डारे। ६-५१-६

'मारना' का प्रयोग एकमात्र 'बाण' के साथ हुआ है :

दस दस बिसिख उर मांझ मारे। ३-२०
सत सर पुनि मारा उर माहीं। ६-८३-७
दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर। ६-५०
तब सत बान सारथी मारेसि। ६-६१-१

(५३) ६-८४ : 'जहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जज्ञ। राम बिरोध बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य।' कोदवराम में दोहे के तृतीय चरण का पाठ है 'बिजय चहत रघुपति बिमुख।' 'बिमुख' में उस विरोध की भावना पूर्णरूप से नहीं आती है जिसका यहाँ प्रसंग है।

(५४) ६-८५-८ : 'अस कहि अंगद मारा लाता।' कोदवराम में 'मारा' के स्थान पर पाठ है 'मारेउ'। 'लात मारना' अन्यत्र भी मिलता है, किंतु वहाँ रूप 'मारा' ही प्रयुक्त हुआ है :

हुमकि लात तकि कूबर मारा । २-१६३-४
तात लात रावन मोहि मारा । ६-६४-५

× (५५) ६-८५ : 'जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास । चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कैं आस ।' दोहे के पहले चरण का पाठ कोदवराम में है 'जगि बिधंस करि कुसल सब' । दोनों पाठ प्रासंगिक हैं । अंतर केवल शाब्दिक प्रतीत होता है ।

× (५६) ६-८७-४ : 'बहु कृपान तरवारि चमंकहिं । जनु दह दिसि दामिनी दमंकहिं ।' 'दह' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'दस' है । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं , यथाः

दह दिसि मुनिग्र सुमंगल बानीं । १-३४८-२
दह दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन । ६-६६-५
दस दिसि रहे बान नभ छाई । ६-७३-३
दस दिहि दाह होन अति लागा । ६-१०२ ६

× (५७) ६-८८ : 'खप्परन्हि खग्ग अलुज्झि जुज्झहि सुभट भटन्ह ढहावहीं ।' कोदवराम में 'भटन्ह ढहावहीं' के स्थान पर पाठ है 'सुरपुर पावहीं' । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं ।

*(५८ ६-८९-३ : 'तेजपुंज रथ दिब्य अनूपा । हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा । चंचल तुरग मनोहर चारी । अजर अमर मन सम गति कारी ।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली नहीं है । यह अर्द्धाली प्रसंग में आवश्यक नहीं है, और न इन घोड़ों की कहीं प्रसंग में आवश्यकता पड़ी है ।

(५९) ६-९० : 'राम बचन सुनि बिहँसा मोहिं सिखावत ज्ञान ।' कोदवराम में 'बिहंसा' के स्थान पर पाठ है 'बिहंसेउ' । इस प्रसंग में आगें भी रावण कर्त्ता के लिए क्रिया में पहले रूप का निर्वाह किया गया है :

कुलिस समान लाग छांड़ें सर । ६-९१-१

इसलिए पहला पाठ ही समीचीन लगता है ।

× (६०) ६-९१-४ : 'छांड़िसि तीव्र सक्ति खिसिआई । बान संग

प्रभु फेरि चलाई।' 'चलाई' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'पठाई'। दोनों पाठ संगत लगते हैं। ग्रंथ में दोनों प्रयुक्त भी हुए हैं।

(६१) ६-६४ : 'उमा बिभीषन रावनहिं सनमुख चितव कि काउ। सो अब भिरत काल ज्यों श्री रघुबीर प्रभाउ।' 'भिरत' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'भीरत'। दूसरे पाठ में छंद की गति सुधारने के लिए शब्द की जैसी विकृति की गई है, वह प्रयोगसम्मत नहीं है।

(६२) ६-६७ : 'तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप। काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ 'काटे भए बहोरि तेइ' है। 'तेइ'='वेही' का 'इ' प्रसंग में अनावश्यक है।

×(६३) ६-१०२ : 'खैंचि सरासन स्रवन लगि छांड़े सर इकतीस। रघुनायक सायक चले मानहुं काल फनीस।' कोदवराम में दोहे के प्रथम चरण का पाठ है 'आकरषेउ धनु कान लगि'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

×(६४) ६-१०४-३ : 'पतिगति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं बपुस संभारा। उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना।' प्रथम अर्द्धाली के दूसरे चरण का पाठ कोदवराम में है, 'छूटे चिकुर न चीर संभारा'। 'कच' और 'चिकुर' में कोई विशेष अंतर नहीं प्रतीत होता है, और 'बपुस' = 'शरीर' तथा 'चीर' = 'वस्त्र' दोनों प्रसंग में खप सकते हैं।

(६५) ६-१०८-६ : 'बेगि बिभीषन तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो।' कोदवराम में 'सिखायो' के स्थान पर पाठ है 'सिखाए', और 'मज्जन करवायो' के स्थान पर पाठ है 'सीतहिं अन्हवाए'। बिभीषण कर्त्ता के लिए एकवचन 'सिखायो' तथा 'सीतहिं' एकवचन कर्म के लिए 'अन्हवायो' एकवचन क्रिया ही समीचीन है, 'सिखाए' और 'अन्हवाए' बहुवचन क्रियाएँ नहीं।

*(६६) ६-१०९-३ : 'सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम निति सानी।' 'निति' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'नय'।

'निति' 'नीति' का विकृत रूप है; 'नय' उसका पर्याय है और अविकृत है।

×(६७) ६-११४-७ : 'रामाकार भए तिन्हके मन। मुक्त भए छूटे भवबंधन'। कोदवराम में दूसरे चरण का पाठ है 'गए परम पद तजि सरीर रन।' दोनों पाठ संगत हैं।

(६८) ६-११८-२ : 'नाना बरन देखि सब कीसा। पुनि पुनि हंसत कोसलधीसा।' 'सब' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'प्रभु' है। कर्त्ता 'कोसलाधीसा' है। दूसरे पाठ में इसलिए पुनरुक्ति सी प्रतीत होती है; पहले में यह त्रुटि नहीं है।

(६६) ६-११६-७ : 'सगुन होहिं सुंदर चहुं पासा। मन प्रसन्न निर्मल सुभ आसा। परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी।' कोदवराम में 'चलि' के स्थान पर 'बह' है। प्रसंग यहाँ पर राम के अवध-प्रस्थान के अवसर पर शुभ-सूचक शकुनों के होने का है। अत: 'त्रिबिध समीर' का 'चलि'='चली' कहना ही प्रसंगसम्मत है, 'बह'='बहती थी' कहना नहीं।

(७०) ६-११६ : 'जहं जहं कृपासिंधु बन बास कीन्ह बिस्राम। सकल दिखाए जानकिहिं कहे सबन्हि के नाम।' कोदवराम में यह दोहा नहीं है। सीता से वियुक्त होने के अनंतर सेतुबंध तक जहाँ-जहाँ राम ने विश्राम किया था, सीता को उन सब का दिखाना स्वाभाविक और प्रसंग की पूर्णता की दृष्टि से आवश्यक लगता है।

(७१) ६-१२०-६ : 'देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरन सोक हरिलोक निसेनी। पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिबिध ताप भवरोग नसावनि।' प्रथम अर्द्धाली के 'देखु' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'देखेउ' है। यहाँ सीता को राम दिखा रहे हैं, यह अर्द्धाली के 'पुनि देखु' से प्रकट है, न कि वे स्वत: देख रहे हैं। 'देखेउ' इसलिए यहाँ असंगत ।

१७०४ के अस्वीकृत पाठ

१७०४ के अस्वीकृत पाठों में से कुछ तो १७६२-१७२१ छक्कनलाल, रघुनाथदास, बंदन पाठक तथा कोदवराम के अस्वीकृत

पाठों में से हैं, और कुछ इनके अतिरिक्त हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाता है।

(१) ६-३-१ : 'जे रामेस्वर दरसन करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं।' १७०४ में 'मम लोक' के स्थान पर पाठ है 'हरि लोक'। यह कथन राम का है। राम अपनी भक्ति की शिवभक्ति से अभिन्नता प्रतिपादित कर रहे हैं :

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुं बास॥ ६-२

इसलिए 'मम' पाठ की समीचीनता प्रकट है। 'हरिलोक' पाठ से ध्वनि यह निकलती है कि 'हरि' राम से भिन्न हैं, जो ठीक नहीं है।

*(२) ६-५-५ : 'सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु कालगति त्यागी।' 'कुरितु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'अरितु'। तुलनीय प्रयोग का अभाव है। प्रसंग तरु-वर्ग के द्वारा राम के सत्कार का है, 'अऋतु'='बिना ऋतु' के भी फल-दान करने में सब तरु उस सत्कार में सम्मिलित हो जाते हैं, किंतु 'कुऋतु=' 'बुरी ऋतु' में भी फलदान करने में केवल उक्त ऋतु के पेड़ों को ही यह सौभाग्य प्राप्त होता है।

×(३) ६-८ : 'सब के बचन स्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि।' १७०४ में 'सब के बचन' के स्थान पर पाठ है 'बचन सबहिं के'। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(४) ६-६-१० : 'सीता देइ करहु पुनि प्रीती।' 'सीता' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सीतहि'। सीता को लौटाने का मत रावण को अनेक बार दिया गया है, किंतु सभी स्थानों पर पाठ 'सीता देइ' ही है, 'सीतहिं देइ' एक बार भी नहीं आया है :

सीता देहु राम कहुं अहित न होइ तुम्हार। ५-४०
सीता देइ मिलहु नत आवा काल तुम्हार। ५-५२
रामहिं सौंपहु जानकी नाइ कमलपद माथ। ६-६
देहु नाथ प्रभु कहं बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही। ५-४६-१

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं।

×(५) ६-१२ : 'कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास। तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास।' १७०४ में 'प्रिय' के स्थान पर पाठ है 'निज'। 'तव मूरति बिधु उर बसति' से 'प्रिय' की संगति प्रकट है। 'निज' का प्रयोग भी कभी कभी इसी प्रकार हुआ है :

जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं सो गति लहहीं। १-१५०-८

इसलिए 'निज' भी प्रयोग और प्रसंगसम्मत है।

(६) ६-१३-४ : 'लंका सिखर उपर अगारा। तहं दसकंधर देख अखारा।' 'उपर' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'रुचिर'। 'उपर' अव्यय के बिना अर्थ होता है : 'लंका शिखर ही रुचिर आगार है', जो अपेक्षित नहीं है।

*(७) ६-१५ : 'मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान।' १७०४ में 'सचराचर' के स्थान पर पाठ है 'चर अचर मय'। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

अग जगमय सब रहित बिरागी। १-१८५-७

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। ४-३

दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है।

(८) ६-१५ : 'अस बिचारि सुन प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ। प्रीति करहु रघुबीरहिं मम अहिवात न जाइ।' १७०४ में यह दोहा नहीं है। यह मंदोदरी के एक कथन में से है। यही तो उसके समस्त कथन का परिणाम है; इसके बिना उसका पूरा कथन निरर्थक हो जाता है, इसलिए प्रसंग की दृष्टि से यह दोहा अनिवार्य है।

(९) ६-१६-६ : 'जानेउं प्रिया तोरि चतुराई। येहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई।' १७०४ में 'कहहु' के स्थान पर पाठ 'कहिहि' है। 'कहिहि' का प्रयोग ग्रंथ भर में भविष्यत्काल में हुआ है, जो यहाँ पर संगत नहीं है; यथा:

गिरि जड़ सहज कहिहि सब लोगू। १-७१-५

जग भल कहिहि भाव सब काहू। १-२४६-५

काह कहिहि सुनि तुम्ह कहं लोगू। २-५०-७

'कहहु' वर्तमानकाल का है और संगत है।

(१०) ६-१६ : 'सहज असंक लंकपति सभा गएउ मदअंध।' १७०४ में 'लंकपति' के स्थान पर 'सु लंकपति' पाठ है। 'सु' निरर्थक है, यह प्रकट है।

(११) ६-१७-८ : 'सन' के स्थान पर १७०४ में विभक्ति 'सैं' है। ग्रंथ भर में 'सैं' कहीं प्रयुक्त नहीं है, और 'सन' प्रायः प्रयुक्त है, यथा :

सो मोसन कहि जात न कैसे। १७-१२
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। १-२६-५

(१२) ६-२० : 'प्रनतपाल रघुबंस मनि त्राहि त्राहि अब मोहिं। आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि।' १७०४ में तीसरे चरण का पाठ 'सुनतहिं आरत गिरा प्रभु' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं। किंतु दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१३) ६-२१ : 'अंधहु बधिर न कहहि अस स्रवन नयन तव बीस।' 'बधिर' के स्थान पर १७०४ में 'बहिर' तथा 'कहहिं' के स्थान पर पाठ 'कइह' है। 'बधिर' ही ग्रंथ भर में प्रयुक्त है, 'बहिर' नहीं :

अंध बधिर क्रोधी अति दीना। ३-५-८
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहिं अवसर रहा। ३-१६
रिपु दल बधिर भएउ सुनि सोरा। ६-६८-२
प्रभुता बधिर न काहि। ७-७१
गुर सिष अंध बधिर कर लेखा। ७ ६६-६

कर्त्ता 'अंध' और 'बधिर' हैं इसलिए क्रिया 'कहहिं' (बहुवचन) होनी चाहिए, 'कहइ' (एकवचन) सर्वथा अशुद्ध है।

(१४) ६-२२-६ : 'देखी नयन दूत रखवारी।' १७०४ में 'देखी' के स्थान पर पाठ है 'देखिउं'। 'देखिउं' ग्रंथ भर में अन्यत्र नहीं आया है, और 'देखी' प्रायः मिलता है, यथा :

रिषि मम महत सीलता देखी। ७-११३-४

इसलिए 'देखी' ही प्रयोगसम्मत है।

(१५) ६-२३-४ : 'जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समर अरूढ़ा।' 'बूढ़ा' के स्थान १७०४ में पाठ है 'मूढ़ा'। मूढ़ता और बुद्धिमत्ता का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है। 'समर आरूढ़ा' से वृद्धता और यौवन का ही संबंध हो सकता है, क्योंकि उसके लिए अपेक्षा शक्ति और सामर्थ्य की होती है। इसलिए पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत है।

*(१६) ६-२४-१२ : 'कहु रावन जग केते। मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते।' 'कहु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सुनु'। दूसरे चरण में भी 'सुनु' आता है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति अवश्य प्रतीत होती है; किंतु अंगद की अपनी जानकारी के अनुसार कई रावण गिनाकर यह पूछना कि 'उनमें से तू कौन सा रावण है?' जितना संगत लगता है, रावण से ही पूछकर कि 'कितने रावण हैं?' और बिना उत्तर पाए ही उन्हें गिनाने लगना उतना नहीं।

(१७) ६-२४ : 'एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की कांख। इन्ह महुं रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख।' 'इन्ह' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'तिन्ह'। अंगद ने कई रावण गिनाते हुए यह प्रश्न किया है, इसलिए 'इन्ह' की समीचीनता प्रकट है; 'तिन्ह' ठीक नहीं लगता है।

(१८) ६-२७-३ 'मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला। राम बैर होइहि अस हाला।' 'बृथा' के स्थान पर १७४४ में पाठ है 'मुधा'। 'मुधा' का प्रयोग 'मिथ्या' और 'बृथा' का प्रयोग 'अकारण' के ही अर्थों में हुआ है :

मुधा मान ममता मद बहहू। ६-३७-५

मुधा भेद जद्यपि कृत माया। ७-७८-८

बृथा मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बताई। १-२४६-१

सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना। ६-८-२

यहाँ पर प्रसंग 'बृथा' का ही है, और 'गाल बजाने' के साथ वही अन्यत्र प्रयुक्त भी हुआ है, इसलिए प्रसंग और प्रयोग दोनों की दृष्टियों से वही समीचीन है, 'मुधा' नहीं।

(१९) ६-३१ : 'अगुन अमान जानि तेहि पिता दीन्ह बनबास। सो दुख अरु जुबती बिरह पुनि निसिदिन मम त्रास।' 'जानि' के स्थान पर १७०४ में 'बिचारि' तथा 'निसिदिन' के स्थान पर 'अनुदिन' पाठ है। पूर्व की पंक्ति है : 'कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें। बल प्रताप बुधि तेज न ताकें।' पहला ही पाठ इस कथन के अनुरूप है : 'बिचारि' से 'बल प्रताप बुधि तेज न ताकें' की आवश्यक पुष्टि नहीं होती। 'अनुदिन' का अर्थ है 'नित्यशः', 'प्रतिदिन' और इसका प्रयोग उत्तरोत्तर बृद्धि या ह्रास के संबंध में ही प्रायः हुआ करता है। 'अनुदिन' केवल एक बार अन्यत्र आया है :

सीताराम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें। २-२०५-२

विवेचनीय स्थल पर इस प्रकार का कोई प्रसंग नहीं है। पहला पाठ ही प्रसंगसम्मत लगता है, क्योंकि प्रसंग 'निरंतर' का है : 'निरंतर तुम्हारे स्वामी को मेरा भय बना रहता है।'

(२०) ६-३३-६ : 'सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि कालबस खल मनुजादा।' 'खल' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'निसि'। 'निसि' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, और 'खल' की प्रासंगिकता प्रकट है; ऊपर की ही पंक्ति में वह आया है, और इस अंगद-रावण संवाद में भी कई बार आया है।

(२१) ६-३४-४ : 'गूलर फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम्ह जीव असंका।' १७०४ में 'तव' के स्थान पर पाठ 'येह' है। यद्यपि दोनों पाठ प्रसंग में खप जाते हैं, किंतु अगले चरण में आए हुए 'तुम्ह' के साथ 'तव' अधिक संगत और जोरदार लगता है।

(२२) ६-३५-१ : 'रिपु बल धरषि हरषि हिय बालितनय बलपुंज। पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज।' 'धरषि' के

स्थान पर १७०४ में पाठ है 'धरषित' । 'हरषि' के समान ही 'धरषि' का भी कर्त्ता 'बालितनय' है, 'रिपुबल' नहीं । इसलिए 'हरषि' के समान 'धरषि' पाठ ही समीचीन लगता है, 'धरषित' नहीं।

*(२३) ६-३६-८ : 'पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु।' 'जनि' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'मति'। ऊपर की पंक्ति में 'जनि' आया है, 'अब पति वृथा गाल जनि मारहु', इसलिए दूसरे पाठ में वह पुनरुक्ति नहीं है जो पहले पाठ में है। 'जनि' की भाँति 'मति' भी प्रयोगसम्मत है, यथा :

अस विचारि सोचहि मति माता । सो न टरै जो रचै बिधाता । १-६८-६

(२४) ६-३७ : 'दुइ सुत मरेउ दहेउ पुर अजहुं पूर पिय देहु। कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जस लेहु।' १७०४ में 'मरे' के स्थान पर पाठ 'मारे' तथा 'रघुनाथ' के स्थान पर पाठ 'रघुपतिहि' है। 'दुइ सुत मरे' उसी प्रकार समीचीन है जिस प्रकार 'पुर दहेउ'—अंतर केवल वचन का है। 'मारे' पाठ मानने पर उसका कर्त्ता कोई नहीं रह जाता है; 'दहेउ' का अर्थ 'जल गया' के स्थान पर 'जला दिया' लेकर यदि यह कहा जावे कि उसका कर्त्ता भी वही है जो 'दहेउ' का है, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि पुर का दाह तो हनुमान ने किया था, पर हनुमान ने वध रावण के केवल एक पुत्र अक्षय कुमार का किया था। दूसरे पाठ में दोनों पाठ भेद प्रयोगसम्मत लगते हैं। 'रघुनाथ'—अथवा विभक्तिहीन—पाठ जिस प्रकार प्रयोगसम्मत है :

भजि रघुपति करु हित आपना । ६-५६-५

पाई न गति केहि पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना । ७-१३०

'रघुपतिहि'—अर्थात् विभक्तियुक्त—पाठ भी उसी प्रकार प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है :

परिहरि सकल भरोस रामहिं भजहि ते चतुर नर । ३-६

सब भरोस तजि जो भजि रामहि । ७-१०३-६

×(२५) ६-४२-३ : 'चले निसाचर निकर पराई।' १७०४ में 'निसाचर' के स्थान पर पाठ है 'तमीचर'। अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

(२६) ६-४३-३ : 'निज दल बिचल सुना हनुमाना ।' १७०४ में 'सुना' के स्थान पर पाठ है 'सुनी' । 'दल' सर्वत्र पुल्लिंग है, इसलिए उस कर्म की क्रिया भी पुल्लिंग होनी चाहिए—स्त्रीलिंग नहीं ।

(२७) ६-४७-४ : 'ज्ञान उदय जिमि संसय जाहीं ।' 'संसय' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सब दुख' । ज्ञान से 'संसय' का नाश ही अधिक समीचीन है, 'सब दुख' का नहीं । 'प्रकाश' और 'ज्ञान' की तुलना के समान 'तम' और 'संशय' की तुलना भी 'तम' और 'सब दुख' की तुलना की अपेक्षा अधिक जँचती है ।

(२८) ६-४७-५ : 'भालु बलीमुख पाइ प्रकासा । धाए हरषि बिगत स्रम त्रासा ।' 'हरषि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'कोपि' । 'श्रम' और 'त्रास' से मुक्त होने पर हर्षित होना जितना युक्तियुक्त लगता है, 'कोपि' उतना नहीं ।

(२९) ६-४८-३ : 'इहां दसानन सचिव हंकारे । सब सन कहेसि सुभट जे मारे ।' १७०४ में 'सचिव' के स्थान पर पाठ है 'सुभट' । 'सुभट' तो दूसरे चरण में आता ही है, प्रसंग में 'सचिव' ही समीचीन लगता है, क्योंकि रावण के कथन के उत्तर में माल्यवंत बाद की पंक्तियों में बोला है, और वहाँ माल्यवंत को 'अति जरठ निसाचर' तथा 'रावनु मातुपिता मंत्री बर' कहा गया है ।

× (३०) ६-४९-४ : 'तेहिं अपने मन अस अनुमाना । बध्यो चहत येहि कृपानिधाना ।' 'कृपानिधाना' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'श्री भगवाना' । अंतर केवल शाब्दिक प्रतीत होता है; प्रसंग से इसका कोई संबंध नहीं है ।

(३१) ६-५१-७ : 'अस्त्रसस्त्र सब आयुध डारे । कौतुक ही प्रभु काटि निवारे । देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना । करैं लाग माया बिधि नाना ।' 'प्रताप' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'प्रभाउ' है । प्रसंग से प्रकट है कि पाठ 'प्रताप'='विक्रम' ही होना चाहिए, 'प्रभाउ' नहीं ।

(३२) ६-५८-१ : 'कपि तव दरस भइउं निःपापा । मिटा तात मुनिबर कर स्रापा । मुनि न होइ यह निसिचर घोरा । मानेहु सत्य बचन कपि मोरा ।' 'कपि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'प्रभु' । पहले

'कपि' और 'तात' मकरी कह चुकी है, और 'प्रभु' कहने का कोई कारण भी नहीं समझ पड़ता है, 'प्रभु' इसलिए अयुक्तियुक्त प्रतीत होता है।

×(३३) ६-६०-२ : 'कपि सब चरित समास बखाने।' 'समास' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'संछेप'। दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

तातें मैं संछेप बखानी। १-६५-४
मैं संछेप कहउं यह नीती। ७-१२१-८

कहेउं नाथ हरिचरित अनूपा। व्यास समास स्वमति अनुरूपा। ७-१२१-१

अर्थ.में दोनों पाठों में कोई विशेष अंतर नहीं है, और प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(३४) ६-६१-११ : 'जैहों अवध कवन मुंह लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गंवाई।' मुंह लाई' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'मुख-लाई'। 'मुंह लाई' अधिक प्रयोगसम्मत है, क्योंकि अन्यत्र भी वही आया है, यथा :

जमगन मुंह मसि जग जमुना सी। १-३१-११
असि बुधि तौ बिधि मुंह मसि लाई। १-२६६-८

(३५) ६-६२-८ : 'कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई।' 'कहु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सुनु'। दूसरे चरण में ही 'बूझा' का कर्मभूत प्रश्न आया है, इसलिए 'कहु' की समीचीनता प्रकट है। 'सुनु' प्रसंग में ठीक नहीं जान पड़ता है।

×(३६) ६-६३-७ : 'अब भरि अंकु भेटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई।' 'मैं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'निज'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, अंतर शाब्दिक ही है।

*(३७) ६-६५-१ : 'बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आएउ जहं त्रैलोक बिभूषन।' 'चला' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'फिरा'। इसके पूर्व यद्यपि इस बात का उल्लेख नहीं है कि विभीषण राम के पास से उठकर कुंभकर्ण से मिलने गया था; किंतु वह रामपक्ष से ही तो कुंभकर्ण से मिलनें गया था। इसलिए यहाँ पर 'फिरा' पाठ जितना संगत लगता है, उतना 'चला' नहीं।

(३८) ६-६७-२ : 'मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे।' 'सब' के

स्थान पर १७०४ में पाठ 'रन' है। पहले पाठ क संगति प्रकट है। 'मुरे सुभट रन' का तो अर्थ होगा कि 'योद्धा युद्धस्थल की ओर दौड़ पड़े', जो अपेक्षित से विपरीत अर्थ है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(३९) ६-६७-७ : 'बिडारी' के स्थान पर पाठ है 'बितारी'। 'बितारी' अर्थहीन है। 'बिडारी' का ही पाठ-प्रमाद या लिपि-प्रमाद से 'बितारी' हुआ प्रतीत होता है। तुलनीय प्रयोग नहीं है।

×(४०) ६-६८-७ : 'जलद' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बनद'। दोनों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता हैं।

(४१) ६-७१-३ : 'बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ। सरन्हि भरा मुख सनमुख धावा। कालत्रोन सजीव जनु आवा।' 'मुख सनमुख' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सनमुख सो'। स्वतः कुंभकर्ण को 'सरन्हि भरा' कहना युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता, उसके मुख को ही 'सरन्हि भरा' कहना ठीक होगा। इसलिए पहले पाठ की समीचीनता प्रकट है, दूसरा त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है।

(४२) ६-७२ : 'रघुपति चरन नाइ सिर चलेउ तुरंत अनत। अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत।' 'सुभट' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'रिषभ'। 'रिषभ' संभवतः जामवंत के लिए आया है, किंतु अन्यत्र कहीं भी इसका प्रयोग नहीं मिलता, इसलिए इसका प्रयोगसम्मत होना संदेहपूर्ण है। 'सुभट' 'हनुमंत' का विशेषण है, और स्पष्ट ही प्रसंगसम्मत है; प्रयोगसम्मत तो वह है ही।

(४३) ६-७६-१ : 'जाइ कपिन्ह देखा सो बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा।' १७०४ में यह अर्द्धाली नहीं है। आगे की अर्द्धाली में न उठने का उल्लेख किया गया है :

कीन्ह कपिन्ह सब जज्ञ बिधंसा। जब न उठै तब करहिं प्रसंसा।

इसलिए मेघनाद का पहले से बैठे होने का उल्लेख आवश्यक है, और विवेचनीय अर्द्धाली प्रसंग में अनिवार्य है।

(४४) ६-७८-१ : 'तिन्हहिं ज्ञान उपदेसा रावन। आपुन मंद

कथा अति पावन।' 'अति पावन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सुभ भावन'। प्रसंग से यह प्रकट है कि 'मंद' का विपरीत अर्थवाची शब्द ही सम्मत है। 'मद'='पापाचारी' भी तुलना के लिए 'अति पावन'='अत्यंत पुनीत' ही ठीक है, 'सुभ भावन'='कल्याण जिसे अच्छा लगता हो' नहीं।

(४५) ६-८१-३ : 'उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं।' 'उपारहिं' तथा 'डारहिं' के स्थान पर १७०४ में 'उपाटहिं' तथा 'डाटहिं' पाठ है। 'उपाटहिं' तो निरर्थक है, और 'डाटहिं' उसके तुक के लिए ही आया जान पड़ता है, अन्यथा पृथ्वी पर पटक देने के अनंतर 'डाटना' नासमझी ही लगती है। 'उपारना'='उखाड़ना' और 'डारना'='फेंक देना' की संगति प्रकट है।

(४६) ६-८१-७ : 'निसिचर भट बहु गाड़हिं भालू। ऊपर डारि देहिं बहु बालू।' १७०४ में 'डारि' के स्थान पर पाठ है 'टारि'। शव गाड़ने के बाद ऊपर से मिट्टी डाली ही जाती है, हटाई नहीं जाती। इसलिए 'डारि' ही संगत है, 'टारि' नहीं।

(४७) ६-८२-४ : 'चला न अचल रहा रथ रोपी।' 'रहा' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'महा'। 'रथ रोपि अचल रहा' की संगति तो प्रकट है। किंतु 'महा रथ' न तो अन्यत्र कहीं आया है, और न 'महा रथ' पाठ होने पर रावण को स्वभावतः 'अचल' मानना ही समीचीन कहा जा सकता है।

(४८) ६-६० : 'राम बचन सुनि बिहंसा मोहिं सिखावत ज्ञान। बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान।' 'डरे' के स्थान पर पाठ है 'डरेहु'। मध्यम पुरुष के लिए दो में से कोई रूप ग्रंथ में नहीं मिलता। अर्थ में दोनों में कोई अंतर नहीं है।

*(४६) ६-६३-४ : दंड एक रथ देखि न परेऊ। जनु निहार महं दिनकर दुरेऊ।' १७०४ में 'परेऊ' के स्थान पर पाठ 'परा', 'दुरेऊ' के स्थान पर पाठ 'दुरा' और 'दिनकर' के स्थान पर पाठ 'दिनमनि' है। 'रथ' जैसे निर्जीव पदार्थ के लिए 'परेऊ' की अपेक्षा 'परा' अधिक उपयुक्त पाठ लगता है। 'परा' के तुक के लिए

'दुरा' पाठ आवश्यक है, 'दिनकर' और 'दिनमनि' दोनों प्रयोग-सम्मत हैं :

यह रहस्य काहू नहिं जाना । दिनमनि चले करत गुन गाना । १-१९६-१
हरन मोह तब दिनकर कर से । १-३३-१०

(५०) ६-९९ : 'काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान । तब रावनहिं हृदय महुं मरिहहिं राम सुजान ।' 'रावनहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'रावन कहुं' । 'मारना' के साथ 'कहुं' का प्रयोग कहीं नहीं मिलता, 'हिं' अंत्य रूप ही मिलता है, यथा:

बालि हतेसि मोहिं मारिहि आई । ४-६-८
मास दिवस बीते मोहिं मारिहि निसिचर पोच । ५-११

(५१) ६-१००-३ : 'निसिहिं ससिहि निंदति बहु भांती । जुग सम भई सिराति न राती ।' १७०४ में 'सिराति न राती' के स्थान पर पाठ 'बिहाति न राती' है । यद्यपि 'बिहाना' का प्रयोग मिलता है, किंतु 'न' के साथ नहीं । 'सिराना' का प्रयोग दोनों प्रकार से मिलता है :

येहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी । २-१५५-८
सोचत भरतहिं रैन बिहानी । २-२५३-७
रूप रासि गुन कहि न सिराई । १-१९३-८
भइ जुग सरिस सिराति न राती । २-१५५-३
निसा सिरानि भएउ भिनुसारा । ६-७८-३
रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी । ६-२२६-२

इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है ।

(५२) ६-१०७-४ : 'बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्हीं । जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही ।' 'पुनि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'तिन्ह' । 'तिन्ह' प्रथम चरण में आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है ।

(५३) ६-११६-७ : 'सब बिधि नाथ मोहिं अपनाइअ । पुनि मोहिं सहित अवध पुर जाइअ ।' 'पुर' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'प्रभु' । 'नाथ' पूर्व वाले चरण में है ही, इसलिए 'प्रभु' में अनावश्यक पुनरुक्ति है । 'पुनि' = 'तदनंतर' की संगति प्रकट है ।

(५४) ६-११६ : 'बीते अवधि जाउं जौं जिअत न पावौं बीर। प्रीति भरत कै समुझि प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर।' पहले चरण का पाठ १७०४ में है 'जो जैहौं बीते अवधि'। मुख्य वाक्य की क्रिया वर्तमान काल 'पावौं' के अनुरूप ही पहले उपवाक्य की क्रिया होनी चाहिए। इसलिए 'जाउं' वर्तमान का ही रूप समीचीन है, 'जैहौं' भविष्य का नहीं।

*(५५) ६-११६-२ : 'जहं जहं कृपासिंधु बन कीन्ह बास बिस्राम। सकल देखाए जानकिहिं कहे सबन्हि के नाम।' 'कृपासिंधु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'करुनासिंधु'। यह अंतर शाब्दिक ही है, अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(५६) ६-१२१-६ : 'इहां निषाद सुना प्रभु आए।' 'प्रभु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'हरि'। प्रभु ऊपर वाली अर्द्धाली में अवश्य आया हुआ है, और उसी प्रकार वह बाद वाली अर्द्धाली में भी आया हुआ है। इसलिए प्रथम पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है। किंतु निषाद के आत्मीयता पूर्ण संबंध के कारण 'प्रभु' शब्द जितना समीचीन लगता है, 'हरि' उतना नहीं।

उत्तर कांड

१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

१७०४ के कुछ पाठ ऐसे हैं जो विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते, कुछ अन्य प्रतियों—जैसे सं० १८६३ की एक प्रति में—मिलते हैं, और अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। १७०४ की प्रति में, जैसा ऊपर बताया जा चुका है, पूर्व का प्रायः आधा अंश तो प्राचीन है, किंतु शेष नवीन है। नीचे के पाठभेद प्रति के उक्त पूर्वार्द्ध से ही संबंध रखते हैं,। उत्तरार्द्ध में इस प्रकार के कोई पाठभेद नहीं हैं जिनमें पाठसुधार प्रतीत होता हो। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

(१) ७-२-४ : 'जासु बिरह सोचहु दिनु राती। रटहु निरंतर गुनगन पांती। रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आएहु कुसल देव मुनि त्राता।' 'सुजन सुखदाता' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सो जन सुखदाता'। 'जासु' संबंधवाचक सर्वनाम ऊपर वाली अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए यहाँ 'सो' का प्रयोग अधिक समीचीन लगता है। अन्यथा 'सुजन सुखदाता' और 'जन सुखदाता' दोनों प्रसंग में खप जाते हैं।

(२) ७-२-५ : 'रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत।' 'प्रभु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'पुर'। ऊपर की अर्द्धाली में 'रघुकुलतिलक' कर्त्ता आ चुका है, इसलिए 'प्रभु' आवश्यक नहीं लगता है। प्रसंग में 'प्रभु' और 'पुर' दोनों खप जाते हैं।

×(३) ७-२१-२ : 'चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।' 'नीती' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'रीती'। दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

निज निज धरम निरत श्रुति रीती। ३-१५-६

सिव राखी श्रुति नीतिं अरु मैं नहिं पाव कलेस। ७-१०-८

और प्रसंग में भी दोनों खप जाते हैं।

(४) ७-३३ : 'कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ।'

१७०४ में 'सद्ग्रंथ' के स्थान पर पाठ है 'सब ग्रंथ'। तुलनीय स्थल निम्नलिखित हैं :

सद ग्रंथ पर्वत कंदरन्हि महं जाइ तेहि अवसर दुरे। १-८४
कलिमल ग्रसे धरम सब गुप्त भए सदग्रंथ। ७-६७
तव प्रेरित माया उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथन्हि गाए। ५-५६-३
बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुरदुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा। ७-४३-७
स्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं। ७-१२१-१४

जैसा ऊपर उद्धृत तीसरे और बाद के प्रयोगों से ज्ञात पड़ेगा, दूसरा पाठ कदाचित् अधिक प्रयोगसम्मत है— जिसमें 'ग्रंथ' का प्रयोग 'कहना' और 'गाना' क्रियाओं के साथ हुआ है।

(५) ७-३७ : 'अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड।' 'घनहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'घनन्हि। अंतर दोनों में एक-वचन और बहुवचन का है। तुलनीय प्रयोग 'पीटना' क्रिया के नहीं मिलते। 'मारना' के मिलते हैं, किंतु बहुवचन में ही :

कीन्हे ब्याकुल भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि। ६-४२
चोंचन्ह मारि बिदारेसि देही। ३-२६-२०
मुठिकन्ह लातन्ह दांतन्ह काटहिं। ६-५३-५
सरन्हि मारि कपि घायल कीन्हे। ६-६८-१०
सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन। ६-७३-६
चहुं दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तनु ब्याकुल कियो।६-१००

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(६) ७-४५-४ : 'ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुं टेका। करत कष्ट बहु पावै कोऊ। भक्तिहीन मोहिं प्रिय नहिं सोऊ।' अंतिम चरण का पाठ १७०४ में है 'भक्तिहीन प्रिय मोहिं न सोऊ'। दोनों पाठों में स्थान-भेद के कारण अंतर 'मोहिं' और 'प्रिय' की प्रमुखता का है। समस्या प्रिय होने न होने की है—राम के समक्ष होने न होने की नहीं। इसलिए 'प्रिय' का 'मोहिं' से पूर्व आना अधिक संगत लगता है।

×(७) ७-४८-२ : 'पादोदक' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'चरनोदक' है। दोनो पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

(८) ७-५१-८ : 'हनूमान सम नहिं बड़ भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी।' 'सम नहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'समान'। 'नहिं' दूसरे चरण में भी आता है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है। दूसरा पाठ इस दृष्टि से अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

(९) ७-७२-६ : 'निर्मम निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा। इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सनमुख तम कबहुं कि जाहीं।' 'निर्मम' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'निर्मल' है। 'निर्मोहा' और 'निरजंन' के साथ उसके सजातीय 'निर्मम' की संगति प्रसंग में प्रकट है। 'निर्मल' इस प्रसंग में उतना संगत नहीं लगता है।

(१०) ७-८१-८ : 'प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखौं बाल बिनोद अपारा।' 'अपारा' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'उदारा' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार। ६-११५
सो सच्चिदानंदघन कर नर चरित उदार। ७-२५
बाल चरित पुनि कहहु उदारा। १-११०-५
कहं रघुपति के चरित अपारा। १-१२-१०
बन बसि कीन्हे चरित अपारा। १-११०-७
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा। १-२०४-४

किंतु यह चरित्र 'देखौं' का कर्म होकर यहाँ आया है, इसलिए इसके लिए अपारा' की अपेक्षा 'उदारा' विशेषण अधिक संगत लगता है।

कोदवराम के स्वीकृत पाठभेद

कोदवराम में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि १७२१, १७६२ छक्कनलाल, रघुनाथदास तथा बंदन पाठक में नहीं मिलते, १७०४ तथा कुछ अन्य प्रतियों—जैसे सं० १८९३ की प्रति—में मिलते हैं, और उक्त अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

(१) ७-४-४ : 'अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ।' कोदवराम में पाठ है : 'अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ'। 'पुरी' दो अर्द्धाली ऊपर तथा बादवाली ही अर्द्धाली में पुनः आता है :

पावन पुरी रुचिर येह देसा। ७-४-२

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। ७-४-५

इसलिए प्रथम पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है। अर्थ में दोनों के कोई अंतर नहीं है।

(२) ७-१० : 'तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुना चलेउ हरपाइ। रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत संवारे जाइ।' 'हरषाइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सिर नाइ'। तुलनीय स्थल निम्नलिखित हैं :

पाइ रजायेसु नाइ सिरु रथु अति वेग बनाइ।
गएउ जहां बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ॥ २-८२

रामलखन सियपद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गंवाई। २-६६-८

इनके ध्यान से दूसरा पाठ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

(३) ७-११-८ : 'अंग अनंग देखि अति लाजे।' कोदवराम में पाठ है : 'अंग अनंग कोटि छबि छाजे।' पहले पाठ में 'अनंग' का विशेषण 'सत' विशेष्य से इतना दूर जा पड़ा है कि दूरान्वय दोप प्रतीत होता है। दूसरे पाठ में यह दोष नहीं है। दूसरे पाठ में आई हुई उक्ति अन्यत्र भी मिलती है :

राम काम सत कोटि सुभग तन। ७-६१-७

(४) ७-१२ छं० : 'नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई।' 'सुर' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'मुनि'। 'मुनि मन मोहई', तो ग्रंथ में प्रायः मिलता है, किंतु 'सुर मन मोहई' कहीं नहीं मिलता : •

नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहइ। २-१६६-३

बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं। १-६४

नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं। ५-६

छत्र अषयबट मुनि मन मोहा। २-१०५-७

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

×(५) ७-४०-८: 'बिप्रदोह परद्रोह बिसेषा।' कोदवराम में 'परद्रोह' के स्थान पर पाठ है 'सुरद्रोह'। 'परद्रोही' ऊपर आ चुका है:

परद्रोही परदाररत परधन पर अपबाद। ७-३६

करहिं मोहबस द्रोह परावा। ७-४०-६

इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है; दूसरा पाठ इससे मुक्त है और संगति भी लग जाती है, यद्यपि तुलनात्मक प्रयोग का अभाव है।

(६) ७-६०-२: 'तब खगपति बिरंचि पहुं गएऊ। निज संदेह सुनावत भएऊ। सुनि बिरंचि रामहिं सिरु नावा। समुझि प्रताप प्रेम अति छावा।' 'अति' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'उर'। 'प्रेम' कहाँ पर 'छाया'? इसका उत्तर पहले पाठ में नहीं है इस लिए वह अपूर्ण-सा है। दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है।

×(७) ७-६६-३: 'नाथ कृपा तब दरसन भएऊ। तव प्रसाद सब संसय गएऊ।' 'सब' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मम'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं; दोनों में वास्तविक अंतर नहीं ज्ञात होता है।

×(८) ७-७२-३: 'सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिज्ञान रूप बलधामा।' 'बलधामा' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'गुनधामा' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, और दोनों पाठ प्रयोगसम्मत भी हैं, यथा:

अतुलित भुजप्रताप बलधामा। ३-११-१५

आगे चले सील गुनधामा। ७-६-८

(९) ७-७७-६: 'मोहिं सन करहिं बिबिध बिधि क्रीड़ा। बरनत मोहिं होति अति ब्रीड़ा।' दूसरे चरण का पाठ कोदवराम में है: 'बरनत चरित होति मोहिं ब्रीड़ा।' 'बरनत' के लिए कर्म प्रथम पाठ में 'क्रीड़ा' प्रथम चरण से लाना पड़ता है, जो कुछ खटकता है। दूसरे में यह त्रुटि नहीं है। शेष अंतर सामान्य है।

(१०) ७-७६-८ : 'तहं भुज हरि देखौं निज पासा ।' कोदवराम में 'भुज हरि' के स्थान पर है 'हरि भुज'। दूसरे पाठ में अन्वय का वह दोष नहीं है जो प्रथम में है, यह प्रकट है।

(११) ७-८२-४ : 'देखौं जनम महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई।' 'देखौं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'देखेउं' बाद में भी 'देखेउं' रूप ही मिलता है :

राम उदर देखेउं जग नाना। देखत बन न जाइ बखाना।
तहं पुनि देखेउं राम सुजाना। मायापति दयाल भगवाना। ७ ८२-६

इसलिए 'देखेउं' रूप 'देखौं' की अपेक्षा अधिक समीचीन लगता है।

(१२) ७-६०-६ : 'मुधा वचन नहिं ईस्वर कहई।' 'मुधा' स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मृषा'। 'मृषा' का प्रयोग 'भ्रमपूर्ण असत्य' के आशय में हुआ है :

तेहि कहं पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद वहहू। ६-३७-५
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया। ७-७८ ८

'बचन' के प्रसंग में मृषा'='झूठ' का ही प्रयोग मिलता है, और शिव के वचन के प्रसंग में भी वह मिलता है :

संभु गिरा पुनि मृषा न होई। १-५१-३
पुनि पति बचन मृषा करि जाना। १-५६-२
सोइ हम करब न आन कछु बचन मृषा हमार। १-१३२
होइ न मृषा देवरिसि भाषा। ७-६८-४

इसलिए 'मृषा' निश्चय ही अधिक प्रयोगसम्मत है।

(१३) ७-१०१-३ : 'देव न बरषै धरनि पर बए न जामहिं धान। कोदवराम में 'बरषै' के स्थान पर पाठ है 'बरषहिं'। 'देव' के साथ आदरात्मक बहुबचन 'बरषहिं' कुछ अधिक समीचीन लगता है।

(१४) ७-१०८-५ : 'चलत्कुण्डलं भ्रू सुनेत्रं विशालं।' 'भ्रू सुनेत्रं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'है 'शुभ्रनेत्रं'। पहले पाठ में 'भ्रू' विधेयहीन है, दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

×(१५) ७-१०६-५ : 'छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहिं

प्रिय जथा खरारी।' 'मोहिं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मम'। दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

सब मम प्रिय सब मन उपजाए। सब तें अधिक मनुज मोहिं भाए। ७-८६-४
सभ जीवहु सम प्रिय मोहिं सोई। ७-८६-६
मोहिं प्रानप्रिय अस मम बानी। ७-८६-१०
सर्बभाव भज कपट तजि मोहिं परम प्रिय सोइ। ७ ८७ १
सत्य कहौं खग तोहि सुचि सेवक मम प्रान प्रिय। ७-८७-२

(१६) ७-११२-५ : 'भव कि परहिं परमात्मा बिंदक।' 'परमात्मा' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'परमातम'। छंद की गति की दृष्टि से दूसरा अधिक ठीक लगता है; अन्यथा दोनों में कोई अंतर नहीं है।

×(१७) ७-११४-४ : 'जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।' 'हरि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'प्रभु' है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं, और प्रयोगसम्मत भी दोनों ही हैं, क्योंकि ग्रंथ भर में प्रयुक्त हुए हैं।

(१८) ७-११५ : 'सोउ मुनि ज्ञाननिधान मृगनयनी बिधुमुख निरखि। बिबस होहि हरिजान नारि बिस्वमाया प्रगट।' 'बिबस' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बिकल'। 'बिबस' ग्रंथ भर में समासों ही में मिलता है, यथा : 'प्रेमबिबस', 'मायाबिबस', 'नारि-बिबस'; अकेला नहीं मिलता। 'बिकल' के संबंध में यह बात नहीं है। अन्यथा प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(१९) ७-११६ : 'यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानै कोय। जो जानै रघुपति कृपा सपनेहुं मोह न होय।' 'जो जानै' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जाने ते'। पहले और दूसरे चरणों में यह कहने के अनंतर कि 'तत्काल राम के इस रहस्य को कोई नहीं जान सकता', मुख्य समस्या 'तत्काल ज्ञान' की रहती है, व्यक्तित्व की नहीं। इसलिए पहला पाठ उतना संगत नहीं लगता है जितना दूसरा।

×(२०) ७-१२१ : 'नेम धरम आचार तप ज्ञान जग्य जप दान। भेषज पुनि कोटिक नहिं रोग जाहिं हरिजान।' 'ज्ञान' के स्थान

पर कोदवराम में पाठ है 'जोग'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं और प्रयोग सम्मत भी हैं।

(२१) ७-१२२-८ : 'येहि विधि भलेहिं रोग नसाहीं। नांहि त कोटि जतन नहिं जाहीं।' 'रोग' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कुरोग'। प्रसंग मानस-रोगों का है, जिनके लिए दोनों शब्द व्यवहृत हुए हैं :

भेषज पुनि कोटिक नहीं रोग जाहिं हरिजान।

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहं लगि कहौं कुरोग अनेका। ७-१२१-३

इसलिए दोनों पाठ प्रयोग और प्रसंगसम्मत हैं। केवल दूसरे पाठ में छंद की गति अपेक्षाकृत निर्दोष है।

×(२२) ७-१२७-५ : 'धन्य देस सो जहं सुरसरी।' कोदवराम में पाठ है : 'धन्य सो देस जहां सुरसरी'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही जान पड़ता है।

×(२३) ७-१२८ : 'रामचरन रति जो चह अथवा पद निर्बान। भाव सहित सो यह कथा करौ स्रवन पुट पान।' कादवराम में 'चह' के स्थान पर पाठ है 'चहै' और 'करौ' के स्थान पर पाठ 'करै' है। 'चह' और 'करौ' में एकरूपता नहीं है: एक क्रिया का सामान्य रूप है, और दूसरा विधि रूप। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

×(२४) ७-१३० : 'दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरैं।' 'कोदवराम में 'रघुबर' के स्थान पर पाठ 'रघुपति' है। दोनों में अंतर शाब्दिक ही है। यह अवश्य है कि अयोध्या कांड के बाद ग्रंथ भर में 'रघुबर' एकाध ही बार आया है, सामान्यतः 'रघुपति' ही आया है।

. बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि कोदवराम तथा १७०४ में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते, और अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। इन पर क्रमशः विचार किया जाता है।

(१) ७-२-५ : 'सीता सहित अनुज प्रभु आवत।' 'सहित अनुज' के स्थान पर बंदन पाठक में 'अनुज सहित' पाठ है। अन्वय की दृष्टि से दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक समीचीन लगता है।

×(२) ७-६३-१ : 'गएउ गरुड़ जहं बसइ भुसुंडा। मति अकुंठ हरि भगति अखंडा।' 'भुसुंडा' के स्थान पर बंदन पाठक में 'भुसुंडी' तथा 'अखंडा' के स्थान पर 'अखंडी' पाठ है। यद्यपि 'अखंडी' अन्यत्र कहीं प्रयुक्त नहीं है, और स्त्रीलिंग में भी 'अखंडा' ही का प्रयोग एक स्थान पर मिलता है :

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। ७ ११७-२

किंतु फिर भी यह उतना नहीं खटकता जितना 'भुसुंडी' को 'भुसुंडा' कहना। 'भुसुंडा' रूप ग्रंथ भर में कहीं नहीं आया है। 'भुशुंडि' का 'भुसुंडी' ही हो सकता है, 'भुसुंडा' केवल 'अखंडा' के तुक के कारण किया हुआ ज्ञात होता है।

(३) ७-१०७ : 'बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर मति-मोरि।' 'स्वर' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'गिरा' है। 'गदगद गिरा' के तुलनीय प्रयोग यह हैं :

बोले मुनिबर नाइ सिर गदगद गिरा गंभीर। १-२१५
गदगद गिरा नयन बह नीरा। ३-१६-११
पुलकित तन गदगद गिरा बिनय करत त्रिपुरारि। ६ ११४
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर। ७-१३

'गदगद स्वर' कहीं नहीं मिलता। इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोग-सम्मत लगता है।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि बंदन पाठक, कोदवराम तथा १७०४ में मिलते हैं, और विवेचनीय अन्य प्रतियों में नहीं मिलते, अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। इन पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) ७-६-७ : 'छन महिं सबहिं मिले भगवाना।' 'छन महिं' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'छन महुं'। 'छन महिं' ग्रंथ में

कहीं नहीं आया है; 'महिं' केवल एकाध स्थल पर ग्रंथ भर में आया है और स्त्रीलिंग प्रतीत होता है :

जितिहहिं राम ना संसय या महिं। ६-५७-५

'छन महुं' अनेक बार प्रयुक्त हुआ है, यथा :

करिं उपाय रिपु मारे छन महुं कृपानिधान। ३-२०
छन महुं सकल कटक उन्ह मारा। ३-२१-११
छन महं प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच। ६ ६८
प्रभु छन महुं माया सब काटी। ६ ६७ १

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(२) ७-७-२ : 'देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता।' 'होइ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'होउ'। कामनावाची रूप 'होउ' सामान्य रूप 'होइ' की अपेक्षा अधिक समीचीन प्रतीत होता है। यथा :

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। १-१६५-१
ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी। १-२२३-८
संबत मध्य नास तब होऊ। १-१७४-३
नित नव प्रेम रामपद होऊ। ७-११४-३

×(३) ७-१०-४ : 'गुरु बसिष्ठ द्विज लिए बुलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई।' 'समुदाई' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सुभदाई'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं। तुलनीय प्रयोगों का अभाव है।

(४) ७-२७ : 'चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ। रामचरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चुराइ।' दोहे के तीसरे तथा चौथे चरणों का पाठ रघुनाथदास में है 'रामचरित जे निरखत मुनिमन लेहिं चुराइ।' अर्थों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं प्रतीत होता है, किंतु पहले पाठ में एक शैथिल्य प्रतीत होता है, जो दूसरे में नहीं है।

(५) ७-३३-८ : 'बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होइ भवभंगा।' 'पाइब' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'पाइअ' है। 'पाइब' अन्यत्र नहीं आया है; 'पाने' के अर्थ में 'पाइबे' अवश्य आया है :

सुगम उपाइ पाइबे केरे। ७-१२०-१२

किंतु 'पाइब' से 'पाना' अर्थ लेने पर वाक्य की संगति नहीं लगती। 'पाइअ' का प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है, और 'पाते हैं' के अर्थ में :

सुनत स्रवन पाइअ बिस्रामा। १-३५-७

बेगि न पाइअ मर्म। ३-३६

इसलिए दूसरा पाठ अधिक संगत ज्ञात होता है।

(६) ७-३४-४ : 'जय इंदिरा रमन जय भूधर। अति अनुपम अनादि सोभाकर।' 'अति' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'अज' है। राम के लिए 'अनुपम' कहना ही यथेष्ट है; 'अति' से उस 'अनुपम' का क्षेत्र कदाचित् किसी अंश में संकुचित ही होता है। 'अज'= 'अजन्मा' प्रसंग और प्रयोगसम्मत है :

अज सच्चिदानंद परधामा। १-१३-३

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज। १-५०

× (७) ७-४४ : 'आत्माहन' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'आतमहन' है। दोनों में वस्तुतः कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(८) ७-४८-६ : 'उपरोहित्य कर्म अति मंदा।' 'उपरोहित्य' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'उपरोहिती'। तुलनीय प्रयोग अन्यत्र नहीं मिलते; किंतु लोकभाषा में 'उपरोहिती' ही पाया जाता है।

× (९) ७-४९-५ : 'घृत कि पाव कोइ बारि बिलोए।' 'कोइ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'कोउ' है। ग्रंथ में दोनों ही प्रयुक्त हैं; यथा :

यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ। ७-११६

चरितसिंधु रघुबीर के थाह कि पावइ कोइ। ७-१२३

दारु बिचार कि करइ कोउ बंदिय मलय प्रसंग। १-१०

जौ मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि। ३-२३
तात कबहुं कोउ पाव कि थाहा। ७-६१-६

× (१०) ७-६२-१ : 'मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएं जोग तप ग्यान बिरागा।' रघुनाथदास में 'तप' के स्थान पर पाठ है 'जप'। 'अनुराग' या 'भक्ति' की तुलना में 'तप' और 'जप' प्रायः समानधर्मी के रूप में व्यवहृत हुए हैं। निम्नलिखित स्थल तुलनीय हैं :

जोग जग्य जप तप जत कीन्हा। प्रभु कहं देइ भगति बर लीन्हा। ३-८७
उमा जोग जप दान तप नाना व्रत मख नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निहकेवल प्रेम॥ ६-११७
कहहु भगतिपथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा। ७-४६-१
येहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप व्रत पूजा। ७-१३०-६

इसलिए दोनो प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं। प्रसंग में भी दोनों खप जाते हैं।

(११) ७-८४-६ : 'भगतिहीन गुन सब सुख ऐसें। लवन बिना बहु ब्यंजन जैसें।' 'ऐसें' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'कैसें'। 'जैसें' अन्यत्र ग्रंथ भर में इस प्रकार आया है कि उसका पूरक 'कैसें' है, यथा :

सो मोसन कहि जात न कैसें। साक बनिक मनि गुन गन जैसें। १-३-१२
बैठे सोह काम रिपु कैसें। धरें सरीरु सांत रस जैसें। १-१०७-१
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें। ११६-३

किंतु इस प्रकार 'ऐसें' एक भी स्थान पर नहीं आया है। दूसरा पाठ इसलिए अधिक प्रयोगसम्मत है, यद्यपि अर्थ दोनों पाठों से लग सकता है।

(१२) ७-८६-१ : 'बिनु संतोष काम न नसाहीं।' 'काम न' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'न काम'। वास्तविक अंतर दोनों में नहीं है। केवल 'न' और 'नसाहीं' के दो 'न' जो साथ आने के कारण पहले पाठ में खटकते हैं, दूसरे में नहीं खटकते।

(१३) ७-१११-१५ : 'सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किए। उपज क्रोध ज्ञानिन्ह के हिए।' 'ज्ञानिन्ह' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'ज्ञानिहुं'। 'ज्ञानिन्ह' = 'ज्ञानियों के' क्रोध उत्पन्न होता है, यह कहने के स्थान पर यह कहना अधिक सगंत लगता है कि 'ज्ञानिहुं' = 'ज्ञानी के भी' क्रोध उत्पन्न होता है, क्योंकि अपेक्षित ध्वनि यह है कि ज्ञानी के हृदय में सामान्यत: क्रोध न उत्पन्न होना चाहिए :

क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अज्ञान। ७-१११

(१४) ७-१२५-७ : 'संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहइ न जाना।' 'परि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'पै'। ग्रंथ भर में 'पै' रूप ही मिलता है 'परि' नहीं, यथा :

दुराराध्य पै अहहिं महेसू। १-७०-४
यह सुभचरित जान पै सोई। १-१६६-६
नाम जान पै तुम्हहिं न चीन्हा। १-२८२-२
आयसु पै न देहिं रघुनाथा। ५-५५ ५

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

छक्कनलाल के स्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि १७२१, १७६२ में नहीं मिलते, किंतु विवेचनीय शेष प्रतियों में साधारणत: मिलते हैं, और उक्त अन्य पाठ की तुलना में श्रेष्ठतर प्रतीत होते हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाता है।

(१) ७-११-१ : 'देवन्ह सुमन बृष्टि झर लाई।' 'झर' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'झरि'। अन्यत्र 'झरि' रूप ही आया है 'झर' नहीं :

मानहु मघा मेघ झरि लाई। ६-७३-३
रघुपति कोपि बान झरि लाई। ६-८३-७

इसलिए पहिला पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं।

(२) ७-१०६-६ : 'जनम सहस अवस्य येह पाइहि।' 'सहस' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'सहस्र' तथा 'अवस्य' के स्थान

पर पाठ 'अवसि' है। 'सहस' और 'सहस्र' दोनों ही ग्रंथ में प्रयुक्त हुए हैं; किंतु 'अवश्य' अन्यत्र नहीं मिलता, 'अवसि' ही मिलता है, यथा :

अवसि होइ तजि भवन भिखारी। १-७६-३
गए समीप सो अवसि नसाई। १-६०-८

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

१७२१ में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि १७६२ में नहीं पाए जाते, शेष प्रतियों में सामान्यतः पाए जाते हैं, और उक्त अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। इन पर नीचे क्रमशः विचार किया जाता है।

(१) ७-२२-५ : 'कहहिं महामुनि बरद सुसीला।' 'मुनि बरद सुसीला' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'मुनिबर दमुसीला'। पहले की अपेक्षा दूसरा अधिक संगत लगता है, क्योंकि वरदान का कोई प्रसंग नहीं है, प्रसंग राम की महिमा जानने का है।

×(२) ७-४८-६ : 'उपरोहित कर्म अति मंदा।' 'उपरोहित' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'उपरोहित्य' है। पुरोहित के कर्म 'पौरोहित्य' से 'उपरोहित्य' हो सकता है, जिस प्रकार 'पुरोहित' से उपरोहित' होता है। 'उपरोहित' तो 'पुरोहित' का ही तद्भव रूप है। 'उपरोहित' और 'कर्म' में समास मानने पर अवश्य काम निकल सकता है।

(३) ७-७६ : 'जहां लागि गति मोरि।' छक्कनलाल में 'लागि' के स्थान पर पाठ 'लगें' है। 'लागि' 'तक' के अर्थ में ग्रंथ भर में नहीं आया है; 'लगें' अवश्य 'तक' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, यथा:

आजु लगें अरु जबतें भएउं। काहू के गृहग्राम न गएऊं। १-१६७-४
गननायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउं तुम्र सेवा। १-२५७-७

इसलिए 'लगें' अधिक प्रयोगसम्मत है।

(४) ७-८६-७ : 'तिन्हतें प्रिय पुनि मोहिं निज दासा। जेहि भगति मोरि न दूसरि आसा।' १७२१ में दूसरे चरण का पाठ है

'जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।' दूसरा पाठ संगत है, और अन्यत्र किए हुए एक कथन के अनुरूप है :

समदरसी मोहिं कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ। ४-३-८

पहिले पाठ में 'जेहि न दूसरि आसा' तक तो ठीक है, किंतु 'मोरि भगति' का उसके साथ वैसा कोई साधर्म्य नहीं जैसा 'गति' का है, क्योंकि 'गति' और 'आसा' अंशतः पर्याय के रूप में आए हैं। पहिले पाठ का छंदोभंग भी ध्यान देने योग्य है।

(५) ७-९८-७ : 'कलिजुग सोइ ज्ञान बैरागी।' 'ज्ञान बैरागी' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'ज्ञानी सो बिरागी'। 'ज्ञान बैरागी' अर्थ-हीन है। दूसरे की सार्थकता प्रकट है।

(६) ७-९९-६ : 'गुर सिष अंध बधिर क लेखा।' 'क' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'कर'। पहले पाठ में एक मात्रा की कमी के कारण छंददोष प्रकट है। दूसरे पाठ में यह दोष नहीं है।

(७) ७-१०१-१ : 'धन धाम संवारहिं जोगी जती। बिषया हरि लीन्ह न रही बिरती।' 'न रही' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'रही'। अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है, किंतु 'रही-सही विरति (वैराग्य) का भी कलिजुग में विषयासक्ति ने अपहरण कर लिया है।' इस अर्थ में जो जोर है, वह 'विरति का विषयासक्ति ने अपहरण कर लिया है, वह अब नहीं रही' में नहीं है। इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक संगत लगता है।

(८) ७-१११-१५ : 'सुनु मुनि बहुत अवज्ञा कीए। उपज क्रोध ज्ञानिन्ह के हीए।' १७२१ में 'कीए', 'हीए' के स्थान पर क्रमशः 'किए', 'हिए' है। 'कीए', 'हीए' ग्रंथ में अन्यत्र कहीं नहीं मिलते, और न छंद की आवश्यकताओं के लिए इस प्रकार की शब्द-विकृति आवश्यक ही थी। इसलिए पहला पाठ सदोष है, और दूसरा ही ठीक है।

(९) ७-१२१-१२ : 'सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषयरत मंद मंदतर। कांच किरिच बदले जे लेहीं। कर तें डारि परस मनि देहीं।' दूसरी अर्द्धाली के 'जे' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'ते'। पहिली अर्द्धाली के 'जे' के अनंतर 'ते' की समीचीनता प्रकट

है, पुन; 'जे' का आना पुनरुक्तिपूर्ण ही नहीं अशुद्ध भी है। इसलिए दूसरा पाठ ही ठीक लगता है।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ के अस्वीकृत पाठ दो प्रकार के हैं : एक वह जो केवल १७६२ में हैं; दूसरे वह जो १७६२ तथा १७२१ में भी पाए जाते हैं। दोनों प्रकार के पाठों पर अलग-अलग विचार किया जाएगा।

पहले प्रकार के पाठ निम्नलिखित हैं :

(१) ७-१-१ : 'रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भएउ अपारा।' 'रहेउ' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'रहा' है। दूसरे चरण की क्रिया 'भएउ' के अनुरूप होने के कारण 'रहेउ' की समीचीनता प्रकट है। 'रहा' से भी अर्थ लग जाता है, किंतु वह उतना समीचीन नहीं लगता।

(२) ७-७२-५ : 'अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।' 'अदभ्र' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'अदर्भ' है। 'ब्रह्म' के विषय में 'अदर्भ' अर्थहीन है। 'अदभ्र'='कभी कम न होने वाला' अथवा 'निरंतर संपन्न' की समीचीनता प्रसंग में स्पष्ट है।

(३) ७-११०-४ : 'खेलौं तहूं बालकन्ह मीला।' 'तहूं' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'तहं'। पूर्व की पंक्ति है :

'चरम देह मैं द्विज कै पाई। सुर दुरलभ पुरान श्रुति गाई।' 'चरम देह' के सान्निध्य में 'तहूं' की प्रासंगिकता और 'तहं' की अपेक्षाकृत अल्प प्रासंगिकता प्रकट है। दूसरे पाठ में एक मात्रा के कम होने के कारण छंद दोष भी स्पष्ट है।

दूसरे प्रकार के अस्वीकृत पाठ निम्नलिखित हैं :

(४) ७-४-१ : 'इहाँ भानु कुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर।' 'मनोहर' के स्थान पर १७२१/१७६२ में पाठ है 'सुधाकर'। 'सुधाकर' की कोई संगति नहीं दिखाई पड़ती। और 'भानुकुल कमल दिवाकर' 'नगर सुधाकर' दिखावें यह कल्पना भी

दूषित है। संगत 'मनोहर' ही प्रतीत होता है। 'दिवाकर' तथा 'मनोहर' का तुक अवश्य आदर्श नहीं है, किंतु इस प्रकार के तुक अन्यत्र भी मिलते हैं, यथा :

रघुबीर निजमुख जासु गुनगन कहत अग जग नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम प्रतीत सदगुन सिंधु सो॥ ७-२छं०

(५) ७-२३-५ : 'लता बिटप मांगे मधु चवहीं।' 'चवहीं' के स्थान पर १७२१/१७६२ में पाठ 'बहहीं' है। 'लता बिटप' से 'मधु' का चूना ही बहुत है, बहना केवल सरितादिक के विषय में ही युक्तिसंगत कहा जावेगा।

(६) ७-७०-८ : 'तृष्ना केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा।' 'बौराहा' तथा 'दाहा' के स्थान पर १७२१/-१७६२ में क्रमशः 'बौरहा' तथा 'दहा' पाठ हैं। 'दहना' और दह,ना' तो अवश्य मिलते हैं :

बहइ न हाथ दहइ रिस छाती। १-२८०-१
दहइ कोटि कुल भूसुर रोरू। २-१२६-४
अनल दाहि पीटत घनन्हि परसु बदन येह दंड। ७-३७
कनकहिं बरन चढ़इ जिमि दाहें। २-२०२-५

किंतु 'बौरहा' या उसके रूप ग्रंथ में अन्यत्र नहीं मिलते, 'बौराहा' के ही मिलते हैं, यथा :

बर बौराह बरद असवारा। १-६५-८
कस कीन्ह बर बौराह बिधि जेहि तुम्हहि सुंदरता दई। १ ६६ छं०

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है।

(७) ७-७० : 'मृग लोचनि लोचन सर को अस लाग न जाहि।' १७२१/१७६२ में 'लोचन सर' के स्थान पर पाठ है 'के नैन-सर'। 'लाग' एकवचन क्रिया के साथ कर्त्ता का एकवचन रूप 'लोचन-सर' ही शुद्ध है, बहुवचन रूप 'के नैनसर' नहीं।

(८) ७-९०-८ : 'भार धरन सत कोटि अहीसा।' 'भार के स्थान पर १७२१/१७६२ में पाठ है 'धरा'। प्रसंग यहाँ पर गुणों का है। गुण 'भार धरन' ही है, 'धरा धरन' नहीं। जिन गुणों का

उल्लेख इस प्रसंग में हुआ है वह हैं : सुभग-तनुता, दुस्तरता, दुरंतता। उनके साथ 'भारधारकत्व' ही सगत होगा, 'धराधारकत्व' नहीं। फिर 'धराधारकत्व' के लिए एक ही शेष पर्याप्त हैं; शत कोटि शेष होने से क्या विशेषता आ सकती है ?

(६) ७-१२०/२ : 'कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग। जो गति होइ सो कलि हरि नाम तें पावहिं लोग।' १७२१/१७६२ में 'द्वापर' के स्थान पर पाठ 'द्वापरहुं' है। 'द्वापर' में कोई विशेष सुविधा सुगति प्राप्त करने के लिए थी, यह कहीं नहीं कहा गया है। इसलिए 'हुं' का प्रयोग अनवसर है। 'द्वापर' मात्र पाठ ही ठीक लगता है।

(१०) ७-१२१-२० : 'दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।' 'आरति' के स्थान पर १७२१/१७६२ में पाठ है 'अनरथ'। तुलनीय प्रयोग केवल 'आरति' का मिलता है, 'अनरथ' का नहीं :

बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहं तहं केतू। ६-१०२-८

इसलिए 'आरति' अधिक प्रयोगसम्मत लगता है। फिर 'जग आरति' अगली पंक्ति में आए हुए 'विश्वसुख' के ठीक विपरीत होने के कारण तुलनीय भी है :

'संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।'
इसलिए वह अधिक संगत भी लगता है।

(११) ७-१२७-७ : सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्यरत मति सोई पाकी।' 'पाकी' के स्थान पर भी १७२१/१७६२ में पाठ 'जाकी' है। 'जाकी' की पुनरुक्ति दूसरे पाठ में प्रकट है, साथ ही 'जाकी' पाठ के साथ 'सोइ' की संगति नहीं लगती। पहले पाठ की संगति स्पष्ट है—'पुण्यरत मति धन्य है, और वही पकी मति है।'

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

१७२१ में १७६२ के ऊपर दिए हुए अस्वीकृत पाठों से अतिरिक्त भी अस्वीकृत पाठ हैं। इन यथाक्रम पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) ७-२४-६ : 'उमा रमा ब्रह्मानि बंदिता। जगदंबा संतत मनिंदिता'। 'ब्रह्मानि' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'ब्रह्मादि'। 'सीता' के लिए 'उमा रमा' के साथ 'ब्रह्मानि बंदिता' ही युक्तियुक्त लगता है। तुलनीय स्थल निम्नलिखित हैं :

सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप।
जेहि जेहि बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप।
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे। १-५५-१
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि बिलास जासु लय होई। राम बाम दिसि सीता सोई। १-१४६-४

(२) ७-२६-४ : 'चहुं दिसि तिन्हकी मंदिर सुंदर।' तिन्हकी' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'तिन्ह के'। 'दिसि' स्त्रीलिंग है; इसलिए उसके साथ स्त्रीलिंग 'तिन्ह की' ही समीचीन लगता है, 'तिन्ह के' पुल्लिंग नहीं।

× (३) ७-६४-३ : 'सदा सुखद दुख पूग नसावनि।' 'पूग' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'पुंज'। दोनों का प्रयोग ग्रंथ में मिलता है, और प्रायः एक ही अर्थ में, यथा :

मोहाम्भोधर पूग पाटनविधौ स्वः सम्भवं शंकरं। ३ ०-१ श्लोक
सदा सुखद दुख पूग नसावनि। ७ ६४-३
कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ। २-१०६-१
पाप पुंज कुंजर मृगराजू। २-३२५-७
नहिं असत्य सम पातक पुंजा। २-२८-५

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं।

*(४) ७-११२-१० : अघ कि बिना तामस कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना।' 'बिना तामस' के स्थान पर १७२१ में ठाप 'पिसुनता सम' है। प्रसंग तुलना का है। दूसरे चरण से तो यह प्रकट हीहै, पूर्व की अर्द्धालियाँ भी इसी की पुष्टि करती हैं : 'लाभ कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं स्रुति संत पुराना। हानि कि जग येहि सम कछु भई। भजिअ न रामहिं नर तनु पाई।'

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रसंगोचित प्रतीत होता है।

(५) ७-११३-४ : 'रिसि मम सहनसीलता देखी। रामचरन बिस्वास बिसेखी।' १७२१ में 'सहनसीलता' के स्थान पर पाठ है 'महत-सीलता'। संकेत यहाँ पर ऊपर की इस पंक्ति की ओर है :

लीन्ह साप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई। ७-११२-१६

'सहनशीलता' पाठ इसलिए प्रसंग में उपयुक्त ही लगता है। प्रयोग की दृष्टि से भी यह ठीक प्रतीत होता है। तुलनीय प्रयोग 'धर्म-सीलता' का है :

कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर तिय चोरी। ६-२२-५
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरस हमहुँ बड़ भागी। ६ २३-८

'शील' या 'शीलता' के साथ समास ग्रंथ भर में संज्ञा का ही मिलता है, विशेषण का नहीं; और यदि समास 'महत' और 'सीलता' में न माना जाय, तो केवल 'सीलता' का प्रयोग ग्रंथ में नहीं मिलता। इसलिए प्रयोग की दृष्टि से भी 'महतसीलता' की अपेक्षा 'सहनसीलता' पाठ अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

× (६) ७-११७-४ : 'येहि बिधि लेसै दीप तेजरासि बिज्ञान मय। जातहिं तासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब।' 'तासु' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'जासु'। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(७) ७-१२२-८ : 'येहि बिधि भलेहिं रोग नसाहीं।' १७२१ में 'रोग' के स्थान पर पाठ है 'सो रोग'। 'रोग' यहाँ पर बहुवचन है, जो 'नसाहीं' से प्रकट है। इसलिए 'सो' संकेतवाचक विशेषण उसके लिए व्याकरणसम्मत नहीं हो सकता।

छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठ

१७६२ तथा १७२१ के कुछ अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त भी छक्कनलाल में अस्वीकृत पाठ हैं। इन पर क्रमशः नीचे विचार किया जाता है।

(१) ७-२ : 'कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान

चढ़ि ।' 'चलेउ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'चले' । आगे इसी प्रसंग में 'प्रेरेउ', 'करेउ', 'नाएउ' रूप आए हैं :

नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान । ७-४
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु । ७-४
सकल द्विजन्ह मिलि नाएउ माथा । ७-५-५

इसलिए 'चलेउ' पाठ ही समीचीन लगता है. 'चले' नहीं ।

(२) ७-३-१० : 'सरऊ' के स्थान पर पाठ 'सरजू' है । दोनों रूप प्रयुक्त हुए हैं :

बंदौं अवधपुरी अति पावनि । सरजू सरि कलि कलुष नसावनि । १-१६-१
मज्जहिं सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर । १-३४
सरजू नाम सुमंगल मूला । १-३-८ १२
उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर । ७ २८
करि मज्जन सरऊ जल भूप गए दरबार । १ २६-१
उत्तर दिसि सरऊ बह पावनि । ७-३-५
प्रातकाल सरऊ करि मज्जन । ७-२०-६
सरऊ भिन्न भिन्न नर नारी । ७-८१-६

इसलिए दोनों रूप प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं ।

(३) ७-५-६ : 'प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही । जनु प्रेम अरु श्रृंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही ।' 'सुषमा' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'परमा' । 'परमा' अन्यत्र कहीं नहीं आया है, और यहां अर्थहीन प्रतीत होता है । 'सुषमा' अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है, यथा :

बय किसोर सुखमा सदन स्याम गौर सुखधाम । १-२२०
कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन । ३-१६६-६
बिरची बिधि सकेलि सुसमा सी । ३-१३७-५

और यहाँ यह सार्थक भी लगता है ।

(४) ७-६ : 'लछिमन सब मातन्ह मिले हरषे आसिष पाइ । कैकइ कहं पुनि पुनि मिले मन कर छोभ न जाइ ।' तीसरा चरण

छक्कनलाल में इस प्रकार है : 'कैकेई कहँ पुनि मिले।' 'मन कर छोभ न जाइ' से यह प्रकट है कि पहला पाठ अधिक संगत है।

(५) ७-७-२ : 'देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता।' 'होइ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'होहि'। 'होहु'= विधि-सूचक 'हो' का कोई प्रसंग नहीं है। 'होउ' अवश्य संगत होता, क्योंकि आशीर्वाद या कामना-वाचक रूप वही है। 'होइ' से भी संगति लग जाती है।

(६) ७-१०-३ : 'पुनि निज भवन गवन प्रभु कीन्हा। कृपासिंधु तब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए।' 'तब' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'जब', तथा 'गए', 'भए' के स्थान पर क्रमशः पाठ है 'गएउ', 'भएऊ'। पहले पाठांतर में कुछ समीचीनता अवश्य है। 'पुनि निजभवन गवन प्रभु कीन्हा' के बाद 'जब' पाठ ही ठीक लगता है, अन्यथा पुनरुक्ति प्रतीत होती है। किंतु दूसरा पाठांतर अशुद्ध है। 'गएउ', 'भएऊ' एकवचन क्रियाओं के स्थान पर 'गए', 'भए' बहुवचन क्रियाएँ ही प्रयोगसम्मत हैं।

(७) ७-२० : 'बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग। चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।' 'सुखहिं' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुख'। 'नहिं भय सोक न रोग' के साथ 'सुख' पाठ की ही संगति प्रकट है, 'हिं' अनावश्यक लगता है।

× (८) ७-२१-७ : 'सब निर्दंभ धरमरत घृनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।' 'घृनी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'पुनी'। 'पुनी'= 'तदनंतर' की प्रसंग में कोई आवश्यकता नहीं है, और प्रसंग 'घृनी'= 'दयालु' का ही है, यह प्रकट है। 'पुनी' से 'पुण्यात्मा' का आशय लेने पर वह अवश्य संगत हो सकता है।

× (९) ७-२९-१ : 'सरऊ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'सरजू' है। दोनों प्रयोगसम्मत हैं, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं।

(१०) ७-५०-४ : 'पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मंगावत भए। देखि कृपा करि सकल सराहे। दिए उचित जिन्ह जिन्ह

तेइ चाहे।' 'तेइ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'जेइ'। 'दिए उचित' से 'जेइ जाहे' का बाध हो जाता है; 'दिए उचित' के साथ 'तेइ चाहे' अर्थात् 'गज रथ तुरग चाहे' ही युक्तियुक्त लगता है।

(११) ७-६६-: 'कपिहिं तिलक करि प्रभुकृत सैल प्रबरषन बास। बरनत बरषा सरद ऋतु राम रोष कपि त्रास।' 'ऋतु' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'अरु'। दोनों पाठ संगत प्रतीत होते हैं।

(१२) ७-७३ : 'निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।' 'जान नहिं' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'न जानहिं' है। 'कोइ' एकवचन कर्त्ता के साथ 'जान नहिं' ही समीचीन है, 'न जानहिं' बहुवचन नहीं।

(१३) ७-७४ : 'व्याधि नास हित जननी गनइ न सो सिसु पीर।' 'गनइ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'गनत'। 'गनत' = 'गिनते हुए' का कोई प्रसंग यहाँ पर नहीं है। 'गनत' का प्रयोग भी अन्यत्र नहीं हुआ है। 'गनइ' ही संगत प्रतीत होता है, तुलनीय स्थल यह हैं :

गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्ह को गनै। ५-३

इन्ह सम कोटि गनै को नाना। ५-५५-१

गनइ न भुजबल गर्ब बिसाला। ६-७८-६

अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ तें। ६-७८

(१४) ७-८८-१ : 'कबहुं काल नहिं ब्यापिहि तोहीं। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोहीं।' 'सुमिरेसु भजेसु' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुमिरेहु भजेहु'। 'तैं' और 'तोहीं' के साथ 'सुमिरेसु' और 'भजेसु' ही समीचीन है, 'सुमिरेहु' और 'भजेहु' नहीं।

×(१५) ७-९२-२ : 'तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन।' 'पूग' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'पुंज'। दोनों प्रयोगसम्मत हैं, यह हम ऊपर देख चुके हैं।[१]

(१६) ७-९६-२ : 'सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजै रघुबीरा।' 'भजै' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'भजिअ'।

१—देखिए ऊपर १७२१ के अस्वीकृत पाठभेद, यही स्थल।

'भजिअ' = 'भजिए' का प्रयोग केवल द्वितीय पुरुष के लिए समीचीन है। यहाँ पर कर्त्ता 'जो' या 'सरीरा' अन्यपुरुष है, इसलिए इसके लिए 'भजै' = 'भजन करती है' ही उचित है, यथा :

सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा। जो छल छांड़ि भजै रघुबीरा। ७-१२७-४

(१७) ७-६८-१ : 'असुभ बेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं। तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूजित कलजुग माहिं।' 'पूजित' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'पूज्य ते'। 'तेइ' के साथ 'ते' पाठ ठीक नहीं लगता। दूसरे पाठ में यह विषमता अनावश्यक रूप से पाई जाती है। पहला पाठ इससे मुक्त है।

×(१८) ७-१०१-३ : 'कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती।' 'कुलवंति' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'कुलवंत'। 'कुलवंती' = 'सती' पाठ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है, 'चेरि' की तुलना में केवल 'सती' यथेष्ट नहीं लगता।

(१९) ७-१०४-१ : 'नित जुगधर्म होहिं सब केरे। हृदय राम माया के प्रेरे।' 'नित' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'कृत'। 'कृत' के संबंध में 'उक्ति' तो अगली अर्द्धाली में आती है :

'सुद्ध सत्व समता बिज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना।'

और इसी प्रकार एक-एक अर्द्धाली में त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के धर्मों का कथन होता है। इसलिए विवेचनीय पंक्ति में तो चतुर्युगों के धर्म के संबंध में एक सामान्य कथन ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। दूसरे पाठ में पुनरुक्ति तो है ही, वह असंगत भी है।

(२०) ७-११८-२ : 'कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।' 'साधत' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'साधन'। 'कहत' और 'समुझत' की भाँति ही 'साधत' क्रिया उनके सामान्य कर्म 'बिबेक' के लिए समीचीन प्रतीत होती है, 'साधन' संज्ञा नहीं। यदि दूसरे में 'बिबेक' और 'साधन' में समास माना जावे तो वे एक-दूसरे से दूर पड़ जाते हैं, और उनका क्रम उलटा पड़ता है।

(२१) ७-११९-४ : 'अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद। राम भजत सोइ मुक्ति गोसाईं। अनइच्छित आवै

बरिआईं।' 'भजत' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'भजन'। पहले की संगति प्रकट है। दूसरे में 'राम भजन' से अर्थ लेना पड़ेगा 'राम भजन से', क्योंकि अन्यथा 'राम भजन' ही 'सोइ मुक्ति' हो जाएगा, जो कि प्रसंग में अपेक्षित नहीं है; और 'राम भजन' से 'राम भजन से'—अर्थात् तृतीया का—आशय लिया नहीं जा सकता। इसलिए दूसरा पाठ ठीक नहीं प्रतीत होता।

(२२) ७-१२१-६ : 'नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जांचत जेही। नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ज्ञान बिराग भगति सुभ देनी।' 'सुभ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुख'। आगे की दो पंक्तियों से अनुमान होता है कि नर्क, स्वर्ग, अपवर्ग, ज्ञान तथा वैराग्य से भक्ति में कुछ विशेषता कहनी चाहिए एक वही चरम साध्य होना चाहिए :

'सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिसयरत मंद मंदतर।
कांचकिरिच बदले ते लेहीं। करतें डारि परसमनि देहीं।'

इसलिए 'भक्ति' के साथ 'शुभ'='कल्याणकारिणी' विशेषण प्रसंगोचित ही है। 'सुख' का कोई प्रसंग नहीं ज्ञात होता।

(२३) ७-१२१-१६ : 'भूर्ज तरू सम संत कृपाला। परहित निति सह बिपति बिसाला।' 'निति' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'नित' है। 'निति'='निमित्त' के बिना 'परहित' या तो असंबद्ध हो जाता है और या तो 'सह' का कर्त्ता हो जाता है, जिनमें से एक भी अपेक्षित नहीं है। 'निति' के तुलनीय प्रयोग यह हैं :

प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना। मोहिं निति पिता तजेउ भगवाना। १-२-६-४
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा। २-१६१-८

'निति' फलत : इस स्थल पर अनिवार्य प्रतीत होता है।

(२४) ७-१२४ : 'जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल। सो कृपालु मो पर सदा रहहु राम अनुकूल।' छक्कनलाल में तीसरे-चौथे चरणों का पाठ है : 'सो कृपाल मोहिं तोहिं पर सदा रहहु अनुकूल।' 'राम' का आना वाक्य की संगति के लिए आवश्यक है, और उसी प्रकार ऊपर भी हुआ है, यथा :

महिमा निगम नेति कहि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई।
सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मोपर कृपा परम मृदुलाई। ७-१२४-३
'वह कृपालु कौन है ?' इस प्रश्न का उत्तर 'राम' पाठ में ही मिलता है, इसलिए संगति के लिए वह अनिवार्य है।

(२५) ७-१२५-८ : 'निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहि संत सुपुनीता।' 'संत सुपुनीता' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुसंत पुनीता'। 'सुसंत' ग्रंथ भर में कहीं नहीं आया है, और न ठीक जान ही पड़ता है—संतों में अच्छे-बुरे का भेद कहीं नहीं किया गया है। 'सुपुनीता' अवश्य आया है :

सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सप्रेम सुखद सुपुनीता। ७-१२७
सो कुल धन्य उमा सुनु जगतपूज्य सुपुनीत। ७-१२७

(२६) ७-१२७-४ : 'सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छांड़ि भजै रघुबीरा'। 'सोइ' 'सोइ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सो' 'सो'। संपूर्ण वाक्य ऊपर की एक अर्द्धाली को लेकर बना है और इसके पूर्व की भी दो पंक्तियों से एक संपूर्ण वाक्य बनता है। तीनों पंक्तियाँ इस प्रकार आई हैं :

सोइ सर्वज्ञ गुनी सोइ ज्ञाता। सोइ महि मंडन पंडित दाता।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जाकर मन राता।
नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना। ७-१२७-३

'सो' 'सो' का प्रयोग इनमें नहीं मिलता, 'सोइ' 'सोइ' का ही मिलता है, इसलिए पहला पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है, दूसरा नहीं।

(२७) ७-१२८-६ : रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्हकें सतसंगति अति प्यारी।' 'तेइ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'ते'। 'अधिकारी' का लक्षण बताते हुए अगली पंक्ति में भी 'तेइ' का ही प्रयोग किया गया है :

'गुरुपद प्रीति नीतिरत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई।'
इसलिए यहाँ पर 'तेई' पाठ ही समीचीन लगता है, 'ते' नहीं।

(२८) ७-१३०-८ : 'जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कवि श्रुति संत पुराना। ताहि भजिअ मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति

केहिं नहिं पाई।' 'भजिअ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'भजहि'। ऊपर की अर्द्धालियों में इसी प्रसंग में 'सुमिरिअ', 'गाइअ', तथा 'सुनिअ' रूप आए हैं :

'रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहिं। संतत सुनिअ रामगुन ग्रामहिं।'

इसलिए 'भजिअ' पाठ समीचीन ही प्रतीत होता है।' 'मन' को यदि संबोधन में मान लिया जाए तो भी 'भजहि' उतना ठीक नहीं लगता, क्योंकि अलगी पंक्ति में मन को संबोधन करते हुए 'भजि' ही कहा गया है :

'पाई न गति केहि पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना।'

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास में १७६२, १७२१ तथा छक्कनलाल के कुछ अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त निम्नलिखित अस्वीकृत पाठ और हैं। इन पर यथाक्रम विचार किया जाता है।

(१) ७-८ : 'चढ़ीं अटारिन्ह देखहिं नगर नारि बर बृंद।' 'बर' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'नर'। 'चढ़ी' के स्त्रीलिंग से प्रकट है कि कर्त्ता स्त्रीलिंग का ही होना चाहिए, इसलिए पहले पाठ की समीचीनता प्रकट है; दूसरा पाठ पुल्लिंगवाची होने के कारण संभव नहीं है।

(२) ७-१३ छं० : 'तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे। भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुनन्हि भरे।' 'अमित' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'श्रमित'। अमित दिनों या 'अनंत काल' तक भवचक्र में पड़ा रहना 'श्रमित' या 'थकने पर भी' पड़े रहने की अपेक्षा माया की विषमता का अधिक युक्तियुक्त प्रमाण प्रतीत होता है। इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(३) ७-१३छं० : 'पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे।' 'नवल नित' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'नव ललित'। यह संसार नवीन तो है नहीं, इसलिए 'नव ललित' पाठ युक्तियुक्त नहीं है। निरंतर पल्लवित और पुष्पित होने के कारण नित्य नवीन

और नित्य आकर्षणयुक्त प्रतीत होता है, इसलिए 'नवल नित' पाठ की समीचीनता प्रकट है।

(४) ७-१४-७ : 'मनजात किरात निपात किए। मृग लोग कुभोग सरेन हिए।' 'मनजात' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'मनुजात'। 'मनजात = 'काम' ने 'किरात रूप होकर मृग रूप मनुष्यों को कुभोग रूपी शरों से गिरा दिया है।' इस अर्थ की संगति प्रकट है। 'मनुजात' = 'मनुष्य' पाठ मानने से कोई संगति नहीं लगती।

(५) ७-१४-१८ : 'तव नाम जपामि नमामि हरिं। भवरोग महा गद मान अरिं।' 'गद' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'मद'। 'भवरोग के लिए महा गद (महौषधि) और अभिमान के शत्रु तुम्हारे नाम का, हे हरि, मैं जप किया करता हूँ।' इस आशय में 'गद' की संगति प्रकट है। 'मद' पाठ मानने पर पुनरुक्ति सी हो जाती है, क्यों कि 'मद' जिसका परिणाम होता है, वह 'मान'='अभि-मान' वहाँ पहले से ही है।

(६) ७-१६-१ : 'बिसरे गृह सपनेहुं सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन नाहीं।' जिस प्रकार 'परद्रोह संत के मन में नहीं होता' इसकी संगति प्रकट है; 'नाहीं' की पुनरुक्ति अवश्य हो जाती है, किंतु उसका आना अनिवार्य है। 'मन माह।' की सगति नहीं लगती, क्यों कि तब अर्थ होगा : 'जिस प्रकार परद्रोह संत के मन में होता है।'

(७) ७-१८-६ : 'बालक ज्ञान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना।' 'नाथ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जानि'। 'अपने इस दीन दास को, हे नाथ, शरण में रख लीजिए' यह 'इस दास को दीन जान कर शरण में रख लीजिए' की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

(८) ७-२८ छं० : 'बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।' 'रुचिर' के स्थान पर पाठ रघुनाथदास में है 'चारु'। अर्थ-विषयक कोई अंतर दोनो में नहीं है। किंतु छंद के प्रारंभिक शब्दों के संबंध में सामान्य प्रवृत्ति यह है कि वे पूर्ववर्ती अर्द्धाली के अंतिम शब्द ही होते हैं। पूर्ववर्ती अर्द्धाली का दूसरा चरण है :

'बीथी चौहट रुचिर बजारू।' इसलिए 'रुचिर' पाठ की समीचीनता प्रकट है।

(६) ७-३१-२ : 'पूरि प्रकास रहेउ तिहुं लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह मन सोका।' 'बहुतेन्ह' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'बहुतेहु'। 'बहुतेहु'='बहुत से भी' की कोई संगति नहीं है। आगे जिनको सुख है उनका उल्लेख किया गया है, इसलिए 'बहुतेन्ह'= 'बहुतों को' प्रसंग में अनिवार्य है।

(१०) ७-४३-८ : 'बोले बचन भगत भव भंजन।' 'भव' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'भय'। प्रसंग 'भव' से मुक्ति के उपाय का है, 'भय' से मुक्ति का नहीं :

'नर तनु भव बारिधि कहुं बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो।...
जो नर तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥'

इसलिए 'भव' पाठ ही यहाँ समीचीन प्रतीत होता है, 'भय' नहीं।

× (११) ७-४४-३ : 'गुंजा ग्रहै परसमनि खोई।' 'ग्रहै' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'गहै' है। तुलनीय प्रयोग निम्नलिखित हैं :

ग्रहै घ्रान बिनु बास असेषा। १-११८-७
गहइ छांह सक सो न उड़ाई। ५-३-३
पतिव्रतधरम छांड़ि छल गहई। ३-५-१८
करि माया नभ के खग गहई। ५-३-१

अत: दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है।

*(१२) ७-५३-६ : 'ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिन्हहिं न रघुपति कथा सुहाती।' 'निजात्मक' के स्थान पर रघुनाथदास में 'निजातम' पाठ है, 'यद्यपि दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है, किंतु 'निजात्मक' विशेषण युक्त पाठ की अपेक्षा 'निजातम' समास-युक्त पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(१३) ७-६३ : 'सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस। जेहिकै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस।' 'जेहिकै' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जिन्हकै'। संकेत इस सर्वनाम

द्वारा कागभुशुंडि की ओर है, इसलिए एकवचन रूप 'जेहिकै' ही समीचीन लगता है, बहुवचन रूप 'जिन्हकै' नहीं।

(१४ ७-७१-६ : 'सुत बित लोक ईषना तीनी।' 'लोक' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'नारि' है। तीन ईषनाओं में 'लोक' की ही गिनती है, 'नारि' की नहीं।

(१५) ७-७५ : 'एक बार अति सैसवं चरित किए रघुबीर।' 'अति सैसवं' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'अतिसय सब'। 'अतिसय' परिमाण-वाचक विशेषण है और अन्यत्र केवल भाव-वाचक संज्ञा के साथ प्रयुक्त हुआ है :

अतिसय देखि धरम कै हानी। १ १८४-४
मोहिं अतिसय प्रतीति मन केरी। १-२३१-६
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। ३-१०-१४
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। ४-६-६
सुनि रघुबर अतिसय सुख माना। ६-७५-६

इसलिए 'चरित' के विशेषण के रूप में वह प्रयुक्त नहीं हो सकता। 'सब' का भी विशेषण वह नहीं हो सकता। जब 'सब' है, तब 'अतिशय' क्या ? प्रसंग से यह प्रकट है कि 'सैसवं' पाठ ही समीचीन है, और उसके अंत में आए 'प्राकृत सिसु इव लीला' से यह और भी स्पष्ट है :

'प्राकृत सिसु इव लीला देखि भएउ मोहिं मोह।'

(१६) ७-८० : 'एक एक ब्रह्मांड महुँ रहौं बरष सत एक। येहि बिधि देखत फिरौं मैं अंड कटाह अनेक।' 'रहौं' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'रह्यों'। तीसरे तथा चौथे चरणों में आने वाली क्रिया 'फिरौं' से प्रकट है कि पूर्ववर्ती वाक्य की क्रिया भी सामान्य वर्तमान काल की होनी चाहिए, क्योंकि अन्यथा दोनों वाक्यों को एक-दूसरे से 'येहि बिधि' के द्वारा जोड़ा न जाता। इसलिए 'रहौं' (वर्तमान) पाठ ही ठीक लगता है, 'रह्यों' (भविष्य) नहीं।

(१७) ७-८१-६ : 'अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरऊ भिन्न भिन्न नर नारी।' 'निनारी' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'निहारी', और 'सरऊ' के स्थान पर पाठ है 'सरजू'। जब प्रत्येक ब्रह्मांड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि समस्त पूर्ववर्णित पदार्थ तथा दशरथ-कौशल्यादि बाद में वर्णित पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं, तब अवधपुरी को भी प्रत्येक भुवन में भिन्न-भिन्न होना चाहिए। इस लिए प्रकट है कि 'निनारी'='भिन्न' पाठ ही युक्तियुक्त है। 'निहारी' पाठ असंगत है। 'सरऊ' और 'सरजू' दोनों पाठ प्रयोगसम्मत है, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं।[1]

(१८) ७-८६-६ : 'भगतिहीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहिं सोई।' 'जीवहु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जीवन'। 'जीव' का बहुवचन ग्रंथ भर में 'जीवन्ह' है; 'जीवन' तो प्राण के अर्थ में प्रयुक्त है। प्रसंग से 'जीव' का बहुवचन ही आवश्यक सिद्ध है।

× (१९) ७-९३-२ : 'श्री रघुपति प्रताप उर आना।' 'प्रताप' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'प्रभाव'। प्रसंग में यहाँ पर दोनों खप सकते हैं।

(२०) ७-९५-१ : 'बोलेउ उमा परम अनुरागा।' 'परम' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सहित'। 'सहित' ऊपर वाले दोहे में अंतिम शब्दों के रूप में आ चुका है :

'कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग।'

इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। 'अनुराग' का प्रयोग प्रायः इसी प्रकार बिना 'सहित' के हुआ है, यथा :

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग। १-२

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी। ७-६४-७

(२१) ७-९८-२ : 'द्विज श्रुति बेंचक भूप प्रजासन।' 'श्रुति बेंचक' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'श्रुति बंचक'। 'श्रुति' को

१—देखिए छक्कनलाल का अस्वीकृत पाठ, इसी स्थल पर।

'वंचना' (ठगना) अनर्गल प्रतीत होता है। 'वेदों को बेचने' का उल्लेख अन्यत्र भी हुआ है :

वेचहिं वेद धरम दुहि लेहीं। ३-१६८-१

(२२) ७-१००-६ : 'सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठ बरासन कहहिं पुराना।' 'नाना' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'दाना'। प्रसंग 'बिप्र' और 'सूद्र' की तुलना का है। ब्राह्मण के संबंध में ऊपर भी कहा गया है :

'बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी।' शूद्र-पक्ष में 'निरक्षरता' की तुलना 'बरासन पर बैठ कर पुराण-पाठ' के साथ, तथा 'लोलुपता', 'कामुकता', 'आचरणहीनता' और 'व्यभिचार' की तुलना 'जप तप ब्रत नाना' के साथ की गई है, और यह समीचीन भी है। 'दान' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं आता।

(२३) ७-१०१-६ : 'कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोप गुनी।' 'दूषक' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'दूषन'। प्रसंग से यह प्रकट है कि 'गुनी' का उलटा ही अर्थ पाठ से निकलना चाहिए। 'गुन दूषन ब्रात' 'गुण और दोषों के समूह' से वह उलटा अर्थ नहीं निकलता; क्योंकि वे 'दोषों' के साथ 'गुणों' के भी समूह कहे गए हैं; 'गुण में दोष निकालने वाले', या 'गुण को दोष बतलाने वाले' से ही यह उलटा अर्थ निकल सकता है। इसलिए 'दूषक' पाठ की समीचीनता सिद्ध है।

(२४) ७-११०-३ : 'चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई।' 'चरम' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'धर्म'। द्विज की देह 'धर्म देह' है और शेष की 'अधर्म देह' यह मानना ठीक नहीं लगता। कवि के विचारों के अनुसार वह 'चरम' = 'सर्वश्रेष्ठ' अवश्य है :

सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सबतें अधिक मनुज मोहिं भाए।
तिन्ह महं द्विज द्विज महं श्रुतिधारी। ७-८६-५

(२५) ७-११०-१३ : 'छूटी त्रिबिध ईषना गाढ़ी।' 'ईषना' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'ईर्षना'। 'ईर्षना'

निरर्थक है। 'ईषना' 'वासना' का ही प्रसंग है, यह प्रकट है। 'ईषना' तीन प्रकार की कही गई है :

सुत बित लोक ईषना तीनी। किन्ह कर मति इन कृत न मलीनी। ७-७१-६

उसी की ओर यहाँ भी संकेत है।

(२६) ७-११२-२ : 'परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका।' 'होहिं' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'होइ'। दूसरे चरण में आए हुए 'रहहिं' से 'होहिं' पाठ की अपेक्षाकृत अधिक समीचीनता प्रकट है, यद्यपि अर्थ 'होइ' से भी निकल सकता है।

×(२७) ७-११८-८ : 'कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा।' 'जाहिं' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जाइ'। दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है, और दोनों व्याकरण-सम्मत हैं।

(२८) ७-१२१-२० : 'दुष्ट उदय जग अनरथ हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रहकेतू। संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।' पहली अर्द्धाली के 'उदय' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'हृदय'। दूसरी अर्द्धाली में 'संत-उदय' का प्रभाव वर्णित है, इसलिए पहली में 'दुष्ट उदय' का प्रभाव-वर्णन समीचीन ही लगता है। अन्यत्र भी खलों के विषय में यही भाव आया है:

उदय केतु सम हित सबही के। १-४-६

'दुष्ट के हृदय' का कोई प्रसंग नहीं है।

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठ भेद

१७६२, १७२१, छक्कनलाल तथा रघुनाथदास के कुछ अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त बंदन पाठक में कुछ अस्वीकृत पाठ और हैं। इन पर क्रमशः नीचे विचार किया जाता है।

(१) ७-३१-२ : 'पूरि प्रकास रहेउ तिहुं लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह मन सोका।' बंदन पाठक में 'बहुतेन्ह' के स्थान पर भी पाठ 'बहुतन्ह' है। 'बहुतन्ह' रूप 'षष्ठी' का है, और इसीलिए 'बहुतन्ह मन' उसके बाद ही आया है। यहाँ रूप द्वितीया का होना चाहिए, यह

प्रसंग से प्रकट है, और 'बहुतेन्ह' = 'बहुतेरों को' उसके लिए समीचीन है।

(२) ७-७१-६ : 'सुत बित लोक ईषना तीनी।' 'लोक' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'सोक'। 'ईषना' = (वासना) 'शोक' की कमी नहीं हो सकती, इसलिए 'सोक' पाठ स्पष्ट ही असंगत है। तीन ईषनाओं में 'लोकेषणा' = 'ख्याति और प्रतिष्ठा की वासना' भी गिनी जाती है; 'सोक' उसी 'लोक' का पाठ-प्रमाद से संभव रूप प्रतीत होता है।

*(३) ७-७६-१ : 'अैसेइ हरि बिन भजन खगेसा। मिटइ न जीवन केर कलेसा।' 'हरि बिनु' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'बिनु हरि'। आशय प्रकट है: 'बिना हरि-भजन के जीवन का क्लेश नहीं मिट सकता', और दूसरा ही पाठ उसके निकट है। 'हरि बिनु भजन' का अर्थ भी अन्वय की सहायता से 'बिनु हरि भजन' करके ही लगेगा।

×(४) ७-९७ : 'कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ। दंभिन्ह निज मत कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ।' लुप्त' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'गुप्त'। एक स्थान पर 'गुप्त' का प्रयोग 'लुप्त' के ही अर्थ में ठीक इसी प्रकार के प्रसंग में हुआ है :

> हरित भूमि तृन संकुल समुझि परै नहिं पंथ।
> जिमि पाखंड बादतें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥ ४-१४

इसलिए 'लुप्त' की भाँति 'गुप्त' को भी प्रयोगसम्मत मानना होगा।

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२, १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास तथा बंदन पाठक के अनेक अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ कोदवराम में हैं। इन पर यथाक्रम नीचे विचार किया जाता है।

(१) ७-२-६ : 'सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूखा।' 'पाइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'पाव' है। 'बिसरे सब दूखा' दूसरे चरण में भी संगति के लिए लगेगा, क्योंकि

उदाहरण दुःख-विस्मरण के संबंध में ही दिया गया है। और 'बिसरे सब दूखा' लगाने पर 'पाइ' पाठ ही समीचीन होगा क्योंकि 'पियूखा पाइ' और उसमें 'कारण-कार्य' का संबंध है। 'पाव' पाठ इस दशा में ठीक नहीं है, क्योंकि उससे कारण-कार्य के संबंध की अभिव्यक्ति नहीं होती।

(२) ७-२-१३ : 'येह संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउं कछु नाहीं।' 'येहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'येहि'। 'सरिस' के साथ 'येह' या 'येहि' तथा उनके अन्य रूपों का कोई प्रयोग नहीं मिलता, किंतु 'सम' और 'समान' के साथ अवश्य तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में पाए जाते हैं। इन प्रयोगों में सर्वत्र 'येहिं' पाठ है, 'येह' नहीं—पुल्लिंग संज्ञाओं के साथ भी रूप 'येहि' ही है, यथा :

येहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं। २-१०१-८
येहि सम बिजय उपाय न दूजा। ६-८०-१०
येहि सम धरमु न आन। ७-४६
येहि सम प्रिय जिन्हकें कछु नाहीं। ७-१३०-३

इसी प्रकार समान के साथ 'जेहि' का भी प्रयोग देखा जाता है, 'जो' का नहीं :

जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ३-६-८

इसलिए 'येहि' पाठ ही प्रयोगसम्मत है, 'येह' नहीं।

(३) ७-३-६ : 'भरि भरि हेम थार भामिनीं। गावत चलिं सिंधुरगामिनीं।' 'चलिं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'चलिं सब' है। दूसरे पाठ में छंद की गति विकृत हो गई है, क्योंकि मात्रा बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त यह भी कहना ठीक नहीं प्रतीत होता कि अयोध्या की 'सभी' स्त्रियाँ इस प्रकार निकल पड़ी थीं।

(४) ७-५-३ : 'धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह। 'धरे' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'गहे'। 'गहे' अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है, क्योंकि चरण के प्रसंग में 'गहना' का प्रयोग प्रायः मिलता है, यथा :

सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पदकंज । ७-८०

गहत चरन कह बालि कुमारा । ६-३५-२

गहसि न रामचरन सठ जाई । ६-३५-३

'धरना' का प्रयोग चरण के साथ नहीं मिलता। अन्यथा अर्थ में दोनों में कोई अंतर नहीं है।

(५) ७-५ : पुनि प्रभु हरषि सत्रुघन भेंटे हृदय लगाइ । लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है : 'लछिमन भेंटे भरत पुनि'। प्रसंग से यह प्रकट है कि दोनों भाई परस्पर ही मिले थे, अन्य किसी से नहीं मिले थे। इसलिए 'परम प्रेम दोउ भाइ मिले' ही संगत है 'परम प्रेम दोउ भाइ भेंटे' संगत नहीं हो सकता।

(६) ७-६ : 'होहिं सगुन सुभ बिबिध बिधि बाजहिं गगन निसान।' 'गगन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'नाक'। 'नाक' का प्रयोग 'स्वर्ग' के ही अर्थ में हुआ है 'आकाश' के अर्थ में नहीं :

महि पातालु नाकु जसु ब्यापा । १-२६-५-५

रंक नाकपति होइ । २-६२

किंतु 'निसान' अन्यत्र 'आकाश' में ही बजे हैं, 'स्वर्ग' में नहीं :

सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले । १-१०२

चले निसान बजाइ सुर निज निज पुर सुख पाइ । १-३५३

हरषित बरषहिं सुमन सुर गगन बजाइ निसान । ३-२०

बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान । ६-१०६

इसलिए प्रकट है कि पहला ही पाठ ठीक है, दूसरा नहीं।

×(७) ७-१४ : 'भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।' 'गए' के स्थान पर कोदवराम में है 'गे'। दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत प्रतीत होते हैं :

सुर मुनि गंधर्बा मिलिकरि सर्बा गे बिरंचि के लोका । १-१८४

निज लोकहिं बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ । १ १८७

गए देव सब निज निज धामा । १-१८८-१

×(८) ७-१५-१ : 'सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध

ताप भवभय दावनी।' 'भय' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'दाप'। यद्यपि ग्रंथ भर में सामान्यतः 'भवभय' का ही प्रयोग मिलता है, एकाध स्थल पर 'भव दाप' भी आया है :

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिध ताप भवदाप नसावनि।

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं।

(६) ७-१५-५ : 'सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिसई। लहहिं भगति गति संपति नई।' 'नई' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'नितई'। 'नितई' कहीं नहीं आया है, 'नितहिं' या 'नितहीं' पाठ ही मिलते हैं :

सुर पुर नितहिं परावन होई। १-१८०-८
अति दीन मलीन दुखी नितही। ७-१४-१७
करि दंड बिडंब प्रजा नितही। ७-१०१-६

इसलिए 'नितई' पाठ प्रयोगसम्मत नहीं लगता है। 'नई' का प्रयोग अन्यत्र भी मिलता है—और इस प्रकार के प्रसंग में भी मिलता है :

नित नइ प्रीति रामपद पंकज। ७-१५-६
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीरपद नित नित नई। २-७५ छं०
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। ७-१२२-१०

इसलिए 'नई' पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है।

(१०) ७-१५ : 'ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभुपद प्रीति। जात न जाने देवस तिन्ह गए मास षट बीति।' 'देवस तिन्ह' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'दिवस निसि'। 'तिन्ह' के न होने पर कर्त्ता 'सब' होगा, 'कपि' नहीं, क्योंकि वही उसके निकट पूर्व में आया है। किंतु वह कर्त्ता अशुद्ध होगा, 'के' विभक्ति से यह प्रकट है। इसलिए 'तिन्ह' के बिना शुद्ध कर्त्ता का अभाव हो जाता है। दूसरी बात यह है कि मास की गणना के प्रसंग में 'दिवस' का ही उल्लेख हुआ है, 'निसि' का नहीं :

मास दिवस तहं रहेउं खरारी। ४-६-७
मास दिबस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ १-१९५
मास दिवस महं आएउ भाई। ४-२२-७

'देवस' अवश्य ग्रंथ में अन्यत्र प्रयुक्त नहीं हुआ है, 'दिवस' ही प्रयोग-सम्मत है।

×(११) ७-१६-१ : 'कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहिं कहौं कर जोरि।' 'सैं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सन'। यद्यपि 'सन' ही सामान्यतः प्रयुक्त हुआ है, कहीं-कहीं 'सैं' भी पाया जाता है :

अब मैं जनमु संभु सैं हारा। १-२१-२
करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा। ६-८-७

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(१२) ७-१६-३ : 'कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। चित्त खगेस राम कर समुझि परै कहु काहि।' कोदवराम में पाठ है : 'चित खगेस अस रामकर'। 'अस' पाठ मानने पर दोहे के पहले दो चरणों को शेष से स्वतंत्र मानना पड़ेगा; किंतु कर्त्ता और क्रिया के अभाव के कारण वे पूरा वाक्य नहीं बनाते। पहले पाठ में यह कठिनाई नहीं है – दोहे के पहले दो चरण 'चित्त' के विशेषण मात्र हैं, जो स्वतः 'समुझि परै' क्रिया का कर्म है।

(१३) ७-२७ : 'प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे।' 'खचे' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'पचे'। बहुमूल्य पत्थरों को 'खचने' के उल्लेख अन्यत्र भी आए हैं :

कनक कोटि मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव। १-१७८-१
नृप मंदिर सुंदर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती। ७-७६-२
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकतखचीं। ७-२७

'पचना' का प्रयोग किंचित भिन्न ढंग पर हुआ है :

कनक कलित अहि बेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई।
तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुतादाम सुहाए। १-२०८-३
रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोध। २०-१८
चलइ कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिय। ७-८६

इसलिए 'खचे' पाठ ही प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है, 'पचे' नहीं।

×(१४) १७-२३ : 'संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।' कोदवराम में 'संग' के स्थान पर पाठ है 'पंथ' दोनों पाठों से

संगति लग जाती है यद्यपि दूसरे में 'पंथ' की पुनरुक्ति अवश्य चिंत्य है।

(१५) ७-३८-६ : 'सीतलता सरलता मयित्री। द्विजपद प्रीति धरम जनयित्री।' 'जनयित्री' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जनजंत्री'। 'जनजंत्री' अर्थहीन है, और 'धर्म-जनयित्री'='धर्म की जननी' (द्विजपद प्रीति) की संगति प्रकट है।

(१६) ७-४३-२ : 'एक बार रघुराथ बोलाए। गुरु द्विज पुरबासी सब आए। बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन।' दूसरी अर्द्धाली का पाठ कोदवराम में है : 'बैठे सदसि अनुज मुनि सज्जन।' राम के बुलाने पर आए थे 'गुर द्विज पुरबासी सब' जैसा पहली अर्द्धाली में कहा गया है ; इसलिए बैठने वालों में भी 'गुर मुनि अरु द्विज सज्जन' का ही होना अधिक समीचीन है। उनमें 'गुरु' और 'द्विज का न होना, और उनके स्थान पर 'अनुजों' का सम्मिलित होना—जैसा दूसरे पाठ में हुआ है—ठीक नहीं लगता।

× (१७) ७-५१-८ : 'कारुनीक ब्यलीक मद खंढन। सब बिधि कुसल कोसलामंडन।' 'ब्यलीक' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बालिक'। दोनों पाठ संगत लगते हैं।

× (१८) ७-५१-७ : 'हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा।' 'हरि चरित्र मानस' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'रामचरित मानस'। दोनों पाठ प्रसंग में खप जाते हैं।

× (१९) ७-५५ : 'औसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्ह काग सन जाइ। सो सब सादर कहिहौं सुनहु उमा मन लाइ।' 'कहिहौं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कहउं मैं'। दोनों पाठ पसंग में खप सकते हैं।

(२०) ७-५६-६ : 'तब अति सोच भएउ मन मेरे।' दुखी भएउं बियोग प्रिय तोरे। सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरेउं बेरागा। 'बेरागा' के स्थान पर कोदवराम में पाठ

'बिभागा' है । 'बैरागा' = 'विरक्त भाव से' की संगति प्रकट है—प्रिया-विरह का शोच था । 'बिभागा' यहाँ अर्थहीन है ।

(२१) ७-५६-८ : 'चतुरानन पहं जाहु खगेसा । सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा ।' 'जेहि होइ निदेसा' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जो देहिं निदेसा' । 'निदेस' ग्रंथ में अन्यत्र नहीं आया है। किंतु 'वही काम करना जिसके लिए उनका निदेश है' ('जेहि होइ निदेसा') जितना समीचीन लगता है, उतना '…जो वे निदेश दें' ('जो देहिं निदेसा') नहीं ।

(२२) ७-६०-५ : 'अग जगमय जग मम उपराजा ।' दूसरे 'जग' के स्थान पर पाठ कोदवराम में 'सब' है । 'सब' की अपेक्षा 'जग' 'अगजगमय' के लिए अधिक उपयुक्त विशेष्य प्रतीत होता है । 'जग' और 'जग' में पुनरुक्ति नहीं है, पुनरुक्तिवदाभास ही है : पहले 'जग' का अर्थ है 'जंगम' या 'चर', और दूसरे 'जग' का अर्थ है 'जगत्' ।

(२३) ७-६२-२ : 'सिव बिरंचि कहं मोहै को है बपुरा आन ।' 'मोहै' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मोह है' । किंतु प्रसंग यहाँ 'मोह' का नहीं है, मोहने में माया की सफलता का है, जैसा पूर्व वाले दोहे से प्रकट है :

ज्ञानी भगत सिरोमनि त्रिभुवन पति कर जान ।
ताहि मोह माया नर पांवर करहिं गुमान ॥

इसलिए पहला पाठ ही समीचीन है, दूसरा नहीं ।

(२४) ७-६३ : 'जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस ।' 'कै' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'की' । दोनों प्रयोग-सम्मत प्रतीत होते हैं। ग्रंथ भर में 'कै' तथा 'की' दोनों षष्ठी की विभक्ति होकर स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हैं ।

(२५) ७-६५ : 'कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग । बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सन संग ।' 'जेहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जाहि' । 'जाहिं' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'जिसको' के अर्थ में और 'जेहि' का 'जिस' के अर्थ में हुआ है।

यहाँ पर दूसरा अर्थ अपेक्षित है, इसलिए प्रकट है कि पहला ही पाठ शुद्ध है।

(२६) ७-६५ : 'बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सन संग।' 'सन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'सत' है।' 'सतसंग' न अगस्त्य का प्रभु राम के लिए हो सकता था और न प्रभु राम का अगस्त्य के लिए ही हो सकता था; किसी ऋषि और राम का मिलन कहीं भी 'सतसंग' नहीं कहा गया है; इसलिए दूसरा पाठ असगंत है, और पहला ही समीचीन है।

(२७) ७-६६ : 'प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग। पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग।' 'मिताई' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मिताइ कहि'। प्रथम चरण के उपवाक्य की क्रिया 'कहि' के अनंतर पुनः कथा के लिए प्रयुक्त क्रिया 'सुनाई' कई चरणों के बाद आती है :

मिला बिभीषन जेहि बिधि जाई। सागर निग्रह कथा सुनाई। ७-६७-८

ऐसी दशा में बीच में पुनः पूर्वकालिक 'कहि' का प्रयोग न केवल अनावश्यक बल्कि अनुचित प्रतीत होता है। उसमें पुनरुक्ति भी प्रकट है। पहले पाठ में यह त्रुटियाँ नहीं हैं।

(२८) ७-६६ : 'प्रभुहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रबरषन बास। बरनन बरषा सरद रितु राम रोष कपि त्रास।' 'प्रभुकृत' के स्थान पर कोदवराम में 'प्रभु जु कृत' पाठ है। 'जु' ग्रंथ भर में कहीं भी नहीं प्रयुक्त है—वह ब्रजभाषा का रूप है—और इसलिए प्रयोग-सम्मत नहीं प्रतीत होता और पहले पाठ से पूरा अर्थ निकल आता है।

(२९) ७-६६ : ऊपर के हो दोहे में 'बरनन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बरने'। 'बरने'—'वर्णन करने से' का यहाँ कोई प्रसंग ही नहीं है; इसलिए यह स्पष्ट ही अशुद्ध है। मुख्य क्रिया 'सुनाई' बाद में आती है (७-६७-८), इसलिए 'बरनन'—'वर्णन' बीच के 'वर्णनों' के लिए आ ही सकता है।

(३०) ७-६६ : 'निसिचर कीस लराई बरनेसि बिबिध प्रकार।' 'लराई' के स्थान पर कोदवराम' में है 'लराइ पुनि'। 'लराइ'='लड़ा

कर' के अर्थ में यहाँ असगंत ही है; वह 'लड़ाई' का विकृत रूप होकर ही प्रसंगसम्मत हो सकता है। किंतु यह विकृत रूप ग्रंथ में कहीं नहीं आया है, इसलिए प्रयोगसम्मत नहीं ज्ञात होता है। फिर 'लराई' 'लड़ाई' मात्र से संगति भी बैठ जाती है, 'पुनि' अनावश्यक है। इसलिए पहले पाठ की समीचीनता प्रकट है।

×(३१) ७-६६-२ : 'देखि चरित अति नर अनुसारी। भएउ हृदय मम संसय भारी। सोइ भ्रम अब हित करि मैं जाना। कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना।' 'सोइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'सो' है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं, अंतर केवल बल का है।

(३२) ७-६६ : 'सुनि बिहंगपति बानी सहित बिनय अनुराग। पुलक गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग।' 'बानी' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बानि बर'। यद्यपि सामान्य रूप 'बानी' ही है, एकाध बार 'बानि' भी आया है :

भइ मृदु बानि सुमंगल देनी। २-२८५-६

इसलिए वह भी प्रयोग-विरुद्ध नहीं है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं। 'बर' अवश्य प्रायः एक निरर्थक विशेषण है।

(३३) ७-६६ : 'स्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास। पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास।' 'गोप्यमपि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'गोप्यमत'। 'मत' प्रायः निरर्थक है : 'गोप्य' से ही 'गोप्य मत' का आशय निकल आता है, किंतु 'अपि' में जो 'बल' है वह संगति के लिए आवश्यक है : 'अत्यन्त गोप्य विषय तक भी सज्जन प्रकाशित कर देते हैं, यदि ......श्रोता मिल जावे।' इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(३४) ७-७० : 'मृगलोचनि लोचन सर को अस लाग न जाहि।' 'मृगलोचनि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मृगनयनी' और 'लोचन सर' के स्थान पर है 'के नैन सर'। 'लाग' एकवचन क्रिया के साथ 'के नैनसर' बहुवचन पाठ अशुद्ध है, 'लोचन सर' ही शुद्ध है।

(३५) ७-७१-४ : 'चिंता सांपिनि को नहिं खाया। को जग

जाहि न व्यापी माया ।' 'को नहिं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'केहि नहिं'। 'खाया' का अर्थ है 'खाया गया', 'खा डाला' नहीं। 'खा डाला' आशय रखना होता तो पाठ 'खावा' होता, जैसे ऊपर की अर्द्धाली में 'लावा' और 'डोलावा' आए हैं :

'मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा।'

और 'खाया गया' अर्थवाची 'खाया' के साथ 'को'='कौन' प्रथमा का ही रूप प्रयुक्त हो सकता है, 'केहि'='किसको' द्वितीया का नहीं, क्योंकि अन्यथा 'खाया' क्रिया कर्त्ता विहीन हो जाएगी।

(३६.) ७-७२-५ : 'अगुन अदभ्र गिरा गोतीता । सबदरसी अनबद्य अजीता। 'अदभ्र' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'अदंभ'। प्रसंग यहाँ निर्गुण ब्रह्म का है। उसके विषय में 'अदंभ' असंगत और 'अदभ्र'='शक्ति संपन्न' ही संगत प्रतीत होता है।

× (३७)७-७२ : 'जथा अनेक बेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ भाव देखावै आपुन होइ न सोइ।' 'अनेक' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'अनेकन' है। 'अनेकन' अशुद्ध है, क्योंकि 'अनेक' तो स्वतः बहुवाची है; और 'अनेकन' कहीं प्रयुक्त भी नहीं हुआ है, इसलिए प्रयोगसम्मत नहीं है। 'अनेक' ही यथेष्ट है, और वह प्रयोग-सम्मत भी है।

ऊपर वाले दोहे में ही 'सोइ सोइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'जो जो' है । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

(३८) ७-७३-४ : 'जब जेहि दिसिभ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उएउ दिनेसा।' 'दिसि भ्रम' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'भ्रम दिसि'। पहले पाठ की संगति प्रकट है; दूसरा पाठ अर्थ-हीन और असंगत प्रतीत होता है।

(३६) ७-७५ : एक बार अति सैसवं चरित किए रघुबीर।' 'अति सैसवं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'अतिसय सुखद'। पहला पाठ अधिक प्रासंगिक है—'अति सैसवं' का अर्थ है 'अत्यंत शैशवावस्था में'। दूसरे पाठ में इस प्रकार की प्रासंगिकता नहीं है।

× (४०) ७-७८ : 'राकापति षोडस उअहि तारागन समुदाइ।' 'उअहिं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'उगहिं'। 'उगेउ' के अन्य प्रयोग के स्थल ग्रंथ में नहीं हैं, किंतु सूर्य चंद्रादि के लिए 'उअना' आया है :

उएउ अरुन अवलोकहु ताता। १-२३८-७
प्राची दिसि ससि उएउ सुहावा। १-२३७-७
उएउ भानु बिनु स्रम तम नासा। १-२३९-४

(४१) ७-७९ : 'ब्रह्मलोक लगि गएउं मैं चितएउं पाछ उड़ात। जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहिं मोहिं तात।' 'चितएउं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'चितवत'। 'चितवत' = 'देखता हुआ' में ध्वनि यह है कि राम की भुजा और काग में जो दो अंगुल का अंतर था उसका कोई संबंध काग के इस पीछे की 'चितवन' से था जो कि प्रसंग से सिद्ध नहीं है। 'चितएउं' में ऐसी कोई बात नहीं है; वह स्वतंत्र है और प्रसंगोचित है।

×(४२) ७-७९ : 'सप्तावरन भेद करि जहां लगें गति मोरि। गएउं तहां प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भएउं बहोरि।' दोहे के दूसरे चरण का पाठ कोदवराम में है 'जहं लगि गति रहि मोरि'। 'लगें' और 'लगि' दोनों प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं :

आजु लगें अरु जबतें भएऊं। १-१६३-४
आजु लगें कीन्हिउं तव सेवा। १-२५७-७
ये प्रिय सबहिं जहां लगि प्रानी। १-२१६-७
जहं लगि नाथ नेह अरु नाते। २-६५-३

'रही' का विकृत रूप 'रहि' भी कहीं-कहीं देखने में आता है, यथा :

जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रहि मति लीनी। १-२७२-७

अर्थ में भी दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है; इसलिए दोनों पाठ प्रसंग और प्रयोग सम्मत हैं।

(४३) ७-८० : 'एक एक ब्रह्मांड महुं रहौं बरष सत एक। येहि बिधि देखत फिरौं मैं अंड कटाह अनेक।' 'रहौं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'रहे'। कर्त्ता 'मैं' दोहे के तीसरे चरण में

आया है। 'मैं' प्रथमपुरुष एकवचन कर्त्ता के साथ 'रहे' बहुवचन रूप अशुद्ध है, और कहीं नहीं आया है। 'रहौं' की समीचीनता प्रकट है। तीसरे चरण में उसका समानधर्मी 'फिरौं' आया ही है।

×(४४) ७-८१-७ : 'दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता।' 'कौसल्या सुनु ताता' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'कौसल्यादिक माता' है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं, यद्यपि दशरथ-कौशल्यादिक का समास आगे आने वाले 'माता' विशेषण के कारण ठीक नहीं होगा।

(४५) ७-८१ : 'सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर।' 'सोइ सिसुपन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'सो सिसु-पन' है। आगे आए हुए 'सोइ सोभा' और 'सोइ कृपाल रघुबीर' के साहचर्य में 'सोइ' की समीचीनता प्रकट है, और प्रसंग से भी इसी का समर्थन होता है। प्रसंग यहाँ 'उस' या 'वह' का नहीं है, 'वही' का है।

(४६) ७-८३ : 'सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास।' बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास।' 'बानी' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'बैन बर' है। अपनी 'बानी' के लिए 'बैन बर' कहना अनहोना सा लगता है विशेष रूप से जब अपनी दीनता का उल्लेख उसी स्थल पर हो और वह वाणी अपने आराध्य के प्रति कही गई हो। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(४७) ७-८४ : 'अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।' जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव।' जेहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जो'। संभवत: 'जो गाव' के अनुकरण पर 'जो खोजत' किया गया है। 'जेहि गाव' अन्यत्र भी आया है; यथा :

जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना। १-११३-८

और 'खोजत' के साथ विभक्तियुक्त कर्म ही ग्रंथ भर में आया है :

जनक सुता कहं खोजहु जाई। ५-२२-७

बचन सहाय करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि। ४-२७

इसलिए पहले पाठ की समीचीनता प्रकट है। विभक्तिहीन दूसरा पाठ ठीक नहीं लगता है।

(४८) ७-८६-६ : 'तिन्ह महुं प्रिय बिरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहुं ते अति प्रिय बिज्ञानी।' 'पुनि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'अरु'। ज्ञानी' को 'विरक्त' से भिन्न और प्रियतर मानना ही प्रसंग से सिद्ध होता है, क्योंकि इसी प्रकार और भी कोटियों के साधकों को गिनाते हुए कहा गया है :

'तिन्ह तें पुनि प्रिय तोहिं निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।' अन्यत्र भी इसी प्रकार के एक प्रसंग में 'विरक्त' से 'ज्ञानी' को श्रेष्ठ कहा गया है :

धर्मसील कोटिक महँ कोई। विषय बिमुख बिरागरत होई।
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई। १-५४-३

इसलिए दूसरा पाठ समीचीन नहीं ज्ञात होता है, पहला ही समीचीन लगता है।

(४९) ७-८७-८ : 'तिन्ह महं जो परिहरि मद माया। भजइ मोहिं मन बच अरु काया।' 'भजइ' के स्थान में कोदवराम में पाठ है 'भजहिं'। 'जो' कर्त्ता एकवचन है। उसकी क्रिया 'भजइ' एकवचन ही होनी चाहिए, 'भजहिं' बहुवचन नहीं।

(५०) ७-८८: 'जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद।' 'जेहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'जो' है। 'लागि' के साथ तो 'जेहि' रूप अनेक बार आया है :

जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी। १-१८५-६०२
तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा। २ ४-८
मोहिं सुरन्ह जेहि लागि पठावा। ५-२-१२

किंतु 'लागि' या उसके किसी रूप के साथ 'जो' कहीं नहीं आया है। पहले पाठ की समीचीनता इसलिए प्रकट है।

(५१) ७ ८८ : 'सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहु लहेहु।' 'सोई सुख' के स्थान पर कोदवराम में 'सो सुख कर' पाठ है। 'कर' के साथ 'सो' रूप समीचीन नहीं है. और कहीं भी नहीं आया है—

'कर' के साथ 'तेहि' ही संभव था। 'सोई' पाठ में यह त्रुटि नहीं है, वह 'सुख लवलेस' का विशेषण मात्र है।

(५२) ७-८८ : 'ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्म सुखहिं सज्जन सुमति।' 'ते नहि गनहिं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सो नहिं गनइ'। यह सर्वनाम पूर्ववर्त्ती चरण में आए हुए 'जिन्ह' के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है :

'सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहु लहेहु।'

इसलिए इसका बहुवचन रूप और तदनुसार इसकी बहुवचन क्रिया ही समीचीन हैं, दूसरे नहीं।

(५३) ७-९० : 'रामकृपा बिनु सपनेहुं जीव न लह बिस्रामु।' दूसरे चरण का पाठ कोदवराम में है 'जिव कि लहै बिस्रामु।' अगला दोहा है :

'अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥'

इस दोहे के प्रसंग में दूसरा अर्थात् प्रश्नवाची पाठ उतना समीचीन नहीं लगता है जितना पहला अर्थात् सामान्य पाठ।

(५४) ७-९१-२ : 'तीरथ अमित कोटि सम पावन।' 'सम' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सत'।' 'कोटि' के लिए 'अमित विशेषण होते हुए 'सत'='शत' नितांत असंगत है। 'सम' पाठ ही समीचीन लगता है।

(५५) ७-९२-६ : 'बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता।' कोदवराम में 'सम' के स्थान पर पाठ है 'सत'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं; अंतर केवल उपमा और रूपक का होगा। किंतु दूसरे पाठ का यह अर्थ भी लिया जा सकता है : 'सौ करोड़ विष्णु का पालन करने वाले हैं' जो प्रसंग में अपेक्षित नहीं है, इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(५६) ७-९३-३ : 'पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना।' 'माना' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जाना'।

दोनों से कोई अंतर प्रसंग में नहीं आता ; किंतु 'जानि' अगली ही अर्द्धाली में पुनः आया है :

'जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ।'

इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति सी है, जिससे पहला पाठ मुक्त है ।

(५७) ७-६३ : 'ताहि प्रसंसि बिबिध बिधि-सीस नाइ कर जोरि । बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि ।' 'प्रसंसि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'प्रसंसे'। 'प्रसंसे' बहुवचन रूप है, जो केवल बहुवचन कर्म के लिए उपयुक्त है, 'ताहि' एकवचन के साथ नहीं । 'प्रसंसि' पूर्वकालिक रूप ही उसके साथ समीचीन है ।

(५८) ७-६४ : 'प्रभु तव आस्रम आएं मोर मोह भ्रम भाग ।' कोदवराम में 'आएं' के स्थान पर पाठ 'आएउं' है । इस प्रश्न का जो उत्तर काग ने दिया है, उसमें उसने यह बताया है कि लोमस ने उसे इस प्रकार का एक वर ही दिया था जिसका यह परिणाम है :

'जेहि आस्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्री भगवंत ।
ब्यापिहि तहं न अबिद्या जोजन एक प्रजंत ॥'

इसलिए यह प्रकट है कि गरुड़ के प्रश्न में उसके उक्त आश्रम में आने और मोहभ्रम-निवारण में स्पष्ट संबंध-संकेत होना चाहिए । इस ध्यान से पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत लगता है दूसरा नहीं : पहले में 'आए' से यह संबंध-संकेत प्रगट है, दूसरे में 'आएउं' के कारण दोनों उपवाक्य अलग-अलग और एक-दूसरे से स्वतंत्र हो जाते हैं ।

(५६) ७-६५ : 'पाट कीट तें होइ तेहि ते पाटंबर रुचिर ।' 'तेहिं ते' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'तातें'। 'तातें' का प्रयोग 'इसलिए' के ही अर्थ में हुआ है :

निज बुधिबल भरोस मोहिं नाहीं । तातें बिनय करौं सब पाहीं । १-८-४
यह इतिहास सकल जग जानी । तातें मैं संछेप बखानी । १-६५-४
भगितहिं सानुकूल रघुराया । तातें तेहि डरपति अति माया । ७-११६-५

'उससे' के अर्थ में 'तेहि तें' ही आया है, यथा :

येहि के एक परम बल नारी । तेहितें उबर सुभट सोइ भारी । ३-३८-१२

एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहिं भ्रमतें नहिं मारेउं सोऊ। ४-८-५

इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है, दूसरा नहीं।

(६०) ७-९७ : 'कलिमल ग्रसे धरम सब लुप्त भए सद्ग्रंथ।' 'ग्रसे' के स्थान पर कोदवराम में पाठ में 'ग्रासे'। 'ग्रासना' अथवा इसका कोई रूप कहीं भी ग्रंथ भर में प्रयुक्त नहीं है; सर्वत्र 'ग्रसना' और उसीके अन्य रूप आए हैं :

ग्रसे जे मोह पिसाच। १-११४

संसय सरप ग्रसेउ मोहि ताता। ७-९३-६

कलिमल ग्रसित बिमूढ़। १-३०-२

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है, दूसरा नहीं।

×(६१) ७-९८ : 'बरन धरम नहिं आस्रम चारी। श्रुति बिरोधरत सब नर नारी।' 'श्रुति बिरोधरत सब' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'श्रुति बिरोधब्रत रत'। 'श्रुति बिरोध ब्रत' जैसा कोई ब्रत सुना नहीं गया है; इसलिए दूसरे पाठ में व्यंजना से अर्थ लेना पड़ेगा। अन्यथा दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

(६२) ७-९८-७ : 'निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी। कलिजुग सोइ ज्ञानी सो बिरागी।' 'सोइ ज्ञानी सो बिरागी' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सोइ ज्ञानी बैरागी'। 'बैरागी' अन्यत्र कहीं नहीं आया है, 'बिरागी' ही ग्रंथ भर में मिलता है, यथा :

सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। ७-३८-२

अस बिचारि जे तग्य बिरागी। ७-७४-२

रहे कहावत परम बिरागी। १-३३८-५

करत बिबिध जप जोग बिरागी। १-२२६-४

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत ज्ञात होता है, दूसरा नहीं।

(६३) ७-९८ : 'जे अपकारी चार तिन्हकर गौरव मान्य तेइ।' 'मान्य तेइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मान्यता'। 'कर' एक-वचन की विभक्ति के साथ दोनों संज्ञाओं 'गौरव' और 'मान्यता' का आना व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन है, दूसरा नहीं।

×(६४) ७-६६-३ : 'सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी।' 'श्रुति' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'गुरु'। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(६५) ७-१००-३ : 'आपु गए अरु तिन्हहूं घालहिं। जे कहुं सतमारग प्रतिपालहिं।' 'कहुं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कछु'। 'कछु' अथवा 'अधिक' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है : प्रसंग में यह ध्वनि नहीं ली जा सकती कि यह दुष्टात्मा केवल उन्हीं को गिराते—पथभ्रष्ट करते—हैं जो सन्मार्ग का कुछ ही प्रतिपालन करते हैं, और शेष को वह छोड़ देते हैं। यहाँ तो प्रासगिक ध्वनि यही है कि 'साधारणतः लोग सन्मार्ग पर चलते ही नहीं, थोड़े ही ऐसे लोग कलियुग में होते हैं जो सन्मार्ग पर चलने का यत्न करते हैं, और यह दुष्टात्मा उन इने गिने लोगों को भी पथ-भ्रष्ट करते हैं।' यह 'यदि कहीं कोई' की ध्वनि 'जे कहुं' पाठ से ही निकलती है, इसलिए वही पाठ ठीक लगता है।

(६६) ७-१०० 'भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।' ,कलि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कली'। 'कलि' रूप तो ग्रंथ भर में प्रायः एक सौ बार आया है, 'कली' एक बार भी नहीं आया है; इसलिए दूसरा पाठ प्रयोगविरुद्ध है।

× ६७) ७-१०२ : 'सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।' 'काल' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कराल'। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(६८) ७-१०४-७ : 'काल धम नहिं व्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही।' 'धर्म' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कर्म'। प्रसंग यहाँ पर प्रत्येक युग के 'धर्म' का ही है, 'कर्म' का नहीं : 'बुध जुग धमे जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं।' इसलिए पहला ही पाठ समीचीन है, दूसरा नहीं।

(६९) ७-१०६ : 'एक बार हर मंदिर जपत रहेउं सिव नाम।' 'मंदिर' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मंदिरहु'। मंदिरहु'=

'मंदिर ने भी', या 'मंदिर को भी' नितांत असंगत है। 'हर मंदिर' -'हर के मंदिर में' ही प्रसंग से सिद्ध है।

(७०) ७-१०८ : 'जो प्रसन्न प्रभु मोपर नाथ दीन पर नेहु।' 'प्रभु मोपर' के स्थ न पर कोद्वराम में पाठ है 'अति मोहि पर'। पूर्व का दोहा यह है :

'सुनि बिनती सर्बज्ञ सिव देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभ बानी भइ द्विजबर बर मांगु॥'

इस नभ-वाणी से 'अति प्रसन्न' होने की ध्वनि निकालना, और पुन: 'अति प्रसन्न' होने का निश्चय करके ही वर माँगना युक्तियुक्त नहीं लगता। पहले पाठ में यद्यपि 'प्रभु' और 'नाथ' के आने के कारण पुनरुक्ति है, किंतु फिर भी इस प्रकार का दोष नहीं है।

(७१) ७-१०८ : 'ऊपर के ही दोहे में 'भगति' के स्थान पर पाठ 'भगती' है। 'भक्ति' और 'भगति' प्राय: दो सौ बार ग्रंथ में आए हैं, किंतु कहीं भी 'भगती' रूप नहीं आया है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन ज्ञात होता है।

×(७२) ७-१०८ : 'तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान। तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान।' 'तेहि पर' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'तापर'। दोनों 'जड़ जीव के लिए उपयुक्त हो सकते हैं।

(७३) ७-१०९ : 'प्रेरित काल बिधि गिरि जाइ भएउं मैं ब्याल। पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउं गएं कछु काल।' 'बिंधि गिरि' के स्थान पर कोद्वराम में 'सुबिधिगिरि' पाठ है। यह विदित है कि 'सु' गिरि के नाम का कोई अंश नहीं है, और व्यक्तिवाची संज्ञा 'विंध्य गिरि' का गुणवाचक वह विशेषण भी नहीं हो सकता। 'सो' अर्थवाची संकेतवाचक विशेषण भी यह 'विंध्य गिरि' का नहीं हो सकता, क्योंकि एक तो पहले कहीं 'विंध्य गिरि' का कोई प्रसंग आया नहीं है, और दूसरे 'सु' का प्रयोग कहीं भी संकेतवाचक विशेषण के रूप में नहीं हुआ है। इसलिए केवल 'बिंधि गिरि' पाठ ही समीचीन और यथेष्ट है।

(७४) ७-१०६ : ऊपर के ही दोहे में 'सो तनु' के स्थान पर पाठ है 'सोउ तनु'। भुशुंडि को यह सर्प शरीर ही तो पहला शरीर शापवश प्राप्त हुआ था—शाप था :

'बैठ रहसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति व्यापी।'

इसलिए किसी अन्य पूर्ववर्ती शरीर की ओर संकेत न होने के कारण 'सोउ' विशेषण संगत नहीं है, 'सो' ही समीचीन ज्ञात होता है।

(७५) ७-११० : 'खेलौं तहूं बालकन्ह मीला। करौं सकल रघुनायक लीला।' 'तहूं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'तहाँ' है। पूर्व में भुशुंडि कह चुके हैं :

'त्रिजग देव नर तनु धरऊं। तहं तहं राम भजन अनुसरऊं।'

इसलिए बाद में ब्राह्मण-शरीर के कर्मों का उल्लेख करते हुए राम-भक्ति के बालोचित संस्कारों की ओर संकेत करते समय 'तहूं'= 'वहाँ भी' 'खेल में भी' ही प्रसंगसम्मत माना जायगा, 'तहाँ' नहीं।

×(७६) ७-११० : 'कृपानिधि' के स्थान पर पाठ कोदवराम में 'कृपायतन' है। दोनों ग्रंथ भर में प्रयुक्त हैं, और इसलिए प्रयोगसम्मत हैं।

×(७७) ७-११० : 'तब कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बज्ञ सुजान। सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान।' 'अवराधन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'अवराधना'। ग्रंथ में तुलनीय प्रयोग नहीं हैं। संभवतः दोनों प्रयुक्त हो सकते हैं।

(७८) ७-१११-७ : 'बिबिध भांति मुनि मोहि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदय न आवा।' 'मम' के स्थान पर भी कोदवराम में पाठ 'मोहिं' ही है। 'मोहि' कर्म कारक का रूप है, इसलिए न वह 'हृदय' का विशेषण हो सकता है, और न 'आवा' अकर्मक क्रिया का कर्म ही हो सकता है। 'मम हृदय' पाठ की समीचीनता प्रकट है।

(७९) ७-१११-१५ : 'सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किए। उपज क्रोध ज्ञानिहुं के हिए।' 'किए' और 'हिए' के स्थान पर कोदवराम में पाठ क्रमशः है 'किएऊ' 'हिएऊ।' 'किएऊ' के दो अर्थ संभव हैं : 'कियो'=

'तुमने किया' तथा 'किएहु'='करने पर भी'; और इसी प्रकार 'हिएऊ' का भी प्रयोग दो अर्थों में हो सकता है; 'हियो'='हृदय ने' और 'हिएहु'='हृदय में भी'। किंतु पहला अर्थ यहाँ अपेक्षित नहीं है यह प्रसंग से प्रकट है, और दूसरा अर्थ पहले ही पाठ से निकलता है। इसलिए पहले पाठ से ही ठीक संगति लगती है।

(८०) पुनः ऊपर की अर्द्धाली में 'ज्ञानिहुं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'ज्ञानी'। 'ज्ञानिहुं' स्पष्ट ही अधिक युक्तियुक्त है।

(८१) ७-११४ : 'उमा जे रामचरन रत बिगत काम मद लोभ। निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।' 'केहि' के स्थान में कोदवराम में पाठ है 'का'। ग्रंथ में दोनों के प्रयोगों में अंतर साधारणतः प्राणीवाचक और अप्राणीवाचक होने का है। अपवाद केवल एक स्थलपर मिलता है :

तुम्ह तें अधिक पुन्य बड़ काकें। १-२९४-६

'बिरोध' किसी प्राणी के साथ ही संभव है, इसलिए पहला पाठ अपेक्षाकृत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

(८२) ७-११३ : 'जेहि आस्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्री भगवंत।' 'जेहिं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जो'। 'जो' स्पष्ट ही यहाँ पर अशुद्ध है, 'जेहिं' ही शुद्ध है।

(८३) ७-११३ : पुनः उपर्युक्त दोहे में 'बसब' के स्थान पर पाठ है 'बसहु'। इस वरदान की प्राप्ति के पूर्व भुशुंडि ने कोई आश्रम बनाया नहीं था; घर छोड़ने के अनंतर वह जगह-जगह भ्रमण ही कर रहे थे जब वह लोमस के संपर्क में आए :

गुरु के बचन सुरति करि राम चरन मन लाग।
रघुपति जस गावत फिरैं त छन छन नव अनुराग। ७-११०

आश्रम तो इस बर की प्राप्ति के अनंतर उन्होंने बनाया है—

करि बिनती मुनि आयेसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिर नाई।
हरष सहित येहि आस्रम आएउं। प्रभु प्रसाद दुरलभ बर पाएउं। ७-११४-६

इसलिए प्रसंग में भविष्य का 'बसब' रूप ही समीचीन है, वर्त्तमान का 'बसहु' रूप नहीं।

×(८४) ७-११५ : 'पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर। न तु कामी बिषया बस बिमुख जो पद रघुबीर।' 'विषया बस' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बिषया बिबस'। 'बस' तथा 'बिबस' लगा कर बनाए गए समास ग्रंथ भर में मिलते हैं, यथा :

स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। २-२२०-२
माया बिबस भए मुनि मूढ़ा। १-३३-३
जे मति मंद बिमोह बस। १-४६
भए काम बस समय बिसारी। १-८५-४

और प्रसंग में भी दोनों खप सकते हैं।

(८५) ७-११६ : 'मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।' 'रीति' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'नीति' है। 'नीति' मानव द्वारा निर्धारित होती है :

रूप तेज बल नीति निवासा। १-१३०-३
धरम धुरंधर नीति निधाना। १-१८५-३
नृप हित हेतु सिखव नित नीती। १-१५५-३
कस न राम तुम्ह राखहु नीती। १-२१८-७

और 'रीति' का प्रयोग दोनों प्रकार की क्रिया-प्रणालियों के लिए होता है—निर्धारित क्रिया-प्रणाली के लिए और स्वाभाविक क्रिया-प्रणाली के लिए, यथा :

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बरु बचनु न जाई। २-८४-४
उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति। १-४

इसलिए प्रस्तुत प्रसंग में 'रीति' ही प्रयुक्त हो सकता है, 'नीति' नहीं।

(८६) ७-११६ : 'औरौ ज्ञान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।' 'सुप्रबीन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'परबीन'। 'परबीन' रूप ग्रंथ भर में नहीं मिलता। 'प्रबीन' ही सर्वत्र मिलता है :

सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रबीन। २-८०
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत। ३-३
धीर धरम पथ परम प्रबीना। ३-४५-६

इसलिए 'सुप्रबीन' पाठ 'परबीन' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(८७) ७-११६ 'जे सुनि होइ रामपद प्रीति सदा अबिछीन।' 'अबिछीन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'अवछीन'। प्रसंग से यह प्रकट है कि 'अविच्छिन्न' अर्थात् 'अविरल' अर्थवाची शब्द ही यहाँ पर आना चाहिए। 'अविच्छिन्न' का अपभ्रंश रूप 'अबिछीन' होगा, 'अवछीन' नहीं।

(८८ ७-११७-१ : 'सुनहु नाथ यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी।' 'जाइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जात'। 'समुझत बनइ' के साथ 'बखानि जाइ' ही समीचीन लगता है। 'जात' अशुद्ध भी है : 'कहानी' स्त्रीलिङ्ग कर्म के लिए क्रिया स्त्रीलिङ्ग ही शुद्ध होगी, और 'जात' पुल्लिङ्ग है।

(८९) ७-११७-२ : 'तब बिज्ञानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ। चित्त दिया भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ।' 'रूपिनी' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'निरूपिनी'। यहाँ पर 'निरूपिनी' = 'निरूपण करने वाली' का कोई प्रसंग नहीं है, प्रसंग यहाँ पर अनेक कष्टसाध्य उपकरणों को एकत्र कर के उस विज्ञान दीपक को जलाने का है जिसका उल्लेख आगे किया गया है :

येहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिज्ञानमय। ७-११-७

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहिं दीप बिज्ञान बुझाई। ७-११७-१३

और प्रसंग से यह भी प्रकट है कि विज्ञान-दीप के यह सारे उपकरण बुद्धि द्वारा ही एकत्रित होते हैं, और वही उस दीपक से अज्ञानांधकार के नाश का प्रयत्न करती है। इसलिए वह 'विज्ञानरूपिणी' कही जा सकती है।

(९०) ७-११८-४ : 'तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा।' 'उजियारा' और 'निरुआरा' के स्थान पर कोदवराम में पाठ क्रमशः 'उजियारी' और 'निरुआरी' है। दीपक के प्रकाश के प्रसंग में 'उजियारा' पुल्लिङ्ग रूप ही एक स्थान पर अन्यत्र भी प्रयुक्त है :

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहुं जौ चाहसि उंजिआर॥ १-२१

'उंजियारी' का प्रयोग कवि ने 'उजेली रात' या 'रात का उजाला' के अर्थ में ही किया है, जिसका यहाँ कोई प्रसंग नहीं है :

निज जस जगत कीन्हि उँजियारी। २-२३२-७
नृप सब नखत करहिं उँजियारी। १-२३६-१

इसलिए 'उंजियार' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है। 'निरुआरी' भी 'निरुआरि' पूर्वकालिक क्रिया का रूप होने के कारण यहाँ संगत नहीं है। 'निरुआरा' = 'निरुवारती है' ही संगत है।

×(६१) ७-११६-१ : 'ज्ञान पंथ कृपान कै धारा।' 'ज्ञान पंथ' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'ज्ञान क पंथ'। दोनों प्रयोगसम्मत हैं। 'ज्ञान पंथ' में जिस प्रकार का समास है, उस प्रकार का ग्रंथ भर में मिलता है, और 'क' का प्रयोग भी कहीं-कहीं षष्ठी में मिलता है :

पितु आयसु सब धरम क टीका। २-५५-८
सपनेहुं आन भरोस न देवक। ३-१०-८
मित्र क दुख रज मेरु समाना। ४-७२

(६२) ७-११६-४ : 'राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं।' 'भजत' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'भगति'। पूर्व की पंक्ति है :

'अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद।' उसी 'कैवल्य परम पद' को विवेचनीय स्थल पर 'सोइ मुकुति' के द्वारा इंगित किया गया है। इसलिए पहले पाठ की समीचीनता प्रकट है। किंतु दूसरे पाठ में 'बरिआईं' और 'अनइच्छित आवइ' का कर्त्ता 'रामभगति' होती है। इस प्रसंग में रामभक्ति के 'अनइच्छित' और 'बरिआईं' आने की बात किसी प्रकार नहीं जँचती।

(६३) ७-१२०-१६ : 'अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा।' 'जोइ' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ 'जेइ' है। दूसरे चरण में आने वाले एकवचन 'तेहि' से यह प्रकट है कि उसके पूर्व संबंधवाचक सर्वनाम एकवचन 'जोइ' ही आना

चाहिए, बहुवचन 'जेइ' नहीं।

(९४) ७-१२१-१३ : 'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं।' दूसरे चरण के 'जग' के स्थान पर पाठ है 'कछु'। समानता या तुलना के लिए 'कोउ' होता तो खप सकता था—क्योंकि भाव यह होना चाहिए 'संत मिलन के समान दूसरा सुख नहीं है' जैसा प्रकट है। परिमाणवाचक 'कछु' यहाँ पर असंगत है।

(९५) ७-१२१-१६ : 'भूर्जतरू सम संत कृपाला। परहित निति सह बिपति बिसाला।' 'निति' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है, 'निज'। 'निति' का प्रयोग 'निमित्त' के अर्थ में हुआ है, यथा :

मोहिं निति पिता तजेउ भगवाना। १-२०९-४
मीन जिअन निति बारि उलीचा। २-१६१-८

अतः 'निति' की आवश्यकता प्रकट है। 'निज' का कोई प्रसंग नहीं है।

(९६) ७-१२१-२९ : 'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह-तें पुनि उपजहिं बहु सूला।' 'तिन्ह तें' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जातें'। पुनि से प्रकट है 'बहु सूला' किसी ऐसी वस्तु से उत्पन्न होते हैं जो स्वतः किसी दूसरी वस्तु से उत्पन्न बताई गई है। इस प्रकार की वस्तु 'ब्याधिन्ह' है—जो मोह से उत्पन्न बताई गई है ; किंतु यह 'ब्याधिन्ह' बहुवचन है, इसलिए इसके संबंध में प्रयुक्त सर्वनाम भी बहुवचन होना चाहिए। 'तिन्ह तें' की 'संगति और 'जातें' की असंगति इसलिए प्रकट है।

(९७) ७-१२१-३५ : 'अहंकार अति दुखद डमरुआ।' 'डमरुआ' के स्थान पर पाठ कोदवराम में है 'डहरुआ'।' प्रकरण रोगों का है। दूसरा कदाचित् कोई रोग नहीं हैं। रोग पहला ही है।

(९८) ७-१२१ : 'भेषज पुनि कोटिन्ह नहीं रोग जाहिं हरिजान।' 'कोटिन्ह' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कोटिन्हहु'। 'कोटिन्ह' तो ग्रंथ में अनेक स्थलों पर आया है, किंतु 'कोटिन्हहु' कहीं पर भी नहीं मिलता, और इसलिए प्रयोगसम्मत नहीं प्रतीत होता है।

(९९) ७-१२२-२ : 'मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सबके लखि बिरलेन्हि पाए।' 'गाए' और 'पाए' के स्थान पर कोदवराम में क्रमशः 'गाई' और 'पाई' है। 'गाई' (गाइ) = 'गाकर' और 'पाई' (पाइ) = 'पाकर' यहाँ पर असंगत हैं। पहला ही पाठ समीचीन है। 'गाए' सकर्मक बहुवचन क्रिया का कर्म 'रोग' बहुवचन, तथा 'पाए' अकर्मक बहुवचन क्रिया का कर्त्ता 'बिरलेन्हि' है।

(१००) ७-१२२-२ : ऊपर की ही अर्द्धाली में 'हहिं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है "हैं"। संयुक्त क्रिया के रूप में पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है :

कोउ कह चलन चहत हहिं आजू। १-३३४-२
मानहुं मोर करत हहिं निंदा। ३ ३७-४
मानहु ग्रसन चहत हहि लंका। ५-५५८

'हैं' का प्रयोग स्वतंत्र क्रिया के रूप में ही मिलता है :

हैं तुम्हरी सेवा बस राऊ। २-२१-८
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। ५-१६-६

(१०१) ७-१२२-७ : 'रघुपति भगति सजीवनि मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी। येहि बिधि भलेहिं रोग नसाहीं। नाहिं त कोटि जतन नहिं जाहीं।' 'मति पूरी' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'अति रूरी'। 'रूरी' या 'रूरे' का प्रयोग केवल स्थूल वर्ण्य के विशेषण के रूप में ही मिलता है, अर्थ है 'अद्भुत' या 'विचित्र' :

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। १-४२-१
रहे निज निज अनीक रचि रूरी। १-१८८-५
हिय हरिनख सोभा अति रूरी। १-१९९-५
भरि भरि परन पुटीं रचि रूरीं। २-२५०-८

दूसरा पाठ इसलिए प्रयोगसम्मत नहीं प्रतीत होता। 'मति पूरी' = 'बुद्धि युक्त' की समीचीनता प्रकट है।

(१०२) ७-१२३-३ : 'प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। मोहिं से सठ पर ममता जाही।' 'से' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'ते' है। प्रसंग से प्रकट है कि 'से' का अर्थ यहाँ पर 'समान' है।

वह तृतीया की विभक्ति के रूप में यहाँ व्यवहृत नहीं हुआ है। 'ते' से 'समान' का अर्थ नहीं निकलता, और यह कहकर उनकी कृपालुता का प्रतिपादन करना कि 'मुझसे बड़े शठों पर राम की प्रीति देखी जा सकती है', नम्रता और शिष्टता के सामान्य सिद्धांतों के प्रतिकूल पड़ता है।

(१०३) ७-१२३ : 'नाथ जथामति भाखेउं राखेउं नहिं कछु गोइ। चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ।' 'रघुनायक' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'रघुनाथ कर'। प्रयोगसम्मत पहला ही प्रतीत होता है, दूसरा नहीं, यथा :

चरित सिंधु गिरिजारवन वेद कि पावहिं पारु। १-१०३

(१०४) ७-१२४-१ : 'सुमिरि राम के गुन गन गाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना।' 'के' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'कर' है। 'गुन गन' के बहुवचन होने के कारण 'के' विभक्ति ही समीचीन है, एकवचन की विभक्ति 'कर' नहीं।

(१०५) ७-१२५-३ 'मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहुं नाथ बिबिध सुख दए।' 'भए' और 'दए' के स्थान पर कोदवराम में क्रमशः 'भएऊ' तथा 'दएऊ' पाठ है। 'दएऊ' का प्रयोग ग्रंथ भर में केवल एकवचन कर्म और 'दए' का बहुवचन कर्म के लिए हुआ है:

तहां जलंधर रावन भएऊ। रन हति राम परमपद दएऊ। १-१२४-८

पुनि तैं मम सेवा मन दएऊ। ७-१०६-६

जनु बनसी खेलहिं चित दए। ६-८८-५

यहाँ पर 'सुख' 'बिबिध' विशेषण के साथ स्पष्ट बहुवचन है, इसलिए 'दए' बहुवचन क्रिया ही समीचीन है, 'दएऊ' एकवचन क्रिया नहीं।

(१०६) ७-१२६-१ : 'रामकथा गिरिजा मैं बरनी। कलिमल समनि मनोमल हरनी।' 'समनि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'समन'। 'मनामल हरनी' से प्रकट है कि 'समनि' स्त्रीलिंग रूप ही समीचीन है, 'समन' पुल्लिंग रूप 'रामकथा' के लिए उचित नहीं है।

(१०७) ७-१२९-३ : 'येहि महं रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना।' 'पंथाना' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'पथ नाना'। 'सप्त सोपाना' को 'नाना पथ' कहना उतना युक्तियुक्त नहीं लगता है जितना उनके लिए बहुवचन वाची 'पंथान' कहना, क्योंकि उपर्युक्त पथों में पारस्परिक भेद या वैषम्य नहीं है।

(१०८) ७-१२९-५ : 'मनकामना सिद्धि नर पावा। जो यह कथा कपट तजि गावा।' 'पावा' और 'गावा' के स्थान पर कोदवराम में क्रमशः 'पावै' और 'गावै' है। अंतर दोनों पाठों में काल-विषयक है। पहला भूत काल का रूप है, दूसरा वर्त्तमान काल का। प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं, किंतु पहला दूसरे की अपेक्षा अधिक संगत लगता है : 'जिसने भी इस कथा का निष्कपट भाव के गान किया, उसे मनकामना की सिद्धि प्राप्त हो गई' यह कहने में कथा की जितनी महत्ता है, उतनी यह कहने में नहीं, कि 'जो भी इस कथा का निष्कपट भाव से गान करता है, मनकामना की सिद्धि प्राप्त करता है।'

१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

१७०४ की प्रति इस कांड में अंशतः खंडित है। प्रायः पूर्वार्द्ध तो सुरक्षित है, किंतु उत्तरार्द्ध प्राचीन प्रति का नहीं है, वह दूसरे हाथ का लिखा हुआ और बाद का है। जो अंश मूल प्रति का है उसी के असिद्ध पाठों पर यहाँ विचार किया जाएगा। इस अंश [दोहा ८१/१ तक] में १७६२, १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास तथा बंदन पाठक के कुछ अस्वीकृत पाठ तो हैं ही, उनके अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ हैं। इन पर यथाक्रम विचार किया जाता है।

(१) ७-०/४ : 'जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार।' 'करन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'करैं'। केवल एक स्थान पर 'लाग' के साथ 'करैं' अन्यत्र आया है :

सुनत जातुधानी सकल लागीं करैं बिषाद। ६-१०८

अन्यथा 'करन' ही आया है :

दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग। १-६०
सती मरनु सुनि संभुगन लगे करन मख खीस। १-६४
लगे करन रघुनायक ध्याना। १-८२-४
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। १-१४३-८

इसलिए यह प्रकट है कि 'करन' अधिक प्रयोगसम्मत है।

(२) ७-८-५ : 'पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए।' 'लागहु सकल' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'लागन कुसल।' 'कुसल' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, इसलिए दूसरा पाठ असंगत है। पहले की संगति प्रकट है।

(३) ७-२२ : 'जीतहु मनहिं सुनिअ अस रामचंद्र कें राज।' तीसरे चरण का पाठ १७०४ में है 'जितहु मनहिं अस सुनिअ जग'। रामचंद्र के 'राज' के रहते हुए 'जग' अनावश्यक प्रतीत होता है।

×(४) ७-२६-७ : 'सबके गृह गृह होहिं पुराना।' १७०४ में पाठ है 'सबके गृह होहिं बेद पुराना।' प्रसंग में दोनों खप सकते हैं। वेदों का पठन-पाठन उतना ही प्रयोगसम्मत लगता है जितना पुराणों का :

सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना। १-१८३-८
तेहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना। १-१८३ छं०
बेद पुरान सुनहि मन लाई। १-२०५-६
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। ७-२६-२

(५) ७-२८-६ : 'मोर हंस सारस पारावत। भवनन्हि पर सोभ अति पावत। जहं तहं देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं।' 'देखहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'निरखहिं। 'निरखना' = 'निरीक्षण करना' यहाँ पर संगत नहीं है : 'परिछाहीं' वह यों ही देखते हैं, उसमें निरीक्षण करने की कोई बात नहीं होती है। इसलिए 'देखहिं' पाठ ही समीचीन है।

×(६) ७-२९-४ : 'तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुं दिसि तिन्हकी उपबन सुंदर।' 'तिन्हकी' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'जिन्हकी'। दोनों पाठ एक से लगते हैं।

(७) ७-२६-५ : 'कहुं कहुं सरिता तीर उदासी। बसहिं ज्ञानरत मुनि संन्यासी।' 'बसहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सबहिं'। दूसरे पाठ में क्रिया का सर्वथा अभाव हो जाता है। पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है, इसलिए वही संगत है।

(८) ७-३०६-५ : 'काल कराल ब्याल खगराजहिं। नमत राम अकाम ममता जहि। लोभ मोह मृग जूथ किरातहि। मनसिज करि हरिजन सुखदातहि।' १७०४ में यह दोनों अर्द्धालियाँ नहीं हैं। यद्यपि यह दोनों अर्द्धालियाँ प्रसंग में ठीक हैं, किंतु इनके न होने पर भी संगति लग जाती है।

(६) ७-३० : 'येहि बिधि सकल नारि नर करहिं राम गुन गान। सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान।' 'रहहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'रह' है। 'रह' क्रिया का धातु रूप है। वह साधारणतः एकवचन है, और राम के लिए कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ है, यद्यपि लक्ष्मण, सीता, तथा अन्य लोगों के लिए आया है :

सदा सो सानुकूल रह मोपर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर। १-१८-८

मन जोगवत रह नृपु रनिवासू। १-३५२-७

भरत भूमि रह राउरि राखी। २-२६४-१

पति अनुकूल सदा रह सीता। ७-२४-८

'राम' के लिए 'रहहिं' बहुवचन रूप ही प्रयुक्त हुआ है, और आदर-सूचक होने के कारणउपयुक्त लगता है, यथा:

ताते करहिं कृपानिधि दूरी। ७-७४-७

चितवहिं राम कृपा करि जेही। ७-६६-७

अवध चले प्रभु कृपानिकेता। ७-६८-४

बोले कृपानिधान। ६-१२

(१०) ७-३१-२ : 'पूरि प्रकास रहेउ तिहुं लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह मन सोका।' 'बहुतन्ह मन' के स्थान पर १७०४ में 'बहुतेन्ह मन' पाठ है। 'बहुतेन्ह सुख' = 'बहुतों को सुख' तो ठीक है, किंतु 'बहुतेन्ह मन' ठीक नहीं है, क्योंकि 'बहुतेन्ह' द्वितीया का रूप है, और षष्ठी का रूप 'बहुतन्ह' है।

(११) ७-३४-२ : 'जय निर्गुन जय जय गुनसागर।' 'जय जय गुनसागर' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'जय गुननिधिसागर'। 'गुनसागर' की समीचीनता तो प्रकट है, किंतु 'सागर' होने पर 'निधि' की संगति 'गुन' के साथ नहीं बैठती है।

* (१२) ७-३४ : 'परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम। प्रेमभगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम।' 'मन परिपूरन काम' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'मन परपूरन काम'। 'मन परिपूरन काम' का अर्थ है 'जिसके मन की कामनाएँ भली भाँति पूर्ण हों', और 'मन पर-पूरन काम' का अर्थ है 'मन से परे और पूर्ण काम'। प्रकट है कि दूसरा पाठ अधिक संगत है।

(१३) ७-३५-२ : 'प्रनत काम सुरधेनु कलप तरु।' 'सुरधेनु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'धुकधेनु'। 'प्रनत की कामनाओं के लिए सुरधेनु'—जो पहले पाठ का अर्थ है—ठीक ही है। 'प्रनत काम धुकधेनु' से वह अर्थ नहीं निकलता, क्योंकि 'प्रनत' इस दूसरे पाठ में 'कामधुकधेनु' का विशेषण-सा हो जाता है।

(१४) ७-३७-३ : 'संतन्ह कै महिमा रघुराई। बहु बिधि बेद पुरानन्ह गाई।' १७०४ में 'पुरातन्ह' के स्थान पर पाठ है 'पुरानन्हि'। अन्यत्र भी इसी प्रकार प्रथमा का रूप 'पुरानन्ह' आया है :

दुइ सुत सुंदर सीता जाए। लवकुस बेद पुरानन्ह गाए। ७-२५-६

इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(१५) ७-४१-८ : 'संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे।' 'परहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'परिहिं'। 'लखि राखे'='लख रक्खा है' पूर्ण वर्तमान के साथ सामान्य वर्तमान 'परहिं'='पड़ते हैं' ही समीचीन लगता है। यदि 'लख रखने' का भविष्य का रूप होता, तो अवश्य 'परिहिं' अधिक समीचीन होता।

(१६) ७-४२-६ : 'नित नव चरित देख मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं। सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं।' 'अतिसय' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सुर अति'। अगले चरण में आए हुए 'तात' संबोधन से यह

प्रकट है कि पुनः पुनः गुणगान करने का आदेश करने वाले ब्रह्मा ही हैं—जो नारद के पिता हैं—देवतागण नहीं। इसलिए 'सुख मानहिं' का कर्त्ता भी अकेले ब्रह्मा या 'विरंचि' को होना चाहिए, सुर-समुदाय को नहीं।

(१७) ७-४७-८ : 'सबके बचन प्रेमरस साने। सुनि रघुनाथ हृदय हरषाने। निज निज गृह गए आयेसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई।' तीसरे चरण का पाठ १७०४ में है 'निज गृह गए सु आयेसु पाई'। 'सब' कर्त्ता से लिए 'निज निज' 'गृह' के साथ आवश्यक है, एक व्यक्ति होता तो अवश्य 'निज' मात्र ही ठीक होता।

×(१८) ७-५१-१: 'मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन।' 'सोच' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सोक'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

(१९) ७-५२ : 'तुम्हरी कृपा कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।' 'कृपायतन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'कृपालमइ'। 'कृपालमइ' अर्थहीन है। 'कृपायतन' की संगति प्रकट है।

×(२०) ७-५३-७ : 'हरि चरित्र मानस तुम गावा। 'हरि चरित्र' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'राम चरित'। ग्रंथ में दोनों एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं, और एक ही अर्थ का बोध कराते हैं।

(२१) ७-५६-६ : 'सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरौं बेरागा।' 'फिरौं' के स्थान पर १७०४ के पाठ है 'फिरैं'। यह कथन शिव अपने संबंध में कर रहे हैं, इसलिए प्रथम पुरुष की क्रिया 'फिरौं' ही समीचीन है, तृतीय पुरुष की 'फिरैं' नहीं।

×(२२) ७-५७-७ : 'बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा।' 'सुनहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सुनै'। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(२३) ७-६१-२ : 'तेहि मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा। सुनि ताकर बिनती मृदु बानी। प्रेम सहित मैं कहेउं भवानी।' 'बिनती' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बिनीत'। यद्यपि प्रसंग

में दोनों पाठ खप सकते हैं, किंतु संदेहु' की ओर स्पष्ट संकेत करने वाला 'बिनती' पाठ अधिक समीचीन लगगा है, 'बिनीत मृदु बानी' में वैसा स्पष्ट संकेत 'संदेहु' की ओर नहीं है।

(२४) ७-६४-१ : 'सुनहु तात जेहि कारन आएउं।' 'कारन' के स्थान पर १७०४ में पाठ' 'कारज' है। कारज' शब्द का प्रयोग इस प्रकार के प्रसंग में अन्यत्र कहीं भी नहीं हुआ है, 'कारन' का ही हुआ है :

केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउं बारा। १-२०७-८
समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए। १-७०-१
तुम्ह जानहु जेहिं कारन आएउं। ३-१३-२
राम काज कारन तनु त्यागी। हरिपुर गएउ परम बड़भागी। ४-८७-७

इसलिये वही प्रयोगसम्मत है।

× (२५) ७-६७ : 'कपिहि तिलक करि प्रभुकृत सैल प्रबरषन बास। बरनन बरषा सरद रितु राम रोष कपि त्रास।' 'बरनन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बरनत'। दोनो पाठ प्रसंग में एक से हैं।

(२६) ऊपर के ही दोहे में 'रितु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'कर'। 'बर्षा' और 'सरद' दो ऋतुओं के वर्णन आए हैं। इसीलिए षष्ठी की एकवचन की विभक्ति 'कर' नहीं हो सकती। पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(२७) ७-६८-६ : 'कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनन नृप नीति अनेका।' 'बरनन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बरनत'। 'पुर बरनन' और 'नृप नीति' के प्रसंग ग्रंथ में एक दूसरे से स्वतंत्र हैं, इसलए पहला पाठ अधिक उपयुक्त लगता है।

(२८) ७-६८ : 'मोहिं भएउ अति मोह प्रभु बंधन रन महं निरखि। चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन।' 'संदोह' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सो मोह'। पहले पाठ की संगति प्रकट है। दूसरे पाठ की संगति नहीं लगती। 'मोह' ऊपर प्रथम चरण में आ भी चुका है। अतः दूसरे पाठ में पुनरुक्ति भी है।

(२६) ७-७१ ४ : 'चिंता सांपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया।' 'को नहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'काहि न'। 'खाया'='खाया गया' क्रिया के साथ कर्त्ता 'को'='कौन' आवश्यक है, 'खावा'='खा डाला' होता तो अवश्य 'काहि' कर्म की आवश्यकता होती।

(३०) ७-७१-७ : 'यह सब माया कर परिवारा।' १७०४ में 'परिवारा' के स्थान पर पाठ है 'परिचारा'। दूसरा पाठ अर्थहीन है। पहला प्रसंग में ठीक ही है।

(३१) ७-७४ : 'तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि।' १७०४ में 'भजहु' के स्थान पर पाठ है भजसि'। 'भजसि' का प्रयोग तिरस्कारपूर्ण ध्वनि के साथ ही ग्रंथ में हुआ है;

तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस। ४-०/२
भजसि न मन तेहि राम कहं काल जासु को दंड। ६-०/२
सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई। ६-२७-१

यहाँ पर काग-गरुड़ संवाद चल रहा है, मन को संबोधन नहीं है, और न किसी तिरस्कारयुक्त व्यक्ति या वस्तु को संबोधन है, अतः पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत है।

(३२) ६-७६ : 'रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गंभीर।' उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन चीर।' 'चीर' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बीर'। दूसरे का कोई प्रसंग नहीं है। प्रसंग बालक राम के नखशिख का है। इसलिए पहला पाठ ही प्रसंग-सम्मत और अर्थयुक्त है।

———

परिशिष्ट

अतिरिक्त पाठ-विवेचन

१६६१/१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

×(१) १-१४-६ : 'प्रनवौं सबन्हि कपट छल त्यागे।' 'सबहिं' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'सबहिं'। यद्यपि एकाध स्थलों पर 'सबन्हि' भी मिलता है, किंतु ग्रंथ भर में सामान्यतः 'सबहिं' मिलता है, और वह इस प्रकार के प्रसंगों में भी मिलता है, यथा:

सेवइ सबन्हि मान मद नहीं। ७-२४-८
प्रनवौं सबहिं धरनि धर सीता। १-१७-६
अस कहि चलेउ सबहिं सिरु नाई। १-८३-३
येहि बिधि निज गुन दोष कहि बहुरि सबहिं सिरु नाइ। १-२९
सबहि राम पर प्रेम अपारा। २-१९-४

इसलिए 'सबहिं' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(२ १-४५ : 'संत कहहिं अस नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।' 'अस' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'असि'। 'नीति' स्त्रीलिङ्ग के साथ स्त्रीलिङ्ग विशेषण 'असि' की समीचीनता प्रकट है। 'अस' ठीक नहीं है।

(३) १-६८-६ : 'जानि कुअवसर प्रीति दुराई। सखी उछंग बैठि पुनि जाई।' 'सखी' और 'बैठि' के स्थान पर इस प्रति में क्रमशः 'सखि' और 'बैठी' पाठ हैं। प्रसंग से यह प्रकट है कि क्रिया सामान्य भूतकाल की होनी चाहिए, 'बैठी' की समीचीनता इसलिए प्रकट है। 'बैठि' पाठ में उसके पूर्वकालिक क्रिया होने का भ्रम होता है, जो उक्त पाठ में एक दोष है। 'सखि' की 'विकृति' क्षम्य है, क्योंकि उसमें ऐसे किसी भ्रम की संभावना नहीं है।

(४) १-३३३-१ : 'बूझत बिकल परसपर बाता। 'बूझत' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'पूंछत'।' 'बात' के साथ अन्यत्र 'पूंछना' के ही रूप आए हैं, यथा :

एक बात प्रभु पूछउं तोहीं। ७ ११५-८
करि पूजा मारीच तब सादर पूँछी बात। ३-४८

इसलिए 'पूंछत' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत है।

(५) ६-६-१ : 'व्याकुलता निज समुझि बहोरी। बिहंसि गएउ गृह करि भय मोरी।' 'गएउ' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'चला'। आगे की पंक्तियाँ हैं :

'मंदोदरी सुनेउ प्रभु अएउ। कौतुक ही पाथोधि बंधाएउ।
कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली अति बिनीत मृदुबानी।'

'कर गहि पतिहि भवन निज आनी' के ध्यान से अधिक संगत पाठ 'चला' प्रतीत होता है। 'गएउ' में 'जाना' की क्रिया समाप्त हो गई है, और 'चला' में वह अपूर्ण रहती है।

(६) ६-१६ : 'जथा मत्त गज जूथ महं पंचानन चलि जाइ। राम प्रताप सुमिरि उर बैठ सभा सिरु नाइ।' 'सुमिरि' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'संभारि'।' दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा:

राम प्रताप सुमिरि कपि कोपा। ६-३४-८
संभारि श्रीरघुबीर धीर प्रचारि कपि रावन हनेउ। ६-६५-छं०

दोनों के अर्थों में भी कोई वास्तविक अंतर नहीं है। यह अवश्य है कि 'संभारि' पाठ में वह छंद-विषयक विषमता नहीं है, जो अन्य पाठ में है—प्रथम और तृतीय चरणों में मात्राएं बराबर हैं।

(७) ६-४३ : 'अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गएउ अकेल। रन बांकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल।' 'सुना' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'सुनेउ कि' और 'रन' के स्थान पर पाठ है 'समर'। चौथे चरण में आए हुए 'चढ़ेउ' के अनुरूप होने के कारण 'सुनेउ' की समीचीनता प्रकट है। 'समर' पाठ से छंद-विषयक वह विषमता नहीं रह जाती जो केवल 'सुनेउ' पाठ से होती—उस दशा में दोहे के प्रथम और तृतीय चरणों में मात्रा-विषयक विषमता होती। एक और प्रति में पाठ 'सुने' है। 'सुने' बहुवचन है; उसी कर्त्ता के लिए एकवचन क्रिया 'चढ़ेउ' के आने से उसकी अशुद्धि प्रकट है।

×(८) ६-४८ : 'सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध ।' 'तासों' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'तोहि सन'। दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

तासों तात बयरु नहिं कीजै । ३-२५-४
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै । ५-२२-१०
तोहि सन जागबलिक पुनि पावा । १-३०-१
तेहि तेहि सन काम । १-८०

(९) ६-५३ : 'जम्यो गाड़ भरि भरि रुधिर ऊपर धूरि उड़ाइ । जनु अंगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ ।' इस प्रति में 'जनु' के स्थान पर पाठ है 'जिमि' और 'रह्यो' के स्थान पर पाठ है 'रह' । दोनों पाठों में वास्तविक अंतर इतना ही प्रतीत होता है कि 'रह्यो' ब्रजभाषा रूप के स्थान पर इस प्रति में 'रह' अवधी रूप है; 'जनु' और 'जिमि' अथवा उत्प्रेक्षा और उदाहरण का अंतर 'रह्यो' और 'रह' के ही अंतर के कारण ही किया हुआ प्रतीत होता है ।

(१०) ६-६४-६ : 'बंधु बंस तैं उजागर । भजेहु राम सोभा सुखसागर ।' 'तैं' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'तुम्ह' । 'भजेहु' क्रिया के साथ 'तुम्ह' रूप जितना समीचीन लगता है उतना 'तैं' नहीं ।

×(११) ६-७७-१ : 'बिनु प्रयास हनुमंत उठावा । लंका द्वार राखि पुनि आवा । तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा । चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा ।' 'पुनि' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'तेहि'। दोनों पाठ संगत हैं। 'राखि पुनि आवा' का अर्थ होगा 'रखने के अनंतर वापस आ गए ।' और 'राखि तेहि आवा' का अर्थ होगा 'उसको रख कर वापस आ गए' ।

कोदवराम के स्वीकृत पाठभेद

×(१) १-२१-७ : 'नाम रूप गुन अकथ कहानी ।' 'गुन' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'गति' । प्रसंग नाम और रूप का है । उसमें दोनों पाठ खप जाते हैं ।

(२) १-६७-७ : 'सुनहु जो अब अवगुन दुइ चारी।' 'जो' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'जे'। 'दुइ चारी' विशेषण से 'अवगुन' का बहुवचन होना प्रकट है; इसलिए उसके लिए संबंधवाचक बहुवचन विशेषण 'जे' 'जो' की अपेक्षा अधिक समीचीन है।

(३) १-२८४-३' : 'छत्रिय तनु धरि समर डेराना। कुल कलंक तेहि पामर आना।' 'डेराना' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'सकाना' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथाः

कोलाहल सुनि सीय संकानी। १-२६७-५
अपभय सकल महीप डेराने। १-२८५-८

'समर सकाना' में अनुप्रास का अनुरोध अवश्य है।

×(४) २-१३४-१ : अन्य पाठ है 'दिगपाला' ; उसके स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'दिसिपाला।' दोनों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है। दोनो प्रयोगसम्मत भी हैं।

×(५) २-२३६-३ : 'खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष बृक साजु सराहा।' 'बृक' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'बृष'। दोनों पाठों से संगति लग जाती है।

(६) ६-२४-१३ : 'बलिहि जितन एक गएउ पताला। राखेउ बांधि सिसुन्ह हय साला।' 'राखेउ' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'राखा'। प्रसंग में 'आ'-अंत्य क्रियाएँ ही आई हैं :

एक बहोरि सहज भुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा।
कौतुक लागि भवन लेइ आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छुड़ावा। ६-२४-१६

इसलिए 'राखा' पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(७) ६-३३-३ : 'मर्कटहीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस दोउ भाई।' पहले चरण का पाठ इस प्रति में है : 'महि अकीस करि फेरि दोहाई।' इस प्रति के पाठ में अन्य पाठ की सभी बातें तो हैं ही, 'दोहाई फिरने' का आदेश और आ गया है, और यह निस्संदेह अधिक संगत है।

(८) ६-३७-८ : 'काल निकट जेहिं आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहिं नाईं।' इस प्रति में 'आवत' के स्थान पर पाठ है 'आवै'।

'श्रम होइ' के अनुरूप होने के कारण 'आवै' या 'आवइ' पाठ अधिक उपयुक्त लगता है, अन्यथा दोनों पाठों में अर्थ-विषयक अंतर नहीं है।

(९) ६-७३ : 'गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पासु। सो प्रभु आव कि बंधतर ब्यापक बिस्व निवास।' 'जासु' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'जाकर'। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

जाकर नाम सुनत सुभ होई। १-१९३-५

जासु नाम बल करउं त्रिसोकी। १-११९-१

जासु नाम जपि एक बारा। २-११०-३

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। ५-२८-३

केवल इस प्रति के 'जाकर' पाठ में छंद-विषयक वह विषमता नहीं है जो अन्य पाठ में है—दोहे के प्रथम और तृतीय चरणों में मात्राएँ बराबर हैं।

(१०) ६-७४-८ : अन्य पाठ हैं : 'फिरायो' और 'देखरायो'। उनके स्थान पर इस प्रति में पाठ क्रमशः 'फिरावा' और 'दिखरावा' हैं। दोनों पाठों में अंतर भाषा मात्र का है : पहला ब्रज का रूप है, और दूसरा अवधी का। ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण इस प्रतिका पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(११) ६-७७-१ : अन्य पाठ हैं 'उठायो' और 'आयो'। उनके स्थान पर इस प्रति में पाठ है क्रमशः 'उठावा' और 'फिरावा'। इन पाठों में भी अंतर उपर्युक्त प्रकार का ही है। ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण इस प्रति का पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(१२) ६-८६-२ : 'देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी।' दूसरे चरण का पाठ इस प्रति में है : 'बहु अंगद लछमन कपिधनी।' प्रसंग रावणकृत माया का है। यह कम उचित ज्ञात होता है कि राम पर रावण की माया व्याप्त हो—यहाँ तक कि राम की भी रचना रावण की माया ने की हो—जब कि राम की मुद्रिका के संबंध में सीता ने अपने मन में कहा था :

माया ते असि रचि नहिं जाई। ५-१३-३

इसलिए इस प्रति का पाठ अधिक समीचीन लगता है।

१८७८ के स्वीकृत पाठभेद

×(१ , १-६६-४ : 'सूप सास्त्र जस किछु ब्यवहारा ।' 'किछु' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'कछु'। दोनों रूप ग्रंथ भर में मिलते हैं, यद्यपि अधिकतर 'कछु' रूप मिलता है, यथा :

मुनि पूछब किछु येह बड़ सोचू। २-२०६-७
तब किछु कीन्ह राम रुख जानी। २-२१८-४
जो किछु कहब थोर सखि सोई। २-२२३-२
कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। २-१-५
अब कछु कहब जीभ करि दूजी। २-१६-१
जौं असत्य कछु कहब बनाई। २ १६-५

× २) १-२३६-१० : 'सदानंद तब जनक बोलाए। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए। जनक बिनय तिन्ह आइ सुनाई। हरषे बोलि लिए दोउ भाई।' 'आइ' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'आनि'। दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है।

(३) २-२६-८ : 'बेगि प्रिया परिहरहु कुबेषू।' 'परिहरहु' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'परिहरहि'। 'परिहरहि' अधिक समीचीन है, क्योंकि प्रसंग में विधि में क्रिया का '-इ' अंत्य रूप ही आया है :

भूषन सजहिं मनोहर गाता। २-२६-७
सजहि सुलोचनि मंगल साजू। २-२७-३

×(४) २-२७-४ : अन्य पाठ 'हृदउ' है। उसके स्थान पर इस प्रति में पाठ 'हृदय' है। यद्यपि सामान्यतः 'हृदय' ही ग्रंथ भर में मिलता है, एकाध स्थल पर 'हृदउ' भी मिलता है, यथा :

हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि। २-१४६

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं।

(५) २-२१-२ : 'मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कुबरि खर सान बनाई।' 'कुबरि खर' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'कूबरी'। 'खर' के कारण 'कूबरी' को 'कूबरि' करना पड़ा है। किंतु 'खर' 'बनाई'= 'भली भाँति' के आने के कारण अनावश्यक है; इसलिए 'कूबरी' पाठ अधिक उपयुक्त लगता है।

×(६) २-१४८-५ : 'आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमि तन निपट मलीना।' 'तन' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'तल'। दोनों पाठों से अर्थ निकल आता है।

(७) २-१७७-३ : 'मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी। उचित कि अनुचित किए बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू।' इस प्रति में पाठ है 'गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भल जानी।' 'हित बानी' केवल 'बानी' की अपेक्षा ऊपर की दोनों अर्द्धालियों के साथ अधिक सम्मत लगता है— ऊपर की अर्द्धालियाँ हैं :

'मोहिं उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सब ही का।
मातु उचित धरि आयेसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा।'

'नीका उपदेस' और 'उचित आयेसु' के साथ 'हित बानी' के स्थान पर केवल 'बानी' कहने से उन दोनों की गरिमा कम हो जाती है। इसी प्रकार 'बिनहिं बिचार करिअ' कहने की अपेक्षा 'मन मुदित करिअ' कहना 'नीक उपदेस' और 'उचित आयेसु' के लिए अधिक समीचीन लगता है।

(८) ४-८-६- : 'कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस सबै गै पीरा।' 'सबै गै' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'गई सब'। दोनों में अर्थ-विषयक अंतर नहीं है, केवल दूसरे में 'जाना' क्रिया पहले आती है, जिससे स्पर्श मात्र से अविलंब पीड़ा हरने की ध्वनि जितने स्पष्ट रूप से निकलती है, उतना पहले पाठ से नहीं।

× (६) ६-३१-१ : 'मुएहिं बधे न कछू मनुसाई।' 'न कछू' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'कछु नहिं'।' दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं, यथा :

ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर न कछू बसाई। १-१८४-छं०
फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। १-८६-५
सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। १-११६-१

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

(१) १-६३ छं० : 'खर स्वान असुर सृगाल मुख गन बेष अगनित को गनै।' 'असुर' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'सुअर'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, किंतु 'खर', 'स्वान' और 'सृगाल'—जंतुओं—की पंक्ति में 'सुअर' अधिक संगत और समीचीन लगता है।

(२) १-१७५-२ : 'सोचहिं दैवहिं दूषन देहीं। बिरचत हंस काग किअ तेहीं।' 'तेहीं' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'जेहीं'। संगति दोनों पाठों से लग जाती है। किंतु 'जेहीं' पाठ पहले चरण के साथ दूसरे चरण को जोड़ देता है, और दोनों चरणों की उक्तियों को स्पष्टतः उपमेय और उपमान के रूप में उपस्थित करता है, इसलिए अधिक समीचीन लगता है।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-२-१० : 'हरिहर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी।' १७६२ में 'सकल' के स्थान पर पाठ है 'सुलभ'। 'सुलभ' विशेषण का प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है, किंतु इस ध्वनि के साथ कि वह पदार्थ केवल साधन-विशेष के द्वारा अथवा किसी अन्य पदार्थ की तुलना में सहज-प्राप्य है, यथा :

सेवत तोहिं सुलभ फल चारी। १-२३६-१
सब कहं सुलभ पदारथ चारी। २-२१५-७
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा। ७-४४-८
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। १-२०-२
जोगि बृंद दुर्लभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई। ३-३६-८

'सुनत सुलभ'='सुनने में सहज प्राप्य है'—अन्यथा दुर्लभ है—यह कथन संगत नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि कथा तो सुनने से ही प्राप्त होती है; पढ़ना भी अंततः सुनना ही है। 'सकल' पाठ के संबंध में ऐसी कोई कठिनाई नहीं है; वह 'मुद मंगल' का विशेषण है, और संगत है।

२ । १-४-७ : 'जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं।' 'गरहीं' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'गलहीं'। क्रिया के रूप में 'गरना' ही प्रयुक्त हुआ है, 'गलना' नहीं, यथा :

गरहिं गात जिमि आतप ओरे। २-१४०-८
गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा। २ १६२-२

इसलिए 'गरहीं' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(३) १-१० छं० : 'मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की। गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की।' 'रघुनाथ' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'रघुबीर'। 'पाथ' के साथ तुक के लिए 'रघुनाथ' पाठ ही समीचीन है। भूल स्पष्ट है।

(४) १-२३-२ : 'मोरें मत बड़ नाम दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूते।' 'निज बूते' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'निह बूते'। 'जुग' शब्द 'निर्गुण' तथा 'सगुण' नामक ब्रह्म के दो स्वरूपों के लिए आया है। नाम ने दोनों को 'निह बूते' = 'अशक्त' कर दिया है, यह कथन ठीक नहीं लगता। उसने उन्हें 'निजबूते' = 'अपनी शक्ति की सीमा के भीतर' कर लिया है, यही कथन युक्तिसंगत लगता है।

(५) १-२८-१० : 'येह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसल राऊ।' 'जान सिरोमनि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जानि सिरोमनि'। प्रसंग से यहाँ पर 'सुजान शिरोमणि' अर्थ अभीष्ट जान पड़ता है, और इसके लिए अन्यत्र भी 'जान सिरोमनि' ही आया है :

तुम परिपूरन काम जान सिरोमनि भाव प्रिय। १-३३६

इसलिए 'जान सिरोमनि' पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है।

(६) १-२६-३ : 'सुनि अवलोकि सुचित चख चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही।' 'सुनि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'श्रुति'। 'श्रुति' का यहाँ पर कोई प्रसंग नहीं है। 'सुनि' ही प्रसंगसम्मत है।

(७) १-३०-१ : 'जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनि-बरहिं सुनाई।' 'सुहाई' और 'सुनाई' के स्थानों पर १७६२ में क्रमशः

'सुनाई' और 'सुहाई' है। 'सुहाई' 'कथा' का विशेषण है, यह प्रकट है; इसलिए उसका इसके निकटतर होना अधिक समीचीन है।

(८) १-३६-८ : 'मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन।' 'सकिलि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सकल'। 'सकल' = 'समस्त' संगत नहीं है, 'सकिलि' = 'एकत्र होकर' ही प्रसंगसम्मत है।

(९) १-३६ : 'सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारु।' 'बर' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'रुचि' है। 'रुचि' की अर्थहीनता और 'बर' की अर्थ युक्तता प्रकट है।

(१०) १-४३-६ : 'सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें।' 'मिटहिं' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'मिटिह'। 'मिटिह' व्याकरणसम्मत नहीं है। उसके स्थान पर 'मिटिहिं' पाठ मान लिया जावे तो अर्थ होगा 'मिटेंगे'। किंतु क्रिया का यह रूप प्रस्तुत प्रसंग में ठीक नहीं लगता, क्योंकि ऊपर की पंक्तियों में इस ढंग की जो उक्तियाँ आई हैं, उनमें वर्त्तमानकाल की क्रियाएँ हैं, भविष्य की नहीं :

'राम सुपेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी।
भव स्रम सोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा।
काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन।'

(११) १-४७-२ : 'मुसुकाई' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'मुसकाई'। ग्रंथ भर में 'मुसुकाना' के ही रूप हैं, 'मुसकाना' के नहीं। इसलिए 'मुसुकाई' ही प्रयोगसम्मत है।

(१२) १-४७ : 'कहौं सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद। भएउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद।' तीसरे चरण में 'जेहि' के स्थान पर पाठ है 'अब'। 'अब' प्रथम चरण में आ चुका है, इसलिए १७६२ के पाठ में पुनरुक्ति तो है ही, 'जेहि' के बिना 'हेतु' भी असंबद्ध और असंगत हो जाता है।

एक अन्य पाठ 'जेहि' के स्थान पर 'सो' है। 'सो' भी प्रथम चरण में आ चुका है, अतः इस पाठ में भी पुनरुक्ति है।

(१३) १-४७ : ऊपर के ही दोहे में 'मिटिहि' के स्थान पर १७६२

में पाठ है 'मिटहि'। एकवचन की वर्त्तमानकालिक क्रिया के रूप में 'मिटइ' ही ग्रंथ भर में मिलता है, 'मिटहि' नहीं, और 'मिटहिं' पाठ हो नहीं सकता क्योंकि कर्त्ता 'बिषाद' एकवचन है। इसलिए एकवचन का भविष्य कालिक रूप 'मिटिहि' ही समीचीन लगता है।

(१४) १-५२-७ : 'को करि तरक बढ़ावै साखा।' 'करि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'कै'। 'कै' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'की' के अर्थ में हुआ है, जिसका यहाँ पर कोई प्रयोजन नहीं है। 'करि'= 'करके' प्रसंगसम्मत है, यह स्पष्ट है।

(१५) १-६०-४ : 'जाइ संभु पद बंदन कीन्हा।' 'जाइ' के स्थान पर १७६२ का पाठ है 'जोइ'। 'जोवना' का प्रयोग 'देखना' के अर्थ में हुआ है, यथा :

कहत न बनइ जान जेइ जोवा। १-३५६-४

किंतु 'बंदन' या 'पद-वंदन' करने के प्रसंग में वंदित या वंदित के चरणों को 'जोवने'—'देखने' का अन्यत्र कहीं नहीं उल्लेख हुआ है, अतः वह ठीक नहीं लगता। 'जाइ'='जाकर' की प्रासंगिकता प्रकट है, क्योंकि पूर्व में कहा गया है :

'बीते संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी।
राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे।'

अर्थात् जब शिव की राम-ध्वनि पार्वती ने सुनी, तब वह यह समझ कर उनके पास गईं कि अब उन्होंने समाधि समाप्त की है।

(१६) १-६५-२ : 'सकल सुरन्ह बिधिवत फल दीन्हा।' 'सुरन्ह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सुरन्हि'। 'देवताओं को' के अर्थ में अन्यत्र भी 'सुरन्ह' का ही प्रयोग हुआ है :

सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। १-१७४-८

ते तब सुरन्ह समर संघारे। १-१७६-१

इसलिए वही प्रयोगसम्मत लगता है, 'सुरन्हि' नहीं।

(१७) १-६६-४ : 'जौं बिबाह संकर सन होई। दोषौ गुन सम कह सब कोई।' 'सम कह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'समान'।

'समान' पाठ में 'सब कोई' अर्थहीन हो जाता है, उसके लिए 'कह' क्रिया आवश्यक है।

(१८) १-७५-४ : 'मिलहिं जबहिं अब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा।' 'जानेहु' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जानिहु'। 'जानिहु' = 'तुमने जाना' का कोई प्रसंग नहीं है, 'जानेहु' = 'तुम जानना' ही प्रासंगिक है।

(१९) १-७९-१ : 'दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवन न देखा आई।' १७६२ में 'दच्छसुतन्ह' के स्थान पर पाठ है 'दच्छसुतन्हि'। 'सुतों को' के अर्थ में 'सुतन्ह' ही प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है, जैसा ऊपर अभी हमने 'सुरन्ह' के विषय में देखा है।

(२०) १-८६ छं० : 'सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही।' १७६२ में 'अनल' के स्थान पाठ है 'अनिल'। 'मदन' और 'अनिल' = 'वायु की मित्रता की कोई प्रसिद्धि नहीं है। मित्रता 'वायु' और 'अनल' = 'अग्नि' की अवश्य प्रसिद्ध है, और देखी भी जाती है। इसलिए 'मदन' = 'काम' और 'अनिल' = 'वायु' 'सच्चे सखा हैं', कहने की अपेक्षा 'त्रिविध समीर जो कामाग्नि का वास्तविक सखा है' कहना अधिक संगत लगता है।

×(२१) १-९२-६ : 'तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा।' 'सोइ' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सो'। दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(२२) १-९४ छं० : 'लघु लागि बिधि की निपुनता अवलोकि पुरसोभा सही।' 'पुर' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सुर'। यहाँ पर प्रसंग 'पुर' का ही है, ऊपर की अर्द्धाली है :

• 'पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागै लघु बिरंचि निपुनाई।'

'सुर' पाठ नितांत असंगत है।

(२३) १-९५ छं० : 'जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही। देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही।' 'देखिहि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'देखहि'। 'जिअत

रहिहि' (भविष्य) के अनंतर 'देखिहि' (भविष्य) ही समीचीन है, 'देखहि' (वर्त्तमान) नहीं। इसके अतिरिक्त एकवचन कर्त्ता 'सो' के साथ 'देखइ' ही प्रयोगसम्मत होगा, 'देखहि' नहीं।

(२४) १-९५ छं० : ऊपर के ही छंद में 'लरिकन्ह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'लरिकन्हि'। प्रथमा में '– न्हि' रूप कहीं नहीं मिलता, '—न्ह' रूप ही मिलता है, इसलिए वही प्रयोगसम्मत है।

×(२५) १-९६-७ : 'अधिक सनेह गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी।' 'भरे' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'भरि'। दोनों प्रयोगसम्मत लगते हैं, यथा :

उमहिं बिलोकि नयन भरे बारी। १-७२-६
बचनु न आव नयन भरे बारी। ५-१४-७
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। २-१०२-४
कहि न सकहिं कछु प्रेमबस भरि भरि लोचन बारि। ६-११८

(२६) १-९७-८ : 'मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका। 'जनि' स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जिनि'।' बाद के छंद में भी जहाँ यह शब्दावली ली गई है, पाठ 'जनि' ही है :

'जनि लेहु मातु कलंक करुना परिहरहु अवसर नहीं।'

इसलिए 'जनि' की समीचीनता प्रकट है। अन्यत्र भी कहीं 'जिनि' नहीं आया है, इसलिए वह प्रयोगसम्मत नहीं है।

(२७) १-९८-३ : 'अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि।' 'संभु' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'संग'। 'संभु' के बिना पंक्ति की संगति नहीं लगती—किसके संग निवास करने वाली हैं ?

(२८) १-१०० छं० : 'कोटिहु बदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा।' 'कोटिहु' के स्थान पर १७६२ में है 'कोटिबहु'। इस छंद की प्रारंभिक शब्दावली—जैसे अन्यत्र—पूर्ववाली अर्द्धाली के अंतिम शब्दों की पुनरावृत्ति मात्र है, और वहाँ पाठ 'कोटिहु' है :

'सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहु बदन बखानी।'

'कोटिहु' पाठ की समीचीनता इसलिए प्रकट है। 'कोटिबहु' पाठ में छंद-दोष भी है।

(२६) १-१०३-८ : 'षन्मुख जन्म सकल जग जाना।' १७६२ में 'षन्मुख' के स्थान पर पाठ 'षटमुख' है। नीचे के छंद में पुनः यह शब्दवाली प्रारंभिक शब्दों के रूप में—जैसे अन्यत्र—दुहराई गई है, और वहाँ पाठ 'षन्मुख' है :

'जगु जान षन्मुख जनम करम प्रताप पुरुषारथ महा।'

इसलिए 'षन्मुख' पाठ की समीचीनता प्रकट है।

(३०) १-१०७-२ : 'पारबती भल अवसरु जानी।' १७६२ में 'भल' के स्थान पर पाठ है 'भलि'। 'अवसर' ग्रंथ भर में पुल्लिंग है, यथा :

जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भएऊ। १-१८६-८
नामकरन कर अवसरु जानी। १-२२८-२
कवने अवसरु का भयउ गएउ नारि बिस्वास। २-२६
पुनि न बनिहि अस अवसरु आई। ३-४०-७

इसलिए स्त्रीलिंग रूप 'भलि' प्रयोगसम्मत नहीं है, पुल्लिंग रूप 'भल' ही प्रयोगसम्मत है।

(३१) १-१०८ : भ्रमति बुद्धि अति मोरि।' 'भ्रमति' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'भ्रमत'। 'मोरि' से बुद्धि का स्त्रीलिंग होना प्रकट है, और ग्रंथ भर में वह स्त्रीलिंग है। इसलिए उसके लिए क्रिया स्त्रीलिंग 'भ्रमति' ही समीचीन है, पुल्लिंग भ्रमत' नहीं।

(३२) १-११६-८ : 'परमानंद परेस पुराना।' 'परेस' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'पुरुष'। 'पुरुष' पाठ से छंद की गति बनी नहीं रहती, 'परेस' में यह त्रुटि नहीं है, यद्यपि संगति दोनों से लग जाती है।

(३३) १-१२१-६ : 'बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।' 'अधम' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'अधरम'। 'अधरम' पाठ में मात्राधिक्य स्पष्ट है, 'अधम' पाठ में यह दोष नहीं है, यद्यपि अर्थ दोनों से लग जाता है।

(३४) १-१२३-३ : 'कस्यप अदिति तहां पितु माता। दसरथ

कौसिल्या बिख्याता।' 'तहां' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'महा'। 'तहां' की प्रासंगकिता प्रकट है—अर्थ है 'उस अवतार में'; 'महा' की कोई संगति नहीं है।

(३५) १-१२८-६ : 'बहुते दिनन्ह कीन्हि मुनि दाया।' 'दिनन्ह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'दिनन'।' बहुवचन के लिए सर्वत्र—'न्ह' परसर्ग प्रयुक्त हुआ है न कि—'न'। इसलिए 'दिनन' पाठ की अशुद्धि प्रकट है।

×(३६) १-१३०-३ : 'रूप तेज बल नीति निवासा।' 'नीति' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सील'। दोनों पाठों से संगति लग जाती है।

(३७) १-१३८ : 'तब भए अंतरधान बहु बिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु।' 'अंतरधान' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'अंतरध्यान'। शुद्ध होने के अतिरिक्त अन्यत्र भी 'अन्तरधान' ही है, 'अंतरध्यान' नहीं :

अंतरधान भए अस भाषी। १-७७-७
अंतरधान भए भगवाना। १-१५२-६
अंतरधान भए मुनि गए ब्रह्म आगार। ७-१३

इसलिए 'अंतरधान' ही प्रयोगसम्मत भी है।

(३८) १-१४१-२ : 'जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भएउ कोसलपुर भूपा।' १७६२ में 'जेहि' के स्थान पर पाठ 'केहि' है। पूर्व की पंक्ति यह है :

'अपर हेतु सुनु सैल कुमारी। कहौं बिचित्र कथा बिस्तारी।' इसलिए यह प्रकट है कि प्रसंग प्रश्न का नहीं, उत्तर का है, और इसलिए प्रश्नवाचक केहि' नहीं, 'संबंधवाचक' 'जेहि' ही समीचीन है।

(३९) १-१४३-१ 'बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा।' 'बन' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'तब'। 'तब' पाठ में पुनरुक्ति तो है ही, 'गवन' का कोई स्थानवाची कर्म भी नहीं रह जाता, इसलिए उसकी अशुद्धि प्रकट है। 'बन' पाठ इन दोषों से मुक्त है।

(४०) १-१४६ : 'नील सरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम।
'नीरधर' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'नीरनिधि'। श्यामता के उपमान के लिए 'नीरधर'='पानी वाले बादल' की समीचीनता प्रकट है, 'नीरनिधि'='समुद्र' की नहीं, क्योंकि समुद्र तो अन्य वर्णों के भी होते हैं --क्षीर सागर तो श्वेत वर्ण का है। अन्यत्र भी श्यामता के उपमान पानी वाले बादल ही हैं, समुद्र नहीं, यथा :

नील जलद तनु स्याम। ३-८

अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। ६-८६-६

इसलिए 'नीरधर' पाठ ही प्रयोगसम्मत भी है।

(४१) १-१४६ : 'दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहौं सति भाउ।'
'सति भाउ' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सत भाउ'। ग्रंथ भर में 'सति भाउ' ही प्रयुक्त हुआ है, 'सत भाउ' नहीं, यथा :

सुनु सति भाउ कहउँ महिपाला। १-६१-८

तातें प्रभु पूछउँ सति भाऊ। १-२१६-४

मोरि सपथ तोहि कहि सति भाऊ। २-४२-८

तुम सरबज्ञ कहउँ सति भाउ। २-१११-३

साधु सभा गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल सति भाऊ। २-२६१

इसलिए 'सति भाउ' ही प्रयोगसम्मत है, 'सत भाउ' नहीं।

(४२) १-१५१ : 'तहं करि भोग बिसाल तात गएं कछु काल पुनि। होइहहु अवध भुवाल तब मैं होब तुम्हार सुत।' 'बिसाल' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'बिलास'। यद्यपि 'भोग' के साथ 'बिलास' अन्यत्र भी आया है, और स्वतंत्र रूप से भी आया है :

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। १-११३-५

कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू। २-११६-५

तेहि कि मोह सक बिषय बिलासू। २-१४०-८

किंतु प्रसंग यहाँ पर सांसारिक भोग-विलास का नहीं है – स्वर्गीय सुख-भोग का है :

'अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी।'
और उस सुख-भोग के लिए 'बिसाल' विशेषण संगत ही है।

(४३) १-१५७-४ : 'प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिसबस भूप चलेउ संग लागा।' १७६२ में 'बस' नहीं है। अशुद्धि प्रकट है।

×(४४) १-१६२-१ : 'ताते गुपुत रहौं जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं।' 'जग' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'बन'। ऊपर ही आया है : 'लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु।' इसलिए 'बन' पाठ में पुनरुक्ति सी प्रतीत होती है। अन्यथा दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

(४५) १-१६७-८ : 'जलधि अगाध मौलि बह फेनू।' 'जलधि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जल'। 'जल' पाठ में एक मात्रा की कमी के कारण छंद-दोष प्रकट है।

(४६) १-१७८ : 'सूर प्रतापी अतुल बल दल समेत बस सोइ।' १७६२ में 'दल' शब्द नहीं है। अशुद्धि प्रकट है।

(४७) १-१०३ छं० : अन्य पाठ दीर्घ तुकांत है, १७६२ का पाठ ह्रस्व तुकांत है। अन्यत्र यह छंद दीर्घ तुकांत है, इसलिए यहाँ पर ह्रस्व तुक अशुद्ध लगते हैं, यद्यपि अर्थ में दोनों पाठ एक हैं।

(४८) १-१८६ छं० : अन्य पाठ में पूरा छंद दीर्घ तुकांत है, १७६२ में नीचे लिखे दो चरणों को छोड़कर सभी ह्रस्व तुकान्त है :

'जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा।'

यद्यपि अर्थ में दानों पाठों में कोई अंतर नहीं है, किंतु ग्रंथ भर में यह छंद दीर्घ तुकांत है, और यहाँ भी ऊपर लिखे छंद के दो चरण दीर्घ तुकांत हैं, इसलिए समस्त चरणों का दीर्घ तुकांत होना ही युक्तियुक्त है।

(४९) १-१८७-८ : 'तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना।' 'फिरे' स्थान पर १७६२ में पाठ है 'फिरेउ'। 'सुर' यहाँ पर बहुवचन है, जैसा ऊपर वाली अर्द्धाली से प्रकट है :

'निर्भय होहु देव समुदाई।'

इसलिए बहुवचन क्रिया 'फिरे' ही बहुवचन कर्त्ता 'सुर' के लिए शुद्ध है, एकवचन क्रिया 'फिरेउ' नहीं।

(५०) १-१६२-छं० : अन्य पाठ दीर्घतुकांत है। १७६२ में द्वितीय तथा चतुर्थ चतुष्पदियों का पाठ ह्रस्वतुकांत है। यद्यपि अर्थ में दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं हैं, किंतु यह छंद ग्रंथ भर में दीर्घ तुकांत है, और यहाँ भी शेष दो चतुष्पदियाँ-प्रथम और तृतीय-दीर्घ तुकांत हैं, इसलिए दीर्घ तुकांत पाठ ही शुद्ध प्रतीत होता है।

(५१) : १-१०-३ : अन्य पाठ है 'कोही', उसके स्थान पर १७६२ में पाठ है 'क्रोही'। 'क्रोही' या 'क्रोही' ग्रंथ भर में अन्यत्र नहीं आया है, या तो 'क्रोध' और 'क्रोधी' आया है, और या तो 'कोह' और 'कोही' आया है :

कोहु मोहु ममता मद त्यागी। १-३४१-५
जिमि चह कुसल अकारन कोही। १-२६७-२

इसलिए 'क्रोही' नहीं, 'कोह' ही प्रयोगसम्मत है।

(५२) १-२१४-३ : 'सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे।' 'नृप' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'नृत' है। 'नृत' अन्यत्र कहीं नहीं आया है, सर्वत्र 'नृत्य' ही आया है, यथा:

कबहुंक नृत्य करइ गुन गाई। ३-१०-१२

फिर 'नृत्यगृह' के साथ 'सूर सचिव सेनप' के गृहों की तुलना करने में कोई संगति भी नहीं दिखलाई पड़ती है। 'नृपगृह' के साथ तुलना करना ही संगत होगा।

(५३) १-२१७-१ : 'मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकौं निज पुन्य प्रभाऊ।' १७६२ में 'मुनि' में स्थान पर पाठ है 'सुनि'। 'सुनि' पाठ मानने पर 'देखि' क्रिया कर्महीन और 'सुनि' निरर्थक हो जाता है। 'मुनि' संबोधन सर्वथा संगत है. और इस पाठ के साथ 'देखि' क्रिया का कर्म 'तव चरन' समीचीन है।

(५४) १-२१७-१ : ऊपर वाली अर्द्धाली में ही १७६२ के 'चरन' के स्थान पर पाठ 'चरित' है। विश्वामित्र अभी-अभी जनक से मिले हैं, 'चरित देखना' फलतः असंगत है, 'चरन देखना' = 'दर्शन करना' ही संगत है।

(५५) १-२४०-६ : 'चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुवान जरठ नर नारी।' 'जरठ' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जठर'। ग्रंथ में 'जठर' 'उदर' के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो उसके तत्सम अर्थ के अनुरूप है, किंतु यहाँ पर 'उदर' का कोई प्रसंग नहीं है। प्रसंग यहां पर 'वृद्ध' का है, जिसके लिए 'जरठ' शब्द ही उचित है और अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है, इसलिए वही प्रयोगसम्मत भी है।

(५६) १-२४१-२ : 'गुनसागर नागर बर बीरा'। १७६२ में 'नागर' शब्द नहीं है। अशुद्धि प्रकट है।

(५७) १-२४५ : 'सीय बिआहब राम गरब दूरि करि नृपन्ह को।' 'को' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'के' है। भाववाचक संज्ञा होने के कारण 'गरब' का एकवचन प्रयोग ही समीचीन है, बहुवचन नहीं, और इसलिए उसके लिए एकवचन विभक्ति 'को' की समीचीनता और बहुवचन विभक्ति 'को' की असमीचीनता भी प्रकट है।

(५८) १-२६१-३ : 'का बरषा सब कृषी सुखाने।' 'का' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'को'। वर्षा जैसे निर्जीव पदार्थ के लिए 'को' = 'कौन व्यक्ति' अर्थहीन है, 'का' = 'कौन सी वस्तु' ही सार्थक है।

(५९) १-२६७-१ : बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि ससु चहै नाग अरि भागू।' 'ससु' के स्थान पर १७६२ में 'सिसु' पाठ है। 'बैनतेय' और 'काग' में पक्षी होते हुए भी जिस प्रकार बलवान और बलहीन होने का अंतर है, उसी प्रकार 'नाग अरि' = 'सिंह' और 'ससु' = 'खरहा' में जंतु होते हुए है। इसलिए 'ससु' पाठ की समीचीनता प्रकट है। 'सिसु' यहाँ असंगत लगता है।

(६०) १-२७०-४ : 'उलटौं महि जहं लगि तव राजू।' १७६२ में 'लगि' के स्थान पर पाठ है 'लहि'। 'लहि' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'तक' के अर्थ में नहीं हुआ है; 'तक' के अर्थ में सर्वत्र 'लगि' ही प्रयुक्त हुआ है, इसलिए 'लगि' ही प्रयोगसम्मत है।

(६१) १-२८६-४ : 'बिगत त्रास भइ सीय सुखारी।' १७६२ में 'भइ' के स्थान पर पाठ 'भय' है। 'भय' पाठ से वाक्य क्रियाहीन हो जाता है। 'भइ' पाठ में यह दोष नहीं है।

(६२) १-२६६-६ : 'तदपि प्रीति कै रीति सुहाई।' १७६२ में 'रीति' के स्थान पर भी पाठ 'प्रीति' है। दूसरा 'प्रीति' स्पष्ट ही असंगत है। 'प्रीति की रीति' की संगति प्रकट है।

(६३) १-३०८-१६ : 'बिप्र बृंद बंदे दुहुं भाई।' 'बंदे' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'बंदेहु'। 'दुहुं भाई' बहुवचन कर्त्ता के लिए 'बंदे' बहुवचन क्रिया की समीचीनता प्रकट है, 'बंदेहु' एकवचन अशुद्ध है। फिर, एकवचन क्रिया ग्रंथ भर में 'उ' अंत्य है '-हु' अंत्य नहीं। '-हु' का प्रयोग 'ही' के ही अर्थ में हुआ है अर्थ होगा 'बंदना करने पर भी'।

(६४) १-३५६-३ : 'उपबरहन बर बरनि न जाहीं।' १७६२ में 'बर' शब्द नहीं है। भूल स्पष्ट है।

(६५) २-११ : 'बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु। राम जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर काजु।' १७६२ में 'आजु' के स्थान पर भी पाठ 'काजु' है। 'काजु' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है।

(६६) २-२१-७ : 'पूंछेउं गुन्हि रेख तिन्ह खांची।' 'तिन्ह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'ते'। 'खांची' सकर्मक क्रिया सामान्य भूत काल की है। इसलिए उसके कर्त्ता के लिए 'तिन्ह' पाठ ही समीचीन है, 'ते' नहीं, यथा:

जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। १-९१-६

(६७) २-२८-३ : 'झूठेहु हमहिं दोष जनि देहू।' १७६२ में 'झूठेहु' के स्थान पर पाठ है 'झूठहु'। प्रसंग में 'झूठेहु' क्रियाविशेषण 'झूठमूठ को भी' के अर्थ में प्रयुक्त ज्ञात होता है। यह प्रयोगसम्मत है, यथा 'सांचेहु' :

राम तिलक जौं साँचेहु काली। २-१५-४

'झूठहु' संज्ञा अथवा विशेषण के रूप में 'झूठ भी' के अर्थ में ही प्रयुक्त हो सकता है, और इसी प्रकार हुआ भी है, यथा :

झूठहु सत्य जाहि बिनु जाने। १-१११-१

इसलिए 'झूठेहु' पाठ ही समीचीन ज्ञात होता है।

(६८) २-३३-३ : 'स .भि देखु जिय प्रिया प्रबीना।' 'जिय' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'प्रिय'। 'प्रिया' के होते हुए 'प्रिय' की निरर्थकता प्रकट है। 'जिय समुभि देखु' संगत ही है।

(६९) २-४६ : 'मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ। मनहुं करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ।' 'कटकई' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'कटक लेइ'। 'उतरी' के स्त्रीलिंग रूप से प्रकट है कि उसका कर्त्ता 'कटकई' स्त्रीलिंग उचित है। १७६२ के पाठ में 'करुन रस' पुल्लिंग कर्त्ता हो जाता है, जो स्पष्ट ही अनुचित है। एक अन्य पाठ 'कटक' मात्र है, उसकी अशुद्धि स्वतः प्रकट है।

(७०) २-५५ : 'तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहिं प्रजहि प्रचंड कलेसु।' 'भूपतिहि' के स्थान पर १७६३ में पाठ है 'भूपति'। यहाँ पर कौशल्या ने राम को यह बात कही है, इसलिए 'भूपति' शब्द संबोधन के रूप में नहीं लिया जा सकता—कहीं भी राम को उन्होंने इस प्रकार संबोधन नहीं किया है - और अन्यथा वह असंगत और असंबद्ध प्रतीत होता है। 'भूपतिहि'='दशरथ को' की संगति और समीचीनता प्रकट है।

(७१) २-६८-८ : १७६२ में निम्नलिखित अर्द्धाली नहीं है : 'सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि।' यह अर्द्धाली यद्यपि प्रसंग में अनिवार्य नहीं है, किंतु इससे कथन में पूर्णता और सुंदरता आ जाती है, और यह अर्द्धाली प्रासंगिक भी लगती है।

(७२) २-१२५-७ : 'बिस्व' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'बिसु' है। ग्रंथ भर में 'बिस्व' रूप ही मिलता है 'बिसु' नहीं। इसलिए 'बिस्व' ही प्रयोगसम्मत है।

(७३) २-१२६-३ : 'मुनि तापस जिन्हतें दुखं लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं।' 'जिन्ह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जेहि'। 'ते नरेस' से 'जिन्ह' बहुवचन पाठ की समीचीनता, और 'जेहि' एक-वचन पाठ की असमीचीनता प्रकट है।

(७४) २-१३४ : 'करहिं जोग जप जाग तप निज आस्रमनि

सुछंद।' 'जाग' के स्थान पर १७६२ में 'जाप' पाठ है। 'जप' और 'जाप' समानार्थी हैं, इसलिए १७६२ के पाठ में पुनरुक्ति स्पष्ट है। दूसरा पाठ संगत तो है ही, इस दोष से भी मुक्त है।

(७५) २-१३६-४ : 'कीन्ह बास भल ठाउं बिचारी।' 'भल' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'भलि' है। 'ठाउं' ग्रंथ भर में पुल्लिंग है, यथा :

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। २-१३३-५
लेइ रघुनाथहिं ठाउँ देखावा। २-८६-५
सर निरझर भल ठाउँ दिखाउब। २-१३६-७
पाएउ अचल अनूपम ठाऊँ। १-२६-५

इसलिए पुल्लिंग विशेषण 'भल' ही प्रयोगसम्मत है, स्त्रीलिंग 'भलि' नहीं।

(७६) २-१५३-२ : 'रघुकुल तिलक चले येहि भांती। देखेउं ठाढ़ कुलिस धरि छाती।' 'देखेउं' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'देखउं'। 'चले' भूतकालिक क्रिया के साथ 'देखेउं' भूतकालिक क्रिया की समीचीनता प्रकट है। यहाँ पर सुमंत्र दशरथ से एक बीती हुई घटना का वर्णन कर रहे हैं, अतः वर्त्तमानकालिक क्रिया 'देखउं' ठीक नहीं लगती।

(७७) २-१७४-४ : 'तजे राम जेहि बचनहि लागी।' 'बचनहि' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'बचनेहि' है। इसी प्रकार 'हि' = 'ही' के साथ 'लागि' का प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है, किंतु कहीं भी 'हि' लगाने के लिए शब्द के अंतिम वर्ण की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है, यथाः

बौरे बरहि लागि तप कीन्हा। १-६७ २
तुम्हहिं लागि धरिहौं नर बेषा। १-१८७-१

इसलिए 'बचनहि' पाठ ही समीचीन है, 'बचनेहि' नहीं।

(७८) २-१८४-७ : 'जो पावंरु अपनी जड़ताई। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई। सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसहि कलप सत नरक निकेता।' 'सठु' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'सबु' है। 'जो' संबंधवाचक सर्वनाम—या विशेषण—तथा 'सुगाइ' क्रिया से यह प्रकट है कि 'बसना' क्रिया का कर्त्ता भी एकवचन ही होना चाहिए। ऐसी दशा में 'सो सठ' एकवचन पाठ ही समीचीन होगा, 'सो सबु' बहुवचन नहीं।

(७९) २-१८९-२ : 'हृदयं बिचार करै सबिषादा।' 'बिचार' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'बिषाद'। 'सबिषादा' के होते हुए 'बिषाद करै' पाठ असंभव है, 'बिचार करै' ही संगत और समीचीन होगा।

(८०) २-१९२ : 'बूझि मित्र अरि मध्य गति तब तस करिहौं आइ।' १७६२ में 'गति' शब्द नहीं है। भूल स्पष्ट है।

(८१) २-२०७-८ : 'करतेहु राज त तुम्हहिं न दोषू।' 'त' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'तो'। 'तौ' के लिए ग्रंथ भर में 'तो' नहीं आया है; या तो 'त' आया है और या तो 'तौ', यथा :

स्रवन मूंद नत चलिय पराई। १-६४-४
कहहु त हमहिं न खोरि। १-१६५
हम तौ आजु जनम फलु पावा। १ २४६-६
नहिं संतोष तौ पुनि कछु कहहू। १-२०४-७

इसलिए 'त' पाठ ही समीचीन है, 'तो' नहीं।

(८२) २-२०८-६ : 'तुम्ह पर अस सनेह रघुबर के। सुखु जीवन जग जिमि जड़ नर के।' 'सुखु' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'मुखु'। 'मुखु' से कोई संगति नहीं लगती। 'सुख' की संगति स्पष्ट है : 'जिस प्रकार जड़ मनुष्य को संसार में जीना ही वास्तविक सुख प्रतीत होता है।' एक तुलनीय उक्ति निम्नांकित है :

सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि। २-१४२-२

(८३) २-२११-४ : 'मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुख जग जिय जानहि पोचू।' 'जानहि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जानिहि'। संगति दोनों पाठों से लग जाती है, किंतु अगली अर्द्धाली में जो समान उक्ति आई है उसमें भी वर्त्तमान कालिक ही रूप है : 'नाहिंन डर बिगरहि परलोकू।' इस कारण वर्त्तमान कालिक रूप अधिक समीचीन लगता है।

(८४) २-२१९-५ : 'तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा।' १७६२ में 'भगत अभगत' के स्थान पर पाठ 'भरत भगत' है। 'भरत' को यहाँ पर संबोधन नहीं है, संबोधन 'सुरेश' को है (२-२१९-१)। इसके अतिरिक्त १७६२ के पाठ में छंद-भंग है।

अतः पाठ-अशुद्धि स्पष्ट है। एक अन्य पाठ है 'रघुपति भगत हृदय अनुसारा'। उसकी संगति लग जाती है, किंतु 'सम-बिषम बिहारा' के साथ 'भगत अभगत हृदय अनुसारा' की जिस प्रकार लगती है, उस प्रकार नहीं।

(८५) २-२३४ : 'लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषाद। मिटिहि सोच होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषाद।' 'गुनि' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'गुन' है। 'गुन' का कोई प्रसंग नहीं है, और 'गुनि' = 'बिचार करके' की संगति स्पष्ट है।

(८६) २-२३५-३ : ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी।' 'मारी' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'भारी'। 'भारी' की कोई संगति प्रतीत नहीं होती, और 'ग्रह मारी' = 'ग्रहों से पीड़ित' की संगति स्पष्ट है।

(८७) २-२४१-३ : 'कहहु सप्रेम प्रगट को करई। केहिं छाया कबि मति अनुसरई।' 'मति अनुसरई' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'मतिहि अनुहरई'। 'अनुहरना' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'अनुरूप होना' के अर्थ में हुआ है :

सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। १-२७७-८
तनु अनुहरत सुचंदन खोरी। १-२१६-४
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु। २-८७

किंतु उसका कोई प्रसंग नहीं है। प्रसंग यहाँ पर 'पीछे पीछे चलने' का है, जिसके लिए 'अनुसरना' का ही प्रयोग हुआ है, यथा :

जिमि पुरुषहि अनुसर परछाहीं। २-१४१-६
सोइ सोइ तव आयेसु अनुसरई। १-१६८-६

इसलिए 'अनुसरई' पाठ ही ठीक लगता है। 'मतिहि' पाठ में छंद-भंग भी है।

(८८) २-२४६-४ : 'सासु सकल जब सीय निहारी। मूँदे नयन सहमि सुकुमारी।' 'सीय' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'दीष'। 'दीष' का अर्थ है 'दिखाई पड़ा।' 'सासु' स्त्रीलिंग कर्म के साथ 'दीष' पुल्लिंग पाठ की अशुद्धि स्पष्ट है।

(८६) ३-१६-५ : 'भगति के साधन कहउं बखानी।' 'के' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'कि' है। 'कि' यहाँ पर अर्थहीन प्रकट होता है। 'के' की समीचीनता प्रकट है।

×(६०) ३-१८-६ तथा ३-३४-८ : 'द्वौ' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'दोउ' है। यद्यपि सामान्यतः रूप 'दोउ' रूप ही मिलता है, किंतु कहीं कहीं पर 'द्वौ' रूप भी आया है :

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। ४-६-१
ते द्वौ बंधु तेज बल सींवां। ४-७-२८
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। ५-४५-२
जिअत धरहु तपसी द्वौ भाई। ६-३३-३

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसंम्मत प्रतीत होते हैं।

(६१) ३-२६-५ : 'उभय भांति देखा निज मरना।' 'देखा' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'देखी' है। 'मरना' पुल्लिग कर्म के लिए पुल्लिग सकर्मक क्रिया 'देखा' ही ठीक है, स्त्रीलिंग 'देखी' नहीं।

(६२) ३-२७ : 'बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।' 'प्रभु' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सुर'। 'सुर' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है; इसके अतिरिक्त बिना 'प्रभु' के किसकी 'गुन' गा रहे हैं, यह नहीं व्यक्त होता।

(६३) ३-३१ : 'सीता हरन तात जनि कहेहु पिता सन जाइ।' जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ।' 'कहेहु' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'कहहु'। चौथे चरण में आनी वाली क्रिया 'कहिहि' भविष्य काल की है, और अभी जटायू दशरथ के पास पहुंचा भी नहीं है, इसलिए 'कहेहु' पाठ ही समीचीन लगता है।

(६४) ३-३२ छं० : 'सो राम रमानिवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी। मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी।' 'बसउ' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'बसेउ' है। यहाँ पर राम की स्तुति कर उससे वर-याचना की गई है :

'अबिरल भगति मांगि बर गीध गएउ हरिधाम।'

इसलिए 'बसउ' = 'बसो' की समीचीनता प्रकट है। 'बसेउ' = 'बसिएगा'

ठीक नहीं लगता। 'बसेउ' का 'बसा' अर्थ लेने पर और भी संगति नहीं लगती।

(६५) ३-३४-२ के बाद : १७६२ में निम्नलिखित अर्द्धालियाँ और आती हैं : 'दुष्टौ धेनु दुही सुनि भाई। साधु रासभी दुही न जाई। बचन ज्ञान रत शूद्र कपाली। ग्रहहिं न तासु बचन मति शाली। जौं जुठार स्वान की कागा। तेहि पर बुधन करहिं अनुरागा।' 'मति' का एक समास तो अनेक स्थलों पर आया है : 'मति धीर', किंतु 'मतिशाली' कहीं नहीं 'मिलता'। 'शाली' के कोई और समास भी ग्रंथ भर में कहीं नहीं प्राप्त हैं। अंतिम अर्द्धाली तो असंगत सी लगती है। 'जुठार' सकर्मक क्रिया का कोई कर्म नहीं है और इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'जुठारे जाने' के पूर्व कौन सी वस्तु बुधों के अनुराग का विषय कही गई है। 'अनुराग' का ऐसा उपयोग भी तुलसीदास द्वारा अन्यत्र हुआ नहीं है—भोज्य पदार्थ पर इस प्रकार का 'अनुराग' अन्यत्र भी 'बुधों' में नहीं देखा जाता है। इसलिए ये पंक्तियाँ तुलसीदास कृत नहीं लगती हैं।

×(६६) ३-३२: 'तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ। मुनि बिज्ञान धाम मन करहिं निमिष महुं छोभ।' 'अति' और 'खल' के स्थान पर १७६२ में पाठ क्रमशः 'ये' तथा 'अति' हैं। दोनों पाठ संगत हैं।

(६७) ४-७ : 'कहा बालि सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।' जौं कदाच मोहि मारहिं तौ पुनि होउं सनाथ।' 'भीरु' के स्थान पर भी १७६२ में पाठ 'मोहिं' है। इस पाठ में पुनरुक्ति तो प्रकट है, इसके अतिरिक्त बालि 'मोहिं प्रिय' या तो तारा को कह सकता था और या तो रघुनाथ को; तारा को कहते हुए 'मोहिं' अनावश्यक था, और रघुनाथ को कहना युक्तियुक्त नहीं था, क्योंकि तारा को उन्हीं के द्वारा उसके मारे जाने का भय था। 'भीरु प्रिय' अर्थात् 'भीरु स्वभाव वाली प्रिया' की संगति प्रकट है।

×(६८) ४-८-२ : 'भिरे उभौ बाली अति गरजा।' 'उभौ' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'उभै' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

दुखप्रद उभै बीच कछु बरना। १-६-३
उभै अपार उदधि अवगाहा। १-७-१
कुंदेंदीवर सुंदरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ। ४-०-१ श्लोक

(९९) ५-१४-१ : 'हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी।' १७६२ में 'बाढ़ी' तथा 'ठाढ़ी' के स्थान पर पाठ क्रमशः 'गाढ़ी' तथा 'बाढ़ी' है। १७६२ के पाठ में 'प्रीति अति गाढ़ी' क्रियाहीन होने के कारण असंगत लगता है, और 'रोमावलि बढ़ना' अन्यत्र कहीं नहीं आया है, जहाँ आया है 'रोमावलि' का 'ठाढ़' होना ही आया है, यथा :

नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी। १-१०४-६
प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी। ३-२५-१
सुनि प्रभु बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी। ६-१११-५

इसलिए 'बाढ़ी'-'ठाढ़ी' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(१००) ५-३८ : 'काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ। सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत।' 'भजहु भजहिं' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'भज भजहीं'। 'भज' रूप की अशुद्धि प्रकट है, 'भजि' या भजु' होता हो व्याकरण-सम्मत होता, यद्यपि 'नाथ' संबोधन के साथ वह आदरात्मक न होता। 'भजहीं' में अकारण शब्द-विकृति है। दूसरे पाठ में यह दोष नहीं है।

(१०१) ५-५६ : 'की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग। होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग।' 'सरानल' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सरासन'। 'सरासन' और 'पतंग' का कोई संबध नहीं होता, संबंध तो 'अनल' और 'पतंग' का ही होता है, इसलिए 'सरानल'='शर रूपी अनल' की संगति स्पष्ट है। एक और पाठ है : 'होसि राम सर अनल खल जनि कुल सहित पतंग।' इस पाठ से भी संगति लग जाती है। किंतु दोहे के पूर्वार्द्ध में 'की' आया हुआ है, इसलिए उत्तरार्द्ध में भी 'कि' युक्त पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(१०२) ६-४-५ : 'मकर नक्र झख नाना ब्याला। सत जोजन तनु परम बिसाला। 'तनु' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'अति'। 'परम बिसाला' के साथ 'तनु' की सार्थकता और 'अति' की निरर्थकता प्रकट है।

×(१०३) ६-१५-४ : 'मारुत स्वास निगम निजु बानी।' १७६२ में 'मारुत' के स्थान पर पाठ 'मरुत' है। दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं :

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास। ५-२५
कंप न भूमि न मरुत बिसेषा। ६-१४-१
कोपि मरुतसुत अंगद धाए। ६-७६-६
जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। १-१२-१
ताहि बाँधि मारुत सुत बीरा। ५-३-५
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही। १-८६-छं०

(१०४) ६-१६-४ : 'रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहिं सुनावा।' 'बिसाल' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'बिलास'। 'बिलास' की असंगति और 'बिसाल' की संगति प्रकट है।

(१०५) ६-३२-१ : 'जब तेहिं कीन्हि राम कइ निंदा।' 'कीन्हि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'कीन्ह'। 'निंदा' ग्रंथ भर में स्त्रीलिङ्ग है यथा :

कही सुनी जिन्ह संकर निंदा। १-६४-१
जहं कहुँ निंदा सुनहिं पराई। ७-३६-४
सब कै निंदा जे नर करहीं। ७-१२१-२७

इसलिए स्त्रीलिङ्ग सकर्मक क्रिया 'कीन्हि' ही उसके लिए समीचीन है, पुल्लिंग 'कीन्ह' नहीं।

(१०६) ६-३३-२ : 'तव सोनित की प्यास तृषित राम सायक निकर।' १७६२ में 'तृषित' के स्थान पर पाठ है 'तिष्ठति'। 'तिष्ठति' प्रस्तुत प्रसंग में निरर्थक है, और 'प्यास' के प्रसंग में 'तृषित' = 'प्यासे' की संगति प्रकट है।

(१०७) ६-४१-८ : 'निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि परहिं कपि फेरि चलावहिं।' 'ढहावहिं' के स्थान पर भी १७६२ में पाठ 'चलावहिं' है। 'चलावहिं' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। दूसरा पाठ इस दोष से मुक्त है।

(१०८) ६-४१ छं० : 'कपि भालु चढ़ि मंदिरन्हि जहं तहं राम जसु गावत भए।' 'मंदिरन्हि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'मंदिरन्ह'। 'मंदिरों में' (सप्तमी) के अर्थ लिए 'मंदिरन्हि' पाठ की समीचीनता प्रकट है। 'मंदिरन्ह' की संगति नहीं लगती।

(१०९) ६-७३-१२ : 'ब्याल पास बस भए खरारी। स्वबस अनंत एक अबिकारी। नट इन कपट चरित कर नाना। सदा स्वतंत्र राम भगवाना।' दूसरी अर्द्धाली में 'राम' के स्थान पर १७६२ में 'एक' पाठ है। उसमें पुनरुक्ति तो प्रकट है, 'सगुन भगवाना' के साथ वह असंगत भी लगता है।

(११०) ६-७६-१५ : 'सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा।' 'करि' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'अति' है। 'दाप' सर्वत्र संज्ञा के रूप में ही व्यवहृत हुआ है, क्रियाविशेषण के रूप में कहीं नहीं हुआ है, और न उसके साथ कहीं 'अति' मिलता है। 'करि' अवश्य उसके साथ अनेक स्थलों पर आया है, यथा:

> करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधान सर बहु बरषई। ६-६७ छं०
> रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप। ६ ८१
> रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा। १-२५३-३'

इसलिए 'करि' पाठ ही प्रयोगसम्मत और समीचीन लगता है।

(१११) ६-६८-६ : 'तब नल नील सिरन्ह चढ़ि गए। नखन्हि लिलार बिदारत भए।' 'गए' और 'भए' के स्थान पर १७६२ में क्रमशः 'ठएऊ' और 'भएऊ' पाठ हैं। 'ठएऊ' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'ठान लिया' के अर्थ में हुआ है :

> येह बिधि हित तुम्हार मैं ठएऊ। १-१३२-२
> रावन घन घमंड जनु ठएऊ। १-२४७-१

जब तें कुमति कुमत जिय ठएऊ। २-१६२-१
मदोदरि मन महं अस ठएऊ। ६-१६-८

एक स्थल पर उसका प्रयोग 'कर लिया' के अर्थ में भी हुआ प्रतीत होता है :

सोरह जोजन मुख तेहिं ठएऊ। ५-२-८

किंतु प्रस्तुत प्रसंग में इनमें से कोई अर्थ नहीं लगता। 'ठएऊ' और 'भएऊ' पाठ व्याकरणसम्मत भी नहीं हैं, क्योंकि यह दोनों एकवचन हैं, और इनके कर्त्ता 'नल नील' बहुवचन हैं।

(११२) ६-६८-१५ : 'देखि भालुपति निजदल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता।' 'भालुपति' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'भालु कपि'। 'निज' और 'मारेसि' से प्रकट है कि विवेचनीय कर्त्ता एकवचन होना चाहिए। 'भालु कपि' बहुवचन है, अतः समीचीन नहीं है; 'भालुपति' एकवचन है, इसलिए समीचीन ही है। बादवाली पंक्तियों में पुनः 'भालुपति' ही कर्त्ता के रूप में आया है :

मुरुछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गए। ६-६८ छं०

इसलिए 'भालुपति' ही मान्य है।

(११३) ६-६६-४ : 'काह' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'कहा' है। 'क्या' के अर्थ में 'कहा' ग्रंथ भर में प्रयुक्त नहीं हुआ है, सर्वत्र 'काह' ही आया है, यथा :

अब धौं बिधिहि काह करनीया। १२-६७-७
करउं काह मुख एक प्रसंसा। १-२८५-५
आयसु काह कहिअ किन मोहीं। १-२७१-२
तौ मैं काह कोप करि कीन्हा। १-२७६-८

अतः 'काह' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

×(११४) ६-१०८-१० : 'देखन भालु कीस सब आए।' 'भालु कीस' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'कीस भालु' है। दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है।

×(११५) ६-११५-६ : 'भव बारिधि मंदर परमंदर।' पहले

'मंदर' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'मंथन' है। अपने-अपने अर्थ के साथ दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

(११६) ७-५ छं० : 'अब कुसल कोसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।' 'आरत' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'आरति'। 'आरत' की समीचीनता प्रकट है। 'आरति' पाठ की संगति उसी दशा में लग सकती थी जब कि पाठ 'जन' न होकर 'जनहिं' होता।

(११७) ७-३२-८ : 'रामकथा मुनि बहु बिधि बरनी। ज्ञान जोनि पावक जिमि अरनी।' 'जोनि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जोति'। 'ज्ञानजोनि' पाठ की संगति प्रकट है—'रामकथा, जो उसी प्रकार ज्ञान की प्रसविनी है जिस प्रकार अरनी पावक की प्रसविनी है'। 'ज्ञान जोति' पाठ की संगति इस प्रकार नहीं लगती है।

(११८) ७-३५-१ : 'देहु भगति रघुपति अति पावनि।' 'अति' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'की' है। यह अंश 'सनकादि' की स्तुति का है, जो उन्होंने राम से की है। राम से ही 'देहु भगति रघुपति की पावनि' कहना स्पष्ट ही असंगत है। अन्य पाठ की संगति प्रकट है।

(११९) ७-७९-७ : 'तब मैं भागि चलेउं उरगारी।' 'चलेउं' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'चलिउं' है। 'चलिउं' अन्यत्र ग्रंथ भर में नहीं आया है 'चलेउं' ही सर्वत्र आया है, और उसमें यहाँ कोई त्रुटि भी नहीं प्रतीत होती है।

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-१४९-३ : 'जथा दरिद्र बिबुध तरु पाई। बहु संपति माँगत सकुचाई। तासु प्रभाउ जानि हिअ सोई। तथा हृदय मम संसय होई।' 'जान हिअ' के स्थान पर इस प्रति में 'न जानहिं' पाठ है। पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

'एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं।
तुम्हहिं देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहिं निज कृपनाईं।'

विवेचनीय पंक्तियाँ इस कथन के उदाहरण में दी गई हैं। 'तुम्हहिं देत अति सुगम गोसाईं' से यह प्रकट है कि याचक को दाता का प्रभाव भली भाँति विदित है। अतः विवेचनीय पंक्तियों में 'तासु

प्रभाव 'जान हिअ सोई' समीचीन है। 'न जानहिं' पाठ में ठीक इसका उलटा है, इसलिए वह ठीक नहीं लगता।

१८७८ के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-१४-११ के बाद : इस प्रति में निम्नलिखित अर्द्धाली और है : 'करहु अनुग्रह अस जिय जानी। बिमल जसहिं अनुहरइ सुबानी।' पूर्व की पंक्ति है : 'तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सोहावनि टाट पटोरे।' इससे प्रकट है कि विषय की विशदता के कारण लेखक को अपनी 'भनिति' पर – जैसी भी वह है— संतोष है। विवेचनीय अर्द्धाली में की हुई याचना इसलिए असंगत प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त उसमें अपनी वाणी को 'सुबानी'= 'सुंदर वाणी' कहा गया है; तब इस प्रकार की याचना की आवश्यकता ही क्या थी ?

(२) १-१६४ : 'जनि' के स्थान पर पाठ इस प्रति में 'जिनि' है। ग्रंथ भर में 'जिनि' कहीं नहीं आया है, सर्वत्र 'जनि' ही है, यथा :

जनि आचरजु करहु मन माहीं। १-१६८-१

इसलिए 'जनि' ही प्रयोगसम्मत है।

(३) १-२०६ : 'कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि।' 'भगति' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'भगत'। 'भगति हित' की संगति प्रकट है : 'मुनि ने राम को कंदमूलादि भोज्य पदार्थ उन्हें भक्ति के लिए हितकारी (सहायक) समझ कर दिए।' 'भगत' की कोई संगति नहीं प्रतीत होती।

(४) १-२५६ : 'ये बालक असि हठ भलि नाहीं।' 'असि' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'अस' है। 'हठ' ग्रंथ भर में स्त्रीलिंग है, यथा :

जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेखी। १ ८०-३

अहह तात दारुनि हठ ठानी। १-२७५-२

इसलिए स्त्रीलिंग पाठ 'असि' ही समीचीन है, पुल्लिंग 'अस' नहीं।

× (५) १-२६८-५ तथा ६ : 'रिसबस कछुक अरुन होइ आवा। भृकुटी कुटिल नयन रिस राते।' 'रिस' के स्थान पर इन पंक्तियों

में इस प्रति में पाठ है 'रिसि'। ग्रंथ में यद्यपि सामान्यतः 'रिस' शब्द का ही प्रयोग हुआ है, 'रिसि' भी दो-एक बार मिलता है :

अति रिसि ताकि स्रवन लगि ताने। १-८७-२

अति रिस बोले बचन कठोरा। १-२७५-३

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

×(६) २-१०-४ : 'बिसमउ' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'बिसमय' है। ग्रंथ में दोनों रूप प्रयुक्त हैं, यथा :

हरष समय बिसमउ कत कीजै। २-७७-३

बिसमउ हरष न हृदय कछु बोले श्री रघुबीर। २-२६५

• बिसमय हरष न हिअँ कछु धरहू। १-१३७-२

तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ। १-१७७-६

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(७) २-२०-६ : 'सुनु मंथरा बात फुरि तोरी।' 'फुरि' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'फुर' है। 'बात' स्त्रीलिंग है, इसलिए पुल्लिंग 'फुर' की अपेक्षा स्त्रीलिंग 'फुरि' की समीचीनता प्रकट है। अन्यत्र भी 'बात' के साथ 'फुरि' का ही प्रयोग हुआ है :

तात बात फुरि राम कृपाहीं। २-१५६-१

(८) २-१४२ : 'नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जल मोचहिं लोचन बारि। ब्याकुल भएउ निषाद सब रघुबर बाजि निहारि।' 'भएउ' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'भए'। प्रश्न यह है कि 'सब' किसका विशेषण है : 'निषाद' का या 'बाजि' का। निषाद प्रसंग भर में अकेला ही आता है :

फिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई। २-१४२-५

मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। २-१४२-६

धरि धरिज तब कहेउ निषादू। २-१४२-६

भएउ निषाद बिषाद बस देखत सचिव तुरंग। २-१४३

इसलिए 'सब' विशेषण निषाद का नहीं हो सकता। वह 'बाजि' का ही हो सकता है, क्योंकि घोड़े कई हैं :

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं ।२-१४२-८
चरफराहिं मग चलहि न घोरे । २-१४२-५
नहि तृन चरहि न पिअहि जल मोचहि लोचन चारि । २-१४२
अढुकि परहि फिरि हेरहि पाछे । २-१४३-६

इसलिए 'निषाद' एकवचन कर्त्ता के साथ एकवचन 'भएउ' ही समीचीन है, बहुवचन 'भए' नहीं।

(६)२-१४४-७ : 'कृपन' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'कृपिन' है। ग्रंथ भर में 'कृपन' रूप ही मिलता है, यथा:

अगम लाग मोहि निज कृपनाई । १-१४६-४
दानि कहाउब अरु कृपनाई । ३-३५-६
सोचिअ बयसु कृपन धनवानू । २-१७२-५
सहज कृपन सन सुंदर नीती। ५-५२-२

इसलिये 'कृपन' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(१०)३-१६-६ : 'देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु दोउ भाई। मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु । तासु बचन सुनि आतुर आवहु।' 'देहु' तथा 'जाहु' के स्थान पर इस प्रति में क्रमशः 'देहिं' तथा 'जाहिं' पाठ है। नारी तो एक राम की थी, और संदेश भी उन्हीं को संबोधित करने के लिए दिया गया है, जैसा 'ताहि' से प्रकट है। इसलिए 'देहिं' बहुवचन क्रिया समीचीन नहीं हो सकती, 'देहु' एकवचन क्रिया ही समीचीन होगी।

(११) ३-२६-४ : 'बिबिध बिलाप करति बैदेही।' 'करति' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'करत' है। 'बैदेही' स्त्रीलिंग कर्त्ता के लिए 'करति' स्त्रीलिंग क्रिया ही समीचीन होगी, 'करत' पुंल्लिग नहीं।

(१२) ५-५-७ : 'मंदिर महं न दीखि बैदेही।' 'दीखि' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'दीख'। 'बैदेही' स्त्रीलिंग कर्त्ता के लिए स्त्रीलिंग क्रिया 'दीखि' ही समीचीन है, पुल्लिग 'दीख' नहीं, यथा :

आगे दीखि जरति रिस भारी २-३१-१

(१३) ६-६ : 'रामहिं सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ। सुत कहुं राज समर्पि बन जाइ भजहु रघुनाथ।' 'सौंपि' के स्थान पर इस

प्रति में पाठ 'सौंपहु' है। 'भजहु' के साथ—जो चौथे चरण में आता है—'सौंपहु' की अनुरूपता नहीं है, इसलिये वह ठीक नहीं प्रतीत होता है। 'सौंपि' पूर्वकालिक क्रिया के रूप से उसके विषय में इस प्रकार की विषमता का कोई प्रश्न नहीं उठता।

(१४) ६-८५-६ : 'अस कहि अंगद मारा लाता।' 'मारा' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'मारेउ' है। दोनों रूप ठीक लगते हैं, किंतु अन्यत्र एक स्थल पर जहाँ लात मारना आया है, वहाँ क्रिया का रूप 'मारा' है, और इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत लगता है :

तात लात रावन मोहिं मारा। ६-६४-५

(१५) ७-६० : 'परमातुर बिहंगपति तब आएउ मो पास।' 'मो पास' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'मोहि पास'। 'पास' के साथ संज्ञा या सर्वनाम का—'हिं' विहीन सामान्य रूप ही ग्रंथ भर में मिलता है :

चले भवानिहिं नाइ सिर गए हिमाचल पास। १-६०
गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मांगु। १-१७७

इसलिए 'मो पास' पाठ ही समीचीन है, 'मोहि पास' नहीं।

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-०-६ : 'यत्पादप्लव एकमेवहि भवांभोधेस्तितीर्षावतां।' 'एकमेवहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'एव भातिहि'। कोदवराम का पाठ निरर्थक प्रतीत होता है, और अन्य पाठ की सार्थकता प्रकट है।

×(२) १-३६ : 'सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारु। तेइ येहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारु।' 'बिचारु' और 'चारु' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बिचारि' तथा 'चारि'। 'बुद्धि बिचारु बिरचे' = 'बुद्धि और बिचार के बिरचे हैं' की सार्थकता प्रकट है। 'बुद्धि-बिचारि' से 'बुद्धि में बिचार कर' का अर्थ लिया जा सकता है। 'चारु' तथा 'चारि' से भी इसी प्रकार अलग-अलग ढंग पर अर्थ लिया जा सकता है।

* (३) १-१९९-५ : 'हिय हरिनख अति सोभा रूरी ।' 'अति सोभा' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सोभा अति'। अन्वय की दृष्टि से 'सोभा अति रूरी' पाठ अधिक उपउक्त लगता है, यद्यपि अन्य पाठ से भी यही अर्थ निकलता है।

(४) १-२८४-३ : ' छत्रिय तनु धरि समर डेराना। कुल कलंक तेहि पांवरु आना।' 'आना' के स्थान पर १६६१ में पाठ है 'जाना'। 'आना' पाठ का अर्थ है, 'उस नीच ने अपने कुल पर कलंक लगा दिया'। 'जाना' पाठ की संगति इस प्रकार नहीं लगती।

× (५) २-१२२-६ : 'ते पितु मातु धन्य जे जाए। धन्य सो नगर जहाँ ते आए। धन्य सो देस सैल बन गाऊं। जहं जहं जाहिं धन्य सोइ ठाऊं।' दूसरी अर्द्धाली के 'सोइ' के स्थान पर भी कोदवराम में पाठ 'सो' है। प्रसंग में दोनों खप जाते हैं, और दोनों इसी प्रकार अन्यत्र भी प्रयुक्त हुए हैं, यथा :

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी। ७-१३७-७

(६) २-२०३-८ : 'देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन करहिं गलानी।' 'करहिं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'गरहिं'। 'गलानी' के साथ क्रिया के रूप में ग्रंथ भर में 'करना' आया है, 'गरना' नहीं, यथा :

बादि गलानि करहु मन मांही। २-२०५-८
तात गलानि करहु जिअं जाए। २-२१०-२
तुम्ह गलानि जनि जिअं करहु समुझि मातु करतूति। २-२०६

इसलिए 'करहिं' पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है।

(७) २-३०२-८ : 'लखि हिय हंसि कर कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवा निजु जानू।' 'मधवा निजु जानू' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मधवान जुवानू'। 'मधवा' तो ग्रंथ में अन्यत्र भी आया है, किंतु 'मधवान' कहीं नहीं आया है। यदि 'मधवन्' का 'मधवान' कहा जावे, तो इस शब्द-विकृति का कोई कारण नहीं ज्ञात होता। और—न पाणिनि का कोई सूत्र होते हुए भी—'जुवान' बेचारे

को 'स्वान' के साथ इस प्रसंग में घसीटने का कोई कारण दिखाई पड़ता है।

(८) ६-६६-२ : 'भएउ क्रुद्ध दारुन बल बीरा। कियो मृग नायक नाद गंभीरा। कोपि महीधर लेइ उपारी। डारे जहं मरकट भट भारी।' 'कियो' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'करि'। भाव 'क्रोध' है, और 'मृगनायक का नाद करना' उसका अनुभाव है। 'करि' पाठ से भाव और अनुभाव का स्वाभाविक क्रम उलट जाता है; 'कियो' पाठ से वह सुरक्षित रहता है। 'करि' पाठ मान कर अन्वय करने पर 'भएउ क्रुद्ध' और 'कोपि' इतने निकट आ जाते हैं कि पुनरुक्ति प्रतीत होती है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं। यद्यपि 'कियो' बहुत कम प्रयुक्त हुआ है, फिर भी एकाध बार वह अन्यत्र आया ही है, यथा :

सिव कृपासागर ससुर कर संतोष सब भाँतिहि कियो। १-१०१छं०

×(९) ६-७३-१० : 'पुनि रघुपति सैं जूझन लागा।' 'सैं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सन'। 'जूझना' के साथ अन्यत्र भी एक स्थल पर 'सैं' ही आया है, और इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत है :

करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा। ६-८-७

यद्यपि, उसकी समानार्थी क्रियाओं में 'सन' का प्रयोग हुआ है :

एक एक सन भिरहिं प्रचारी। ६-८१-४
भिरे सकल जोरी सन जोरी। ६-५३-४
एक बार कालहु सन लरहीं। ६-१८-१०

(१०) ६-८५ छं० : 'तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।' 'क्रुद्ध' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कोपि'। 'कोपि' छंद के प्रथम चरण में आया हुआ है :

'नहिं चितव जब कपि कोपि तब गहि दसन लातन्ह मारहीं।' इसलिए 'कोपि' पाठ में पुनरुक्ति है। अन्य पाठ इस दोष से मुक्त है।

(११) ६-९३ : 'चली बिभीषन सनमुख मनहुं काल कर दंड।' कोदवराम में पाठ है 'सनमुख चली बिभीषनहि'। 'बिभीषनहि' द्वितीया का रूप है, षष्टी का नहीं, इसलिए ठीक नहीं है। 'बिभीषन-

सनमुख' में समास है,इसलिए उसमें इस प्रकार की कोई त्रुटि नहीं है।

×(१२) ६-१२० : 'पुनि प्रभु आइ त्रिबेनी हरषित मज्जनु कीन्ह। कपिन्ह सहित बिप्रन कहुं दान बिबिध बिधि दीन्ह।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'बहुरि त्रिबेनी आइ प्रभु', और तीसरे चरण का है 'कपिन्ह सहित महिसुरन्ह कहुं'। अंतर इन पाठों में शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

१६६१/१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-७८-१ : 'रिषिन्ह गौरि देखी तहं कैसी। मूरतिवंत तपस्या जैसी।' १७०४ में 'मूरतिवंत' के स्थान पर 'मूरतिमंत' पाठ है। 'मूरतिवंत' अन्यत्र भी आया है, और अन्य समासों में भी 'वंत' ही मिलता है, यथा :

मूरतिवंत भाग्य निज लेखे। २-२०६-४
नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी। २-१३६
बिसमयवंत देखि महतारी। १-२०२-५

'मूरतिमंत'—या किसी भी समास में 'मंत'—नहीं मिलता है। इसलिए 'मूरतिवंत' ही प्रयोगसम्मत है।

(२) १-६०-६ : 'तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा।' 'कहा' के स्थान-पर १७०४ में पाठ 'कहेउ' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत लगते हैं, यथा :

तुम्ह जो कहा सो मृषा न होई। १-५६-३
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। १-११४-८
कहेहु नीक मोरेहुं मन भावा। १-६२-१
सत्य कहेहु गिरि भव तनु येहा। १-८०-२

×(३) १-१००-५ : 'बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाई। करि सिंगार सखी लै आई।' 'लै' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'लेइ'। दोनों रूप प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

लै अगवान बरातहि आए। १-६६-१
लछिमन कै प्रथमहिं लै नामा। ३-२७-१५
संग सखी लै सुभग सयानी। १-२४८-१

जच्छ जीव लै गए पराई। १-१७६-४
लेइ उछंग सुंदर सिख दीन्ही। १-१०२-२
लेइ सिर आहु चले नाराचा। ६-१०३-२

×(४) १-१५२-५: 'अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुखदाता। जे सुनि सादर नर बड़ भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी।' 'जे' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'जेहि'। 'जे' बहुवचन है, 'जेहि' एकवचन। यह स्पष्ट नहीं है कि 'चरित' किस वचन में है। इसलिए दोनों पाठ एक से प्रतीत होते हैं।

×(५) १-१७३-४: 'पद पखारि सादर बैठाए।' 'पद' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'पग'। 'पखारि' के साथ अन्यत्र भी 'पद' ही आया है :

पद पखारि जलपान करि आपु सहित परिवार। २-२०१

इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत लगता है, यद्यपि अन्य क्रियाओं के साथ दोनों का प्रयोग प्रायः एक ही प्रकार से हुआ है, यथा :

नाँह परसत पग पानि। १-२६५
रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी। १-३५२-६
बंदौं गुरुपद पदुम परागा। १-१-१
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। १-२-१

(६) १-१८४-३: 'जिन्हके यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी।' 'जानहु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'जानेहु'। अंतर वर्त्तमान और भविष्य काल का है। यहाँ पर वर्णन भूतकाल की घटनाओं का है :

'बाढ़े खल बहु चोर जुवारा। जे लंपट परधन परदारा।
अतिसय देखि धर्म कै हानी। परम सभीत धरा अकुलानी।'

इसलिए 'जानहु' की समीचीनता प्रकट है। 'जानेहु' कहने का कोई कारण नहीं हो सकता।

(७) १-१८४ छं०: १७०४ में ह्रस्व तुकांत है। यह छंद ग्रंथ भर में दीर्घ तुकांत है, यहाँ भी इसलिए दीर्घ तुक ही ठीक लगते हैं, यद्यपि अर्थ दोनों पाठों का अभिन्न है।

(८) १-१८६ छं० : 'जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा। सो करहु अघारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा।' १७०४ में 'भगति न पूजा' के स्थान पर 'भगति न कछु पूजा' पाठ है। १७०४ के पाठ में छंद-दोष प्रकट है।

(९) १-१९५-२ : 'सो सुख संपति समय समाजा। कहि न सकहिं सारद अहिराजा।' १७०४ में 'सारद' के स्थान पर पाठ है 'सादर'। 'सादर'='आदर सहित' का कोई प्रसंग नहीं है। 'सारद' की संगति प्रकट है।

(१०) १-२२३ : 'जाहिं जहां जहं बंधु दोउ तहं तहं परमानंद।' १७०४ में 'जहां जहं' के स्थान पर पाठ 'जहं जहं' है। १७०४ के पाठ में छंद-दोष स्पष्ट है।

(११) १-२४६-३ : 'मति हमारि असि देहि सुहाई।' 'हमारि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'हमार'! 'मति' स्त्रीलिंग है, यह 'असि' से प्रकट है; इसलिए उसका विशेषण भी 'हमारि' स्त्रीलिंग ही समीचीन है, 'हमार' पुल्लिंग नहीं।

(१२) १-२७८-५ : 'थरथर कांपहि पुर नर नारी। छोट कुमार खोट अति भारी।' 'अति' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बड़'। 'बड़ भारी' ग्रंथ में अन्यत्र नहीं है, 'अति भारी' ही पाया जाता है, यथा :

कहहु मोहिं अति कौतुक भारी। ७-५५-२
मन महं होइ हरप अति भारी। ७-८३-६
रामभगति महिमा अति भारी। ७-११४-१६
तृस्ना उदर बृद्धि अति भारी। ७-१२१-३६

इसलिए 'अति भारी' ही प्रयोगसम्मत लगता है।

(१३) १-२९२-३ : 'तिन्ह कहं कहिअ नाथ किमि चीन्हे।' १७०४ में 'तिन्ह कहं' के स्थान पर पाठ है 'तिन्ह'। अशुद्धि प्रकट है।

(१४) २-१९५ : 'समुझि मोरि करतूति कुल प्रभु महिमा जिअं जोइ।' 'मोरि' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'मोर'। 'करतूति' स्त्रीलिंग है, यथा :

सोइ करतूति बिभीषन्ह केरी। १-२८-७
जनु एतनिअ बिरंचि करतूती। २-०-५

इसलिए 'मोरि' स्त्रीलिंग विशेषण ही उसके लिए समीचीन है, 'मोर' पुल्लिंग विशेषण नहीं।

×(१५) २-२२१ : 'मगबासी नर नारि मुनि धाम काम तजि धाइ। देखि सरूप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ।' 'सब' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बस'। 'सब स+नेह'='सब स्नेह सहित' और 'सनेहबस'='स्नेहवश' दोनों पाठों से संगति लग जाती है।

(१६) २-२४३-६ : 'राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत सनेह समेटा।' १७०४ में 'लुटत' के स्थान पर पाठ 'लुठत' है। 'लुटत' की समीचीनता प्रकट है, वही वस्तु समेटी जाती है जो लुटती हो। 'लुठत' अन्यत्र नहीं आया है, और यहां असंगत भी लगता है।

×(१७) २-२४३-७ : 'नभ सराहि सुर बरषहिं फूला।' 'बरषहिं' के स्थान पर पाठ है 'बरिसहिं'। दोनों रूप प्रयुक्त हुए हैं :

जनु तहं बरिस कमल सित स्रेनी। १-३८-२
बरषहि राम सुजस बर बारी। १-३६-४
देखि दसा सुर बरिसहिं फूला। २-२१६-८
बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी। १-१६१-२
बारिद तपत तेल जनु बरिसा। ५-१५-३
बरषहिं सुमन करहिं कल गाना। १-२४६-८

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत है।

(१८) २-२४८-८ : 'बहुत कहेउं सब किएउं ढिठाई।' 'सब' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बस'। 'बस' यहाँ पर अर्थहीन और असंगत लगता है। 'बहुत कहेउं' के साथ 'सब ढिठाई किहेउं'= 'सभी धृष्टता के कार्य किए' की संगति प्रकट है।

(१९) ३-५-१ के बाद : १७०४ में निम्नलिखित अर्द्धालियाँ और हैं : 'जो सिय सकल लोक सुखदाता। अखिल लोक ब्रह्मांड कि माता। तेउ पाइ मुनिबर मुनि भामिनि। सुखी भई कुमुदिनि

जिमि जामिनि।' स्त्रीलिंग में 'सुख दायिनि' ही संभव है, 'सुखदाता' नहीं; 'सुखदाता' तो पुलिंग है। इसके अतिरिक्त 'जो' के साथ 'सोउ' एकवचन ही संभव है, 'तेउ' बहुवचन नहीं। इसलिए १७०४ का पाठ प्रामाणिक नहीं लगता है।

(२०) ३-१७-१६ के बाद : १७०४ में निम्नलिखित दोहा अधिक है : 'अधम निसाचर कुटिल अति चली करन उपहास। सुनु खगेस भावी प्रबल भा चह निसिचर नास।' 'निसाचर' एक बहु-प्रयुक्त शब्द है, किंतु ग्रंथ में वह कहीं भी 'राक्षसी' के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है। राक्षसों और राक्षसियों को अलग-अलग 'निसाचर' और 'निसिचरी' शब्दों से बतलाया गया है, यथा :

सुनि निसचरी निसाचर धाए। ६-१०७-३

इसलिए यह दोहा भी प्रामाणिक नहीं लगता है।

(२१) ४-६-७ : 'मास दिवस तहं रहेउं खरारी। निकसी रुधिर धार तहं भारी।' 'तहं' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'सत' है। बालि ने केवल एक पखवारे तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा था :

परखेसु मोहिं एक पखवारा। ४-४-६

पखवारे की जगह पर मास भर की प्रतीक्षा तो संगत है, पर सौ मास तक की प्रतीक्षा तो असंगत ही है।

(२२) ५-१४-८ : 'तब हनुमंत निकट चलि गएऊ। फिरि बैठी मन बिसमय भएऊ।' 'फिरि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'फिर'। 'फिर' = 'पुनः' का कोई प्रसंग नहीं है; प्रसंग यहाँ पर 'फिरि' = 'मुख फेर कर' बैठने का है। एक अपरिचित व्यक्ति से बात-चीत करते समय सीता के लिए यह करना समीचीन ही है।

(२३) ५-४६-६ : 'मैं जानौं तुम्हारि सब रीती।' 'तुम्हारि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'तुम्हार'। 'रीती' स्त्रीलिंग कर्म के साथ 'तुम्हारि' स्त्रीलिंग विशेषण की समीचीनता प्रकट है। 'तुम्हार' पुल्लिंग विशेषण उसके लिए समीचीन नहीं है।

(२४) ६-३-६ : 'महिमा यह न जलधि कै बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कै करनी।' 'कपिन्ह' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'कपि'।

१७०४ के पाठ में छंद-दोष प्रकट है। इसके अतिरिक्त सेतु-रचना किसी एक कपि का काम भी नहीं था। इसलिए 'कपिन्ह' पाठ की समीचीनता भी प्रकट है।

(२५) ६-७-६ : 'मुनिबर जतन करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी। सोइ कोसलाधीस रघुराया। आएउ करन तोहि पर दाया।' १७०४ में ऊपर की पहली अर्द्धाली नहीं है। उसके बिना दूसरी अर्द्धाली की संगति नहीं लगती, अतः १७०४ के पाठ की अशुद्धि प्रकट है।

(२६) ६-१५ : 'अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान। मनुज बास चर अचर मय रूप राम भगवान। अस बिचारि सुनु प्रान पति प्रभु सन बयरु बिहाइ। प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ।' १७०४ में ऊपर का दूसरा दोहा नहीं है। इस दोहे के बिना कथन अपूर्ण रह जाता है। अतः अशुद्धि प्रकट है।

(२७) ६-३० : 'जनक सुतहिं लै जाउं।' 'जनक सुतहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'जनक सुता'।' कर्म कारक में प्रथम रूप की समीचीनता प्रकट है, दूसरा रूप जो परसर्गहीन है, समीचीन नहीं लगता है।

(२८) ६-३२-६ : 'कछु तेहिं लेइ निज सिरन्हि संवारे।' १७०४ में 'तेहिं लेइ' के स्थान पर 'बहुकर' पाठ है।' 'बहुकर' संगति तभी हो सकता है जब कि उससे 'बहुकर द्वारा' अर्थ लिया जावे। किंतु यह ठीक नहीं है। 'तेहिं लै' = 'उसने लेकर' की संगति प्रकट है।

(२९) ६-४०-१ : 'सुना दसानन अति अहंकारी।' १७०४ में 'सुना' के स्थान पर पाठ है 'सुनेहु'। दोनों रूप व्याकरणसम्मत हैं, किंतु प्रसंग में 'रावण' कर्त्ता के लिए 'आ' अंत्य भूतकालिक रूप ही आया है, यथा :

अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। ६-३९-४

इसलिए 'सुना' ही समीचीन लगता है।

(३०) ६-४५ : 'भुजबल रिपु दल दलमलि देखि दिवस कर अंत। कूदे जुगल प्रयास बिनु आए जहं भगवंत।' १७०४ में 'दलमलि'

के स्थान पर पाठ 'दलमलेउ' है। 'जुगल' तथा उसकी क्रिया 'कूदे' से कर्त्ता का बहुवचन होना प्रकट है। 'दलमलेउ' एकवचन क्रिया उस कर्त्ता के साथ नहीं ठीक है; पूर्वकालिक क्रिया 'दलमलि' के संबंध में यह कठिनाई नहीं है।

×(३१) ६-४६-६ : 'दोउ दल प्रबल पचारि पचारी। लरत सुभट नहि मानहिं हारी।' 'लरत' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'लरहिं' और 'मानहिं' के स्थान पर उसमें हैं 'मानत'। दोनों पाठों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं ज्ञात होता है।

(३२) ६-७६-७ : 'उठी रेनु रबि गएउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई।' 'मरुत' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'पवनु'। बल और वेग के प्रकरण में सामान्यत: 'मरुत' या मारुत' का ही प्रयोग मिलता है :

मरुत कोटि सत बिपुल बल। ७-६१
जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाही। १-१३-११
कबहुँ प्रबल चल मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं। ४-१५
प्राबृट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे। ६-४६-८

एकाध ही स्थल पर बल के प्रसंग में 'पवन' का उल्लेख हुआ :

पवन तनय बल पवन समाना। ४-३०-४

इसलिए 'मरुत' अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(३३) ६-६८-६ : 'नखन्हि लिलार बिदारत भए।' 'नखन्हि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'नखन्ह'। 'नखन्ह' प्रथमा या द्वितीया के रूप की तुलना में 'नखन्हि' के तृतीया रूप की समीचीनता प्रकट है।

×(३४) ७-२७ : 'चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ।' दूसरे चरण का पाठ १७०४ में है : 'प्रति रचि लिखे बनाइ।' जिस प्रकार 'प्रति' के साथ 'गृह' मात्र पर्याप्त है, उसी प्रकार 'बनाइ' के साथ उसका पर्यायवाची 'रचि' भी अनावश्यक है। दोनों पाठ एक से हैं।

(३५) ७-६७-१ : 'जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए। सीता खोज सकल दिसि धाए।' दूसरे चरण का पाठ १७-४ में है : 'सीता खोजन सकल सिधाए'। संगति दोनों पाठों से लग सकती है। किंतु 'सीता खोजन' व्याकरणसम्मत नहीं है—व्याकरणसम्मत होगा 'सीतहि खोजन' ='सीता को खोजने के लिए', अथवा जैसा अन्य पाठ में है 'सीता खोज'='सीता की खोज में'।